महाभाव-दिनमणि

श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(मातृसाधना)

विषय :

१. गुरुवरण
२. महात्रिपुरसुन्दरीका संक्षिप्त परिचय
३. भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी साधनाका प्रयोजन
४. प्रातःस्मरण
५. भगवती पराम्बाका ध्यान एवं स्तुति
६. त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजास्तोत्रम्
७. श्रीपुर वर्णन
८. महायागक्रम 'भावोपनिषद्)
९. पुष्पाञ्जलि मंत्र
१०. पू. राधाबाबाकी तंत्रसाधनाके मुख्य स्तोत्र
११. दुर्वासा ऋषिका दर्शन
१२. न्यासविद्याके परमाचार्य श्रीराधाबाबा
१३. शक्तिसाधना संबंधी प्रश्नोत्तर
१४. पू. श्रीराधाबाबाको पराम्बाका साक्षात्कार
१५. व्रजरज उडि मस्तक लगै

भगवती ललिताम्बाकी आरती

जय जय जगदम्ब राजराजेश्वरि ललिते ।
शरणागत भक्त हेतु चतुर्वर्ग फलिते ।।

अमृतोदधि–सुरतरुवृत मणिद्वीप-नीप-वितत।
चिन्तामणिधाम रत्नवेदि समुज्ज्वलिते।।

शिवाकारमंचोपरि परशिवपर्यंकोपरि।
कामेश्वरअंकोपरि राजति रतिकलिते।।

उद्यत्-दिनकर-सहस्र शीतकिरण कोटि मिश्र।
निज तनु निरवधि अजस्र चिद्घनरस-गलिते।।

केशकुसुम मौक्तिमाल-ग्रथित बालचन्द्रभाल।
त्रिनयन करुणा रसाल नासामणिनलिके ।।

अलक-झलक युग कपोल श्रुतिमणिताटंक लोल ।
अरुणारुण नव निचोल मंदहासमिलिते।।

सिन्दूरारुण शरीर वेदबाहु युद्धवीर।
पाशांकुश धनुषतीर-धृत कृत-रिपुदलिते।।

मरकतमणि कनकमाल कंचुकि गल मौक्तिमाल।
मणिमय रशना विशाल अंतरीय तुलिते ।।

पद–नूपूर–नख–प्रकाश गजगति-गंजन विलास।
रासेश्वरि दास आस रास-वास वलिते।।

महाभाव—दिनमणि श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(पत्राचार एवं मातृसाधना)

प्रथम अध्याय

(अन्य लोगोंसे पत्राचार)

१) श्रीहनुमानजी ठर्ड
२) श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया
३) श्रीजयदयालजी कसेरा
४) श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया

विषय

१) महापुरुषोंकी महिमाका ज्ञान
२) शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है
३) भगवान् कृपा करते ही हैं
४) जगत्को भूलें
५) सन्तके सम्मुख सन्देह नहीं रहते
६) वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना
७) प्रभुके लिये द्वार खोलें
८) मना रे, करु माधवसों प्रीत

सार–संक्षेप

अबतक जो भी पापकर्म हमसे हो गये हैं, उन्हें भगवान्‌की कृपा पर छोड़कर, भविष्यमें कोई भी दोष संघटित नहीं हों, इसकी सतत चेष्टा रखनेकी आवश्यकता है । पिता, चाचा, भाई आदि सभी परिवारके गुरुजन पाप करनेकी प्रेरणा देते हैं और वैसा न करनेपर व्यापारिक अर्थ हानिका उत्तरदायी आपको ही समझते हैं, तो इसका उत्तर यही है कि शास्त्रमें यह बात स्पष्टतौर पर आती है कि यदि पिता भगवद्विमुख हो और पापकी आज्ञा दे, तो उसका कहना कदापि नहीं मानना चाहिये।

x x x x

आप अपने हृदयमें तनिक भी चिन्ता नहीं करें, क्योंकि आप भगवदाधीन हैं । जब भगवान् आपके लिये दुःख–क्लेशका विधान रचेंगे, तो उसको सहन करनेकी शक्ति भी अवश्य ही देंगे ।

x x x x

हम यदि सूक्ष्मतासे विचार करें, तो हमें पता लगेगा कि भगवान्‌की कृपाके बिना तो हम श्वास भी नहीं ले पाते हैं । अतः जब हमारे प्राणोंका स्पन्दन भी भगवान्‌की शक्तिसे हो रहा है, हमारी श्वास–प्रश्वास उनकी कृपाशक्तिसे चल रही है, हमारी हृदयकी धड़कन भी उन्हींके संकल्पका फल है, तो फिर विचार करें कि भगवान् हमारे कितने अधिक समीप हैं । यदि प्रभुकी ओरसे हमें असफलता भी मिले, तो चिन्ता नहीं । सफलताकी आकांक्षा सभी प्राणियोंमें होती है, परन्तु भगवत्प्रेमी सफलताके स्थानपर प्रभुकी रुचिकी जय हो–यही कामना करता है ।

x x x x

यह सत्य, सत्य, परम सत्य है कि भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संग भगवान्‌के संगकी अपेक्षा भी अनेक अंशोंमें बढकर है । यह भावुकताकी सर्वथा बात नहीं है । वस्तुतः ही भगवान्‌की प्राप्तिकी अपेक्षा सच्चे सन्तकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है ।

x x x x

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–१

महापुरुषोंकी महिमाका ज्ञान

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

(प. पूज्य श्रीराधाबाबा)

पत्र–प्रेषिति :

श्रीहनुमानजी ठर्ड, कलकत्ता

लेखन–स्थल
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी
हवेली, ग्राम, पो. रतनगढ़, (बीकानेर राज्य)
दिनांक : पत्रकी प्रतिलिपिमें कोई तिथि
नहीं दी गयी; संभवतः सन् १९४३

प्राप्ति–सूत्र
श्रीशिवकिसनजी डागा
के पत्र–संग्रहसे
श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी द्वारा
की गयी प्रतिलिपि ।

आलोक

श्रीहनुमानजी ठर्ड उन सौभाग्यवान् जीवोंमें से एक थे, जिन्होंने पू. भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी मस्सों (PILES) की अति भीषण कष्टदायक बीमारीमें प्राणप्रणसे सेवा की थी । दिल्लीमें जब पू. भाईजी मरणान्तक रोगाक्रान्त थे और उन्हें अतिशय भीषण शिरोवेदना भी साथ –साथ ही थी, उस समय श्रीप्यारेलालजी डागा और श्रीहनुमानजी ठर्ड, इन दो भाग्यवान् जीवोंने जिस धैर्य, लगन एवं श्रमपूर्वक श्रीभाईजीकी सेवा की थी, उससे स्वामीजी श्रीचकधरजी महाराज इनके प्रति अपनेको सदैव उपकृत अनुभव करते थे ।

———

भैया श्रीहनुमानजी ठर्ड,

आपके मनमें जो ऐसी अभिलाषा जाग्रत हुई है कि भगवान्‌की भक्ति करूँ, इससे उत्तम दूसरी अभिलाषा हो ही नहीं सकती । आज कलियुगमें अल्पआयु, अल्पशक्ति एवं अल्पबुद्धिवाले मनुष्य हैं । हमारी दशा विषय–वारि–मनो–मीनकी

है, अर्थात् हम विषयोंके जलमें मीन (मछली) की तरह पूरे आसक्त हुए जी रहे हैं। विषय–वारि (जल) को छोड़नेकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते । हमें लगता है कि यदि हमसे विषय छूट गये तो हमारे प्राण ही नहीं रहेंगे । कलि–मलसे ग्रसित बुद्धिमें इस पावन भक्तिकी अभिलाषाका उदय होना अनन्त जन्मोंके पावन पुण्यकर्मोंका ही फल समझना चाहिये ।

निश्चय ही, भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) जैसे सिद्धसन्तकी सेवा, जो आपसे बनी है, उसका ही यह सुफल है कि आपमें ऐसी शुद्ध वृत्तिके बीज पड़े हैं।

परन्तु इस परम पवित्र अभिलाषाको बहुत ही सावधानीपूर्वक आपको पुष्ट करना चाहिये । जैसे वृक्षकी अंकुर–अवस्थामें बाड़ देकर रक्षा की जाती है, प्रतिदिन जल देकर उसका पालन किया जाता है, उसके चतुर्दिक् उगनेवाली खर–पंक्तियों (नुकसान पहुँचाने वाली विषैली घास) को हटाकर उसे नीरोग रखा जाता है, उसे पाले आदिसे पानी देकर अथवा जूटकी बोरी आदिसे ढ़ककर रक्षा की जाती है, इसी तरह इस अभिलाषाको भी आपको अति सावधानीपूर्वक सुपुष्ट करना पड़ेगा ।

यह निश्चय है कि आपके ये भक्तिभाव यदि सुपुष्ट हो गये तो आप तीनों (सत्व, रज एवं तम) गुणोंका अतिक्रमणकर भगवान्के प्रेमस्वरूपको प्राप्त कर लेंगे।

इस भक्तिभावको सदाचरणकी बाड़ लगाकर पहले सुरक्षित किया जाता है, अन्यथा इसे विषयभोगरूपी वृत्तियाँ (बकरियाँ) चर जाती हैं ।

आपको सचमुच ही भक्तिरूपी इस वृक्षमें लगनेवाले भगवत्प्रेमरूप फलोंका यदि स्वाद चखना है, तो सर्वप्रथम भगवान्की कृपाका भरोसा करके आपके द्वारा प्रायः घटित होनेवाले सभी असत् आचरणोंको कराल विषतुल्य मरणान्तक मानकर त्याग देना चाहिये । इन झूठ, चोरी, दूसरेका धन अथवा राज्यकरका अपहरण करनेका पाप (हिंसा) मनको कड़ा करके, निश्चयपूर्वक सर्वथा छोड़ देना चाहिये। यदि आप सचमुच ही इन्हें कड़ा मन बनाकर त्याग देंगे, तो निश्चय ही प्रभु आपकी स्वयं पूर्ण सहायता करेंगे । परन्तु आपका यह सुदृढ़तम निश्चय तो होना ही चाहिये कि चाहे प्राण भले ही चले जावें, मैं पाप कदापि नहीं करूँगा । यह भक्तिभावरूपी वृक्षके अंकुरको रक्षा करनेवाली बाड़ है ।

यह बात आप निश्चयपूर्वक मान लें कि इन झूठ, चोरी, हिंसा आदि अशुचि आचरणोंसे केवल आपका ही सर्वनाश होगा, सो बात नहीं है, इस पापमें जो भी आपके भाई, बन्धु, मित्र, परिवारके माता–पितादि पूज्यजन भी यदि सहायक हैं, तो उन सबका घोर अहित एवं नाश निश्चित ही है । इसमें कहीं कोई मीन–मेख, कोई विकल्प है ही नहीं । भगवान्ने जो श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि–

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानामासुरीष्वेव योनिषु ।।

अर्थात्, इन नराधमोंको, जो अति क्रूरतापूर्वक आत्मासे, धर्मसे द्वेष करते हैं, मैं संसारमें बारंबार अशुभ एवं आसुरी कूकर–सूकरादि योनियोंमें डालता हूँ । यह बात कभी असत्य होनेवाली नहीं है । भगवान्का न्याय भी उसी प्रकार अमोघ है, जैसी उनकी दया, कृपा है । मूर्खतावश लोग इसे समझते नहीं हैं ।

अतः अबतक जो भी पापकर्म हमसे हो गये हैं, उन्हें भगवान्की कृपा पर छोड़कर, भविष्यमें कोई भी दोष संघटित नहीं हों, इसकी सतत चेष्टा रखनेकी आवश्यकता है ।

आपने जैसा लिखा है कि पिता, चाचा, भाई आदि सभी परिवारके गुरुजन पाप करनेकी प्रेरणा देते हैं और वैसा न करनेपर व्यापारिक अर्थहानिका उत्तरदायी मुझे ही समझते हैं, तो इसका उत्तर यही है कि शास्त्रमें यह बात स्पष्ट तौर पर आती है कि यदि पिता भगवद्विमुख हो और पापकी आज्ञा दे, तो उसका कहना कदापि नहीं मानना चाहिये । श्रीतुलसीदासजी तो सर्वोच्च महात्माओंकी श्रेणीमें आते हैं । वे कहते हैं :–

'जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।
पिता तज्यौ प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यौ, कंत ब्रजबनितनि, भये जग मंगलकारी ।

अतः भाई ! तुम्हें परिवारके कोई भी सम्बन्धी, गुरुजन यदि पाप करनेकी आज्ञा दें अथवा ऐसा करनेका मन ही बनावें तो तुम्हें उसका पालन कदापि नहीं करना चाहिये ।

जबतक भैया ! तुम्हारा यह अति सुदृढ़ निश्चय नहीं होगा, तुम जो भी भजन करोगे, वह भजन, सौ छिद्रवाली चलनीमें जैसे पानी इकट्ठा नहीं होता है, बह जाता है – वैसे बह जायेगा, उसका प्रकट फल तुम्हारे सम्मुख नहीं आ पावेगा । वृत्तियाँ शुद्ध नहीं होनेसे भजनमें रुचि और आनन्द नहीं आवेगा और भजन दीर्घ काल तक एवं नित्य नव–नव रससे भरा नहीं हो पावेगा ।

अतः पापोंके त्यागका निश्चय सुदृढ, सुदृढ़तर होना चाहिये । इस

निश्चयमें शिथिलता आनेसे एक बार त्याग दिये गये पाप पुनः हो सकते हैं । हाँ, यदि दोनों बातें एक साथ हुईं, भजनमें पूरी बढ़ोतरी और पाप—त्यागका सुदृढ़तम, नित्य नव—नव उत्साहपूर्वक निश्चय, तो प्रभु—कृपासे आत्मबल बढ़ेगा, पापप्रवृत्ति, टूट जायेगी; किन्तु मनमें यह निश्चय दृढ़तापूर्वक होना चाहिये कि पापोंको मैं आत्मसमर्पण नहीं करूँगा, चाहे प्राण भले ही चले जावें।

इस प्रकार पापोंको त्यागकर यदि आप भजन करेंगे और भजनमें मन लगने लगेगा, तो अपने—आप भगवान् एवं महापुरुषोंकी महिमा समझमें आने लगेगी । उसके पहले हमारी जो कल्पना है, वह मात्र उनके बाहरी रूपकी ही होती है ।

आप दुजारीजीसे अथवा किसीसे भी बहुत ऊँची—ऊँची बातें सुन सकते हैं, परन्तु उनको सही प्रकारसे हृदयंगम करना और लाभ उठाना, केवल मात्र भजनसे ही संभव हो सकता है । स्वयं भजन नहीं करेंगे, वे बातें केवल बातें ही बनी रहेंगी। भाईजीकी सबसे बड़ी महिमा यही है कि उनकी श्वास—श्वाससे भगवान्‌का साक्षात् स्मरण होता है, उनकी आँखें निरंतर भगवान्‌को देखती—सुनती हैं, उनके मनके प्रत्येक भाव भगवान्‌को ही समर्पित होते हैं और वे स्वयं भगवान्‌के ही हैं । इसका अर्थ यही तो है कि हम उनसे शिक्षा लेकर अपना जीवन वैसा ही ढाल लें। यदि हम केवल यह सुनते रहे, बोलते रहे कि भाईजी इतने महान् हैं, भाईजी ऐसे भक्त हैं, तो होगा क्या ? भाईजीके मुखसे निगला ग्रास क्या हमारा पेट भरेगा ? हमारा पेट तो तभी भरेगा जब हम भाईजी—जैसे स्वयं भजन कर भगवान्‌के हो जावेंगे।

भाईजीकी सबसे बड़ी महानता, मेरी दृष्टिमें यही है कि वे एक साधारण वैश्यकुलमें उत्पन्न हुए सामान्य जीव थे । उनमें कभी, कोई अवतारी शक्तियाँ नहीं रहीं । वे सामान्य जीव बनकर जन्मे, उन्होंने सामान्य लोगोंकी तरह ही गृहस्थ—धर्मका पालन किया । उनके बाल—बच्चे हुए; उनका भी उन्होंने सामान्यतया ही निर्वाह किया । उन्होंने कभी कोई असामान्यता अपने जीवनमें दरसाई ही नहीं, अपितु सामान्य मानव—जीवनमें जो भी क्षुद्रताएँ, कमियाँ हो सकती हैं, अन्ततक वे उन्हें ही अपनेमें दरसाते रहे, परन्तु भगवद्भजनको दृढ़तापूर्वक नित्यनूतन वेगसे बढ़ाते चले गये । वे स्वयं यावज्जीवन भगवच्छरणागत रहे और सबको वैसा ही हो जानेका उपदेश भी देते रहे ।

उन्होंने एक शब्द भी ऐसा कभी सम्भाषण नहीं किया, जो वे स्वय आचरण नहीं कर सके हों । वे सत्संगमें भी प्रायः वे ही बातें बताया करते हैं, जो वे जीवनमें उतार चुके होते हैं । वे पूर्ण भगवद्विश्वासी, सर्वथा सब प्रकारसे भगवान्‌पर पूरे मनसे निर्भर हैं । अब मैं, आप, दुजारीजी अथवा अन्य कोई भी

जबतक पूरे भगवद्विश्वासी नहीं होते, भाईजीकी स्थिति कैसे समझ पावेंगे ? भाईजी तो अवश्य ही इन सभी स्थितियोंसे और बहुत ऊँची कल्पनातीत गतिको भी लाँघते गये हैं; हम जो कुछ ऊँचाई मात्र सोच सकते हैं, वह तो भाईजीकी स्थितिके सम्मुख तुच्छातितुच्छ है, परन्तु जिस अगम्य् दुर्लभ गतिको भाईजीने प्राप्त कर ली है, उसकी हमारी बुद्धि कल्पना भी तो तभी करेगी, जब कुछ सीढ़ियाँ हम भी चढ़ जावेंगे ।

आप मुझसे पूछेंगे कि आप मुझे जो कुछ भी बतला सकते हैं, वह तो बताइये, तो मैं सत्यधर्मसे कहता हूँ कि मुझे भी जो कुछ मालूम है, वह आप समझ नहीं सकियेगा । इसमें आपकी बुद्धिका दोष नहीं है । आप पूर्ण बुद्धिमान् हैं, परन्तु वह स्थिति ही ऐसी नहीं है, जो सुनकर समझी जा सके ।

आप सचमुच ही यदि समझनेकी इच्छा रखते हैं, तो मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भजन कीजिये । भजन आपको योग्यता देगा और तब भगवान् या स्वयं भाईजी ही आपको बिना संकोचके सब बात समझायेंगे ।

मैं इस मतका भी नहीं हूँ कि आपको जो भी बातें श्रीदुजारीजीके द्वारा सुननेको मिल रही हैं, उन्हें मत सुनिये । भाईजीकी महिमा कोई भी कहे, सुन लीजिये, परन्तु सुननेमात्रसे आपको वह लाभ नहीं मिल सकता, जो मिलना चाहिये। वह लाभ तो तभी मिलेगा, जब जीवन बनेगा । अतः पूरी शक्ति लगाकर पापोंसे पूरी घृणा करते हुए, उन्हें छोड़कर तत्परतापूर्वक भजनमें लग जाइये । फिर स्वयं भगवान् गरज करके आपको सब समझावेंगे ।

आपको कोई यह भी समझा सकता है कि स्वामीजीने आपको टरका दिया, उनकी कहनेकी इच्छा थी नहीं, सो दूसरी बातें बनाकर आपको संतोष करा दिया, तो मुझपर विश्वास करें कि ये बातें बुद्धिके परेकी हैं, अनुभूतिपरक हैं । यदि कह भी देता और आप कुछका कुछ समझ लेते, तो लाभके स्थानपर हानि भी हो सकती थी । 'मिश्री' बहुत ही अच्छी वस्तु है, परन्तु संग्रहणीकी बीमारीमें वह हानि करती है एवं कुपथ्य मानी जाती है । जबतक पाप हैं, तबतक प्रेमकी ऊँची–ऊँची बातें सावधानीपूर्वक ही सुननी चाहिये ।

आप स्वस्थ और सानन्द होंगे । मैने सच्ची एवं हितकी समझकर ही आपको अपने मनकी बातें लिखी हैं, यदि पसन्द नहीं आवें तो क्षमा करेंगे ।

आपका
चक्रधर

———

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२

शुद्ध अन्नसे ही शुद्ध मन संभव है

भैया श्रीहनुमानजी ठर्ड !

सस्नेह जय श्रीराधे । आपका पत्र यथासमय मिल गया था । पूर्वमासकी पूर्णिमापर पत्रोत्तर नहीं लिखा जा सका था; अतः पत्रोत्तरमें हुए विलम्बपर विचार मत कीजियेगा । आपने पुनः भाईजीकी महिमाके दो–चार प्रसंग लिखनेका आग्रह किया, सो आपके भावपक्षका मैं हृदयसे अनुमोदन करता हूँ ।

देखिये हनुमानजी ! सभी धर्मोंके दार्शनिक एवं सभी आधुनिक वैज्ञानिक भी, एकमतसे यह बात मानते हैं कि अन्नसे ही मन बनता है । यदि आप सात्विक, पवित्र अन्नका भोजन करेंगे, तभी आपका मन भगवद्विश्वासको अपने आचरणका आधारस्तंभ बना सकेगा । संत और भगवान्, दो पृथक् अस्तित्व हों, ऐसी बात नहीं है । इसीलिये संतपर विश्वास और भगवान्पर विश्वास, दो बातें नहीं हैं । यदि हमारा संतपर विश्वास नहीं है, तो संत–महिमाकी ऊँची बातोंपर कैसे विश्वास हो सकता है ? संत एवं भगवान्पर पूर्ण विश्वास ही संत एवं भगवान्की महिमाको हृदयमें उतारनेका सच्चा साधन है । अतः मनको शुद्ध, संत–विश्वासी बनानेकी पहली सीढ़ी है– अन्न सात्विक हो, सात्विक विधिसे, सात्विक विचारोंवाले व्यक्ति द्वारा निर्माण किया गया हो और वह सात्विक कमाईसे प्राप्त किया गया हो ।

यह बात आपको अति साधारण मालूम पड़ेगी, परन्तु मनको शुद्ध बनानेके लिये यह पूर्णरूपसे परमावश्यक है । महाभारतमें भीष्म पितामहके प्रसंगमें यह बात बहुत ही स्पष्ट रूपसे आयी है ।

महाभारत युद्धकी समाप्तिपर एक दिन युधिष्ठिरको भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि ज्ञानके सूर्य दादाजी भीष्म पितामह अस्त होने जा रहे हैं, उनसे जो भी सीखना हो, सीख लो । भगवान्के निर्देश पर सभी पाण्डवोंसहित युधिष्ठिर, द्रौपदी एवं श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्रके उस भूभागपर गये जहाँ भीष्मजी शरशय्यामें पड़े, सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे । वे सूर्यके उत्तरायण होनेपर ही देह त्याग करना चाहते थे । पाण्डवों एवं भगवान् श्रीकृष्णको अपने पास आया देख, भीष्मजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको मृत्युके समय अपने पास ही खड़े रहकर, दर्शन देते रहनेकी

प्रार्थनाकी, क्योंकि युद्धभूमिमें उनके पास भगवान्‌को आसन देनेकी सुविधा तो थी नहीं। युधिष्ठिरने भीष्मजीसे बहुत ही मार्मिक धर्मकी बातें पूछीं, और सभी बातोंका दादा भीष्मजी सांगोपांग उत्तर देते गये । इस प्रकार युधिष्ठिर एवं भीष्मजीका वार्त्तालाप चल ही रहा था कि वहीं खड़ी, इस संवादको सुन रही, द्रौपदी मुसका उठी ।

द्रौपदीको हँसते देखकर दादाजीने पूछा–"बेटी ! तू तो पतिव्रता स्त्री है, तुम्हारी जैसी स्त्री अकारण नहीं हँस सकती । बोलो, सत्य बताना, तुम्हें हँसी किस कारणसे आयी ?"

द्रौपदीने उत्तर दिया – "दादाजी ! मुझे एक सन्देह हो गया है । आज तो आप इतनी ऊँची धर्मकी वार्त्ता कर रहे हैं, धर्मके सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्तरोंकी सरल और सारगर्भित व्याख्या कर रहे हैं, परन्तु आपका यह धर्म–ज्ञान उस समय कहाँ चला गया था, जबकि भरी सभामें मेरी साड़ी दुःशासन द्वारा खींची जा रही थी ?"

द्रौपदीकी बात सुनकर दादाजीने उत्तर दिया–"बेटी ! तू सत्य कह रही है। पापात्मा दुर्योधनका अन्न खानेसे उस समय मेरी बुद्धि दूषित हो गयी थी और मैं न्याय–अन्यायका पूर्णतया विचार नहीं कर सका था ।"

भैया ! जब दूषित अन्न खानेसे भीष्मजी जैसे, गंगामाताके पुत्र और सत्यनिष्ठ, नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी बुद्धि भी धर्म–अधर्मका निर्णय करनेमें भ्रान्त हो सकती है, तो राज्यकरकी चोरी जैसा दूषित महापाप करके अर्जित धनसे प्राप्त अन्नको खानेसे अशुद्ध हुई आपकी बुद्धि भाईजी जैसे महा–महा पवित्र महापुरुषकी महिमाको कैसे धारण कर पावेगी–यह बात मेरी तुच्छ बुद्धिमें उतर ही नहीं पा रही ।

भैया ! हमारी सभीकी स्थिति यही है – भाईजी जैसे भगवत्प्रेमी महापुरुषकी महिमाके साथ भी हम मात्र मनोविनोद ही कर रहे हैं । भाईजीके पवित्र साधनामय जीवनको, उनके विश्वासोंको हम अपने आचरणोंका आधारस्तंभ कहाँ बना रहे हैं ? अन्यथा हम तुच्छ धनके लिये असत्य भाषण, राज्यकरकी चोरी, विषयविलासरूपी कलिपंकमें ग्राम्यशूकरकी तरह पड़े रहनेकी अपनी आदतें कुछ तो छोड़नेके लिये सचेष्ट होते । हमारे धन अर्जनका प्रयोजन क्या है ? विषय विलासकी सुविधायें ही तो धनसे जुट पाती हैं, झूठे अहंकारकी पुष्टि ही तो धनबहुलता करेगी और उसका परिणाम घोर नरकोंकी प्राप्ति ही तो होगी।

अतः भाई हनुमानजी ! अत्यंत प्यारसे, एक हितू मित्रकी तरह तुम्हें यही राय देता हूँ कि अपने संत–विश्वासको जीवन्त बनाओ । हम जब भगवान्‌के परम मंगलमय दुःखक्लेशरूप प्रसादको प्राप्त करनेसे इतने घबड़ाते हैं और भगवान्‌को त्यागकर विषयभोगोंको प्राप्त करनेके लिये असत्य, कपट, चोरी, व्यभिचारादि पापोंको अमृतकी तरह सेवन करते हैं, तो भाईजी जैसे महासिद्ध सन्तका प्रेमचरित्र

और उसकी महिमाके कहाँ अधिकारी हैं ?

भाईजीने तो स्वार्थरहित हो, भगवत्प्रेमको ही अपने जीवनका ध्रुवतारा बनाया है । उनके तो प्रत्येक कर्म, सोने, जागने, उठने, बैठने, खाने, पीने, हँसने, बोलनेका पर्यवसान ही भगवत्प्रेममें है ;

भैया हनुमान ! भाईजीके किसी एक जीवन पक्षको तो हम अपने आचरणका आधारस्तंभ बनावें । हम यह तो अटल ध्रुव निश्चय करें कि चाहे हमें घोर दरिद्रता मिले, भगवान् हमें अन्नके दाने–दानेके लिये मोहताज कर दें, हम एकनिष्ठ होकर वही कर्म करेंगे जो भगवान्को प्रसन्न करनेवाला है । उस समय यदि तुम पैसे–पैसेके मोहताज हुए मर भी गये, जगत्में दरिद्रताके कारण तुम्हारा सर्वत्र यदि तिरस्कार–अपमान ही हुआ, तो भी तुम्हें यह सन्तोष तो होगा कि मृत्युपर्यन्त शेष जीवन मैने भगवान्की सेवामें, उनके अनुकूल आचरण करते हुए बिताया ।

भैया ! भगवान् हमारी त्रुटियों एवं कमजोरियोंको भली प्रकार जानते हैं, वे ठीक समझते हैं कि हमारी गति ही उनकी ओर नहीं है, हमारी माँग भी भगवान् नहीं हैं, फिर भी अकारण हितू भगवान्ने हमपर अपनी अनन्त कृपाकी बौछार की और हमें भाईजी जैसे अपने सर्वाधिक–प्रियपात्रकी सेवा प्रदान की।

अतः भाई ! इस बरसती भगवत्कृपाको अपने पास सुरक्षित सँजोकर रख सको, और वह तुम्हारी स्थायी पूँजी बन जाय, इसके लिये तुम्हें कुछ ठोस उद्योग तो करना ही होगा ।

अतः इसे ही भाईजीकी महिमाकी बात मानो कि यदि तुम सचमुच पापरहित होकर भगवान्की नाम–जप साधनामें जुट जाओ, तो तुम्हारे हृदयमें निश्चय ही भगवत्प्रेमकी ऐसी तरंग उठेगी, जो बिना किसी बाधाके तुम्हें भगवान्की ओर धकेलकर अग्रसर कर देगी । तुम्हारा साधन–पथ निश्चय ही भाईजीकी कृपासे बहुत ही निष्कण्टक होगा ।

भैया ! आवश्यकता यही है कि तुम अपने जीवनके क्षण–क्षणको भगवत्स्मृतिमें ही बिताओ और कोई भी पाप भूलकर भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर पावे ।

यह निश्चय है कि तुमपर भगवान्की असीम हेतुरहित कृपा है । क्योंकि भगवान्की असीम कृपाके बिना तुमसे भाईजी–जैसे महापुरुषकी शरीर सेवा बन ही नहीं सकती थी । कोई–न–कोई बाधा, विघ्न आ ही जाता ! यह सत्य है कि भगवान्ने तुम्हें अपनी कृपाशक्तिके विपुलदानसे अनुगृहीत किया है ।

तुम प्रति दिवस प्रभातमें निद्रासे उठते ही बिस्तरोंमें बैठे–बैठे प्रार्थना करो– "हे प्रभो ! मुझे अपनी शक्ति देकर अधोगतिसे ऊपर उठायें । मेरे अपराधोंका परिमार्जन करें ।"

हनुमान भैया ! जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विशुद्ध भावसे भगवान्‌को अत्यंत समीप समझकर, नितान्त सरलता और सच्चाईके साथ अपने हृदयकी सभी भावनाओंको हम भगवान्‌को निवेदन कर दें और एकमात्र उन्हींकी प्राप्तिके लिये चेष्टारत हों। अपनी शक्तिभर प्रयत्न करनेसे निश्चय ही भगवान्‌की कृपासे हमें वह मंगलमय स्थिति प्राप्त होगी, जिसकी शिव–सनकादि मुनिजन भी अत्यंत लालसा करते हैं । विषयोंसे मन हटानेपर और उसे भगवन्मुखी करनेपर ही हमें वह प्रेममयी स्थिति प्राप्त होगी, जहाँसे हम श्रीभाईजीके सच्चे स्वरूपको ताक सकेंगे ।

आपका
चक्रधर

———————

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–३

भगवान् कृपा करते ही हैं

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

(परम पूज्य श्रीराधाबाबा)

पत्र – प्रेषिति :

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया

पत्र–प्रेषणस्थल :

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली

ग्राम, पोस्ट – रतनगढ़, (बीकानेर राज्य)

दिनांक : १० मार्च १९४०

प्राप्तिसूत्र:

श्रीशिवकिसनजी डागाके

पत्र–संग्रहसे प्रतिलिपि

आलोक

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया एक सात्विक धर्मभीरु सज्जन हैं । ये श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका एवं भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परम श्रद्धालु हैं । इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गीताप्रेसको समर्पित किया हुआ है । वर्षोंतक श्रीसेठजीके साथ रहकर इन्होंने उनके विचार और प्रवचनोंको मारवाड़ी भाषासे हिन्दीमें रूपान्तरित करके लेख तैयार करनेकी सेवा की है । ये वर्तमानमें भी गीताप्रेसके समर्पित कार्यकर्त्ता हैं । जीवन–पर्यन्त इन्होंने गीताप्रेसकी ही सेवा की है ।

———————

प्रिय रामेश्वरजी !

सादर सप्रेम यथायोग्य । आपका पत्र पढ़कर एक प्रकारसे मन व्यथित हुआ । अवश्य ही हम सभीकी, जो भगवान्‌से विरहित संसारमें पड़े हैं, वस्तुतः दशा अति दयनीय ही है ।

एक बात अवश्य है । यद्यपि यह बात किसीके भी सामने प्रमाणित हो सके या इसे मैं प्रमाणित कर पाऊँ–ऐसी सामर्थ्य तो मेरेमें नहीं है तथापि यह कह सकता हूँ कि मेरा ऐसा सुदृढ़ विश्वास है कि आपने, मैंने या किसीने भी यदि जीवनमें एक बारके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय पकड़ा है, तो किसी–न–किसी दिवस उनकी कृपादृष्टि हमको इस विषय–कीच–कूपसे अवश्यमेव निकालेगी और

वे हमें निश्चय ही अपना नित्य, परममंगलमय सामीप्य देकर कृतार्थ करेंगे ही । चाहे मैं एवं आप अथवा कोई भी भगवान् श्रीकृष्णकी कितनी ही अवहेलना कर रहा हो, एवं आगे भविष्यमें भी चाहे और कितनी ही अवहेलना करे, वे हमारे दोषोंपर दृष्टिपात करते ही नहीं, करेंगे ही नहीं और अपने अखण्ड सौहार्दभरे स्वभावसे वही करेंगे, जिससे हम शीघ्र–से–शीघ्र उनके शाश्वत, मंगलमय चरणोंका अखण्ड आश्रय प्राप्त कर सकें ।

देखें, हमारी कल्पनामें यह बात आ ही नहीं सकती कि उनका प्रेम कितना निस्वार्थ, दिव्य एवं अलौकिक आत्मीयतासे परिपूर्ण होता है । जीवन यदि एक बार उनसे सम्बन्ध जोड़कर अज्ञानतावश उनसे हटना भी चाहे, तो हट नहीं सकता । भगवान्का अलौकिक आकर्षण इतना प्रबल होता है कि क्षणभरमें ही सम्पूर्ण जागतिक आसक्तियाँ जलकर खाक हो जाती हैं और जीव शुद्ध होकर उनमें मिल ही जाता है । जगत्में जितने भी श्रीकृष्ण–प्रेमी हुए हैं, या होंगे सभीके प्रति आगे–पीछे, देरसे अथवा शीघ्र, यह कृपा हुई है अथवा होगी ही । भगवान् जिसे एक बार स्वीकार कर लेते हैं, उसे कभी भी नहीं छोड़ते ।

आप कुछ भी नहीं कर पावें, तो अपनी सामर्थ्य–भर अधिक–से–अधिक कालतक उनका नाम जप करनेकी ही चेष्टा करें ।

मेरी इस बातपर विश्वास करलें कि श्रीकृष्णका प्रत्येक विधान अनंत प्रेम एवं मंगलसे ओतप्रोत है । अमावस्याके घने अन्धकारके पश्चात् शुक्लपक्षकी ज्योत्स्नामयी रजनी आती ही है ।

मुकलानियाजी ! यह कौन बता सकता है कि श्रीकृष्ण आपको इन परिस्थितियोंमें डालकर क्या देना चाहते हैं ? आपका निश्चय ही मंगल–ही–मंगल हो रहा है । यह बात तो प्रत्येक भगवद्विश्वासी व्यक्ति कह ही सकता है ।

मैं तो आपसे यही निवेदन कर सकता हूँ कि आप अपने भगवद्विश्वासको सजीव बनावें । भगवद्विश्वास एवं नाम जपसे असंभव संभव हो सकता है । मुझे उन लोगों पर तरस आता है, जो भगवद्विश्वासको अपने आचरणका स्तंभ नहीं बनाकर, अन्य साधनोंका आश्रय लेते हैं । मेरी दृष्टिमें भगवान्के पावन नामोंका जप और भगवद्विश्वासके अतिरिक्त इस कलिकालमें अन्य कोई साधना हो ही नहीं सकती । हमें पूर्णताके निकट ले जानेके लिये ये दोनों साधन अनमोल हैं।

भाई ! जैसे सुख–शान्ति भगवान्की कृपा प्रसाद है, उसी प्रकार दुःख–क्लेश भी भगवान्की ओरसे आनेवाला उनका कृपा प्रसाद ही है । अपनी त्रुटियों एवं कमजोरियोंको भगवान्के समक्ष निवेदन कर दें, फिर चाहे कल्याण हो अथवा अकल्याण, उत्थान हो अथवा पतन, उन्नति हो या अवनति, इस सम्बन्धमें फिर

सोचनेका कभी विचार ही नहीं करें । भगवान् जब चाहेंगे, इन कुकृत्योंको दूर करनेका स्वयं उपाय कर लेंगे । हमें अपने पास जो कुछ भी है, अच्छा–बुरा, शुभ–अशुभ, अपना सर्वस्व भगवान्‌को समर्पित कर देना चाहिये; फिर चाहे भगवान् हमें घोर नरकोंमें डालें, चाहे स्वर्गसुख दें, उनके प्रत्येक विधानमें हमें सन्तोषका अनुभव ही करना चाहिये।

आप अपने हृदयमें तनिक भी चिन्ता नहीं करें, क्योंकि आप भगवदाधीन हैं । जब भगवान् आपके लिये दुःख–क्लेशका विधान रचेंगे, तो उसको सहन करनेकी शक्ति भी अवश्य ही देंगे । फिर भय क्यों ?

मुकलानियाजी ! स्वार्थरहित होकर, अपने जीवनका लक्ष्य भगवत्प्रेम बनाइये। आपके प्रत्येक कर्मका पर्यवसान भगवत्प्रेममें ही हो । दृढ़ निश्चय करें कि मैं केवल एकनिष्ठ हुआ भगवत्प्रीत्यर्थ ही कर्म करूँगा । यदि आपके आत्मप्रीत्यर्थ कर्म बन्द हो जावें, तो फिर पाप होनेके द्वार तो सदा–सर्वदाके लिये बन्द हो ही जायेंगे, क्योंकि सारा विषय–विलास मात्र आत्मभोगार्थ ही है ।

हम यदि सूक्ष्मतासे विचार करें, तो हमें पता लगेगा कि भगवान्‌की कृपाके बिना तो हम श्वास भी नहीं ले पाते हैं । अतः जब हमारे प्राणोंका स्पन्दन भी भगवान्‌की शक्तिसे हो रहा है, हमारी श्वास–प्रश्वास उनकी कृपाशक्तिसे चल रही है, हमारी हृदयकी धड़कन भी उन्हींके संकल्पका फल है, तो फिर विचार करें कि भगवान् हमारे कितने अधिक समीप हैं ।

अतः जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विशुद्ध भावसे भगवान्‌को अपने अत्यन्त समीप समझकर, नितान्त सरलता और सच्चाईके साथ अपने हृदयकी अच्छी–बुरी प्रत्येक भावनाको उनके सामने रखते हुए, जो भी कर्त्तव्य–कर्म आपके लिये प्रस्तुत हो, उसकी सफलताके लिये भी भगवान्‌से अनुनय–विनय करें । फिर यदि प्रभुकी ओरसे हमें असफलता भी मिले, तो चिन्ता नहीं । सफलताकी आकांक्षा सभी प्राणियोंमें होती है, परन्तु भगवत्प्रेमी सफलताके स्थानपर प्रभुकी रुचिकी जय हो–यही कामना करता है ।

मुकलानियाजी ! भगवान्‌की ओर देख–देखकर ही यदि हमारे जीवनका क्षण–क्षण व्यतीत हुआ, तो हम सदा सन्तोष और प्रसन्नतासे ही भरे रहेंगे और क्या कहूँ ?

आपका
चक्रधर

———

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–४

जगत्को भूलें

पत्र–प्रेषकः

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज (पू. श्रीराधाबाबा)

पत्र–प्रेषितिः

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया, कलकत्ता

पत्र–प्रेषणस्थलः
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली
ग्राम, पो. रतनगढ़ (बीकानेर राज्य)
दिनांक :
आश्विन शुक्ल पूर्णिमा १९९७ वि. सं.

प्राप्ति–सूत्रः
श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी द्वारा
प्रतिलिपि किया
श्रीशिवकिसनजी डागाका
पत्र–संग्रह

श्रीयुत मुकलानियाजी,

आपका स्नेहभरा पत्र मिला । भाई, मैं तो आपको एक ही राय दे सकता हूँ । आप श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सब कुछ आत्मसमर्पण कर दीजिये, और इस जगत्को एवं अपने स्वयंको भी सर्वथा–सर्वांशमें भूलनेकी चेष्टा करिये। आपका सब दुःख इसीसे मिट सकता है ।

भाईजीके पास रहनेकी इच्छा आपके मनमें है, यह बड़ी सुन्दर बात है। अनन्त भाग्योदयके उपरान्त ऐसी इच्छाका स्फुरण मात्र होता है, परन्तु यदि मेरी बातपर विश्वास कर सकें, तो कर लीजिये कि इस इच्छाकी पूर्ति भी आप प्रभुकी रुचि पर ही छोड़ दीजिये ।

यह सत्य,सत्य, परम सत्य है कि भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संग भगवान्के संगकी अपेक्षा भी अनेक अंशोंमें बढकर है । यह भावुकताकी सर्वथा बात नहीं है । वस्तुतः ही भगवान्की प्राप्तिकी अपेक्षा सच्चे सन्तकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है । सन्तोंकी भी अनेक श्रेणी होती हैं । जो भगवान्के सगुण–साकार रूपके प्रेमी भक्त हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, सेवाकीतो बात ही क्या, उनसे स्पर्श पायी

हुई वायु भी यदि किसीको संस्पर्शित होती है, तो भी वह महा–महाभाग्यवान् है ।

साथ–ही–साथ यह भी उतनी ही महत्वपूर्ण बात है कि यदि श्रीकृष्ण ऐसे सौभाग्यका दान हमें नहीं करना चाहते हों एवं घोर विषयीजनोंके मध्य ही हमें रहने देनेका विधान बनाये हों, तो उनकी रुचिमें ही हमारी रुचि मिल जाय, मुझे यही बात श्रेयस्कर लगती है । अतः हमें प्रभुके विधानसे जबतक ऐसी सुविधा नहीं मिलती है कि हम पू. भाईजीके तीन हाथके शरीरके नित्य–संगी हों, हमें उनके शारीरिक संगकी स्पृहा अधिकतर, अधिकतम बढ़ाते जाना चाहिये । यह स्पृहा इतनी अधिक बढ़ जाय कि साक्षात् प्रभुको एवं संत–दोनोंको यह चिन्ता हो जाय कि यदि उनसे हमारा शारीरिक मिलन नहीं हुआ, तो हमारे कहीं प्राण ही नहीं छूट जावें ।

श्रीतुलसीकृत रामचरितमानसका कैसा शुभ प्रसंग है । श्रीविभीषणजी रावण–वध एवं लंकापुरीकी विजयके पश्चात् भगवान् रामजीसे कहते हैं –

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे ।।
देखि कोस मन्दिर सम्पदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा ।।
सब विधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ।।
सुनत वचन मृदु दीनदयाला । सजल भए द्वौ नयन विसाला ।।
दोहा – तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ।।
तापस वेष गात कृस, जपत निरन्तर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरऊँ तोहि ।।

"हे प्रभु ! अब इस दासके घरको पवित्र कीजिये । घरपर चलकर स्नान कीजिये, जिससे समरकी थकावट दूर हो जाय । हे कृपालु ! खजाना, महल और सम्पत्तिका निरीक्षणकर प्रसन्नतापूर्वक वानरोंको दीजिये । हे नाथ ! मुझे सब प्रकारसे अपनालीजिये और हे प्रभो ! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरीको पधारिये ।"

विभीषणजीके वचन सुनकर दीनदयालु प्रभुके दोनों विशाल नेत्रोंमें (प्रेमाश्रुओंका) जल भर आया । श्रीरामजीने कहा–"हे भाई ! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह बात सच है । पर भरतकी दशा याद करके मुझे एक–एक पल कल्पके समान बीत रहा है । वे तपस्वीके वेषमें कृश–शरीरसे निरन्तर मेरा नाम जप रहे हैं । हे सखा ! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी–से–जल्दी उन्हें देख सकूँ, मेरा तुमसे यही अनुरोध है ।

दोहा – *बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर ।*

सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ।

हे विभीषण ! यदि अवधि बीत जानेपर मैं जाता हूँ, तो भाईको जीवित नहीं पाऊँगा ।" छोटे भाई भरतजीकी प्रीतिका स्मरण करके प्रभुका शरीर बार–बार पुलकित हो रहा है ।

श्रीमुकलानियाजी ! जैसी भरतकी विरह दशा थी, यदि यही दशा हमारी श्रीभाईजीके विरहमें हो जाय, तो भाईजी फिर हमको, आपको एक क्षण भी अपनेसे विलग नहीं करेंगे । परन्तु हम भाईजीके मिलनकी केवल ऊपरी चाह ही रखते हैं, कहीं–न–कहीं हमारे भीतर कोई–न–कोई उनसे अनुकूलताकी, सुखकी, हितकी कामना है, हमारा जीवन–निर्वाह भाईजीके बिना बहुत ही आनन्दके साथ व्यतीत हो रहा है, हम सभी शरीर एवं भोगोंके सुखमें उनके अभावमें भी रचे–पचे हैं, तब श्रीकृष्ण पूरे अन्तर्यामी होनेके कारण, ऐसा विधान नहीं बनाते कि हमारा श्रीभाईजीसे नित्य–संग बना रहे ।

देखिये ! मेरे मनमें आपके प्रति प्रेम–ही–प्रेम है, किन्तु सत्य कहता हूँ, मैं एक अति साधारण मनुष्य हूँ । मैं तो सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण–कृपाकी ओर दृष्टि जमाये सर्वसाधनहीन एवं अकिंचन उनके चरणोंमें पड़ा हूँ । उनकी दया–कृपा ही मेरे जीवनका आधार है । मेरी तरह निरवलम्ब आप भी उनके चरणोंको पकड़े रहिये। फिर जो हो, सो होता रहे ।

चाहे हम दोनों, उस अवस्थामें कितने ही दीन–हीन होंगे, वे हमारी उत्तम–से–उत्तम, अलौकिक गति अवश्य करेंगे; हम दोनों ही गर्त्तमेंसे निकल जायेंगे । एक दिन उनकी कृपा अवश्यमेव असंभवको संभव कर देगी ।

हाँ ! उनकी ओर हमारी आशा लगी रहे । हम अन्य किसीकी ओर भूलकर भी नहीं निहारें ।

मुकलानियाजी ! भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें हमारा मंगल ही मंगल भरा है। हमें कब और किस समय कौनसी वस्तु चाहिये, इसको वे अन्तर्यामी अच्छी तरह समझते हैं । भगवान् हमसे कितना अपार स्नेह करते हैं–इस बातको यदि हम समझ पावें, तो फिर हमें भले कोई भी परिस्थिति प्राप्त हो–चिन्ता और कामना दोनों ही नहीं हो । सुख–दुःख, अनुकूल–प्रतिकूल, अच्छा–बुरा सब हमारे लिये समान हो जायें । मिलन–अमिलन भी हमारे परम सुहृद भगवान्‌के द्वारा रचित मात्र खेल (लीला) ही तो हैं; और हैं सब हमारे कल्याणके लिये ही ।

भगवान्‌ने जब कितनी ही सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति हमारी की है, तो इस परम पवित्र, अनन्त मंगलकारी, संत–मिलनकी कामनाकी पूर्त्ति वे नहीं करेंगे, उनपर इस प्रकार हमारा अविश्वास क्यों हो ? परन्तु यह पवित्र कामना चाहे हमारे

लिये लोकदृष्टिकी कामनाओंसे ऊँचे–से–ऊँचा पारमार्थिक हितभरा स्थान रखती हो, परन्तु है तो यह कामना ही, जो आपाततः स्वहित एवं स्वसुख (कल्याण) की भावनासे भरी है ।

मैं तो आपसे यही कहूँगा कि हमारा आदर्श तो 'स्व' का आत्यन्तिक विस्मरण एवं मात्र श्रीकृष्ण–रुचिका पालन ही हो, फिर चाहे हमें घोर दुःखमूलक नरकवास ही क्यों न मिले । हमें यह तो आश्वासन रहेगा ही कि हमने जीवनभर भगवान्‌से कुछ भी कामना नहीं की एवं भगवद्रुचिका ही जीवन जिया।

मुकलानियाजी, भगवत्‌रसिकजी एक बहुत ही उच्चकोटिके भगवत्‌प्रेमी भक्त हुए हैं । उनकी वाणी उल्लेख कर दे रहा हूँ :

स्वर्ग, नरक, अपवर्ग–आस नहिं त्रास है ।
जहँ राखौ, तहँ रहौं, मानि सुख रास है ।।
देव, दया करु दान, न भूलौं केलिकौं ।
भगवत वलित–तमाल बिलोकौं बेलिकौं ।।
दुख–सुख पावै देह नहीं कछु संक ही ।
निन्दा–अस्तुति करौ राव कै रंक ही ।।
परमारथ व्यवहार बनौ कै ना बनौ ।
अंजन है मम नयन रसिक भगवत सनौं ।।

उनकी वाणीका भाव यही है कि हे प्रभो ! मेरे लिये स्वर्ग–सुख एवं नरकका दुःख दोनों ही समान हैं, क्योंकि ये दोनों ही आप प्रभुके द्वारा ही रचित विधान हैं, आप मेरे परमसुहृद हो, अतः आप भयानक नरकका भी विधान मेरे लिये करोगे तो वह नरक मेरे लिये आपकी प्रसन्नताका हेतु होनेके कारण स्वर्गसे बढ़कर सुखदायी होगा । भयानक–से–भयानक परिस्थितियाँ तभी हमारे लिये दुःखदायी, क्लेशदायक होती हैं, जब हमारा मन विभ्रमग्रस्त होता है । शुद्ध एवं श्रद्धायुक्त हृदयसे यदि हम नरकके भयंकर कष्टको भी स्नेहार्द्र भगवान्‌के द्वारा प्रेषित अनुभव करने लगते हैं, तो उससे होनेवाली समग्र मानसिक एवं शारीरिक व्यथा हमारे चित्तसे स्वतः ही लुप्त हो जाती है और उसके स्थानपर हमें प्राप्त होता है, एक मूक, अलौकिक, परम सुखमूलक सौहार्दभरा आश्वासन ।

अतः प्रभो ! आप मुझे जहाँ, जैसे भी रखेंगे, मैं उस आपके विधानको अपने लिये परम मंगल एवं सुखका खजाना (निधि) ही मानूँगा ।

मुझे तो नाथ, यदि कोई आपसे दान प्राप्त करना है, तो वह मात्र इतना ही है कि मैं सर्वत्र आपकी सरस, प्रेमभरी, भगवती राधाजीके संग घटित होनेवाली केलिको कभी विस्मृत नहीं करूँ । उसे सदा ही अपने सम्मुख प्रकट होती देखता

रहूँ । मुझे आपके लीलाराज्यका प्रत्येक तमाल आपसे युक्त ही दिखाई पड़े अर्थात् सर्वत्र आपही–आप भरे दीखें ।

हे प्रभो ! मेरा यह देह यदि दुःख–सुख पाता है, तो मुझे किसी भी प्रकारकी शंका नहीं है । सम्पूर्ण विश्वमें सम्राट् किंवा दरिद्र कोई भी यदि मेरी घोर निन्दा–स्तुति करेंगे, तब भी मैं अपनी कोई क्षति नहीं मानता, क्योंकि मेरा प्रयोजन उनसे कुछ भी नहीं है । मेरा तो प्रयोजन मात्र आपसे ही है । प्रभो । मुझे परमार्थ–साधना बनने अथवा नहीं बननेकी भी परवाह नहीं है, क्योंकि आपकी प्राप्ति किसी भी साधनसे संभव ही नहीं है । आप किसी पुरुषार्थ अथवा साधनके फल हैं ही नहीं । आप तो मात्र अपने शरणागत, सर्वत्यागी प्रेमीजनोंको अपनी हेतु–रहित कृपासे ही दृग्‌गोचर होते हैं । मैं तो, नाथ, इतनी ही आपकी अनुकम्पाका याचक हूँ कि आप अंजनकी तरह मेरे नेत्रोंमें सने रहें । एक क्षणके लिये भी आपका मुखकमल मेरे नयनोंसे ओझल नहीं हो । बस, आपका वियोग मुझे सह्य नहीं है।

भाई मुकलानियाजी ! हमारा सर्वस्व, भाईजीके सुखके लिये, सेवाके लिये, उनकी आज्ञापालनमें लगे, चाहे उनका शरीर–संग हमें मिले या नहीं मिले ।

भाईजीने आपको पत्र लिखा है, उनके पास आपके लिये कोई काम तो है नहीं । उन्होंने कहा है कि सत्संगके लिये दो–चार–दस दिवसके लिए आप आना चाहें, अवश्य आवें, परन्तु आपको पुनः लौटना है । ऐसा न हो कि आपको पुनः लौटनेमें अधिक कष्ट हो ।

शेष राधाकृष्णकृपा ।

आपका
चक्रधर

———

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–५

सन्तके सम्मुख सन्देह नहीं रहते

पत्र–प्रेषिति :

श्रीरामेश्वरजी मुकलानिया, कलकत्ता

तिथि–मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी वि. सं. १९९७

श्रीयुत रामेश्वरजी मुकलानिया !

सादर सप्रेम यथायोग्य ।

नाम–जपके सम्बन्धमें एकमात्र आपकी उत्कण्ठा ही मुख्य हेतु है । आप जितनी लगन एवं श्रद्धा रखेंगे, उतना ही नाम–जप होगा । आपने लिखा कि नाम–संख्यामें प्रमादवश कमी रह गयी, अतः मैंने एक समय भोजन नहीं किया । सो इस विषयमें मेरी तुच्छ समझसे भोजन नहीं करनेसे आगे भूल नहीं हो, ऐसा तो है नहीं । अनेक बार मन यह प्रमाद कर लेता है कि आज नाम–जप न सही, भोजन नहीं करेंगे ।

नाम–जप नहीं हुआ, इसका सही प्रायश्चित यही है कि दूसरे दिवस दुगुना नाम–जप किया जाय । इससे मनको प्रमाद करनेका अवसर नहीं मिल पावेगा । अन्यथा मन प्रमाद एवं अरुचि प्रकट करता हुआ, यही कहता रहेगा, आज अन्न नहीं खायेंगे, फलाहार कर लेंगे, दूध ले लेंगे, नाम–जप न सही ।

रतनगढ़से लौटते समय गाड़ीमें बैठते हुए आप भाईजीकी यादमें रो पड़े, अपने–आपको रोक नहीं सके, इस सम्बन्धमें मैं यही कह सकता हूँ कि आपपर प्रभुकी बड़ी कृपा है ।

भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवत्प्रेमी सन्त हैं, भगवान्‌से भी वे बढ़कर हैं, उनसे आपका प्रेम होना सचमुच ही श्लाघ्य है । संसारमें सभी स्त्री–पुत्र, घर–परिवारसे बिछुड़ने पर रोते हैं, कोई धन–नाश होनेपर रोता है । आप भाईजी जैसे संतके लिये रोये यह आपका महाभाग्य है । परन्तु मेरा आपसे इस विषयमें इतना ही निवेदन है कि आप रोइये, किन्तु एकान्तमें बैठकर, सबसे

छिपकर। एकमात्र श्रीकृष्णके सामने ही आपका रुदन प्रकट हो । आपके रोनेकी बात स्वयं भाईजी भी कभी भूलकर भी नहीं जान पावें । जब श्रीकृष्ण स्वयं भाईजीको आपके रोनेकी बात कहें, तभी भाईजीको भी आपका रुदन ज्ञात हो, ऐसा परम गोपनीय रोना रोइये ।

आपने लिखा कि मैं जब भाईजीसे दूर कलकत्ते अथवा अन्यत्र था, तो मेरे चित्तमें हजारों ही प्रश्न एवं सन्देह उठते थे । परन्तु ज्यों ही मैं रतनगढ़ भाईजीके पास पहुँचा और जितने दिवस भी वहाँ उनके सान्निध्यमें रहा, मेरे सब सन्देहों और प्रश्नोंमें से एक भी स्मृतिमें नहीं आया और अब जब भाईजीसे दूर चला आया हूँ, तो वे सभी प्रश्न पुनः उमड़–घुमड़कर मेरे चित्तको मथ रहे हैं ।

इसका उत्तर यही है कि महापुरुषोंकी यही महिमा है । प्रश्न, उधेड़बुन सब तमोगुण–रजोगुणकी चित्तमें प्रबलतासे ही उठते हैं । महापुरुषोंके चारोंओर एक सीमाखण्डतक सत्वका आलोक प्रसरित रहता है । वह सत्वका प्रवाह हमारे, तुम्हारे, सभीके चित्तके रजोगुण तमोगुणको क्षीण, क्षीणतर कर देता है । अतः विशुद्ध सत्वकी अभिवृद्धिके साथ सब प्रश्न एवं सन्देह दूर कर देता है । प्रश्न स्वतः ही लुप्त हो जाते हैं । जैसे, जहाँ उत्तरी–दक्षिणी ध्रुवोंमें सूर्यदेव छःमासतक कभी नहीं छुपते, तो वहाँके रहनेवालों को ६ माह तक अन्धकार दिखता ही नहीं, उनके यहाँ इस अवधिमें रात्रि ही नहीं होती, इसीप्रकार महात्माका संग करनेपर साधककी सभी शंकाएँ सभी सन्देह एवं प्रश्न स्वतः लुप्त हो जाते हैं । महापुरुषोंसे मिलने पर मिलनेवालेके चित्तमें केवल प्रेमकी धारा ही बहती रहती है, यह परम स्वाभाविक ही है ।

श्रीनारायण स्वामीजी महाराज वृन्दावनके एक उच्चकोटिके महात्मा हो गये हैं । वे कुसुमसरोवर, गोवर्धनमें रहा करते थे । लोग देखते कि वे प्रतिदिन सरोवरसे दौड़ते हुए राधाकुण्ड तक जाते और बिना रुके, तत्क्षण ही मुड़कर पुनः दौड़ने लगते और कुसुम सरोवर पहुँच जाते । प्रतिदिन ही ऐसा करने पर लोगोंने उनसे पूछा – "बाबा ! ऐसा क्यों करते हो ?" तो स्वामीजीने हँसकर कहा–" भैया ! क्या बतावें, मैं देखता हूँ कि यार (श्रीकृष्ण) सामने ठाड़ौ है । मुझसे रहा नहीं जाता । मैं सारे कूँ पकड़वे दौड़ पड़ूँ, परन्तु वो पकड़में आवै नाँय । मोसौं रह्यौ नाँय जावै । वो भागै, तो मैं भी भागूँ । जब दौड़तो–दौड़तो थक जाऊँ, तबतक राधाकुण्ड आय जाय । वहाँ वो न जाने कैसे, मेरे पीछै आय जाय । मैं भी मुड़कर वाकूँ पुनः पकड़वे कूँ दौड़ूँ और दौड़तो–दौड़तो पाछौ कुसुम सरोवरपर आय जाऊँ भैयाओं ! या प्रकार वो मोय बूढेकूँ दौड़ावै और सतावै है ।"

लोगोंने पूछा – "बाबा ! तोय यौं रोज दौड़ावे, तो तुम वाते कारण नाँय

पूछौ ?

स्वामीजीने उत्तर दिया – "भैया ! का बताऊँ, वो दिखै नाँय, तबतक तो बहुत सारी बातें याद रहैं, पाछैं ज्यों ही वो दीखै, फिर तो कछु ही याद नाँय रहै। वाके देखनेमें सगरी बातें भूल जाँय । केवल बाकी चितवन ही देखतौ रह जाऊँ।"

मुकलानियाजी ! यही महापुरुषोंकी स्थिति होती है । उनके सम्मुख जो जितना निश्छल एवं कपटहीन रहता है, वह मनुष्य उतना ही अधिक उनके प्रेमको ग्रहण करता है । प्रेम–ग्रहण होनेपर शंका एवं प्रश्न तो विलुप्त होंगे ही। उस समय यदि कुछ प्रश्न उठते भी हैं, तो वे उस महापुरुषके प्रति अलौकिक प्रेमके अंग ही होते हैं । वे प्रेममय प्रश्न उस व्यक्तिके एवं महात्माके मध्य बहनेवाले प्रेम–प्रवाहको और भी उद्दीप्त कर देते हैं ।

देखिये, पिताजीका जो भी स्वभाव है, उसमें उनका तनिक भी दोष नहीं है। सब श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तमका ही खेल है । वे बिचारे उनकी मायासे नाच रहे हैं। अतः अपने मनमें किसी भी प्रकार उनसे द्वेष–भाव कदापि मत रखियेगा । सदा, ठोक–ठोककर बार–बार यही निश्चय रखिये कि उनमें श्रीकृष्णकी पूर्ण सत्ता लबालब भरी है ।

(द्वितीय पत्र)

मनमें बार–बार सोचिये; दृढ़ धारणा कीजिये, प्रभुकी हमपर बड़ी कृपा है । यह बात मेरे कहनेभरसे मानलें, सो बात नहीं है; यह सही वस्तुस्थिति है। यदि प्रभुकी अपार करुणा नहीं होती, विशेष रूपसे दया नहीं होती, तो आपको श्रीसेठजी जयदयालजी एवं भाईजीके दर्शन ही नहीं होते और न आपके मनमें उनके विरहका कष्ट और नित्य मिलनकी आकांक्षा ही रहती, साथ ही आपके मुखसे भगवान्‌का नाम भी नहीं ही लिया जाता । प्रभुने आपके लिये कृपाके ये सभी राजद्वार खोल रखे हैं । अतः उन्हींकी कृपाका आश्रय करके इनको अधिक–से–अधिक मात्रामें ग्रहण कीजिये, अपने भीतर लबालब भरिये और प्रभुपर न्यौछावर हो जाइये ।

सच मानिये ! भगवान्‌से अधिक प्यार करनेवाला, सतत आपकी सम्हाल करनेवाला अन्य आपको कोई नहीं मिलेगा ।

एक योग–भ्रष्ट महात्मा कहीं पैदा हुए एवं धूलिमें खेल रहे थे । राजाकी सवारी निकली । राजाने पूछा–"धूलिसे क्यों खेलते हो ?" महात्माने कहा –

"धूलिसे शरीर पैदा हुआ, धूलिमें मिल जायेगा, इसलिये धूलिसे खेलते हैं।" राजाने कहा–"मेरे साथ चलोगे ?" महात्माने कहा–"चल सकता हूँ, परन्तु मेरी चार शर्त्तें माननी पड़ेंगी । पहली शर्त्त है – तू सदा नित्य–निरन्तर मेरे साथ रहेगा । दूसरी शर्त्त है – हम खूब खावेंगे, तू मात्र खिलायेगा और स्वयं कुछ भी नहीं खायेगा । तीसरी शर्त्त है – तुम कोई भी कपड़ा मत पहनो और मुझे खूब पहननेके लिये कपड़े दोगे । चौथी शर्त यह है – तुम कभी एक क्षणके लिये भी नहीं सोओगे और सतत जागरूक रहकर मेरी सम्हाल करोगे और मैं खूब छककर सोऊँगा ।"

राजाने कहा – "महाराज ! ऐसा क्या कभी हो सकता है ? हाँ ! मैं आपको खिलाकर खाऊँगा । आपको जैसे कपड़े मैं पहनता हूँ, पहनाऊँगा। आपके सोनेपर सोऊँगा और जहाँ मैं जाऊँ, रहूँ आप भी रहियेगा ।"

महात्माने कहा – "मैं तुम्हारे जैसे दीन दरिद्रके पास नहीं रहता । मेरा मालिक ऐसा है, जो कभी नहीं सोता और मेरे सोनेपर निरन्तर जागकर सावधानीपूर्वक मेरी रक्षा करता है । मुझे भरपेट खूब खिलाता है और स्वयं कभी नहीं खाता । वह स्वयं कपड़े नहीं पहनता और मुझे सुन्दर–से–सुन्दर कपड़े पहनाता है । वह सदा मेरे साथ ही रहता है और एक क्षणके लिये भी मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाता ।"

तो मुकलानियाजी, ऐसे प्रियतम, प्रभी, सखा भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर इस संसारमें किन भोगों और भोगियोंका आश्रय लें । विश्वमें कोई भी भोगका स्वरूपतः त्याग तो कर ही नहीं सकता, परन्तु भोगकी आसक्ति तो सर्वथा त्याग ही सकता है । देहकी सम्हाल कीजिये, परन्तु भीतर जागरूक रहकर यही मानिये, देह उनकी वस्तु है, और वे उसे जैसे चाहें रखें, मेरा इसमें कौन सा ममत्व है ?

भगवान्‌की कृपाका आश्रय करके बढ़नेकी चेष्टा करियेगा, तो कुछ भी असंभव नहीं है । मनमें दोष भरे हैं, माना, पर हम यदि उत्साह तोड़ेंगे तो ये और भी तंग करेंगे । उनके चरणोंका आश्रय करके दोषोंको निकाल डालिये । एक क्षणके लिये भी निराश मत होइये । हतोत्साह होना, क्षीण हुए दोषोंको भी बल देना है । दोषोंको निकालनेकी चेष्टा करनेपर ये मनमें छुप जाते हैं और जिस दिन भी मनुष्य उत्साह भंग करता है, उस दिन दोष जोर मारने लगते हैं । इसलिये उत्साह कभी मत तोड़िये, लेते जाइये भगवान्‌का नाम ।

किसी भी रुकावट डालनेवालेके प्रति मनमें तनिक भी द्वेष मत रखिये। बाहरी रुकावट, हमारे मनमें भगवान्‌के प्रति कितनी लगन है, उसकी मात्र परीक्षा है ।

परिवारके सभी लोग भगवान् द्वारा आपको सौंपी हुई धरोहर हैं । इनका आदर, सेवा, सत्य एवं प्रेमसे भरकर करें । सेवाके द्वारा सबके संतोष–विधानका प्रयत्न करें । किसी भी सांसारिक परिस्थितिके लिये रोना श्रीकृष्णका अनादर करना है । परिस्थितिके सर्जक तो साक्षात् भगवान् ही हैं और उन्होंने मात्र हमारा मंगल करनेके लिये ही विषम परिस्थितिका विधान किया है । मेरे मनमें जो भाव प्रभुने उत्पन्न किये, वे लिख दिये हैं । घरमें सभीको सस्नेह, सादर भगवत्स्मरण ।

आपका
चकधर

———

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–६

वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधना

पत्र–प्रेषक :

परम पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज

पत्र–प्रेषिति :

श्रीजयदयालजी कसेरा

प्रेषण–स्थल :
गीता वाटिका, गोरखपुर
दिनांक : १८ नवम्बर १९३७ ई.

प्राप्ति–सूत्र:
श्रीशिवकिसनकी डागाका
पत्र–संग्रह

आलोक

श्रीजयदयालजी कसेरा सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अभिन्न सहयोगी थे । इनकी समाजसेवा प्रवृत्ति श्लाघनीय थी । समाजसेवी होनेके नाते इनका महात्मा गाँधी, श्रीजवाहरलालजी नेहरू, महामना मदनमोहनजी मालवीय आदि सभी नेताओंसे पारिवारिक, घनिष्ठ, आत्मीय सम्बन्ध रहा । मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, जैसी अनेक सामाजिक संस्थाओंमें इनका उल्लेखनीय योगदान रहा है । कलकत्तामें जब गोविन्दभवन ट्रस्टकी स्थापना हुई, तो इसमें इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की । ट्रस्टकी आरंभिक बैठकें प्रायः इन्हींके सभापतित्वमें होती थीं । गोविन्दभवन ट्रस्टके ट्रस्टी होनेके पश्चात् सेठजी श्रीजयदयालजीसे इनकी घनिष्ठता बढ़ती ही गयी। कालान्तरमें ये श्रीसेठजीके अनन्य भक्त बन गये । पू. श्रीसेठजीकी सत्संग गोष्ठियोंमें ये प्रायः सम्मिलित होते थे । उनके प्रवचनोंके श्रवण हेतु, ये प्रायः प्रतिवर्ष ही गीताभवन, स्वर्गाश्रम जाते थे । गीताप्रेसके लिये इनके द्वारा

की गयी सेवायें सदैव आदरके साथ स्मरण की जायेंगी । ज्येष्ठ कृष्ण ४ सं. २००३ को ७२ वर्षकी अवस्थामें क्रूर कालने इन्हें अपना ग्रास बना लिया। ये महाभाग्यवान् थे कि सेठजी श्रीजयदयालजीके सान्निध्यमें गीताभवन, स्वर्गाश्रममें गंगाके पावन तट पर इनका पाञ्चभौतिक शरीर ब्रह्मलीन हुआ । इनके देहावसानकी सूचना प्रकाशित करते हुए भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने 'कल्याण' के २०वें वर्षके दसवें अंकमें लिखा है – 'उनका सनातनधर्मका प्रेम, पवित्र हृदय, सरल व्यवहार, उनकी मैत्रीभावना, अतिथिसेवा, व्यवहार कुशलता, परदुःखकातरता, उदारता और सेवापरायणता, उनकी सैद्धान्तिक निष्ठा और दृढ़ता, उनकी भक्ति और प्रीति, भगवत्कृपा तथा भगवान्‌के मंगलविधानमें उनका दृढ़ एवं अटूट विश्वास–ये सभी ऐसे आदर्श गुण थे, जो एक ही साथ, एक ही व्यक्तिमें प्रायः नहीं पाये जाते स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराजके प्रति इनकी श्रद्धा थी और ये उन्हें प्रायः पत्र लिखते थे । इनके दो पत्र जो उपलब्ध हुए हैं, साधकोंके लिये अति उपयोगी समझकर प्रकाशित किये जा रहे हैं।

———————

प्रिय श्रीकसेराजी !

सादर सस्नेह यथायोग्य । आपका कृपा–पत्र मिला । आप मुझपर जो श्रद्धा–स्नेह रखते हैं, उसका मैं आभारी हूँ ।

आपने पत्रमें अपने मनकी समग्र वृत्तियोंको भगवन्मयी बनानेकी साधनाके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा है, इसके उत्तरमें मुझे यही विनीत निवेदन करना है कि अभी तो मेरी स्वयंकी वृत्तियाँ ही पूर्णतया भगवन्मुखी नहीं हुई हैं । मैं स्वयं एक साधारण साधक हूँ और श्रीसेठजी तथा भाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} के कथनानुसार ही साधना करता हूँ । मेरी वृत्तियाँ, जिन्हें भटकना नहीं ही चाहिये, अभी भी भटकती हैं, फिर भी आपका निश्छल प्रेम देखकर मनमें जो बातें आ रही हैं, उन्हें लिख दे रहा हूँ । मैं आपको कोई उपदेश दे रहा हूँ, ऐसा सर्वथा मत मानियेगा, क्योंकि आपने निष्कपट भावसे प्रश्न किया है, अतः जैसी मैं स्वयं साधना करता हूँ अथवा भगवत्प्रेरणावश जो भी मेरी बुद्धि आपको लिखनेकी प्रेरणा कर रही है, वह लिख दे रहा हूँ । आप यह प्रश्न श्रीसेठजी {श्रीजयदयालजी गोयन्दका} अथवा भाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} से भी पूछ लीजियेगा और सर्वोपरि महत्व उनकी ही बातोंको दीजियेगा । मेरी बातें यदि उनसे मेल खातीं आपको रुचिकर

एवं हितकारी अनुभवमें आवें, तभी मानियेगा, अन्यथा मेरा पत्र बकवास समझकर फैंक दीजियेगा ।

मेरी तो इन दिनों यही साधना है कि 'मैं' एवं 'मेरे' से सम्बन्धित जो कुछ भी है, वह सब कुछ मेरे प्रियतम प्रभुका ही है, मेरा अपना कुछ भी नहीं है। मेरे मनने अबतक सर्वथा मिथ्या ही ऐसा मान रखा था कि यह शरीर, शरीरके सम्बन्धसे इसके भाई–बहिन, पिता–माता, स्त्री–परिजन, साथ ही शरीरगत मन–बुद्धि, बुद्धिकी वृत्तियाँ एवं उनके द्वारा सम्पादित अनन्त कर्मराशि, मेरी हैं, मैं 'कर्त्ता' हूँ और साथ ही साथ इन सभीका 'भोक्ता' भी हूँ । इस मिथ्या धारणासे ही इनके सुधार–बिगाड़की भी मुझे चिंता हुआ करती थी । इधर श्रीसेठजी एवं भाईजीकी विशेष कृपासे इस समझका उदय हुआ कि यह मात्र मेरे मनकी अहंकारगत, सर्वथा ही मिथ्या धारणा है । यह स्वामी 'चक्रधर' नामक कीट प्राकृत विधानानुसार उसी प्रकार पिता द्वारा गर्भाधान किया जाकर मातृकोखमें सुसंवर्धित हुआ है तथा समय पाकर निर्गत हुआ है, जैसे प्राकृत विधानसे एक सूकर–कूकर अथवा मक्खी–मच्छर, कोई कीट–फतंगा होता है । जैसे सूकर–कूकर एवं कीटके संस्कार एवं स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं, इसका भी पिता–माता द्वारा प्रदत्त संस्कारानुसार स्वभाव बना है । इस मानव–कीटकी भी जो भी त्रिगुणात्मक वृत्तियाँ हैं, वे सभी प्रभु द्वारा उनके परम मंगल विधानसे ही निर्धारित हैं ।

जैसे सूर्य–चन्द्र, अनन्त नक्षत्रमण्डल, पृथ्वी आदि महत्पिण्डोंकी सत्ता प्रभुद्वारा पूर्णतया नियंत्रित है, इसमें पलक झपकाने जैसा हेर–फेर संभव नहीं, उसी प्रकार सभी जीवोंकी एवं 'मैं–मैं' मिथ्या अहंकार करनेवाले इस मानव–कीटकी भी, छोटी–से–छोटी वृत्ति भी, प्रभुके पूर्ण मंगलमय विधानानुसार ही नियंत्रित है।

मुझे तो यही परमार्थका ककहरा समझमें आया है कि इस सत्य भावनाको बहुत सुदृढ़ करके जीव मिथ्या 'मैं' एवं 'मेरे' का महा–मोहभरा अहंकार त्याग दे । जैसे ही इस परम सत्य तथ्यपर विश्वास होगा, मैं, आप अथवा कोई भी साधक सभी सांसारिक एवं आत्मकल्याणकी चिन्ताओंसे मुक्त हो सकेगा । प्रभुके हेतुरहित दयालु स्वभावपर उसकी आस्था ज्यों ही सुदृढ़ होगी, तभी उसे सच्चे विश्राम एवं शान्तिकी उपलब्धि हो सकेगी ।

मैंने स्वयंने यही साधना की है और आपको भी यही मेरी तुच्छ सलाह है कि इस लोक अथवा परलोकमें, जो भी आप हैं अथवा जो कुछ किंचिन्मात्र भी आपका है, वह सब आज इसी क्षण ही प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर दीजिये । सत्यांशमें यह सब संसार प्रभुका ही है, हमने मिथ्या ही यह बोझ अपने सिरपर डाल रखा है । होगा वही–जो प्रभु करेंगे, तभी होगा–जब प्रभु करेंगे, वैसा ही होगा–जैसा प्रभु

करेंगे । अतः व्यर्थ ही चिन्ताका बोझ अपने सिर क्यों लिया जाय ? मनकी इस सर्वथा मिथ्या भ्रममूलक मान्यतासे ही सारा संसार दुखी है कि यह शरीर मेरा है, यह दुष्ट मन मेरा है, यह परिवार, यह व्यापार मेरा है । यह मेरापन ही इन सभीके बनने–बिगड़नेकी चिन्ता करवा रहा है । इस चिन्तासे ही दिनरात मनुष्य सकाम–कर्ममें लगा है और कर्मफलका भोक्ता हो रहा है । सचमुच ही यदि कोई स्वीकार कर ले कि सब कुछ प्रभुका है, तो सांसारिक दृष्टिसे जिसे 'सर्वनाश' कहा जाता है, वह होनेपर भी वह अनुभव करेगा कि कुछ भी बिगाड़ नहीं हुआ है । प्रभुसे अधिक बुद्धिमान तो संसारमें कोई दूसरा है नहीं, वे अपनी वस्तुको नष्ट कैसे करेंगे ? कोई भी बुद्धिमान् अपनी वस्तुको बिगाड़ता नहीं, नष्ट नहीं करता । वह यदि कुछ भी बिगाड़ता है, तो उसे और अधिक सुन्दर बनानेके लिये ही बिगाड़ता है । फिर वे सर्वभवन–समर्थ हैं, वे भला व्यर्थ ही अपनी वस्तु कैसे विनष्ट करेंगे ? वे तो निर्माण ही कर रहे हैं, सुन्दरसे सुन्दरतम निर्माणकी प्रक्रियामें ही हम सभी स्वभावतः ही प्रभुके द्वारा गुजारे जा रहे हैं । सच मानिये, यह केवल थोथी कल्पना नहीं है, परम सत्य का सत्य है । यदि इस वास्तविक स्थितिकी किंचित् भी झाँकी हममेंसे कोई भी कर पावे, तो फिर दुःख, चिन्ता, उसके जीवनसे सदा–सदाके लिये विदा हो जावें । जबतक यह अनुभव स्वयंका अपना नहीं हो, तबतक अगणित सन्तोंके अनुभवपर अपना विश्वास जमाना चाहिये । जब सनातन गोस्वामीने, श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिष्यत्व स्वीकार किया, तो उन्होंने सर्वप्रथम अपने वास्तविक स्वरूपको जानना चाहा कि 'मैं कौन हूँ' । सनातन गोस्वामीके जिज्ञासा करने पर महाप्रभुने बताया कि सभी चेतन प्राणियोंका शाश्वत–स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके सेवकके रूपमें ही है । भगवान्‌से सम्बन्धके रूपमें इस अपने वास्तविक स्वरूपको नहीं जाननेके कारण ही भौतिक संसारमें सभी दुःख पा रहे हैं । मैंने तो अपने जीवनकालमें जितने भी पाश्चात्य एवं भारतीय सन्तोंके विचार पढ़े हैं, उनमें सभी उच्च सन्तोंका एक ही अनुभव पाया है कि प्रत्येक प्राणीकी प्रत्येक चेष्टाके क्षुद्र–से–क्षुद्र अंशका नियंत्रण भगवान्‌की शक्तिसे ही हो रहा है । ईसा मसीहको जब क्रॉसपर लटकाया जा रहा था, उस समय सभी देवशक्तियाँ यही अनुभव कर रही थीं कि भगवान्‌का परम मंगल ही सृष्टिपर अवतरित होने जा रहा है । अपने सम्पूर्ण शरीरके मर्मस्थलोंपर मोटी लोहेकी तीखी कीलें ठोक दिये जानेसे मर्मान्तक पीड़ावश उनके मनमें एक क्षीण–सा सन्देह अवश्य उदय हो गया था कि 'हे प्रभो! यदि आपकी भक्ति करने वाले लोगोंको इतनी वेदना और पीड़ा आपके द्वारा दी जायेगी, तो कौन व्यक्ति आपकी भक्ति करेगा ?' उसी समय देवशक्तियाँ ईसाको धिक्कारने लगीं । अन्ततः उनका सन्देह निवृत्त हुआ और वे मूक वाणीमें प्रभुके

सम्मुख यही व्यक्त करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए कि 'हे प्रभो ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। इसीमें पूर्ण मंगल है ।'

कसेराजी ! किसी भी व्यक्तिके जीवनमें यदि घोर जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, तो वे प्रभुके द्वारा उसे कीचड़से निकालनेका उपक्रम–मात्र ही होती हैं । अतः हमें इस संसारमें जो भी, जैसा हो रहा है, सबको प्रभुका परम मंगल–विधान मानते हुए बार–बार मनकी बिखरी हुई वृत्तियोंको जगत्के कोलाहलसे हटाकर नित्य सुखमय प्रभुके चरणोंमें जोड़ते रहनेकी ही चेष्टा करनी चाहिये ।

वास्तवमें हम लोग भगवान्के इतने अधिक कृपा–पात्र हैं कि हमें सेठजी गोयन्दकाजी एवं श्रीभाईजी जैसे महापुरुषोंका परम आत्मीय एवं नैकट्यपूर्ण सत्संग प्राप्त हुआ है । इनकी इस आत्मीयताके कारण पात्रके तारतम्यसे उनका वस्तुगुण तो काम कर ही रहा है । उसी वस्तुगुणका यह परिणाम है कि हम भगवान्की ओर प्रवृत्त हैं और इससे हटने नहीं पा रहे हैं । परन्तु इस जगत्के लिये अशेष कृपावतार इन महापुरुषोंसे जो हमारी सत्संग–विषयक चर्चा होती है, उसे हम बस, सुनते भर ही हैं । उन्हें हमारा मन ठीकसे धारण करनेका प्रयत्न नहीं करता । हम बातें अवश्य ऊँची–से–ऊँची सुन लेते हैं, परन्तु इन सन्तोंके सारभूत उपदेशको हमारा मन, जितना महत्व देना चाहिये, पहले तो देता ही नहीं, दूसरे महत्व देता भी है, तो अपने जीवनके लिये ये सभी अत्यन्त आवश्यकरूपसे पालनीय हैं, ऐसा नहीं समझता । इस उपेक्षाके कारण परमार्थ साधनके प्रति हमारी उत्कट लालसा ही नहीं होती और जीवनमें जिसको उतारनेकी पूर्ण चाह ही नहीं है, वह कार्य हमारा पूरा होना तो संभव ही नहीं है ।

कसेराजी ! अनन्त सन्तोंकी बातें शास्त्रोंमें भरी पड़ी हैं, वे सर्वथा असत्य नहीं हैं । सन्त त्रिकालज्ञ थे, आज भी हैं एवं आगे भी रहेंगे । सन्तोंकी वाणीका सार ही मैं बता रहा हूँ और उसे आचरणमें लानेकी चेष्टा करता हूँ । आप भी वैसा ही करिये ।

सन्त कहते हैं, भगवान् सर्वत्र हैं । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि "मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय" अर्थात्, मेरे अतिरिक्त विश्वमें कहीं कुछ नहीं है । इस अमोघ सत्य बातपर विश्वास नहीं करके यदि हम दुकान, व्यापार, मैं, तू, तेरा, मेरा, कलकत्ता, दिल्ली देखते हैं और अपनी इन्द्रियोंकी भ्रामक दृष्टिपर विश्वास करते हैं, साथ ही भगवान्की अमोघ सत्य वाणीपर अनास्था करते हैं, तब हमारी वृत्तियाँ संसारमें बहेंगी ही, भगवान्को कैसे पकड़ेंगी ?

हम सन्तों एवं भगवान्की वाणीपर पूर्ण विश्वास करें, तो आज भी हम

भगवान्‌को निश्चय ही सर्वत्र अखण्ड विराजित देख लेंगे एवं संसार हमारे लिये पूर्णतया उपेक्षणीय, स्वप्नवत्, मात्र मिथ्या, प्रातीतिक हो जायगा । जो क्षणभंगुर, मात्र उदयास्त स्वभाव वाला है, जो जाग्रत्‌में रहता है, स्वप्नमें दूसरा हो जाता है एवं निद्रामें विलुप्त हो जाता है, जो जन्ममें रहे और प्रलयमें विलुप्त हो जाय एवं स्थितिके सभय भी क्षण–क्षण हानि, लाभ, जन्म, मरण, यश, अपयशके रूपमें बदलता रहे, उसपर कौन बुद्धिमान आस्था करेगा ? जिसपर अपना वश ही नहीं, वह कैसे अपना हो सकता है एवं उसपर आस्था रखना महामूर्खता ही तो है ।

कसेराजी ! भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं – "मृत्यु सर्वहरश्चाहं" अर्थात्, मैं ही सर्वस्व छीननेवाली मृत्यु हूँ, तो विपत्ति अर्थात् मनके प्रतिकूल होनेवाली परिस्थिति भी तो वे ही हैं । मृत्यु तो सब विपत्तियोंकी माता–पिता है। अतः यह निश्चित ही है कि कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति यदि है तो उसके रूपमें हमें हमारे प्रियतम प्रभु ही आलिंगित कर रहे हैं । रूप चाहे कितना ही भयानक हो, हैं यथार्थमें उस भीषण परिस्थितिके रूपमें प्रभु ही । आपने प्रह्लादजीकी कथा तो खूब पढ़ी–सुनी होगी । प्रह्लादजीने तो साधारण भगवद्विश्वाससे कहा था कि पिताजी ! भगवान् आपमें, मुझमें, आपकी इस तीक्ष्ण खड्गमें, खंभमें सर्वत्र हैं, परन्तु भगवान् कैसा विकराल रूप रखकर नृसिंह रूपमें गरजते उस खंभेमेंसे व्यक्त हो गये

हिरण्यकशिपु सँभले और अपनी ढाल तलवार सँभाले, तब तक तो झपटकर भगवान्‌ने उसे फाड़ ही डाला । उस रूपको देखकर लक्ष्मीजी भयभीत हो गयीं, परन्तु भक्त प्रह्लाद नहीं भयभीत हुए । उन्होंने ठीक अनुमान लगाया कि मेरे नाथ ही यह रूप रखकर आये हैं । वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे । साष्टांग प्रणिपात करके भगवान्‌को सर्वस्व आत्मसमर्पणकर भगवान्‌का स्वागत करने लगे ।

भगवद्भक्तको भगवान्‌का अनुकूल सुख देनेवाला रूप ही प्रिय हो, सो बात नहीं, उसे तो भगवान् जिस रूपमें आवें, वही रूप प्रिय है । जिसे भगवान् प्यारे हैं, वह रूपको कहाँ देखेगा ? चैतन्य महाप्रभुको गरजते समुद्रके रूपमें भगवान्‌के दर्शन हुए तो वे उछलकर समुद्रमें ही छलाँग लगा बैठे । भक्तश्रेष्ठ ऋषभदेवजीको दावानल भगवद्रूप दृष्टिगोचर हुई, तो वे आगमें स्वाहा हो गये, वहाँसे हटे ही नहीं। आग शरीरको राख कर सकती है, भागवती–आस्था भगवत्साक्षात्कार करा देती है।

जो भी साधक यह आस्था करता है कि भगवान् ही सर्वरूपम उसके इतस्ततः सर्वत्र हैं, उसे तो भगवान्‌की प्राप्ति हो ही गयी । फिर उसकी वृत्तियाँ भगवान्‌को छोड़कर कहाँ जायेंगी ? यह हम सत्संगमें सुनते भर हैं कि भगवान् सर्वत्र हैं, भगवान् सर्वज्ञ हैं, भगवान् सर्वसुहृद हैं एवं भगवान् सर्वसमर्थ हैं । हम इन चारों बातोंपर एक क्षणके लिये भी सत्यांशमें आस्था कर लें, उसी क्षण भगवान् हमें

परम कल्याणरूपमें गले लगा लें । परन्तु हम तो सुनतेभर हैं, मात्र एक कानसे और तत्क्षण ही उसे विस्मृतकर रचपच जाते हैं–जड़ जगत्में, शरीरके क्षणभंगुर भोगोंमें, 'मैं–मेरे', 'तू–तेरे' में । फलस्वरूप हमें सन्तोंकी बातोंसे उनके अनमोल सत्संगसे वह लाभ हो नहीं पाता, जो हो जाना चाहिये ।

कसेराजी ! आप तो बुद्धिमान् हैं, आजसे ही मनकी अनुकूल, प्रतिकूल सब परिस्थितियोंके रूपमें, जड़, चेतन, सब पदार्थोंके रूपोंमें और अपने, पराये, उत्तम–अधम, सब व्यक्तियोंके रूपमें मात्र भगवान्को देखना प्रारम्भ कर दीजिये, देखिये ! आप भगवान्की लीला देखकर हँसते–हँसते लोट–पोट हो जायेंगे।

मुझे तो आजतक मेरे अथवा किसीके भी जीवनमें ऐसी घटना नहीं स्मरण है, जिसका परिणाम उसके लिये परम मंगलमय नहीं हुआ हो । यह आवश्यक है कि मनके विपरीत भयानक रूपमें जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो लोग रोते हैं एवं वे ही, मनके अनुकूल मधुर रूपमें जब प्रकट होते हैं, तो सभी हँसते हैं, परन्तु इस हँसने एवं रोनेके अन्तरालमें हम अपने सौभाग्य–दुर्भाग्यका ही अनुभव करते हैं, भगवान्का अनुभव नहीं करते । शत्रुके रूपमें प्रभु आते हैं, तो हम द्वेष करते हैं और मित्रके रूपमें भगवान् आते हैं, तो हम राग करते हैं, परन्तु इस शत्रु–मित्रके रूपमें हम सभी राग–द्वेषका तो अनुभव कर लेते हैं, प्रभुका अनुभव नहीं करते, जब कि आवश्यक यही है–अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितिके रूपमें, शत्रु–मित्र व्यक्तिके रूपमें एवं लाभ–हानिमूलक वस्तुके रूपमें हमें अपने प्रियतम प्रभुको ही देखना चाहिये और उनका ही स्वागत करना चाहिये।

मेरे मनमें जो बात आई, लिख दी । यदि अच्छी रुचिकर लगे, तो स्वीकार करियेगा अन्यथा बेकार पन्ने समझ फेंक दीजियेगा ।

आपका
चक्रधर

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–७

प्रभुके लिये द्वार खोलें

पत्र–प्रेषक :

स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज {प. पू. राधाबाबा}

पत्र–प्रेषिति :

श्रीजयदयालजी कसेरा

पत्र–प्रेषणस्थल :
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी हवेली,
मु. पो. रतनगढ़ {बीकानेर राज्य}
दिनांक : १३–२–४१

प्राप्ति–सूत्र :
श्रीशिवकिसनजी डागाके
पत्र–संग्रहकी प्रतिलिपि

श्री जयदयालजी कसेरा,

सादर सप्रेम यथायोग्य । आपका पत्र मिला । आपका शरीर अस्वस्थ जानकर विचार हुआ । वैसे तो सभीका शरीर क्षण–क्षण विनाशकी ओर ही बढ़ रहा है, परन्तु विनष्ट होनेसे पूर्व इसे यथासंभव इस अवस्थामें रखनेकी अवश्य चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे यह अपनेमें रहनेवाले मनको अपने प्रियतम प्रभुकी ओर बढ़ानेकी चेष्टाके समय कहीं उद्विग्न नहीं कर दे । जिस क्षण वास्तवमें ही यह प्रभुको पकड़ लेगा, उस समय तो फिर इसकी सँभालकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सँभाल करेगा भी कौन ? सँभाल करता है, मात्र मन । वही जब प्रभुसे जा मिला, जुड़ ही गया, तो फिर प्रभु जैसी इस शरीरकी व्यवस्था करना चाहेंगे, वही होगी । परन्तु, जबतक वह परिस्थिति नहीं है, संयम, पथ्य, औषधिकी व्यवस्था आपने रखी ही होगी । यदि उचित समझें, तो सारी व्यवस्था–संबंधी बात एक पत्रमें मुझे अवश्य लिखेंगे ।

रह गयी प्रभुमें मन लगानेकी बात, सो असलमें सारा दोष हमारा अपना है। हमारे भीतर दृढ़ निश्चयकी कमी है । आप दृढ़ निश्चय करके अपने हृदयके द्वार प्रभुके लिये खोलिये तो सही, वे प्रवेश करके उसपर पूरा अधिकार नहीं जमालें, तो

मुझे कहियेगा । वास्तवमें तो वे आपके हृदयसे एक पल भी हटे नहीं हैं एवं हट सकते भी नहीं हैं । यह आवश्यक है कि हमारी जैविक–स्वाधीनताका उनके द्वारा हनन नहीं हो, इसलिये वे आपके हृदयमें आपकी अनन्त जन्मोंकी वासनाओंके ठीक अनुरूप पुत्र, कलत्र, धन, धाम, अपने, परायेके रूपमें आपको दर्शन दे रहे हैं । वे आपके 'अहं' के रूपमें आपको शरीर दिख रहे हैं । कसेराजी ! आपके आदिसे अन्त तक ऊपर, नीचे, सर्वत्र जो संसार भरा है, वह प्रभुके सिवा कुछ भी नहीं है। हाँ, हम उन्हें इसी रूपमें चाहते हैं, अतः वे हमें इसी रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं । द्वार खोल देनेका यही अर्थ है कि इस संसारके चिन्तनमें जो हम, आप रचे–पचे हैं, उससे पल, दोपल पृथक् होकर प्रभुके पूर्ण चिन्मय, घनानन्द, कल्याणस्वरूपकी ओर थोड़ा झाँकें तो सही । आदिसे अन्ततक जब हमारी चाह ही जड़ता है, तो वे सच्चिदानन्द परमप्रेमस्वरूप इस जड़ताभरे चिन्ताक्रान्त मनमें प्रवेश करें भी कैसे ? इसीलिये पहले सच्ची इच्छा इसकी ही जगानी है कि मुझे यह संसार नहीं चाहिये, प्रभुकी ही आवश्यकता है ।

एक बोतलमें यदि वायु भरी है तो जल नहीं रह सकता और यदि जल भरा है तो उसमें वायु रह नहीं सकती । इसी प्रकार जहाँ चिन्ता है, वहाँ आनन्दस्वरूप परमात्मा कैसे रह पावेंगे ? हृदयको अन्य चिन्तासे खाली करना ही भगवान्‌के लिये द्वार खोलना है । जब हमारी भीतरी चाह ऐसी होगी कि हमें भगवान्‌के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिये, तभी हमने उनके लिये अपने हृदयका द्वार खोला, ऐसा समझा एवं माना जायेगा । जब हमारे हृदयमें सतत उनका ही स्मरण रहेगा तभी ऐसा माना जायेगा कि उनके विराजनेके लिये हमने आसन लगा दिया । कसेराजी ! भूल जाइये इस संसारको और उसके स्थान पर स्मरण कीजिये :–

अहा ! भगवान् नारायण, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीरामजी कितने सुन्दर हैं । अहा ! हमारे प्रभु माधुर्य और लावण्यके सागर हैं । उनके श्रीअंगोंमें पीताम्बर फहरा रहा है । वक्षस्थल पर स्वर्णरेखा और तुलसीरचित माला झूल रही है । अंग, अंग पर रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे हैं । लम्बी घुँघराली अलकें हैं । अहा ! मेरे प्रभुके अंगोंमेंसे कैसा सुवास प्रसरित हो रहा है। चमकते ललाटपर चन्दनकी खौर अत्यन्त शोभा दे रही है । मध्यमें गोरोचनका तिलक है । अहा ! मेरे प्रभुकी कैसी महिमा है, मानो ईश्वर प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहण कर उनके रूपमें मूर्त्त हो गया है किंवा आनन्द सुधासागर ही घनीभूत हुआ विग्रहरूपमें प्रकट है । अहा ! जिन्हें कुछ लोग जगत्कर्त्ता कहते हैं, कुछ जिन्हें परमात्मा कहते हैं, जिन्हें कुछ तत्ववेत्ता ब्रह्म कहते हैं और भक्तगण जिन्हें भगवान् कहकर प्रतिपादित करते हैं, जिनका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है,

वे ही देखो मेरे ध्यानपथमें सीमाबद्ध हुए सगुण साकार विग्रह बने, मुझे दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अहा ! इनका कैसा अचिन्त्य ऐश्वर्य है, मैं तो इनकी चरण–नख–चन्द्रिकामें ही अपना अस्तित्व विलीन कर दूँ । अहा ! इनका माधुर्य भी कैसा विलक्षण एवं असीम है, मेरा मन तो मरकतद्युति इनके कलेवरको हृदयमें निरन्तर बसाये रखनेका ही करता है । अहा ! मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण ही इनके श्रीअंगोंकी ज्योत्स्नासे उद्भासित हो रहा है । इनके अंग–सुवाससे मेरा रोम–रोम सुवासित हो उठा है ।

इस प्रकारकी झाँकीसे मनको निरन्तर भरते रहिये । देखिये ! फिर वे आकर आपके हृदय आसनपर बैठतें हैं कि नहीं । पहले वे झाँककर देखेंगे मात्र । जब उन्हें आपके द्वार पूर्णतया उन्मुक्त मिलेंगे तो फिर भीतर थोड़ा सा प्रवेश करेंगे। वहाँ उन्हें अपनी ही छाया आनन्दमें नृत्य करती दीखेगी । वे कौतूहलवश उस छायाको केवल एक बार छू भर लेंगे । फिर तो वह उनकी छाया पूरा उनका स्वरूप ही बन जायेगी । आपके चिन्तनकी झाँकी तत्क्षण ही वास्तविक उनका दर्शन बन जायेगी । आप सदाके लिये कृतार्थ हो जायेंगे ।

परन्तु कसेराजी ! यह सब मात्र बातोंसे नहीं होने वाला है । करनेसे ही होगा । मेरा अन्तिम कथन इतना ही है कि हम सभीके जीवनका वही क्षण सार्थक है, जिस क्षण हम भगवान्‌का चिन्तन स्मरण करते हैं । शेष सब व्यर्थ है। सबको यथायोग्य ।

आपका
चक्रधर

{ श्रीकसेराजीपर पू. श्रीराधाबाबाके पत्रोंका बहुत ही प्रभाव पड़ा था । अन्तकालमें उनका जीवन सर्वत्र भगवान्‌को देखना और उनकी रुचिमें अपनी रुचि मिलाना, इस साधनाका प्रतिरूप ही हो गया था । जो भी इनके पास आता उसे वे यही कहते– "भगवान्‌की हाँ में हाँ मिलाओ, भगवान् जो भी करें, उसीका अनुमोदन करो और उसीको अपने परम कल्याणका हेतु समझते हुए सिर झुकावो।" वे इसी मंत्रका जप किया करते थे ।

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने इनकी मृत्युपर अपने ये उद्गार प्रकट किये थे – "कसेराजीकी मृत्यु सफल मृत्यु हुई, परन्तु उनके चले जानेसे सनातनधर्मका स्वयं आचरण करनेवाला एक बहुत ही पक्का सेवक, साधु सन्तोंका भक्त, सत्संगका प्रेमी प्रचारक, अद्वैतज्ञानका सिद्धान्ती, साथ ही परम भगवद्भक्त और एक महान् उदार प्रेमी पुरुषका स्थान खाली हो गया, जिसकी

पूर्ति वर्त्तमानमें तो हो नहीं सकती ।''

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–८

मना रे करू माधवसौं प्रीत

पत्र–प्रेषक

परम पूज्य स्वामी चक्रधरजी महाराज {प० पू० श्रीराधाबाबा}

पत्र–प्रेषिति :

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, कलकत्ता

पत्रप्रेषणस्थल –
गीतावाटिका, गोरखपुर
दिनांक १२–१–४६ ई०

प्राप्तिसूत्र :
श्रीघनश्यामजी कानोडियासे
प्राप्त प्रतिलिपि

आलोक

कर्मठताके प्रतीक श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाका जन्म सन् १८८५ ई० में हुआ था । ये महेन्द्रगढ़ ग्राम, जिला पटियालाके निवासी थे । बालकपनसे ही ये भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मित्र रहे । इनमें देशके प्रति अटूट प्रेम था । क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें भी ये सदा श्रीभाईजी {ह० प्र० पोद्दार} के साथी रहे । परिणामतः इन्हें सन् १९१९ ई० में गिरफ्तार कर लिया गया । बंगाल सरकारने श्रीभाईजीकी तरह इन्हें भी बंगालसे निष्कासित कर दिया । इस निष्कासनकी अवधिमें इन्होंने कुछ वर्षोंतक गोरखपुरमें अपना समय यापन किया था ।

हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों ही विषयोंमें इनका समान अधिकार था । साहित्यके प्रति इनकी प्रारम्भसे ही रुचि रही । 'कल्याण' पत्रिकाके प्रकाशनके आरम्भिक कालमें भी कुछ समयतक ये भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार को 'कल्याण' पत्रके सम्पादन कार्यमें सहयोग देते रहे । विविध विषयोंपर लिखे इनके निबन्ध विद्वत्ता और शास्त्रोंके गम्भीर चिन्तनके प्रतीक हैं । श्रीभाईजी {ह० प्र० पोद्दार} के आग्रहपर इनके निबन्धोंका एक संकलन 'तत्त्वविचार' के नामसे गीताप्रेसके द्वारा प्रकाशित हो चुका है ।

इनके सम्बन्धमें श्रीभाईजीके निम्न उद्‌गार हैं :–

"श्रीज्वालाप्रसादजी विचारशील पुरुष थे, उनके सुन्दर विचारोंको पाकर कोई भी व्यक्ति निश्चय ही लाभान्वित होगा ।"

श्रीकानोड़ियाजी वर्षोंतक 'रुबी जनरल इन्श्योरेंस कम्पनी' की कलकत्ता शाखाके व्यवस्थापक रहे । कर्मठता, कर्तव्यपरायणता, उदारता आदि गुण उनमें कूट–कूटकर भरे थे । अपनी विशिष्ट योग्यताओंके कारण ये गोविन्द भवन ट्रस्टके प्रथम मंत्री बनाये गये । ये इसी ट्रस्टके यावज्जीवन ट्रस्टी तो रहे ही, इन्होंने इस अवधिमें जिस कुशलतासे गीताप्रेसका कार्य सँभाला, वह उल्लेखनीय है । गीताप्रेसके लिये इनकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी ।

श्रावण शुक्ला पञ्चमी सं. २०१२ वि. तदनुसार २४ जुलाई, सन् १९५५ ई. को कलकत्तेमें इनका पक्षाघातसे देहावसान हो गया ।

———

प्रिय श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया,

सस्नेह यथायोग्य । आपका पत्र मिला । आपने जो भी अपनी स्थिति लिखी, हम सबकी भी यही दशा है । जगत्‌में हम सभी श्रीकृष्णको भूल जाते हैं। आप तो गृहस्थ हैं, क्षम्य हैं । किन्तु मैं तो गृहत्यागी सन्यासी हूँ, मुझे तो मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके अतिरिक्त वास्तवमें कुछ भी नहीं दिखना चाहिये, परन्तु मेरी भी अभी ऐसी स्थिति नहीं हुई है । अतः सचमुच ही मैं तो अतिशय धिक्कारका पात्र हूँ ही ।

यह सत्य है कि इस विश्वमें सर्वत्र एक वे ही ठसाठस भरे हैं, परन्तु अपनी मायाशक्तिके कारण वे अनन्त, पूर्ण स्वतंत्र व्यक्तित्व बने विलस रहे हैं। सभी सन्त एवं शास्त्र एकमतसे एक ही बात कहते हैं कि जिस दिन प्रभु हमारे परमावश्यक, पूर्ण विश्वासकी वस्तु बन जावेंगे, उसी क्षण वे इस विश्वके कण–कणके अन्तरालसे हमारे सम्मुख फूट पड़ेंगे परन्तु यह होगा तभी जब हमारे लिये सब तरफका आकर्षण फीका पड़ जायेगा और वे ही सर्वोपरि परमप्रिय लगने लगेंगे । इसका उपाय भी यही है कि हम उनका स्मरण करें । यह स्मरण बार–बार अन्य वस्तुओंकी चाह वश छूटता है, परन्तु चेष्टा बार–बार पुनः–पुनः ऐसी ही हो कि

उनकी स्मृति नित्य नियमित बढ़ती ही जाय ।

मैं मानता हूँ, जिस प्रकार हम संसारके छिन जानेपर विकल होते हैं, वैसी विकलता हमारी उन्हें विस्मृत करदेनेपर कदापि नहीं होती । भावपूर्ण सच्चे मनसे उनको पानेकी पुकार होनेपर तो वे प्रकट हो ही जावेंगे परन्तु उनको सच्चे मनसे पुकारना भी हमें तभी आवेगा, जब उनकी हमें आत्यंतिक आवश्यकता होगी । जबतक किसीको प्यास नहीं लगती, तभीतक वह कूएसे दूर, इधर उधर भटकता है। आत्यन्तिक प्यासेको पानीकी पुकार किसीको सिखानी नहीं पड़ती । इसी प्रकार जबतक प्रभुकी हमें प्यास नहीं है, तभी तक यह कहना–सुनना, उपदेश एवं सत्संग, लिखना और छापना सब है । ज्यों ही प्रभुकी प्यास लगी, फिर सभी ऊपरी व्यवहार स्वभावतः ही छूट जावेंगे । एक मात्र उन्हींकी एकान्त लगन लग जायगी ।

आपने लिखा कि मान, प्रतिष्ठा, यशस्विता, धन, सम्पदा, खाने–पीने एवं परिवारमें पुत्र–कलत्रादि सभीकी आसक्तियाँ भरी हैं । सो इनके हटानेका उपाय भी मुझे तो यही समझमें आता है कि प्रभुकी आसक्ति बढ़ायी जाय । मेरा तो यही विश्वास है कि प्रभुकी आसक्ति बढ़ जानेपर मोक्षसुखसे भी वैराग्य हो जाता है, फिर ये मोहजन्य असक्तियाँ तो तुच्छातितुच्छ हैं । मैने पूर्वतः ही उल्लेख किया है कि मेरी दशा तो आपसे भी हीन है, परन्तु अनुभवी लोगोंसे जैसा सुना–समझा है, वह यही है कि भगवान्‌के प्रति आसक्ति बढ़ जानेपर मनमें ही नहीं, बाहरकी आँख भी जहाँ जाती है, वहाँ भगवान् दिखते हैं । आपको तो ज्ञात ही है कि श्रीभाईजी को सिमलापालमें खुली आँखोंसे गायमें, खंभेमें, जहाँ भी उनकी दृष्टि पड़ती, भगवान् दिखते थे ।

आपका यह कहना भी सर्वांशतः सत्य है कि भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई वस्तु देखने लायक है भी नहीं, परन्तु क्या कहूँ अभी तो मेरा मन भी इसे पूरी तरह नहीं स्वीकारता । फिर भी यह सब होना तो पुरुषार्थसे ही सम्भव है, जब हमने ही अपने मनको संसारसे जोड़ रखा है, तो हम ही उसे जब प्रभुसे जोड़ेंगे, तो वह जुड़ेगा । प्रभु जैविक–स्वाधीनताका हनन तो करेंगे नहीं । अतः व्यर्थकी चिन्ता और हताशाको त्यागकर मनको क्षण–क्षण प्रभुके नामजप, स्वाध्याय, सत्संग, सत्कर्म आदि किसी भी साधनमें लगावें, यही मार्ग है । जीवनका प्रत्येक क्षण प्रभुके ही स्मरण–चिन्तन अथवा प्रभुके निमित्त निष्काम–कर्म करते बीते, इसीकी सतत चेष्टा बनी रहे ।

यह अनमोल मानव–जीवन समाप्त होनेके पूर्व प्रभुस्मृतिमें आपाततः डूब गया एवं मनमें प्रभु पूरे बस गये, तब तो सब कुछ हो गया, नहीं तो सब करके भी

जीवन व्यर्थ ही समाप्त हो गया, यह सर्वथा सच्ची बात है ।

आपने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा, सो अब चौदह आने ठीक है । रोगके रूपमें प्रभु ही आये थे, जिस तीव्रतासे वे आये, उसी तीव्रतासे वे चले भी गये अवश्य ही इस कष्टभोगके रूपमें उनका मंगलमय विधान ही पूर्ण हुआ है ।

आपको श्रीसूरदासजीका एक पद भेज रहा हूँ । इस पदसे मुझे बहुत लाभ हुआ है ।

मना रे, माधव सौं करु प्रीत ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू छाँडि सबै विपरीत ।।१।।
भौंरा भोगी बन भ्रमैरे, मोद न माने ताप ।
संब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बँधावै आप ।।२।।
सुनि परिमिति पियप्रेमकी, चातक चितवन पारि ।
घन आसा सब दुख सहै, अनत न जाँचे बारि ।।३।।
देखो करनी कमल की, कीन्हो रवि सौं हेत ।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यो, सूख्यौ सरहिं समेत ।।४।।
दीपक पीर न जानई, पावक जरत पतंग ।
तनु तौ तिहिं ज्वाला जस्यौ (पै) चित न भयौ रसभंग।।५।।
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछे बात ।
देखिजु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ।।६।।
प्रीति परेवाकी गनौ, चित लै चढ़त अकास ।
तहँ चढ़ि तीय जु देखई, परत छाँड़ि उर स्वास ।।७।।
सुमिरि सनेह कुरंगको, स्रवननि राच्यौ राग ।
धरि न सकत पग पछमनौ सर सनमुख उर लाग ।।८।।
देखि जरनि जड़ नारिकी जरत प्रेतके संग ।
चिता न चित फीकौ भयो, रची जु पियके रंग ।। ९।।
लोक-वेद बरजत सबै, नैननि देखत त्रास ।
चोर न जिय चोरी तजै, सरबस सहै बिनास ।।१०।।
सब रसको रस प्रेम है, विषई खोलै सार ।
तन मन धन जोबन खसै, तऊ न मानै हार ।।११।।
तैं जु रतन पायौ भलौ, जान्यौ साधु समाज ।
प्रेम कथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज ।।१२।।
सदा सँगाती आपनौ जियको जीवन प्रान ।

सु तैं बिसायौं आपनौ हरि, ईश्वर भगवान् ।।१३।।
वेद पुरान सुमृति सबै, सुर–नर सेवत जाहि ।
महामूढ अग्यान–मति, क्यों न सँभारै ताहि ।।१४।।
खग–मृग मीन–पतंग लौं, मैं सोधो सब ठौर ।
जल–थल जीव जिते–तिते, कहौं कहाँ लगि और ।।१५।।
प्रभु पूरन पावन सखा प्राननहू के नाथ ।
परम दयालु, कृपालु हैं जीवन जाके हाथ ।।१६।।
गर्भवास अति त्रासमें जहाँ न एकौ अंग ।
सुन सठ तेरो प्रान–पति तहँउ न छाँड़यौ संग ।।१७।।
दिना रात पोषत रह्यौ, ज्यौं तम्बोली पान ।
वा दुखतैं तोहि काढ़िकैं, लै दीनो पय–पान ।।१८।।
जिन जड़तैं चेतन कियौ, रचि गुन तत्व विधान ।
चरन, चिकुर, कर, नख दिये नयन, नासिका, कान ।।१९।।
असन–बसन बहु–विधि दिये, औसर–औसर आनि ।
मात–पिता, भैया मिले, नइ रुचि नइ पहचान ।।२०।।
सजन, कुटुँब, परिजन बढ़े सुत–दारा, धन–धाम ।
महामूढ विजयी भयो चित आकरष्यौ काम ।।२१।।
खान–पान परिधानमें, जोबन गयौ सो बीत ।
ज्यौं बिट परतिय सँग बस्यौ भोर भये भइ भीति ।।२२।।
जैसे सुखासौं तन बढ़्यौ, तैसे तनहिँ अनंग ।
धूम बढ़्यौ लोचन खस्यौ सखा न सूझ्यौ संग ।।२३।।
जमजान्यौ, सब जग सुन्यौ बाढ्यौ अजस अपार ।
बीच न काहू तब कियौ (जब) दूतनि दीनी मार ।।२४।।
कह जानौं कहवाँ मुओ ऐसो कुमति कुमीच ।
हरिसौं हेत बिसारि कैं सुख चाहत है नीच ।।२५।।
जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौं सौ बार ।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गँवार ।।२६।।

इस पदको आप बार–बार स्मरण रखेंगे, तो निश्चय ही आपको लाभ हो सकता है । शेष क्या कहूँ ? राधा–राधा ।

(पूज्य राधाबाबाका इतना ही पत्र है । उपरोक्त पदका संकलनकर्त्ता

द्वारा भावार्थ पाठकोंकी सुविधार्थ नीचे दिया जा रहा है ।)

रे मन ! तू माधव, भगवान् श्रीकृष्णसे प्रेम कर । भाई ! ये काम, क्रोध, लोभ एवं मोहादि जिन्हें तू अपने अनुकूल (मित्र) मान रहा है, ये तेरे सर्वथा विपरीत अर्थात् शत्रु, तेरा अहित करनेवाले हैं, अतः इन्हें आजसे ही छोड़ दे । देख भाई! तनिक इस भ्रमरकी दशापर विचार कर । यह भोगासक्तिवश वन–वन कली–कलीका रस संचय करता निरन्तर भटकता रहता है, यह भोग–सुखकी वासनाके मोदमें ग्रीष्मऋतुके तापकी भी परवाह नहीं करता, किन्तु जब इसका प्रेम कमलसे हो जाता है, तो उसकी सुकोमल पंखुड़ियोंमें यह स्वयं अपने आपको बँधा लेता है, उससे मुक्त नहीं हो पाता। इसी प्रकार, हे जीव ! तू अनादिकालसे भोगोंकी वासनाओंमें सुख मानता हुआ अनेकानेक अच्छी–बुरी योनियोंमें आवागमन कर रहा है । तू भीषण त्रितापोंकी (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक कष्टोंकी) भी परवाह नहीं करता किन्तु भ्रमरकी तरह अन्ततः मानव जन्म पाकर अब तो भगवान् श्रीकृष्णके चरण–कमलोंसे स्थायी प्रेम कर ले, उनके प्रेमबन्धनमें स्वतः बँधना स्वीकार कर ले । यही तेरी चिरशान्तिका एकमात्र उपाय है ।।१–२।।

देख भाई ! तू चातककी दृष्टिको अपना आदर्श मान । चातककी चितवनि {दृष्टि} अपने प्रियतम मेघके प्रेमकी सीमाके पार जा ही नहीं पाती। वह अपने प्रिय मेघकी आशामें सभी दुःखोंको सहता रहता है, वह प्याससे तड़पकर मृत्युको वरण कर लेता है, किन्तु अन्यत्र पानी नहीं ढूँढ़ता ।। ३।।

अब तुझे कमलके प्रेमकी कथा कहता हूँ । कमल सूर्यसे हित, प्रेम करता है। सूर्यके तापमें ही वह खिलता है । यद्यपि सूर्य उसके आधार, सरोवरके जलको सुखा देता है, वह जलके नहीं रहनेपर सूखकर सरोवर के साथ–ही–साथ मृत्युको प्राप्त हो जाता है, परन्तु अपने रविके प्रति प्रेमको नहीं त्यागता ।।४।।

अब फतंगेका उदाहरण देखो । वह दीपकसे प्रेम करता है, दीपक फतंगेकी पीड़ाको नहीं समझता । वह फतंगेको जला डालता है, परन्तु फतंगा बार–बार दीपककी अग्निपर ही गिरता है । वह अपन तनको दीपककी ज्वालामें जला देता है, परन्तु अपने प्रेम–रसको भंग नहीं होने देता ।। ५।।

अब मीनका उदाहरण लो । मीन जलका वियोग सह नहीं सकता, वह जलसे पृथक् होते ही प्राण त्याग देता है, परन्तु जल उसकी बात ही नहीं पूछता।

मीनका प्रेम तनिक भी नहीं घटता, चाहे उसके प्राण भले ही जावें । मीन जलकी गतिकी ओर देखकर अपना प्रेम नहीं घटाता ।।६।।

इसी प्रकार, अब परेवा {कबूतर} पक्षीको देखो । वह ऊँचे आकाशमें बहुत ऊपर उड़ता है । परन्तु जैसे ही अपनी प्रिया कबूतरीको नीचे उड़ती देखता है, अपनी श्वास और उड़नेकी क्रियाको बन्दकर ऊपर आकाशसे नीचे गिरता है । उसे अपनी नीचे गिरनेसे होनेवाली क्षतिका भय ही नहीं होता ।।७।।

अब हरिण, कुरंगके प्रेमका उदाहरण देख । वह अपने कानोंके {संगीत} स्वरसे प्रेम करता है । बहेलिया बीन बजाता उसके हृदयको सामने होकर बाणसे बेध देता है, परन्तु वह पैर पीछे नहीं करता, भागता नहीं । सम्मुख बाण खा लेता है ।।८।।

अब जड़, मूर्ख स्त्रीके प्रेमकी बात देखो । वह प्रेतके {अपने पतिके शवके} साथ जल जाती है, चिताकी ज्वाला उसके प्रेमको फीका नहीं कर पाती, वह अपने प्रियके प्रेमके रंगमें रँगी हुई जो है ।।९।।

अब चोरका उदाहरण देखें । उस लोक–वेद {शास्त्र} सब निषेध करते हैं कि चोरी मत करो । वह दूसरे चोरोंकी दशा अपनी आँखों से भी देखता है कि पकड़े जानेपर उनकी किस प्रकार निर्मम पिटाई होती है, किन्तु वह अपने मनसे चोरी करना नहीं छोड़ता, चाहे इस चोरीके पीछे उसका सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है । ।।१०।।

अब विषयी, भोगी मनुष्यकी बात सुनो । वह सब रसोंमें स्त्री–भोगरूपी प्रेमको ही सर्वोपरि मानता है । इसमें उसका अति भोगसे तन क्षीण हो जाता है, मन भी शिथिल हो जाता है, धन नाश होता है, साथ ही उसकी जवानी भी समाप्त हो जाती है, परन्तु विषयी विषय भोगसे हार नहीं मानता, उसे छोड़ता नहीं।।११।।

अरे मूर्ख ! तूने तो भगवान् श्रीकृष्णरूपी अनमोल रत्न प्राप्त किया है। सभी साधु समाज जिन श्रीकृष्णका निरन्तर गुणवर्णन करते हैं और उन्हें सर्वोत्तम धन बताते हैं, तू रात–दिवस सत्संगमें उनके प्रेमकी कथाएँ भी सुनता रहता है, फिर भी तू उनसे प्रेम नहीं करके संसारमें फँसा है, इस पर भी तुझे लज्जा नहीं आती ।

भाई ! भगवान् श्रीकृष्ण, जो सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डके ईश्वर {परम नियामक} हैं, इन्हींने श्रीहरिके रूपमें अवतार लेकर भक्तराज ध्रुवको कृतार्थ किया था । ये तेरे नित्यके संगी हैं । ये तेरे जीवके जीवत्व हैं, तेरे जीवन हैं, प्राण हैं, इनका तूने विस्मरण किया हुआ है । तुझे मैं क्या कहूँ ? ।।१३।।

वेद–पुराण एवं सभी स्मृतियाँ, जिनका गुणगान करती हैं, देवता और श्रेष्ठ मनुष्य सभी जिनका भजन करते हैं, अरे मूढ ! अज्ञानी !! उन्हें तू क्यों नहीं सँभालता ? ।।१४।।

सूरदासजी कहते हैं–मैंने खग {परेवा}, मृग {हरिण}, मीनं {मच्छी}, पतंग {भ्रमर}, सभीको सर्वत्र अच्छी प्रकार परखा है, जल–थलमें इतस्ततः जितने भी जीवधारी हैं और मैं क्या कहूँ, सबके एकमात्र हितू, मित्र, प्रभु श्रीकृष्ण हैं, वे सबमें परिपूर्ण भरे हैं, और सभीके प्राणोंके वे ही स्वामी हैं, वे परम दयालु कृपाके सागर हैं और सबकी जीवन–मृत्यु उनके ही हाथमें हैं।।१५–१६।।

गर्भवासके समय जब जीवका एक भी अंग–आँख, कान, हाथ, कुछ भी पुष्ट नहीं होता, जब जीव अतिशय पीड़ामें असहाय होता है, रे मूर्ख सुन ! उस समय भी तेरा वे प्राणपति श्रीकृष्ण संग नहीं छोड़ते ।।१७।।

जैसे तम्बोली दिन–रात सजग रहकर पानकी रक्षा करता है, उसी प्रकार जो पूर्ण सजग रहकर सदा तेरा पोषण करते रहते हैं वे तुझे दुःख भरे गर्भगृहसे बाहर निकालते हैं और माँके स्तनोंमें अमृतवत् दूध देकर दुग्धपान कराते हैं ।।१८।।

जिन्होंने तुझे जड़से चेतन किया है एवं तीनों गुणों {सत्त्व, रज एवं तम} तथा चौबीस तत्त्वों–(पाँच तन्मात्रा–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पाँच भूत–आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी, दस ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त, एवं अहंकार) की जिन्होंने रचनाकी, साथ ही पैर, हाथ, बाल, नख, नेत्र, नासिका और कान देकर तेरी सब सुरक्षाकी है, यथावसर जिन्होंने तुझे भोजन, वस्त्र, बहुत प्रकार की सामग्रियाँ दी हैं, तुझे उनके ही द्वारा माता–पिता भाई आदिके रूपमें नए–नए व्यक्तियोंकी पहचान मिली है । प्रभुकी कृपासे सहज ही तेरे कुटुम्बी और

सम्बन्धी बढ़ गये, तेरे पत्नी–पुत्र हुए, महामूर्ख ! तू जगत्में विजयी होकर अहंकारमें फूल रहा है और तेरे चित्तको अनेक कामनाओंने आकर्षित कर लिया है । तेरी सारी जवानी खाने–पीने और वस्त्रादि पहननेमें ही व्यतीत हो गयी । जैसे परस्त्रीके साथ रात बितादेनेपर जब भोर होता है, तो पहचाने जाने और लोकापवादका भय होता है, उसी प्रकार तुझे वृद्धावस्था होनेपर अब अपने पुराने किये कर्मोंका पश्चात्ताप हो रहा है। सुख पाकर जैसे–जैसे तेरा शरीर सुपुष्ट होता गया, वैसे–ही–वैसे तेरे भीतर काम भी बढ़ता गया, किन्तु वृद्धावस्थाके कारण आँखोंके आगे जब अँधेरा आने लगा और नेत्रोंसे सूझ समाप्त हो गयी, इस समय तेरा कोई मित्र नहीं रहा ।।२३।।

यमराज तेरे सब कर्मोंको जान रहा है, सारे संसारमें तेरा अपना अपयश हो गया है और जब यमके दूतोंने तुझे मार लगाना प्रारम्भ किया तो कोई तुझे बचाने मध्यमें नहीं आया । अरे मूर्ख ! इस कुबुद्धिके कारण तेरी बुरी मृत्यु होगी और कोई नहीं जान पायेगा कि तू कहाँ मृत्युको प्राप्त हुआ। अरे नीच ! तू भगवान्को विस्मृत कर सुख चाहता है ? ।।२४–२५।।

यदि अब भी तेरे हृदयमें अपने कुकर्मोंका कुछ भी परिताप नहीं है, तो तुझे सैकड़ों बार चेतावनी देने से भी क्या लाभ है ?

श्रीसूरदासजी कहते हैं कि अरे गँवार शठ ! तूने भगवान्का एक अंक {अक्षर} भी नहीं भजन किया, तुझे क्या कहा जाय ? ।।२६।।

महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा

(तृतीय खण्ड)

(पत्राचार एवं मातृ–साधना)

अध्याय दूसरा

पत्र–प्रेषक:
प. पू. स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज
(प. पू. श्रीराधाबाबा)

पत्र–प्राप्ति
श्रीशिवभगवानजी डागला
(सत्संग–सुधा माला)

प्रेषण–स्थल
पू. भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
की हवेली
ग्राम पो. रतनगढ़
(बीकानेर राज्य)
लेखनकाल
ई. सन् १९४१ से १९४३ तक

प्राप्ति–सूत्र
श्री शिवकिसनजी डागा
के पत्र–संग्रहसे
श्रीमुकुन्दजी गोस्वामी
द्वारा की गयी प्रतिलिपि

सार–संक्षेप

मन जब भगवान्‌में स्थिर हो जाता है, तब ऐसा विलक्षण, नित्य सुख मिलता है कि फिर वह कभी मिटता नहीं । वह आनन्द नित्य है, उसे प्राप्तकर जीव निहाल हो जाता है ।

x x x x

विषय–वासनाओंसे अपने मनको जब धुंधकारी हमने ही बनाया है, तो इसे सुधारना हमें ही पड़ेगा । जब संसारके अनर्थयुक्त सारे लंद–फंद हम कर सकते हैं, तो साधनागत थोड़ा–सा अभ्यास हमसे नहीं होता, इसका अर्थ ही है, हमारे मनने अभी भगवान्‌की सत्ताको महत्त्व ही नहीं दिया है ।

x x x x

यहाँ घड़ी दिख रही है, परन्तु यह सर्वथा नितान्त सत्य है कि श्रीकृष्ण ही अपनी मायासे घड़ी रूपमें दिख रहे हैं, घड़ीके स्थान पर हैं– साक्षात् श्रीकृष्ण ही । परन्तु जबतक हमारी घड़ीकी वासना नहीं मिटेगी तब तक श्रीकृष्ण घड़ी ही बने रहेंगे ।

x x x x

दुकान, मकान, कोठी, गद्दीकी जगह यदि हम श्रीकृष्णके उन कुंजोंको याद कर सकें, जो एक से बढ़कर एक सुन्दर हैं, जिनकी सुन्दरताकी छायाको सृष्टिकी समग्र सुन्दरता छू नहीं सकती, उन निकुंजोंके चिन्तनसे हम स्वयं तो शान्ति पावेंगे ही अपने आस–पास सम्पर्क में आये सभीको शान्ति दे सकेंगे ।

x x x x

संसारकी दृष्टिसे सर्वथा निकम्मा हुए बिना परमार्थका रास्ता तय नहीं हो सकता ।

x x x x

मनमें भी चिन्तन–मननके रूपमें जो कुछ आ रहा है, वह सब मात्र श्रीकृष्ण हैं, परन्तु इसे प्रत्यक्ष तभी किया जा सकता जब हमारी चाह मायिक नहीं होकर मात्र भगवान्‌की हो ।

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–९

आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं

रतनगढ़
३ मार्च १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला, राधाकृष्णौ वन्दे !
(पू.श्रीस्वामीजी चक्रधरजी महाराजने यह पत्र लिखाया है)

आप पर भगवान् श्रीकृष्णकी हेतुरहित अपार अनन्त कृपा है । आपको श्रीसेठजी (जयदयालजी गोयन्दका) एवं श्रीभाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) जैसे **महापुरुषोंका दुर्लभ संग मिला है, उनकी** आत्मीयता प्राप्त हुई है, और आपके मनमें **इनसे सत्संग प्राप्त करनेकी इच्छा भी** जाग्रत हुई है । असीम भगवत्कृपा बिना यह **सब होना संभव नहीं है।**

भक्त बालक ध्रुव भगवान्से प्रार्थना करते हैं – "मुझे आप उन निर्मलहृदय महात्मा भक्तोंका संग दीजिये जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है । उनके संगमें रहकर मैं आपके गुणों, आपकी लीलाओंकी कथा– सुधाका पान करके उन्मत्त होजाऊँगा और सहज ही विविध भाँतिके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार–सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा ।"

भक्तराज प्रह्लादजीकी भी ऐसी ही भगवान्से कामना है । वे कहते हैं – "मैं ब्रह्मलोक तककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, और इन्द्रियभोग सर्वथा नहीं चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अनन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन सभीको ग्रस रखा है । अतः मुझे तो आप अपने दासोंकी सन्निधि प्रदान कर दीजिये, जिससे मैं आपकी लीला–कथाओंका पान करता हुआ आपके भक्ति–रसमें आपाततः डूबा रहूँ ।

कहनेका इतना ही मन्तव्य है कि जिन महापुरुषोंकी सन्निधिकी कामना भक्तराज प्रह्लाद एवं भक्तबालक ध्रुव करते हैं, उन सच्चे सिद्ध सन्तोंकी सन्निधि एवं आत्मीयता आपको सहज ही प्राप्त है, ऐसी महान् भगवत्कृपाके आप सहज ही भाजन हैं । कठिनाई यही है कि इसके उपरान्त भी आपका मन इन सन्तोंकी सीखको महत्व नहीं देता ।

इसे निश्चय ही सत्य मान लीजिये कि आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं।

आपका मन जहां है, वहीं आप हैं
पत्र–प्रेषिति : श्रीशिवभगवानजी फोगला

इस बातको गाँठमें बाँध लें । श्रीभाईजीके पास रतनगढ़में अथवा स्वर्गाश्रममें बैठे हुए आप यदि कलकत्तेके व्यापारका, वहाँकी दूकानका चिन्तन करते हैं, अथवा तार–चिट्ठीसे व्यापारमें उलझे हैं तो आप असलमें कलकत्तेमें ही हैं । इसी प्रकार यदि आपका शरीर कहीं भी हो और आपका मन शरीरको छोड़कर दिव्य वृन्दावन–धामकी लीलामें है, तो आप वृन्दावन धाममें ही हैं । प्रारब्ध पूरा होने पर शरीर गिर जायगा और आप सदाके लिये उसी लीलामें सम्मिलित हो जावेंगे। सब कुछ आपकी इच्छा और आपके मन पर निर्भर है । शिवभगवान्‌जी ! इस अटूट सिद्धान्तको मानकर साधनामें लगे रहनेसे ही उन्नति संभव है ।

आपके मनकी दशाका तो मुझे ज्ञान है नहीं, किन्तु मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है कि जिस दिन आप या कोई भी यथार्थमें चाहने लगेगा कि मेरा मन व्रजलीलामें फँस जाय, उसी क्षण अपने–आप आपको, मनको अन्यत्र प्रमादसे रोकनेकी और भगवान् तथा भगवान्‌की मधुरतम रसमयी लीलाओंमें लगानेकी नयी–नयी युक्तियाँ सूझने लगेंगी । आप स्वयं अपने मनको कैसे–क्या करें, यह सब समझ जावेंगे । उत्कट चाह होने पर सारी राहें अपने–आप ज्ञात हो जाती हैं। क्योंकि आपके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी प्रभु निरन्तर अविच्छिन्न निवास करते हैं। ये सभी युक्तियाँ अभी नहीं उपजतीं, इसमें प्रधान कारण चाहमें कमी ही है । अभी भगवान्‌की, व्रजभावकी चाह अति क्षीण है। उत्कट चाह होने पर चाहकी पूर्तिके लिये व्याकुलता अवश्यंभावी है । जिस सीमातक व्याकुलता अपेक्षित है, वह नहीं होनेके कारण ही प्रमाद बना है । यह अवश्य है कि कभी–कभी सोडावाटरके उफानकी तरह चित्त व्रजरसकी बातें सुनना चाहता है, फिर ठंडा पड़कर पुनः संसारमें रच–पच जाता है ।

उदाहरणके रूपमें देखें–यहाँ घड़ी दीख रही है, परन्तु यह बिलकुल सत्य बात है कि इस घड़ीकी जगह श्रीकृष्ण हैं । अब जबतक आप घड़ी देखनेकी वासना नहीं मिटायेंगे तबतक श्रीकृष्ण कैसे दीख सकते हैं ? मन तो एक है और वह एक ही काम करेगा – चाहे घड़ीको देखे चाहे श्रीकृष्णको । श्रीकृष्णको देखने पर घड़ी नहीं दीखेगी और घड़ीको देखने पर श्रीकृष्ण नहीं दीखेंगे । इसी प्रकार मनसे या तो जगत्‌का चिन्तन होगा या श्रीकृष्णका । यहाँ जिस किसी पदार्थकी सत्ता है, जिसका चिन्तन आपका मन करता है, वे सभी पदार्थ भगवान्‌की मायाकी रचना हैं । यह सब उनकी लीला है । उनकी लीला भी दो प्रकार की हैं । एक अविद्या, मायामयी लीला और दूसरी चिन्मयी लीला । जबतक हम, आप या कोई भी इस मायामयी लीलाको छोड़कर उनकी उस दिव्य चिन्मयी लीलामें मन नहीं ले

जायेंगे, तबतक यह मायामयी लीला आपको उलझाये ही रखेगी । इसमें दूसरेका कहीं कोई वश नहीं है । आप कहें कि हमसे ऐसा होता नहीं है–इसका सीधा –स्पष्ट उत्तर है कि आपके मनकी अभी चाह इस नाशमान, दुखपूर्ण, क्षणभंगुर मिथ्या, मायाको छोड़कर उस परम दिव्य शाश्वत सुखमयी लीलामें जानेकी नहीं है।

जहाँ चाह है, वहीं राह है । वास्तवमें यदि आप चाहते हैं तो आपको यह करना ही पड़ेगा । मनकी बदमाशी तो मिटानी ही पड़ेगी । चाहे शीघ्रातिशीघ्र अथवा धीरे–धीरे । आप विचार करें, मन तो जैसे आज बदमाशी कर रहा है, वह मरते समय और भी अधिक बदमाशी कर सकता है और इसका भी क्या भरोसा कि पता नहीं मन कब किसके संग फँसकर किस रंगमें रँग जाय । अनादि कालसे उस पर चढ़े रंगोंके ही कारण तो हमारी वर्त्तमानमें गयी–बीती दशा है । अतः मृत्युके पहले ही मनकी बदमाशीको पूरी तरह मिटा दें ।

प्रारंभमें कठिनाई होती है, परन्तु ऐसी–ऐसी युक्तियाँ हैं कि जिनके करने से मन वशमें होता ही है । आप करना चाहें तो मैं एक युक्ति बतलाता हूँ । परन्तु होगा सब करनेसे ही । मानलें आप 'हरे राम' महामन्त्रका जाप करते हैं । इसको जपते रहें, परन्तु प्रत्येक मन्त्रके उच्चारणके बाद एक बार आप ध्यान करें कि श्रीप्रिया–प्रियतम एक वृक्षके नीचे खड़े हैं ।

, मानलो, आप देसमें रतनगढ़ ग्राममें हैं । अब सायंकाल किसी एकान्त रेतके टीबे पर चले गये । टीबे पर बैठकर देखिये–एक सड़क है, अत्यन्त सुन्दर वृक्ष लगे हैं । अब प्रत्येक वृक्ष ही वृक्ष लगे हैं । अब प्रत्येक वृक्षके नीचे आप एकबार श्रीकृष्ण एवं श्रीराधारानीको देखिये । मालाके मनके फेरते जाइये । इस प्रकार तीन माला अर्थात् वृक्षोंके नीचे ३०० बार श्री प्रिया–प्रियतमको देखकर दिव्य चिन्तन कीजिये । परन्तु आपका निश्चय इतना सुदृढ़ हो कि यह करना ही है । यदि एकमात्र यह अभ्यास ही सुपुष्ट होगया और कहीं १६ माला 'हरे राम' षोड़श नाम महामंत्रकी हो गयी तो आगे मनको टिकानेमें बहुत सुविधा हो जायगी ।

युक्तियाँ तो अनेक हैं, परन्तु पहले आप एक इसी युक्तिसे करना प्रारंभ करें । आगेकी युक्तियाँ भी पीछे बतायी जा सकती हैं ।

नामजपका जो नियम चल रहा है, वह खूब कड़ाईसे पालन करें। घरमें सबको यथायोग्य । आज इतना ही ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१०

व्रज–सम्बन्धी पाँच हजार वस्तुओंका ध्यान करें

रतनगढ़
ता. १५–३–१९४१ ई.

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला, मोतीलाल पारीकके यथायोग्य
(पू. स्वामीजी श्रीचक्रधरजी महाराजने लिखाया है)

आपका पत्र मिला । आप तत्परतापूर्वक चिन्मय दिव्य लीलाभावना करते हैं एवं कलकत्तेमें गंगाके किनारे प्रातः–सायं बैठकर गंगाजीमें दिव्य चिन्मय यमुनाकी भावना करते हैं, सो उत्तम बात है।

आप षोड़श नाम महामंत्रकी बत्तीस मालाका नियम अनवरत पालन कर रहे हैं, वह करते रहें, किन्तु लगातार तीन–चार घण्टे बैठकर व्रज– सम्बन्धी पाँच हजार चीजोंको अवश्य याद करें । चाहे मन कितनी ही बदमाशी करे, एक–एक, दो–दो सैकिण्डके लिये ही सही, इन पाँच हजार व्रज–भाव सम्बन्धी वस्तुओंको अवश्य स्मरण करें । इसके लिए एक किताब बनाकर अपने पास रख लेनी चाहिये। साथ ही एक–दो–तीन ऐसे अंक लगाकर, जैसे पाठ किया जाता है, वैसे एक–एक चीजको पढ़ते जाना चाहिये । इन सभी वस्तुओंका चाहे एक–एक सेकिण्डके लिये ही सही, मनमें चित्र बाँधते जाना चाहिये । जिह्वासे भगवन्नाम महामंत्रका जाप तो होता ही रहे । होता यह है कि मन भागने लगता है, परन्तु यदि नियमपालनमें कठोरता एवं दृढ़ता रही और वर्षभर भी दृढ़तापूर्वक नियम पालन किया तो नियमके कारण अभ्यासवश मनको ठीक उसी समय प्रतिदिन इन पाँच हजार वस्तुओं और स्थानों पर आकर क्षणभरके लिये ही सही, ठहरना ही पड़ेगा । पर बिना नागा इस नियमको निबाहनेसे ही सफलता मिलेगी । हाजिरी, मुलाहिजा, शिष्टाचारके फेरमें पड़नेसे तो कोई नियम सध नहीं सकता ।

आपने लिखा कि पाँच हजार वस्तुओंकी सूची मैं बना दूँ, सो पहले आप यह पूर्व–पत्रमें लिखा तीन माला वाला नियम तो आज या कलसे प्रारंभ कर ही दें और इसे खूब कड़ाईसे बिना नागा पालन करें ।

शिवभगवानजी ! विषयोंमें सर्वथा सर्वांशमें सुख नहीं है, फिर यह सुखकी भ्रान्ति भी क्यों होती है, इसका रहस्य मैं आपसे निवेदन करता हूँ । मानलें, खूब जोरसे भूख लगी है, अब भोजनके समय बहुत आनन्द मिलता है। वस्तुतः यह जो आनन्द मिलता है वह भोजनकी वस्तुओंसे सर्वथा नहीं मिल रहा, वह मिलता है भगवान्‌से, जो हमारे अन्तःकरणमें बैठे हैं। होता यह है कि मनमें जब अति उत्कट इच्छा होती है कि कुछ भोजन मिले तो जब इस इच्छाकी पूर्ति होती है तो कुछ देरके लिये मनकी चंचलता मिट जाती है। अब तक जो मन भोजनके लिये व्याकुलतावश चंचल था, अब भोजन पाकर शान्त स्थिर हो जाता है । स्थिर मन पर आत्माका सुख प्रतिबिम्बित होने लगता है । बस, मनुष्यको आनन्दका अनुभव होने लगता है । वास्तवमें आनन्द जो आया है, यह भोजनसे नहीं– परमात्माके आनन्दकी छाया मन पर पड़ी है, इससे अनुभव हुआ है ।

इसी बातको सभी विषयोंके सम्बन्धमें समझ लेना चाहिये । किसी भी विषयकी इच्छा हुई और जब वह इच्छा पूर्ण होने लगती है, तब उतनी देरके लिये मन स्थिर हो जाता है । मन स्थिर होते ही आत्माकी छाया उस पर पड़ने लगती है, मनुष्य मूर्खतावश मान लेता है कि अमुक विषयसे मुझे सुख मिला । अवश्य ही इस बात पर विश्वास होना कठिन है, परन्तु सत्य यही है कि संसारमें जितना भी सुख किसीको भी यदि कभी मिला था, मिलेगा अथवा मिल रहा है, सब घन आनन्द–स्वरूप परमात्मासे ही प्राप्त होता है ।

इसीलिये शिवभगवानजी, मनको स्थिर करनेकी आवश्यकता है । यही मन जब भगवानमें स्थिर हो जाता है, तब तो ऐसा विलक्षण नित्य सुख मिलता है कि फिर वह कभी मिटता ही नहीं । वह आनन्द नित्य है, उसे प्राप्त कर जीव निहाल हो जाता है । इसलिये मैंने जो आपको उपाय पूर्व पत्रमें लिखा है, वह प्रतिदिन अवश्य करें । लीलामें मन लगानेमें कोई परिश्रम नहीं है, परन्तु यदि कोई कहे कि हमसे नहीं होता, इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है ।

जब संसारके सारे अर्थजन्य लंद–फंद आप कर सकते हैं, और यह साधारण सा अभ्यास आपसे नहीं होता, इसका अर्थ ही है कि आपके मनने अभी भगवान्‌की सत्ता और साधनाको महत्व ही नहीं दिया है । विषय वासनाओंसे अपने मनको जब धुंधकारी हमने ही बनाया है तो इसे सुधारना हमें ही पड़ेगा।

सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) एवं भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी

पोद्दार) सचमुचमें ही भगवत्कोटिके बहुत ही उच्च महापुरुष हैं, परन्तु शास्त्र कहते हैं कि भगवानमें मन लगाये बिना तो संसार–सागरसे पार होना असंभव ही है ।

वारि मथे घृत होउ बरु सिकताते बरु तेल ।
बिनु हरि–भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल ।।

मेरा तो इतना ही नम्र निवेदन है कि भजन करिये । नाम–जपके समान सारे कलिमलको तुरन्त धोनेका साधन मेरी दृष्टिमें अन्य कोई नहीं । सन्त सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु वे हमारे आधीन तो हैं नहीं । वे तो भगवान्‌के हाथके यंत्र हैं और भगवान्‌के मनसे वे मनवाले हैं । वे एक क्षणमें सहज ही सारे संसारका कल्याण कर सकते हैं, परन्तु उनकी सामर्थ्य हमारे प्रयोजनमें कब आयेगी, इसका क्या भरोसा ? नाम–भगवान् तो हम पर अभी कृपा करनेको तत्पर बैठे हैं । अतः उनका सत्कार करिये और सब प्रमाद त्यागकर नामरसमें डूब जाइये ।

आज इतना ही । शेष दूसरे किसी दिन लिखूँगा ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–११

जपके साथ लीलाओंका ध्यान करें

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधास्मरण । (पू. श्रीस्वामीजीने लिखाया है) अनादिकालसे विषयोंके संस्कार मनमें हैं । इसीसे विषयोंकी इच्छा बरबस मनको झकझोरती है। प्रत्येक विषयकी कामनाके साथ ही मन उसकी पूर्त्तिके लिये व्याकुल हो उठता है। पूर्ति हुई, व्याकुलता मिटती है, परन्तु वह थोड़ी ही देरके लिये मिट पाती है । बात यह है कि मन तो एक दर्पण की तरह है । जैसे हिलते हुए दर्पणमें मुख नहीं दिखता, स्थिर होने पर दीखने लग जाता है, वैसे ही चंचल मनमें आत्माका सुख प्रतिबिम्बित नहीं होता । विषय कामनाकी पूर्त्ति होने पर मात्र थोड़ेसे कालके लिये मन–दर्पण हिलना स्थगित करता है, जब वह शान्त होता है तो उस पर आत्माका प्रतिबिम्ब पड़ता है । परन्तु कुछ ही क्षणके बाद दर्पण पुनः हिलने लगता है। इसी तरह विषयकी पूर्ति, सुख, फिर विषयेच्छा, फिर व्याकुलता यह चक्कर चलता ही रहता है । असलमें मन दर्पण पर आत्माकी मात्र छाया ही पड़ती है, अतः सुखकी भी छाया ही जीवको मिलती है असली सुख नहीं । असली सुख–स्वरूप तो वह स्वयं आत्मवस्तु है जिसकी छाया जीवके मन–दर्पण पर पड़ती है । वह परम वस्तु है स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ।

अतः अपने मनका लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्णको ही बनाना चाहिये । मनमें संसार और विषय तो पहलेसे ही पूरे भरे हुए हैं । अब इन्हें और अधिक भरनेसे लाभ ही क्या है ? यह नया मैल ही तो और बढ़ेगा । इन दुकान–मकान–कोठी–गद्दीकी जगह यदि श्रीकृष्णके उन कुंजोंको याद कर सकें, जो एक–से–एक बढकर सुन्दर हैं, जिनकी सुन्दरताकी छायाको भी संसारके सुन्दर–से–सुन्दर बगीचे नहीं छू सकते, उन निकुंजोंमें आप मन फँसायें तो कितना लाभ हो । उस अवस्थामें आप स्वयं तो शान्ति पावेंगे ही, अपने पास रहनेवालोंको भी शान्ति दे सकेंगे।

इसके लिये लीला–वस्तुओंके पाठका नियम लेकर साधना करनी पड़ती है।

एक वाक्य पढा और फिर उस चीजका एक सैकिण्ड मनमें चित्र बाँधकर देख लिया । फिर दूसरा वाक्य पढ़ा, उस वस्तुका चित्र बाँधकर देख लिया। यह पाठ जिस दिन पाँच हजार वस्तुओंका लगातार पूरा हुआ कि लगातार छः घण्टे लीलाका ध्यान हो जायगा । जैसे –

१. राधाकुण्डका जल चमचमा रहा है ।
२. कुण्डपर कमलके फूल हैं ।
३. कमलके पत्ते हरे–हरे चौड़े हैं ।
४. नीले–लाल–उजले–तीन तरहके कमल हैं ।
५. कमलके फूलों पर काले–काले भौंरे मँडरा रहे हैं ।
६. पवनके कारण कमलकी डंडी हिल रही है ।
७. कमलके फूलके पास एक हंस बैठा है ।
८. हंस उजले रंगका है ।
९. हंस बोल रहा है ।
१०. राधाकुण्ड बहुत लम्बा–चौड़ा है ।
११. पूर्वकी ओर करीब एक फर्लांग लम्बा है ।

इस प्रकार प्रतिदिन नियम करना चाहिये, आनन्द आये या नहीं आये। मनकी बदमाशीसे कभी–कभी जी ऊबेगा । परन्तु तुले रहने पर मन फिर लगने लगेगा ।

और भी युक्तियाँ हैं, जैसे भागवतका पाठ करना है । पाठ करते समय निश्चय कर लीजिये कि प्रत्येक श्लोक पर एकबार प्रिया–प्रियतमकी छविका चित्र मन पर अंकित करना ही है । जब एक बार प्रिया–प्रियतमकी छबिका चित्र बँध जाय, तब आगे दूसरा श्लोक पढना प्रारंभ करेंगे । इस प्रकार यदि बारह अध्याय पाठका नियम हो तो तीन घण्टे ध्यान हो जायगा। परन्तु होगा लगनसे करने पर ही ।

आपने लिखा कि जितनी लगन व्यापारकी उलझनोंमें होती है उसका एक प्रतिशत भी प्रिया–प्रियतमके चिन्तनमें नहीं होती । सो लगनके लिये, तत्परताके लिए भगवान्‌से प्रार्थना ही मात्र उपाय है ।

नींद खुलते ही हृदयसे श्रीप्रियाप्रियतमसे निवेदन करें कि अब जीवन आपके हाथमें है और फिर एक रूमाल बराबर पास रखें, उसमें गाँठ बाँध दें। गाँठ देते समय यह पद गाते रहें –

नंदलाल सौं मेरो मन मान्यौ, कहा करैगो कोयरी ।
हौं तो चरन कमल लिपटानी, होनी होय सो होयरी ।।

गृहपति मात–पिता मोहि त्रासत, हँसत बटाऊ लोगरी ।
अब तो जिय ऐसी बनि आई, बिधना रच्यौ संयोगरी ।।
जो मेरो यह लोक जायगो अरु परलोक नसाय री ।
नंदनंदनकौं तऊ न छाँडौं मिलूँगी निसान बजायरी ।।
यह तनु धरि बहुरौ नहिं पैये बल्लभ वेष मुरार री ।
परमानन्द स्वामीके ऊपर सरबस डारौं वार री ।।

यह परमानंदजी का पद पढ़कर रूमालमें बँधी गाँठ पर ध्यान रहे । अब जहाँ जायें, कहीं बैठें, रूमालको सामने रखे रहें । बार–बार निश्चय दृढ़ करते रहें, हमें यही करना है । चाहे सारा संसार जल जाय, हमारा सबकुछ नष्ट होजाय, परन्तु हमें प्रियाप्रियतमको रिझानेका बस यह एक ही काम करना है । दिन भर वह गाँठ सामने रहे, प्रातःकाल फिर उठकर उसे खोलें। खोलकर पदगान करते हुए गाँठ बाँध दें । इससे बड़ी सहायता मिलती है। किसीको पता भी नहीं चलता कि गाँठ किसलिये है । रूमाल है, किसी कामके लिये गाँठ दी होगी अथवा कोई चीज बाँधी हुई होगी – लोग यही समझेंगे । परन्तु वह रूमाल अपने हाथमें रहे अथवा सदा सामने पड़ा रहे। जहाँ गये हाथमें लेकर बैठे रहे। इससे प्रियतम श्रीकृष्णसे आप घुलमिल जायेंगे ।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी ता में द्वै न समाहिं ।।
प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देय लै जाय ।।
कबिरा खडा बजारमें लिये लुकाठी हाथ ।
जो घर फूँकै आपनो चलै हमारे साथ ।।
प्रेम पंथ अतिही विकट, देखत भाजैं लोग ।
कोउक बिरले चलि सकैं जिन त्यागे सब भोग ।।

शिवभगवानजी ! संसारकी दृष्टिसे बिलकुल निकम्मा हो जाना पड़ता है, तब परमार्थका रास्ता तय होता है । एक दिन तो सब छूटेगा ही, फिर इससे बडी मूर्खता क्या होगी कि हम ऐसे नश्वर पदार्थोंके पीछे अनमोल मानवजन्म व्यर्थ खो दें । पर खो रहे ही हैं । विषय अनादिकालसे मनमें धँसे हुए हैं । अनादिकालसे लिये जारहे अनन्त जन्मोंमें मन एक बार भी भगवान्‌में नहीं फँसा। नहीं तो अबतक कबके विषय स्वाहा होगये होते। श्रीललितकिशोरी पहले करोड़पति थे । परन्तु **जब** वैराग्य हुआ और प्रिया–प्रियतमका रंग चढा तब उन्होंने गाया–

बन बन फिरना बेहतर हमको, रतन भवन नहिं भावै है ।
लता तरे पड़ रहनेमें सुख नाहिन सेज सुहावै है ।।

श्री नारायणस्वामी तो कहते हैं –

जाहि लगन लगी घनश्याम की ।
धारत कहूँ पग परत कितैहू, भूलि जाय सुधि धामकी ।।
छबि निहार नहीं रहत सार कछु, निसि–दिन पल–छिन–जामकी ।
जित मुँह उठै तितै ही धावै, सुरति न छाया–घाम की ।।
अस्तुति निंदा करो भले ही, मेंड तजी कुल–ग्राम की ।
नारायन बौरी भई डोलै, रही न काहू कामकी ।।

शिवभगवान जी ! इन सबको जीवनमें उतारनेसे काम बनता है । बातें करनेसे नहीं । हम, आप दिन–रात संसार में रचे–पचे हैं । संसारमें तनिक भी खरौंच नहीं लगे और हलुवेकी तरह भगवान् और प्रिया–प्रियतमकी प्रीतिको गटक लेना चाहते हैं, सो वर्त्तमानमें तो ऐसा होना लगता नहीं है ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१२

भगवान् सर्वत्र हैं

श्री शिवभगवानजी फोगला ! रतनगढ़
७–४–४१

आपका पत्र मिला । श्रीभाईजीका स्वास्थ्य इधर कुछ ठीक नहीं है। मस्सेकी तकलीफ रहती है । उन्होंने आपका पत्र पढ़ लिया है ।

मेरा तो यह सुदृढ़ मत है कि मनसे एक ही काम होगा । भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन अथवा विषयोंका चिन्तन । आपको विश्वास कैसे कराऊँ ? परन्तु यदि किसीका शास्त्रों पर विश्वास हो तो वह भली प्रकार मान सकता है कि भगवान् सर्वत्र हैं । "भगवान् सर्वत्र हैं" – इस सिद्धान्तसे प्रायः सभी शास्त्र भरे पड़े हैं । भक्तराज प्रह्लादजीके लिये वे भगवान खंभेमें से निकल पड़े । यदि कोई सच्चा विश्वासी भक्त हो तो आज भी भगवान् श्रीकृष्ण अपने मुरली–मनोहर रूपमें खंभेंसे निकल सकते हैं । आपके कलकत्तेकी गद्दी अथवा रतनगढ़की हवेलीके प्रत्येक खंभेमें श्रीकृष्ण हैं, परन्तु जबतक मैं अथवा आप खंभेमें, मकानमें, गद्दीमें मन फँसाये रखेंगे, तबतक श्रीकृष्ण क्यों आने लगे ? वे तो चाहने वालेके सामने आते हैं । आप या कोई भी जब कहता है कि "हे भगवान् ! मकान नहीं छूटे, धन नहीं छूटे, रुपये–पैसे, पुत्र–परिवार बने रहें, बढते रहें"–तो श्रीकृष्ण कहते हैं "यह मुझसे मेरे श्रीकृष्ण रूपमें प्रेम नहीं करता, यह तो मेरा मायावी क्षणभंगुर रूप धन, पुत्र, मकानको चाहता है, तब मै अपने असली रूपमें क्यों आऊँ ?"

सारांश यही है कि भगवान् श्रीकृष्णको कहीं अन्यत्र ढूँढने जानेकी आवश्यकता नहीं है । आवश्यकता है मनसे सब कुछ निकालकर उनमें मन फँसा देनेकी । फिर जो भी यथार्थ वस्तु है, वह सामने आ ही जायेगी–संसारमें जो कुछ भी देखने–सुननेमें अथवा मनसे भी चिन्तन–मननके रूपमें आरहा है – सब श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण हैं, दूसरी वस्तु है ही नहीं, परन्तु इसे प्रत्यक्ष तभी किया जा सकता है, जब हमारी चाह मायिक संसारसे सर्वथा हटकर भगवान्के प्रति होजाय ।

ऐसा होते ही तो भगवान् प्रत्यक्ष हो जायेंगे और आप निहाल हो जावेंगे। श्रीगोपीजनोंकी यही दृष्टि थी । उन्हें भगवान्की एकांगी चाह थी अतः उनकी

जहाँ दृष्टि पड़ती थी, वहीं श्रीकृष्ण उन्हें प्रत्यक्ष होजाते थे ।

जहाँ तक हमारा एवं आपका सवाल है सर्वथा ही अंधेरखाता है । हम गीताका पाठ करते हैं, परन्तु उसके श्लोकों पर विश्वास नहीं । विश्वास होना भी कठिन है, क्योंकि हमारी जब चाह ही संसार है, भगवान्के स्थान पर दिन–रात भोगोंको प्राप्त करनेकी लगन लगी है, तब चाह हो भी कैसे ? मनमें परिताप एवं जलन होती, तब तो भगवान्के सम्मुख प्रार्थना भी निकलती । भगवान्के सम्मुख तो हम रो रहे हैं संसार जनित बढोतरीके लिये । संसार बना रहे, वह नष्ट नहीं हो, इसकी चिन्ता हमें दिन–रात घेरे रहती है । तब भगवान्के लिये रोना भी कैसे हो ? भगवान्के भजन–ध्यानकी बात सुननेपर केवल मुखसे भलेही कोई कहे–"अच्छी बात है ।" परन्तु भीतरसे वह उन बातोंको अपने लिये फालतू और बेकार ही समझता है। अधिकांश तो भगवान्को झूठ ही समझते हैं । नहीं तो, विषय नहीं छूटने पर मन चौबीसों घण्टे रोता रहे।

देखिये ! आप, हम, सभी इस बातका अनुभव करते हैं कि ज्योंही हम भगवान्से हटते हैं, हमारी अशान्ति बढ जाती है । एक बार ही नहीं, करके देखलें, बार–बार यही बात होगी । संसारमें लगते ही घोर अशान्ति, चिन्ता, दुःख एवं कामनाओंकी ज्वालासे हम घिर जाते हैं । पर फिर भी जैसे कुत्तेकी पूँछ सीधी होती ही नहीं, वैसे ही हम विषयोंके मैलेसे निकलना ही नहीं चाहते। वस्तुतः हम सभीकी बड़ी ही दयनीय स्थिति है ।

अभी तो हमारी इन्द्रियाँ क्रियाशील हैं, थोडी–बहुत साधना हमसे हो सकती है – सफलता भी मिल सकती है । मानलें कुछ भी सफलता नहीं मिले फिर भी रातको सोते समय मनमें यह अपूर्व शान्ति तो रहेगी ही कि हमने भगवान्में मन लगानेकी आज दिनभर इतनी चेष्टा तो कर ली ।

इसीलिये जपमें संख्या रखनेकी बात कही जाती है । आप करके देखें – जिस दिन भी बीस माला जपते हुए ध्यानकी चेष्टा होगी, उस दिन मन सात्विक आनंदसे भर जायगा कि आज मैंने श्रीप्रिया–प्रियतमको दो–हजार बार याद करनेकी चेष्टा तो की । कमसेकम पन्द्रह सौ बार स्मरण तो हुआ ही होगा। "ओह ! पन्द्रह सौ बार आज भगवान् याद आये ।" बस, यह संख्या आनन्दमें डुबो देगी । फिर संख्या बढ़ेगी । जिस दिन पाँच–हजार बार या अधिक सफल चेष्टा होगयी तब तो और भी आनन्द आयेगा । आप जाँच करके देख लीजिये। सचमुच बहुत ही आनन्द आयेगा। परन्तु होगा सब कुछ मात्र जैसे बताया है, उस प्रकार करनेसे । मालाका नाम–जपके साथ एक मनका गिरा कि उसके साथ–ही–साथ भगवान्के ध्यानकी एक झाँकी चित्तमें बाँधनेकी चेष्टा हुई । इस प्रकार एक माला

पूरी होते ही मनमें यह स्फुरणा होगी कि "सौ बार भगवान्‌के स्मरणकी चेष्टा हुई अच्छा, बीस बार ठीक नहीं हुई होगी, अस्सी बार तो ठीक हुई ही होगी । अहा कितना आनन्द है, कितने सौभाग्यकी बात है – मुझे अस्सी बार श्यामसुन्दर और राधारानी याद आये । नहीं, नहीं, आज अस्सी बार प्रिया–प्रियतम मेरे मनमें आ गये ।" इस प्रकार प्रत्येक माला आपके जीवन को उत्तरोत्तर आनन्दसे भर देगी। पर यह बात होगी लगनसे करने पर तथा विषयोंको भस्म कर डालनेकी दृढ़ धारणा करके चलने पर ।

शिवभगवान जी ! केवल बातोंसे कुछ नहीं होता । पथ चलकर ही पूरा किया जा सकता है । भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) एवं सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) जैसे व्यक्ति भी अपनी यात्रा चलकर ही पूरा किये हैं । हम जहाँ हैं, जो भी हमारी स्थिति है, वहींसे हम सभीको उठना है और भगवत्कृपाका आश्रय लेकर कदम आगे बढाने पर ही लक्ष्य हमारे सामने आवेगा। और क्या कहूँ ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–१३

अपने तो मात्र भगवान् हैं

रतनगढ़

प्रिय श्रीशिवभगवान जी ! ता. २०–४–४१

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ।

आपका पत्र मिला । आपने मेरे बारेमें कुछ व्यक्तिगत प्रश्न किये, उनका उत्तर आपको क्या दूँ । मैं अपने बारेमें अधिकांशतः सोचता ही नहीं हूँ। कभी–कभी लोग पूछते हैं कि आपका स्वास्थ्य कैसा है ? कभी–कभी भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भी पूछ बैठते हैं – "बाबा ! आप स्वस्थ हैं न ?" तब मनमें आता है 'स्वस्थका क्या' अर्थ है ? फिर सोचता हूँ , व्याकरणके अनुसार तो 'स्व' 'स्थ' अर्थात् जो 'स्व' में स्थित हो, वह स्वस्थ है। फिर सोचता हूँ मेरे 'स्व' कौन हैं ? मेरे अपनेके अपने तो श्रीकृष्ण हैं । दूसरी श्रीराधारानी हैं । और कौन हैं ? मन उत्तर देता है–श्रीगोपीजन हैं, और कौन है ? श्रीनित्य–दिव्य वृन्दावन धाम है । और भी अनेक बातें मनमें लहरकी तरह उठती हैं । सब बातें तो मैं किसीको भी बता ही नहीं सकता। परन्तु इन्हीं बातों पर आप भी विचार करें तो आपको ठीक लगेगा कि इन चारोंके सिवा और कोई भी वस्तु आपकी भी नहीं है । जो आपकी है, वह मरनेके बाद भी आपकी रहनी चाहिये । यहाँके तो धन, पुत्र, स्त्री, पद, गौरव–सभी यहीं छूट जायेंगे, यहाँ तक कि शरीर भी छूट जायगा। ये वस्तुएँ आपकी तो हैं नहीं । किन्तु श्रीकृष्ण, राधारानी, गोपीजन एवं वृन्दावनधाम–इन चारोंको देखिये – श्रीश्यामसुन्दर कभी नहीं छूटेंगे, राधारानी कभी नहीं छूटेगी, श्रीगोपीजन कभी नहीं छूटेंगे, वृन्दावन भी कभी नहीं छूटेगा । ये नित्य हमारे साथ रहते हैं । इनका कभी विनाश, वियोग होता ही नहीं, हो सकता ही नहीं । वे बार–बार हमारे मनमें आते हैं, यह इनकी हम पर अपार दया है । परन्तु जब हम इन्हें पराया मानकर छोड़ देते हैं और सर्वथा परायी मायाजनित वस्तुओंको अपनी मान इनके स्थान पर उनकी चिन्ता करते हैं, तब फिर ये छिप जाते हैं । ये सोचते हैं – अच्छी बात है, भाई ! तुम हमें चाहते ही नहीं तो क्या करें । तुम याद करते हो, याद करते ही हम तुम्हारे मनमें आकर उपस्थित हो जाते हैं, परन्तु हमारे आनेके बाद भी फिर तुम हमको तो मायासे ढँक देते हो, और हमारी जगह स्त्री–पुत्र–धनको बैठा देते हो । तब बोलो हमारा क्या

अपराध है ?

आपने लिखा कि श्री जयदयालजी निष्काम भावको सर्वोत्तम मानते हैं किन्तु आपका मन सकाम भावसे निज सुख और कल्याणके लिये ही भगवान्‌को पकड़ता है, सो मेरी रायमें भगवान् पर विश्वास होना चाहिए । भगवान् पर विश्वास होते ही सब काम बना–बनाया है । सकाम–निष्कामकी बात नहीं है । बात है भगवान्‌का भजन करनेकी । विश्वासपूर्वक भगवान्‌को स्मरण करनेकी । फिर चाहे किसीभी कामनासे हम भगवान्‌को क्यों न भजें, हमको भगवान् ही मिलेंगे ।

श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवके समान प्रेमकी शिक्षा देनेवाला तो और कौन हो सकता है ? उन्होंने एक जगह स्वयं अपने प्रिय–से–प्रिय शिष्य श्री सनातन गोस्वामीको शिक्षा देते हुए कहा था –

अन्य कामी यदि करे कृष्णेर भजन ।
ना माँगिलेओ श्रीकृष्ण तारे देन स्वचरण ।।
कृष्ण कहे आमाय भजे माँगे विषय सुख ।
अमृत छाँड़ि माँगे विष एइ बड़ मूर्ख ।।
आमि विज्ञ एइ मूर्खे विषय केन दिब ।
स्वचरण दिया एइ विषय भुलाइब ।।

यदि मनुष्य किसी दूसरी कामनासे भी श्रीकृष्णका भजन करे तो श्रीकृष्ण न माँगने पर भी उसे अपने चरण ही दे डालते हैं । श्री कृष्ण कहते हैं यह मेरा भजन तो करता है पर माँगता है विषय–सुख ! यह अमृत छोड़कर विष माँगता है । देखो तो, यह कितना मूर्ख है । किन्तु मैं तो मूर्ख नहीं हूँ, मैं तो सबकुछ जानता हूँ । किस बातमें इसका मंगल है, किसमें अमंगल है, मुझसे तो कुछ भी छुपा नहीं है । मैं भला जान–बूझकर इसका हितैषी होकर भी इस मूर्खको विषय देकर कैसे टाल दूँ ? मैं तो इसे अपने चरणोंका प्रेम देकर इसके विषय प्रेमको नष्ट कर दूँगा ।

श्रीशिवभगवान जी ! आप पर अनन्त भगवत्कृपा होते हुए भी आपको प्रभुमार्गमें सफलता तो तभी मिलेगी जब उनका निरन्तर भजन आपके द्वारा होगा। उनको स्मरण किये बिना और अन्य कोई मार्ग है ही नहीं । आप करते नहीं, यही कमी है । वास्तवमें आप चाहते ही नहीं, तब क्या हो ?

सभी इष्ट मित्रोंको मेरा राधाकृष्ण स्मरण ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१४

नाम–जप सब कार्य कर देगा

रतनगढ़

श्रीशिवभगवानजी फोगला ! ता. ७ मई १९४१

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथासमय मिल गया था। मैंने उसे बहुत मनोयोगपूर्वक पढ़ा है । आपने लिखा कि सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका जैसे सन्तको पाकर भी आपका जीवन क्यों नहीं सुधर रहा ? सो दो ही बातें हो सकती हैं । श्री सेठजी जयदयालजी सच्चे सिद्ध सन्त हैं इसमें तो कोई सन्देह नहीं है । हाँ ! आपकी भगवान्‌की चाहमें ही कमी हो सकती है। सत्यमें कोई विकल्प हो, यह संभव ही नहीं है । या तो हम जिसे सन्त मानते हैं, वह सन्त ही नहीं है । या हमारी चाहमें कमी है । श्री गौरांग महाप्रभुकी कोटिका शक्तिवाला कोई सन्त हो तो आपका काम बन सकता है । परन्तु उसमें भी "सब धान बाईस पसेरी" नहीं होगा। अधिकारीके अनुरूप एवं श्रद्धा तत्परताके कारण तारतम्य हो ही जायगा । श्री गौरांग महाप्रभुने मल्लाहको भी प्रेम–दान दिया और रूप, सनातन, रघुनाथ – इन तीनों गोस्वामियोंको भी । परन्तु क्या इन सबको समान भगवत्प्रेम मिला ? मल्लाहमें बीज बोया गया और गोस्वामियोंमें फल लगा दिया गया ।

एक व्यक्ति मानलें, सर्वशक्तिमान है । उससे एक व्यक्ति चाहता है बस, अपना सबकुछ न्यौछावर भले हो जाय, परन्तु उस व्यक्तिकी सच्ची आत्मीयता उसे मिल जाय । दूसरा चाहता है – हमें तो उस सर्वशक्तिमान व्यक्तिसे मात्र रोटी–कपड़ा मिलता रहे । तीसरा चाहता है – हमें तो खूब मान–सम्मान प्राप्त हो । चौथा केवल उसकी सेवा चाहता है । अब वह व्यक्ति है तो बड़ा ही प्रेमी। उसके पास जो बढ़ियासे बढ़िया चीज है, वही वह सबको देना चाहता है, परन्तु लेनेवाला जब उसकी अनमोल प्रेमभरी वस्तुका ग्राहक ही नहीं तो वह व्यक्ति सोचता है – "क्या हर्ज है, तुम जो चाहोगे वही हम तुम्हें देंगे ।" अब बताओ, इसमें उसका क्या अपराध है ?

आपने लिखा कि आपमें तो मात्र प्रेमकी ही चाह है । सन्त से अन्य कोई चाह नहीं है । यदि ऐसी बात है तो यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। परन्तु उस इच्छाको छिपाये रखकर जीभसे निरन्तर भगवन्नाम लीजिये । इसमें कोई परिश्रम नहीं । फिर देखियेगा, यह इच्छा आगकी तरह बढने लगेगी । इसमें प्रयत्न करने पर निश्चय सफलता होगी । आप कहेंगे–मन लगना कठिन है, ठीक है, मन नहीं लगे न सही, परन्तु जीभसे भगवन्नामका उच्चारण तो चाहने पर अवश्य होगा । आप एक ही काम करें, शेष सब भगवान् करेंगे– यह काम है जीभसे निरन्तर भगवन्नाम जप । अवश्य ही यह भगवत्कृपा पर निर्भर है । परन्तु विश्वास कीजिये, भगवान्‌की आप पर पूर्ण कृपा है और आप दृढ़तापूर्वक चाह भर करलें तो यह भगवन्नामकी साधना आपसे निश्चय ही हो सकती है । यदि कोई कहे कि हमसे तो नहीं होरही तो समझ लीजिये कि वह ऐसा कहनेवाला नाम लेना ही नहीं चाहता। श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} ने मुझसे एक बार स्पष्ट कहा था कि "भगवान् भले ही दूसरी प्रार्थनाएँ सुननेमें थोड़ी देर भी करदें, परन्तु यदि कोई सचमुच चाहे कि मुझसे निरन्तर नाम–जप हो और इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करे तो वह प्रार्थना निश्चय ही तत्क्षण पूरी हो जायेगी ।" अतः भगवत्कृपाका अवलम्बन लेकर आप पूरी शक्ति लगाकर जुट जाइये । शक्ति लगाने पर निश्चयही नाम–जप होगा । जो ऊँची से ऊँची वस्तु है, जिससे परे कुछ भी नहीं है, वह सब बिना परिश्रमके मिल जायेगी । आप तो शिवभगवानजी, मात्र एक व्रत लेलें। चलते–फिरते, सोते–जागते, उठते–बैठते, खाते–पीते, बस जीभ आपकी मशीनकी तरह नामका उच्चारण करती रहे । फिर अपने आप सब हो जायेगा । सारी बात भगवत्कृपासे हो जायगी । मनका पाप धुल जायेगा । मनकी चंचलता मिट जायेगी । विषयानुराग नष्ट हो जायेगा । श्रीसेठजी {जयदयालजी गोयन्दका} अथवा जिस किसीभी सन्तके प्रति आपकी श्रद्धा–निष्ठा है, उनके प्रति निश्छल, निःस्वार्थ प्रेमभरा आकर्षण उत्पन्न होगा, भगवान् पर संशयहीन विश्वास उत्पन्न होगा । इस प्रकार सबकुछ अपने–आप होकर अत्यन्त दुर्लभ वस्तु, जो भगवत्प्रेम है, वह भी सच्ची इच्छा होने पर मिल जायगा । केवल एक व्रत – निरन्तर जीभसे नाम । जैसे किसी मशीनका स्विच दबा देनेसे वह अविराम चलती रहती है – बड़ी–बड़ी मिलोंमें देखा होगा, वैसे ही जीभको भगवान्‌के नामकी मशीन बनादें । अच्छी बात जो भी मनमें आये वह कीजिये, परन्तु जीभसे नाम लेते रहिये । इसके बिना साकार अथवा निराकार किसी भी प्रकारके भगवत्तत्व पर चित्त जमाकर ध्यान लगाना बड़ा ही कठिन है। होता क्या है कि अधिकांशतः वृत्तियाँ शून्यमें लीन हो जाती हैं और लोग उसे ध्यान मान लेते हैं । मनमें भगवान्‌का जो भी भाव आपने

निर्धारित किया है वही रखें, परन्तु जिह्वा भगवन्नाम लेती रहे । केवल एक नामकी शर्त्त आप पूरी करदें, शेष सभी बातें भगवत्कृपा पूरी करदेगी ।

श्री शिवभगवानजी, इससे और बड़ी बात अभी इस समय तो मेरे मनमें आपके लिये आ नहीं रही है । फिर भी कोई बात श्रीकृष्ण प्रेरित करेंगे तो आगे पत्रोंमें कहने–लिखने का मन है ।

इधर मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है । अर्ध–रात्रि हो रही है । शरीर कुछ काल विश्राम माँग रहा है ।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१५

या तो जगतको सर्वथा भूल जायें या मनके सामने वृन्दावन नाचता रहे

रतनगढ़
ता० २० मई १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम श्री राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मैं जो मुझे सर्वोत्तम जँचे वह साधना आपको लिखूँ । आप उसी साधनाको जीवनमें अपनाना चाहते हैं । सो, फोगलाजी, हमारे जँचनेकी तो एक ही बात है । चाहे जैसे संभव हो, दो कामोंमें एक काम मृत्युके पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिये। या तो इस संसारको सर्वथा भूल जायें तथा मनके सम्मुख श्रीराधारानी, श्रीवृन्दावन धाम, श्रीगोपीजन निरन्तर नाचते रहें अथवा जहाँ–जहाँ दृष्टि जाय, वहीं–वहीं यह भाव कभी भी नहीं टलने वाला अटल, सुदृढ़ हो जाय कि जो कुछ दीखता–सुनता है, सब कुछ श्रीकृष्ण हैं। सब उन्हींकी लीला है । दोनोंमें से एक हुए बिना मनका राग–द्वेष मिटना अत्यन्त कठिन है और जब तक राग–द्वेषका समूल नाश नहीं होगा, वहाँ तक शान्ति मिलनी कठिन है । इन दोनों स्थितियोंकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायक होता है–निरन्तर भगवान्‌का नाम–जपका अभ्यास ।

नाम–जप पर हमारा रुझान तभी संभव है, जब हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य भगवान् होंगे । यह बात ठीक–ठीक समझलें कि जबतक अनेक और–और लक्ष्य रहेंगे, तबतक रास्ता कट जाने पर भी वह स्थिति सम्मुख आनेमें बहुत विलम्ब लगेगा। जीवन भर कुछ न कुछ अशान्ति बनी ही रहेगी। यदि आपके एकमात्र लक्ष्य भगवान् होगये और फिर जो–जो भी आपके द्वारा चेष्टाएँ हुईं उनपर यह [illegible] कि यह चेष्टा मुझे अपने लक्ष्य भगवान्‌से जोड़ने वाली है अथवा लक्ष्यसे [illegible] तब फिर रास्ता बड़ी ही शीघ्रतासे कटेगा । उदाहरणके लिये जैसे

आप कलकत्तेसे बाँकुड़ा गये। वहाँ जाकर दिन–रातमें आपने अनेकों चेष्टाएँ कीं, खाया–पिया, घूमे–सोये, लोगोंसे मिले । अब विचार करके देखें कि आपने जो भी चेष्टाएँ की, उनमें कौन–कौनसी एवं कितनी चेष्टाएँ किस–किस उद्देश्यसे हुईं । आपने रास्तेमें किसी सज्जनसे बात की । अब बात करते समय आपके एकमात्र लक्ष्य यदि श्रीकृष्ण होंगे तो आपके मनकी दशा दोमें से एक प्रकारकी होगी । या तो आपको उक्त सज्जनके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी अनुभूति होगी और बात करते–करते आप आनन्दमें मुग्ध होते रहेंगे अथवा मन बिल्कुल उपराम रहनेसे उस समय ऊपरी मनसे तो आप बात करेंगे, किन्तु भीतरी मनसे आपका ध्यान श्रीकृष्णके रूपमें, गुणोंमें, लीलाओंमें लगा रहेगा। ऐसा न होकर यदि आपका और कुछ भाव रहता है तो साफ–साफ यह बात आप समझ सकते हैं कि आपका लक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण सर्वथा नहीं हैं।

कलकत्ते–बम्बईमें आप सुन्दर महलनुमा मकान देखते हैं, परन्तु ये दिव्य वृन्दावनसे सुन्दर स्थान कदापि नहीं हैं । दिव्य वृन्दावनके महलोंसे अधिक सुन्दर यहाँका कोई भवन नहीं है । परन्तु जब हमारा मन इन भवनों पर चलता है, तब फिर यह समझ लेना चाहिये कि अभी तो यह दिव्य वृन्दावन देखना ही नहीं चाहता । क्योंकि लक्ष्य दिव्य वृन्दावन अथवा श्रीकृष्ण होजानेपर दिन–रात मस्तिष्क यही सोचता रहेगा कि कैसे रास्ता तय हो और श्रीकृष्णसे हमारा मिलन हो, दिव्य वृन्दावनमें प्रवेश हो । उस समय यहाँका कुछ भी हमें सुहायेगा ही नहीं। हाँ, यदि यह भाव हो कि यहाँ भी सबकुछ श्रीकृष्णकी ही लीला है, तब तो कुछ कहना बनता ही नहीं, परन्तु इसमें भी एक सावधानी तो आवश्यक है ही । बढ़िया–बढ़िया चीजोंको लीला मान लेना तो आसान है, परन्तु परीक्षा तो तब होती है, जब भीषण गरमी पड़ रही हो, पानी मिले नहीं और मन भीतरसे कहे, यह भी श्रीकृष्णकी लीला है। खूब ठंडाई पीनेको मिले, मोटर घूमनेको हो, हाथ जोड़े सेवा करनेवाले खड़े हों, तब श्रीकृष्णकी लीला मानना सरल है । इसलिये आपसे प्रेमवश निवेदन किया है कि कहीं भी जायें, कुछ भी करें, अपना लक्ष्य नहीं भूलें ।

हम किसीके यहाँ जीमने बैठे हैं । यदि श्रीकृष्ण हमारे जीवनके लक्ष्य हैं तो उस समय भी यह ध्यान रहेगा कि हम श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये खा रहे हैं अथवा भोग–भोगनेके लिये खा रहे हैं ? भोग भोगनेके लिये भोजन करना दूसरी तरहका होता है तथा श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये भोजन दूसरी तरहका । आप एवं हम खायेंगे वही वस्तुएँ और जितना खाते हैं, उतनी मात्रामें ही खावेंगे, परन्तु श्रीकृष्ण लक्ष्य होने पर हमारा–आपका मन उस समय श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहेगा । उस समय परोसनेवालेमें भी हमको–आपको

श्रीकृष्ण–ही–श्रीकृष्ण दिखाई देंगे । हमारा मन भी प्रत्येक ग्रासके साथ आनन्दसे भरता रहेगा ।

यदि हमारे लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं तो फिर हम अपने मनमें संसारके चित्र कदापि नहीं भरेंगे । वे तो पहलेसे ही बहुत अधिक भरे हैं । अब यहाँके इन नाशमान भवनोंको और भरनेसे नया मैल ही तो बढ़ेगा – इस भावसे हम उनकी जगह श्रीकृष्णके उन निकुंजोंको जितना याद कर सकें – करेंगे। जो एकसे–बढ़कर–एक सुन्दर हैं, जिनकी छायाको भी संसारके समस्त बगीचोंकी सुन्दरता छू नहीं सकती, उन निकुंजोंमें ही हम अपना मन फँसायेंगे । उसीमें अपना पूरा लाभ समझेंगे । उस अवस्थामें हमारा मन दूसरोंके गृह–मकान, धन–वैभव देखकर कदापि ईर्ष्यासे जलेगा नहीं, अशान्त नहीं होगा । हम स्वयं शान्ति पायेंगे और दूसरोंको भी जो अपने पास रहनेवाले हैं, शान्ति देंगे। परन्तु हाँ ! यह मन बदमाश है । यह बहुत शीघ्र शुभ बातको पकड़ले, ऐसा होना कठिन है । वह रुके नहीं, तो एक और उपाय है ।

जैसे आप उस महलको देखने गये थे । मुझे पता नहीं आपने वहाँ क्या–क्या देखा ? परन्तु जो–जो चीज आपने देखी, उसी–उसीके आधार पर यदि हम दिव्य वृन्दावनकी कल्पना तुरन्त साथ–ही–साथ करते जाते तो जैसे जहरके साथ अमृत भरा जाय, वैसे ही इन संस्कारोंके साथ एक ऐसी दिव्य वस्तु मस्तिष्कमें घुसती चली जाती कि वह बहुत ही काम देने लायक लाभदायी हो जाती।

आपकी बात नहीं, संभव है आप उस समय भगवान्‌को याद करते रहे हों, परन्तु प्रायः ऐसा ही होता है कि इन वस्तुओंको देखते समय हम भगवान्‌को भूल जाते हैं और केवल माया ही माया पर हमारी दृष्टि लुब्ध रहती है । इसका परिणाम होता है घोर दुःख ।

हमें इस मनसे ही तो लड़ना है । इसीमें हमारी बहादुरी है। इस मनसे कहिये – यार ! अनादि कालसे तेरे कारण ही मैं मेरे प्राण–प्रियतम श्रीकृष्णसे बिछुड़ा हुआ हूँ । पर अब श्रीकृष्णकी कृपासे तुझे मैं श्रीकृष्णके पास ले जाकर निहाल करूँगा । साथ ही स्वयं भी निहाल हो जाऊँगा ।

यह न करके यदि हम मनका कहा करेंगे तो, फिर तो आज यह आपको भवन देखनेके लिये कहेगा, कल बाजार देखनेके लिये और परसों व्यापार–दुकान देखनेकी जिद करेगा । इस पर तो शासन करना ही होगा। चतुराईसे जैसे यह आपको धोखा देता है, वैसी ही चतुराईसे इसे आप भी बाँध लीजिये । जब यह बहुत ही अड़ जाय कि मैं तो अमुक वस्तु देखूँगा ही, तो यदि वह पाप–पूर्ण नहीं हो तो इसे दिखा दीजिये । परन्तु उसके साथ सावधानीपूर्वक श्रीकृष्णको जोड़े

रखिये । जिससे उस जहरका असर नहीं हो।

जीवन तो शिवभगवानजी, अनवरत चेष्टा करते हुए सावधानीपूर्वक बनानेसे बनेगा । शेष भगवत्कृपा ।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}
राधा राधा राधा राधा राधा

पुनश्च – मैने सभी बातें आपको अत्यन्त प्रेमसे कही हैं । इस शरीरको मनसे सर्वथा उतार देनेकी चेष्टा करनी चाहिये । मामूली सर्दी–गर्मी सहन नहीं होगी तो फिर वृन्दावनमें जीवन कैसे बीतेगा ? वहाँ तो खूब मच्छर काटेंगे । पानी गरम–गरम पीनेको मिलेगा । पासमें पैसा यदि नहीं रहा तो भोजनका भी ठिकाना नहीं कि रोज मिले ही । फिर यदि पित्त गरम होनेकी परवाह बनी रही तो व्रजमें वास कैसे कर सकेंगे। इससे मेरा यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि खायें–पीयें नहीं । अच्छी प्रकार भोजन करिये, किन्तु मनसे ये सभी वस्तुएँ उतर जावें । लू चल रही है, अब बार–बार सोचिये– "अरे बापरे ! बहुत लू चल रही है ।" तो अशान्ति बढ जायगी । यह न करके यदि यह सोचा जाय कि क्या ही सुन्दर जीवन है, दो दिनके लिये तो तप करनेको मिला, घरमें इस लूका आनन्द कहाँसे मिलता । बस, चित्तमें आनन्द ही आनन्द भर जायगा।

जीवनकी हर परिस्थिति आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णसे भरे रहें, यही सार–की–सार बात है ।

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–१६

नित्य वस्तुमें मन डुबोइये

रतनगढ़
ता. ५ जून १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपको मेरे पत्रोंसे बहुत उत्साह होता है और साधनामें रुचि बढ़ती है, सो यह आपका मेरे प्रति प्रेम है । मैं तो आपको खरी–खोटी जो मनमें श्रीकृष्ण प्रेरणा देते हैं, निस्संकोच लिख देता हूँ । अनेक बार बादमें परिताप भी होता है कि भावोंको आदरकी पुट देकर मुझे लिखना चाहिये था । आप अपने प्रेमवश मेरे रूखे पत्रोंसे भी उत्साहित होते हैं, यह आपका सरल स्वभाव है ।

मुझे तो एक ही बात घुमा–फिराकर कहनी है कि जैसे हो, हमारा भजन बढ़ना चाहिये ।

श्रीमद्भागवतमें कहा है – आकाश, वायु, अग्नि, जल, नक्षत्र, सभी प्राणी, सभी दिशायें, सभी वृक्ष, नदियाँ, नद–समुद्र – ये सबके सब, चाहे अचर हों या चर हों – कोई भी भूत हों – सभी श्रीकृष्णके शरीर हैं । यों मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करें । अब लू चलरही है, गरमी है, उसमें आग है ही तथा वायु भी है । यदि यह भावना हो जाय कि अग्नि एवं वायु रूपसे मेरे शरीरको श्रीकृष्ण ही छू रहे हैं तो कितना आनन्द हो । नित्यवस्तु तो सभीमें श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण भरे हैं। शेष अनुकूलता–प्रतिकूलताके रूपमें जो कुछ बाह्य अनुभवमें आरहा है, वह तो अनित्य, क्षण–क्षण परिवर्तनशील माया ही है ।

अतः मेरी बात मानें तो नित्य वस्तुमें मन डुबोइये । अभी यह नहीं हुआ तो भविष्यमें इतना पश्चात्ताप हो सकता है कि उसकी कोई सीमा ही नहीं । मेरी बात बिलकुल गाँठ बाँधकर रख लें ।

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिके सिवा यदि मन कुछ भी चिन्तन

करता है, तो समझ लें, घाटेका कोई हिसाब ही नहीं है । अभी पता नहीं लगता। अभी चेष्टा नहीं होती, परन्तु मरनेके समय इन्द्रियाँ इतनी अधिक व्याकुल हो जाती हैं कि बिना अभ्यास भगवान्‌में मन स्थिर होना बहुत ही कठिन होता है । अतः जीवनका शेष सभी समय भगवान्‌में लगाइये । बड़ी तेजीसे रास्ता काटिये। परिवारमें धन–जनमें कहीं मन फँसा रहा और मृत्यु हो गयी तो जीवन बिलकुल व्यर्थ ही हो गया, समझिये ।

शिवभगवान्‌जी ! एक भगवान्‌ही ऐसे हैं जिनको पकड़ लेने पर फिर कभी किसी भी अवस्थामें तनिक भी दुःख नहीं होता । जो जितने अंशमें पकड़ लेता है, उतने अंशमें उसका दुःख कम हो जाता है । पूरा पकड़ लेने पर तो दुःख बिलकुल ही नहीं रह जाता ।

अब आप देखें, लोग बिचारे कितने दुखी रहते हैं । यदि इनमेंसे कोई भगवान्‌को पकड़ ले तो वह कदापि दुखी नहीं होगा । क्योंकि उसके मनमें यह दृढ़ विश्वास रहेगा कि सर्वशक्तिमान् भगवान् मेरे परम सुहृद हैं । वे भगवान् जब मेरे साथ हैं तो फिर मुझे क्या डर है ? आप निश्चय समझिये जो काम हमारे–आपके लिये सर्वथा असंभव है, भगवान् एवं सन्त उसे क्षणभरमें कर सकते हैं । भगवान् एवं सन्तोंके लिये ऐसा कोई काम नहीं है जो असंभव हो, जिसे वे नहीं कर पावें। केवल विश्वास चाहिये ।

एक कथा आती है । महाप्रभु चैतन्यदेव, श्रीवास पंडितके घर कीर्त्तन कर रहे थे । कीर्त्तनके मध्य ही श्रीवासजीका लड़का मर गया। श्रीवासजीको उनके घरके लोगोंने कीर्त्तनके मध्य बुलाकर सूचना दी, परन्तु श्रीवासजीने स्त्रियोंसे कहा –"यदि रोओगी तो महाप्रभुका कीर्त्तन भंग हो जायगा और यदि ऐसा हुआ तो लड़का तो गया ही, मैं भी गंगामें डूबकर प्राण दे दूँगा ।" स्त्रियाँ डर गयीं । अब बेटा तो भीतर मरा पड़ा है और आँगनमें कीर्त्तन करते महाप्रभु नाच रहे हैं।

किन्तु धीरे–धीरे और लोगोंको भी यह बात मालूम होगयी । सबका उत्साह कम होने लगा । धीरे–धीरे एक–एक कर सब नाचना छोड़कर बैठ गये। महाप्रभुको बहुत काल पश्चात् बाह्य ज्ञान हुआ । वे बोले – "क्या बात है ? कोई अनिष्ट घटना घट गयी है ?" लोगोंने सारी बात कह दी । महाप्रभुने लड़केके शवको मँगाया और लगे नाचने । लड़केमें प्राणोंका संचार हो गया ।

श्रीवासने देखा, यह तो उचित नहीं हुआ ! इस लड़केका बड़ा सौभाग्य था कि वैष्णवोंके कीर्त्तनके मध्य उसकी मृत्यु हुई थी । श्रीवासने महाप्रभुसे प्रार्थना की – "महाप्रभु ! ऐसा नहीं करें ।" इसके पश्चात्‌की ठीक घटना मुझे स्मरण नहीं । परन्तु शायद जब घरके सभी लोगोंमें सन्तोष हो गया कि इसको मरनेका ऐसा

सौभाग्य फिर क्या पता मिले या नहीं मिले तो महाप्रभुने कहा –"अच्छा, यही सही।" यह इसलिये हुआ था कि श्रीवासका यह भाव था कि महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं। परन्तु श्रीवासके लिये महाप्रभुने वैसा किया भी नहीं था, किया था उस लड़केकी माताके सन्तोषके लिये । कहनेका इतना ही अर्थ है कि ऐसी कोई घटना नहीं जिसे सन्त अथवा भगवान् नहीं कर सकें ।

जहाँ भगवान्में एवं सन्तमें विश्वास है, वहाँ सब कुछ संभव है। हमारा–आपका भी ऐसा सौभाग्य निश्चय ही है कि हमें उच्चतम कोटिके सन्त मिले हैं । परन्तु हमारा उनपर भगवत्तुल्य विश्वास नहीं है । हम उन्हें मात्र एक अच्छे साधक, महापुरुष ही मानते हैं, अतः हमारे लिये उनके माध्यमसे भगवानकी वैसी अलौकिक कर्तृत्व शक्ति प्रकट नहीं होती। गोपी–प्रेमके एक सर्वोत्तम उपासक बहुत बड़े सन्त नरोत्तमदासजी हो गये हैं । वे जातिके कायस्थ थे । किन्तु ब्राह्मण लोगोंकी भी उन पर बहुत श्रद्धा थी । उनके अनेक ब्राह्मण शिष्य थे । ब्राह्मण समाजमें अनेक टोलियाँ थीं । इनमें से एक ब्राह्मण टोलीने कायस्थ द्वारा ब्राह्मणोंको शिष्य बनाये जानेका बहुत विरोध किया । उन्हें इसका भी बहुत दुःख था कि ब्राह्मणोंने कायस्थको गुरु बनाया ।

आखिर नरोत्तमदासजीकी आयु समाप्त हुई । वे गंगातट पर मरे । मरते समय उनकी बोली बन्द होगयी थी । फिर तो ब्राह्मणोंकी बड़ी भीड़ने मजाक उड़ाना शुरू किया । कोई कुछ कहता, कोई कुछ । किसीने कहा – "बहुत ठीक हुआ, बड़ा भक्त बना फिरता था ।" उनके ब्राह्मण शिष्योंको बड़ा दुःख हुआ । एक शिष्य बहुत ही विश्वासी था । वह भी ब्राह्मण था । उसने मन–ही–मन प्रार्थना की –"गुरुदेव ! एक बार जी उठिये तथा इन सभी ब्राह्मणोंका उद्धार करके जाइये।" उसकी प्रार्थना सच्चे हृदयकी थी ।

नरोत्तमदासजीको एकदम जलाये जानेकी तैयारी होरही थी कि नरोत्तमजी धीरे–धीरे उठ बैठे और हँसने लगे । अब तो ब्राह्मणोंके होश गुम होगये क्योंकि उन्होंने बहुत गालियाँ दी थीं । आखिर एक–एक ब्राह्मणने आकर क्षमा माँगी । सभी उनके शिष्य हो गये । सभीने उनसे श्रीकृष्ण मन्त्रकी दीक्षा ली । इसके पश्चात् सात दिन तक वे जीवित रहे । अन्तिम दिन बोले –"मुझे गंगामें ले चलो।" गंगामें जाकर खड़े हुए शिष्योंसे कहा – मेरा शरीर मलो ।" शिष्योंने शरीर मलना प्रारंभ किया । ऐसा मालूम हुआ, मानो शरीर दूधका पुतला था । वह शरीर पूरा पानीमें घुल गया ।

शिवभगवानजी ! संसारमें चार ऐसी वस्तुएँ हैं जो बिना श्रद्धाके भी फल देती हैं । {१} भगवन्नाम, {२} भगवद्धाम, {३} भगवत्लीला तथा {४} भगवानका अखण्ड

भजन करनेवाले सन्त । इनमेंसे किसीके भी साथ प्राणोंकी बाजी लगाकर जुड़ जायँ । भगवन्नामसे जुड़ें तो फिर ऐसा हो जाय कि प्राण छूटें, पर नाम नहीं छूटे । धामसे जुड़ें तो इस प्रकार कि चाहे बम बरसें, धाममें ही प्राण ब्रजरजमें छोड़ेंगे । वहाँसे बाहर पैर नहीं उठें । लीलासे जुड़ें तो इस जगतको सर्वथा ही भूल जायें । आँखोंसे हर स्थान पर लीला ही लीला दिखे। सन्तसे जुड़ें तो ऐसे कि प्राण रहते अलग नहीं हों । मुर्दा शरीर भले ही अलग हो। यदि ऐसा हो तो प्रिया–प्रियतमकी कृपा अवश्य प्रकट होती है।

शिवभगवानजी ! आवश्यकता निष्ठाकी है । हमारी निष्ठा न तो सच्ची है, न ही अखण्ड है । एक क्षण हम जिसे सन्त मानते हैं, दूसरे ही क्षण उसे साधारण व्यक्ति समझने लगते हैं । हमारे पास सन्तको जाँचनेका माध्यम है हमारी बुद्धि, वह हमारी बुद्धि ही जब पूरी मलिन, स्वार्थभरी, अहंकारकी अनुगामिनी है तो हमारी यावज्जीवन सुदृढ़ निष्ठा कैसे रह पावे । एक क्षण हम नाम–जपका विचार करते हैं, दूसरे ही क्षण हम सत्संगको महत्त्व देने लगते हैं । तीसरे ही क्षण हमें वृन्दावन आकर्षित करता है और कुछ ही कालमें हम व्यापारको आवश्यक समझ कलकत्तेकी सैर करने लगते हैं ।

इसी कारण जैसे लुढ़काऊ पत्थर काई नहीं पकड पाता, हमारी निष्ठाकी कमी हमारी उन्नति नहीं होने देती । हमारे चित्तमें भजनके संस्कार जम नहीं पाते। जो स्थिति समझमें आयी वह लिख दी है । आप प्रसन्न होंगे। प्रेमभाव बढ़ाते जायें ।

{श्रीशिवभगवानजी फोगलाको मोतीलाल पारीकके जय श्रीराधे }

राधा राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–१७

भगवान् स्वयं सबकी सँभाल करते हैं

रतनगढ़
२० जून १९४१ ई०

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथा समय मिल गया था। इससे पूर्व उत्तर लिख पाना मेरे लिये असंभव–सा है । अपनी नियमित साधनाके उपरान्त रात्रिमें पत्र लिखना प्रारम्भ करता हूँ । अनेक लोगोंको कभी–कभी पत्र देने होते हैं । अतः इतना शीघ्र मुझसे उत्तर पानेकी आशा छोड़ दें । आगे भविष्यमें पत्राचारमें बहुत विलम्ब भी हो सकता है और संभव है, कभी पत्र नहीं लिखनेका भी नियम लेना पड़े। यथा संभव जबतक किसी एकको भी पत्र दूँगा तो आपको प्राथमिकता ही दूँगा । आपके प्रश्नोंके उत्तर निम्न हैं :–

भगवान् सबकी सँभाल करते हैं, फिर जो उनका हो गया है, उस भक्तकी सँभाल करें – इसमें कहना ही क्या है । एक संतकी कथा आपको कहता हूँ। यह सर्वथा सत्य घटना है। वे बदरीधाम जा रहे थे। रास्तेमें टट्टी लगने लगी । चालीस–पचास टट्टियाँ लगीं । अब साथियोंने तो उन्हें छोड़ दिया। वे बेचारे रास्तेसे कुछ हटकर जंगलमें एक गुफामें जाकर पड़ रहे । दूसरे दिन एक बूढ़ा आया एक पुड़िया दवा और दही–भात लेकर । संतने दवा खा ली और दही–भात खा लिया । तीन–चार दिन वह रोज दवा और दही–भात लाता रहा और वे खाते रहे। तीन–चार दिन बाद उनके मनमें कौतूहल हुआ कि यह कौन है, अतः जब वह दही–भात लेकर आया, तब उन्होंने उससे पूछा–"तुम कौन हो!" उसने कहा –"इससे तुम्हें मतलब ? दवा ले लो, दही–भात खा लो ।" संत बोले–"पहले बताओ कि तुम कौन हो।" वह बोला कि –"यह नहीं बताऊँगा।" बाबा बोले–"मैं भी दही–भात नहीं खाऊँगा ।" उसने कहा–"मत खाओ" और यों कहकर वह लौटने लगा पुनः कुछ देर बाद आया और बोला–"खा लो ।" बाबा बोले–"बताओ ।" आखिर वहीं उस बूढ़ेकी जगह भगवान् प्रकट हो गये । संत बोले–"महाराज !

कुछ अनुमान हो गया था कि इस भयानक जंगलमें आपके सिवा और कौन होगा। पर नाथ ! क्या स्वयं आप इस प्रकारकी सेवा भी करते हैं ?" भगवान्ने कहा–"जहाँ कोई होता है, वहाँ तो प्रेरणा कर देता हूँ, नहीं होता तो स्वयं आता हूँ ।" यह सच्ची घटना है और कुछ ही समय पहलेकी बात है ।

दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं, वे भगवान्के बहुत ही विश्वासी थे, गाँवके जमींदार थे । एक साल अकाल पड़ा । कोठेका अनाज तो बाँट ही दिया, अपना मकानतक बेचकर गरीबोंको लुटा दिया । स्त्री–पुरुष पेड़के नीचे रहने लगे । उनका नियम था–एकादशीका उपवास करना फिर द्वादशीके दिन ब्राह्मण–भोजन कराके तब पारण करना । एकादशीके दिन वे पंढरपुर जाया करते थे । इस बार भी गये, दर्शन किया, किन्तु पासमें कुछ नहीं था। कुछ दिन पहले बहुत धनी थे, पर आज फूटी कौड़ी भी पास नहीं थी । लकड़ी बेचनेसे तीन पैसे मिले । एक पैसेकी फूल–माला ली, एक पैसेका प्रसाद चढ़ा दिया तथा एक पैसा दक्षिणामें दे दिया । दूसरे दिन लकड़ी बेचने पर फिर तीन पैसे मिले । उनका आटा ले लिया, पर केवल आटेका निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये कोई ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ । दो पहर हो गया । एक–एक करके ब्राह्मण आते, पर खाली आटा देखकर अस्वीकार कर देते । अन्तमें भक्त–दम्पत्ति मनमें सोचने लगे–"प्रभो ! हमारा नियम क्या आज भंग होगा ?" इतनेमें एक ब्राह्मण आया, जो अत्यन्त बूढ़ा था । बोला–"पटेल ! बड़ी भूख लगी है ।" उस बेचारेने लजाकर कहा–महाराज ! मेरे पास तो केवल आटा है ।" ब्राह्मणने कहा–"फिर क्या चाहिये । यहाँसे थोड़े कंडे इकट्ठे कर लें । मैं बाटी बनाकर खा लूँगा ।" यही हुआ, बाटी बनने लगी। इतनेमें एक बुढ़िया आयी । ब्राह्मण बोले–बड़ा अच्छा हुआ, पटेल ! यह मेरी स्त्री है, हम दोनों प्रसाद पा लेंगे ।" पटेल लज्जित हो गये, सोचने लगे–'एक आदमीके लिये भी आटा पर्याप्त नहीं है, दो कैसे जीमेंगे । पर भगवान्की लीला थी, बाटी बनायी गयी और ब्राह्मणने कहा– 'एक पत्तल तुम अपने लिये भी ले लो। पटेल बड़े विचारमें पड़ गये । अन्ततोगत्वा बहुत कहने–सुननेके बाद ब्राह्मण–ब्राह्मणी जीमने लगे । कुछ खाकर अन्तर्धान हो गये । पटेल बड़े चकित हुए । प्रसाद पाकर मन्दिरमें दर्शन करने गये । वहाँ भगवान् प्रत्यक्ष चिन्मय रूप धारणकर बात करने लगे । बहुत बातें हुईं। अन्तमें भगवान् बोले–'भाई ! हमें ऐसी ही बाटियाँ खानेमें आनन्द आता है ।' पटेलने पूछा–'महाराज ! तब क्या आप बड़े–बड़े यज्ञोंमें नहीं जाते ?' भगवान्ने कहा–'वे लोग हमको खिलाना ही नहीं चाहते ।' पटेलसे भगवान्ने फिर कहा–'कल तमाशा देखना, उसी ब्राह्मणके वेषमें मैं कल अमुक जगह जाऊँगा, देखना, मेरी कैसी पूजा वहाँ होती है ।'

एक बहुत बड़े धनीके यहाँ यज्ञ था । हजारों ब्राह्मणोंका निमन्त्रण था। ठीक जीमनेके अवसरपर वे ही बूढ़े बाबा पहुँचे और बोले–'जय हो दाताकी! एक पत्तल हमें भी मिल जाये । बहुत भूखा हूँ ।' लोगोंने पूछा–"आपको निमन्त्रण मिला है ?" ब्राह्मण बोले–'निमन्त्रण तो नहीं मिला, पर हूँ बहुत भूखा, बड़ा पुण्य होगा।' ब्राह्मणकी एक बात भी उन लोगोंने नहीं सुनी । आखिर ब्राह्मण जबर्दस्ती एक पत्तल लेकर बैठ गये । अब तो धनिक बाबूके क्रोधका पार नहीं रहा। उन्होंने हाथ पकड़कर ब्राह्मणको निकलवा दिया । पटेल देख रहे थे । बूढ़े ब्राह्मण पटेलको इशारा करके कह रहे थे–"देखा, हमारा सत्कार कैसा होता है?" फिर कहा–'अब देखो क्या होता है ।' उसी समय बहुत जोरकी आँधी आयी, बड़े–बड़े ओले गिरने लगे। सारा यज्ञ नष्ट हो गया ! एक ब्राह्मण भी भोजन नहीं कर सका । कथा बहुत विस्तारसे एवं बहुत लंबी है । सारांश यह कि किसी भी दुखीको देखकर उसमें विशेष रूपसे भगवान्‌को देखना चाहिये ।

असलमें तो आर्त्तभक्त, अर्थार्थी भक्त भी बनना बड़ा कठिन है । कोई सच्चा आर्त्त, सच्चा अर्थार्थी हो जाय, तब तो फिर क्या पूछना ! उसका दुःख भी मिट जाय एवं भगवान्‌को पाकर वह कृतार्थ भी हो जाय–इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । आर्त्त भक्त हो चाहे अर्थार्थी, उसमें अनन्य निष्ठा होनी ही चाहिये । अनन्य निष्ठाका अर्थ यह कि और सभीपरसे–सभी साधनोंपरसे भरोसा उठाकर मनमें यह निश्चय कर ले कि 'मेरा यह काम तो भगवान् ही पूरा करेंगे ।"मान लें हमें कोई बीमारी है । अब यदि ठीक–ठीक मनमें यह निश्चय हो कि यह बीमारी प्रभुसे ही दूर करवानी है तो निश्चय मानिये प्रभु उसे दूर कर देंगे । पर यदि कोई कहता है कि प्रभु तो दूर करेंगे ही, पर निमित्त तो दवा बनेगी । तो समझ लीजिये कि असलमें उसका विश्वास भगवान्‌पर नहीं है, विश्वास दवापर है । फिर भगवान् भी जब अच्छा करेंगे तब सीधे जादूकी तरह नहीं करेंगे किसी दवासे ही करेंगे । ऐसा न होकर यदि यह धारणा कर लें कि दवासे क्या होगा, प्रभु अच्छा करेंगे, तो सच मानिये बिना दवाके कठिन–से–कठिन रोग–जिसका अच्छा होना असम्भव मान लिया गया है, अच्छा हो सकता है और एक क्षणमें ऐसा हो सकता है मानो उस बीमारीका कोई चिन्ह भी नहीं रह गया हो–मानो वह बीमारी कभी हुई न थी।

इसी प्रकार अर्थार्थी भक्त भी भगवान्‌की कृपा पाकर एक क्षणमें निहाल हो सकता है तथा एक क्षणमें एक अत्यन्त दरिद्रको भगवान् अरबपति, असंख्यपति बना सकते हैं । कोई कहे कि 'मैं धनके लिये भजन करता हूँ, तो उसे सोचना चाहिये कि मेरी निष्ठा भगवान्‌पर है या नहीं । यदि निष्ठा है तो उसकी यह पहचान है। कोई उसे आकर यह कहे कि "हम गारंटी करते हैं–तुम यह सौदा कर लो, तुम्हें

जरूर लाख रुपये मिल जायेंगे । नहीं मिलें तो हम लाख रुपये तुम्हें अपने पाससे देंगे ।" इसपर भी यदि उसका मन न डिगे तथा वह यह न स्वीकार करके भजन ही करता रहे, तब वह सच्चा अर्थार्थी भक्त है और उसके लिये फिर भगवान् अपना सम्पूर्ण भंडार खोलकर उसे निहाल कर देंगे। आजकल लोग भजन तो करते हैं, दो–चार माला जपते हैं, पर साथ ही सौदे–सट्टेमें भी रुपया लगाते रहते हैं । यह अर्थार्थी भक्तका लक्षण तो है नहीं, इसी कारण आजकल न तो आर्त्त भक्तके लिये जादूका–सा खेल भगवान् करते हैं और न अर्थार्थीको ही जादूकी तरह कोटिपति बनाते हैं ।

शिवभगवानजी ! हम सबको धोखा दे सकते हैं, परन्तु हम सबके अन्तःकरणकी एक–एक स्फुरणाको जानने और पहचानने वाले भगवान्‌को धोखा नहीं दे सकते। भगवान् हमारे भीतरकी सच्चाईको देखते हैं । यदि हमारा उन पर अटूट सच्चा विश्वास है तो भगवान् हमारे लिये सबकुछ करनेमें समर्थ हैं । आवश्यकता है, मात्र सच्चे हृदयके विश्वासकी। सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य।

{श्रीशिवभगवानजीको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे}
राधा राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१८

प्रार्थनासे दोषोंको दूर करें

रतनगढ़
तिथि उल्लेख नहीं है

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने अपने मनकी सम्पूर्ण स्थिति निश्छल होकर मेरे सम्मुख रखी । यह आपका मेरे प्रति विश्वास ही है, मैं आपके प्रेमके लिये आभारी हूँ । बिना प्रेमके ये बातें किसीको भी नहीं कही जा सकतीं । आपने लिखा कि मैं अन्य किसीके सम्मुख ये बातें नहीं प्रकट करूँ, सो आपका यह लिखना उचित ही है । मैं अन्य किसीके सम्मुख तो आपकी ये दुर्बलताएँ व्यक्त नहीं ही करूँगा, परन्तु मेरा अपना एक सम्बन्ध भाईजी {श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार} से ऐसा है कि उनसे मैं अपने हृदयकी कोई भी जानकारी कभी भी बतला सकता हूँ । आप जो बातें श्रीभाईजी {श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार} से भी छिपाना चाहें, उन्हें मुझे नहीं ही कहें, यही उचित होगा । यथाशक्ति इन बातोंको तो मैं आपके विश्वासकी रक्षाके लिये उन्हें नहीं कहूँ–ऐसा ध्यान रखूँगा । परन्तु मैं आपसे यही विनीत प्रार्थना करता हूँ कि मैं श्रीभाईजीसे जो भी मेरी जानकारी है उनके द्वारा पूछे जाने पर कभी भी बतला सकता हूँ । या तो मुझे आप श्रीभाईजीको जो कुछ मुझे आप कहते हैं–वह कहनेकी छूट दे दें और यदि यह छूट नहीं दे पावें तो मुझे ऐसी बातें कहें ही नहीं । मैं आपको यह बात स्पष्टतया पूर्वतः ही कह देना उचित समझता हूँ ।

जहाँतक दोषोंको हटानेकी बात है, आप विश्वास पूर्वक भगवान्‌से सच्चे मनसे प्रार्थना कीजिये–'मेरे नाथ ! यदि आप मुझे इसी गिरी अवस्थामें देखना पसंद करते हैं, इस प्रकारसे निरन्तर मेरे मनमें अशान्ति बनी रहने देनेमें ही आपका चित्त प्रसन्न होता है–बार–बार मेरे सामने आप आते हैं और आपका मैं तिरस्कार कर देता हूँ, यदि इसी घृणित अवस्थामें मुझे रखकर आप प्रसन्नताका अनुभव करते हैं तो फिर अपनी इच्छा पूर्ण करते रहो, नाथ ! क्योंकि आप यदि ऐसा चाहते हैं तो इसीमें मेरा परम मंगल है। पर यदि ये सब दोष मेरी कमीके कारण होते हों–मेरी

तत्परताकी कमीके कारण, मेरे अविश्वासके कारण होते हों तो प्रभो ! अब बहुत हो चुका । नाथ! अब कृपा करके इसी क्षण इन्हें मिटा दो । मैं अबोध हूँ, अज्ञानी हूँ,पतित हूँ, मुझे पता नहीं कि मेरे मनमें ये दोष किस कारणसे आते हैं । इनके मिटानेका उपाय तो सुनता हूँ, पर उसका आचरण मुझसे नहीं होता। क्यों नहीं होता, इसका कारण भी मैं नहीं जानता। अतएव हे दयाके सागर ! अब मेरी ओर निहारो और फिर जो उचित हो, करो । शान्ति यदि मेरी कमीके कारण मुझे नहीं मिल रही है तो फिर मेरी कमीको मिटा दो, इसी क्षण मिटा दो और यदि तुम्हारी इच्छासे शान्ति नहीं मिल रही हो, तब तो मुझे कुछ कहना है ही नहीं, यह अशान्ति ही मेरा परम प्रिय धन है–मैं ऐसा अनुभव करने लगूँ, क्योंकि तुम मेरे स्वामी हो, तुम्हारा मुझपर पूर्ण अधिकार है । मैं तुम्हारी वस्तु हूँ, तुम जैसे रखना चाहो, वैसे ही रक्खो ।"

यह है प्रेम मिश्रित भावकी प्रार्थना । यह नहीं हो और शान्ति चाहिये – जैसे भी हो, शान्ति मिलनी चाहिये तो फिर यह कामना सीधे शब्दोंमें करके यही माँगना चाहिये कि "हे नाथ ! मुझे शान्ति चाहिये, शान्ति दो ।" शान्ति पानेके लिये मैं तो सर्वोत्तम उपाय यही जानता हूँ। मैं स्वयं भी यही उपाय करता हूँ । वही मैंने आपको भी बतला दिया ।

यदि आप कहें कि मुझे तो भगवान् पर विश्वास ही नहीं है, मैं कैसे सच्चे मनसे प्रार्थना कर पाऊँगा, तो यह भी उन्हींसे कहिये । उन्हींसे पूछिये–"नाथ! कहाँसे विश्वास लाऊँ ? पैसेसे खरीदनेकी चीज तो यह है नहीं। तुम कह सकते हो, उपाय बतलाता हूँ, उसे करो। पर नाथ ! उपाय, पता नहीं, क्यों मुझसे नहीं होते । सुन लेता हूँ, यत्किंचित् करनेकी भी चेष्टा करता हूँ, पर वे मुझसे हो नहीं पाते, ठीक मौकेपर मैं फेल हो जाता हूँ , अब तुम्ही बताओ, नाथ ! क्या करूँ ? यदि तुम कहो कि काम, क्रोध, लोभको मेरे बलपर डाँटो तो नाथ ! मेरा आपके बलपर यथार्थ विश्वास ही नहीं होता। क्या करूँ ?"

सोचकर देखिये, हृदयकी बात किससे कहें ? कौन ऐसा है, जो सर्व–समर्थ है और हमारी सहायता कर सकता है ? तो यही उत्तर मिलेगा–एकमात्र प्रभु ही ऐसे हैं । उनमें शक्तिकी कमी नहीं । वे हमारे मित्र भी हैं तथा उन्हें हमारी इस घृणित दशाका पूरा–पूरा पता भी है । फिर उनको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ ? सूरदासने गाया है–"तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?" काम, क्रोध, लोभसे तंग आकर कहिये–काम, क्रोध, लोभ–ये तीनों, क्या नाथ ! आपसे अधिक शक्तिशाली हैं ? नहीं हैं । आपको यह पता भी है कि इसको ये तंग करते हैं । आप मेरे मित्र भी हैं तथा आपमें इन्हें मार डालनेकी शक्ति भी है–फिर मेरी ऐसी घृणित दशा

क्यों है ? मैं नहीं जानता, आप ही जानें । सार बात यह है कि किसी प्रकार भगवान्‌से जुड़िये, चाहे सकाम भावसे ही सही।

सभी दुःख–मूलक समस्याएँ हमें मात्र इसीलिये घेरे हैं कि हमें न तो भगवान्‌पर विश्वास है और न ही हम उनसे जुड़े हैं । निष्काम–सकाम भावकी बातें ऊँचे भक्तोंके लिये हैं । नरकमें पड़े प्राणीको तो पहले नारकीय गतिसे त्राण चाहिये । अतः भगवान्‌की सत्ता पर, उनके हमारे प्रति असीम सौहार्द पर, उनकी अनन्त शक्ति पर विश्वास करिये और निरन्तर उनकी ओर देखना प्रारंभ करिये ।

श्रीशिवभगवानजी ! आप अपनी दयनीय दशा मुझे इसी प्रेम भरे विश्वाससे कहते हैं कि संभव है मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ । परन्तु मैं तो आपकी ही तरह निर्बल जीव हूँ । हाँ ! मेरे विश्वासानुसार श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} चाहें तो आपकी सम्पूर्ण अशान्ति एक क्षणमें ही मिटा सकते हैं । परन्तु पहले तो आपकी उनपर श्रद्धा हो ही, यह मेरे वशकी बात नहीं । दूसरे वे करना चाहें, नहीं चाहें, इस पर भी मेरा वश नहीं । परन्तु यह तो परम सत्य है कि श्रीभाईजी {हनुमानप्रसादजी पोद्दार} भगवानकी ही शक्तिके अंशको पाकर सिद्ध–सन्त हैं । अतः हम भगवान्‌के रहते, भगवान्‌के दानसे दानी बने, किसी भी व्यक्तिसे चाहे वह सिद्ध सन्त ही हो क्यों आशा करें। संत भगवान्‌के यंत्र होते हैं । उनका स्वतन्त्र मन नहीं होता । वे भगवान्‌के मनसे ही मनवाले होते हैं । भगवान्‌को कृपा करनी होती है, तो सन्त भी पिघलते हैं अन्यथा सन्त भी अनसुनी कर देते हैं, बेरुखी दिखा देते हैं । अतः आप तो भगवान्‌का ही कसकर पल्ला पकड़िये । यही एकमात्र उपाय है।

और क्या कहूँ । आपकी सभी बातोंको भगवान्‌को समर्पित करके उनकी हृदयमें जैसी प्रेरणा हुई, उसके अनुसार उत्तर दे दिया है। मेरी तो आपसे एक ही प्रार्थना है कि प्रेम बनाये रखें ।

राधा राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–१९

प्रेम–प्राप्तिके लिये परमावश्यक सात साधनायें

१५ जुलाई १९४१ ई०

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मैं भगवान श्रीकृष्णकी महिमा पर कुछ कहूँ । उनकी महिमा सुननेसे आपका मन उन पर विश्वास करने लगे–यह आपकी बात मुझे समुचित लगी। आप गीताप्रेससे निकले भक्त–चरित्र पढ़िये । इन भक्त चरित्रोंमें आपको पर्याप्त भगवान्‌की महिमा मिलेगी ।

वैसे पद्मपुराण पातालखण्ड का एक प्रसंग मैं उल्लेख कर दे रहा हूँ–

"एक बार भगवान् शंकरजीसे भगवती पार्वतीजीने पूछा – "प्रभो! मुझे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा बताइये ।" भगवान् शंकरजीने कहा – "देवी ! जिनके चरण–नखकी महिमाका वर्णन भी असम्भव है, उसकी स्वयंकी महिमा मैं क्या और कैसे बताऊँ ?" फिर कुछ सोचकर बोले–"अच्छा सुनो ।"

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक ब्रह्मा, एक विष्णु और एक मैं–शंकर रहते हैं। हम तीनोंके तीनों उन श्रीकृष्णकी कलाके करोड़वें अंशसे उत्पन्न होते हैं । इतने तो वे प्रभावशाली हैं । प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक कामदेव रहता है । वह इतना सुन्दर है कि समस्त ब्रह्माण्डको मोहित किये रहता है। पर उसमें जो सुन्दरता है, वह श्रीकृष्णकी सुन्दरताका करोड़वाँ–करोड़वाँ अंश है । वे इतने सुन्दर हैं । उनके शरीरसे इतना तेज, इतनी चमक निकलती है कि प्रत्येक ब्रह्माण्डमें जितने सूर्य हैं, सब–के–सब उस चमकके करोड़वें अंशसे प्रकाशित होते हैं । उनमें श्रीकृष्ण अंग–प्रभाके करोड़वें अंशसे प्रकाश आता है । जगत्‌में जितनी मनको मोहने वाली सुगन्धियाँ हैं, सुगन्धित फूल हैं, सबमें श्रीकृष्णके अंग–गन्धके करोड़वें अंशसे गन्ध आती है और बहुत–सी बातें बतायी हैं–वे सब कविकी कल्पना नहीं, ध्रुव सत्य हैं

तथा सचमुच ही किसीको श्रीकृष्णके ऐश्वर्य–सौन्दर्य–माधुर्यपर विश्वास हो जाय तो फिर उसको जीवनमें केवल श्रीकृष्णकी ही चाह रहेगी, बाकी चाहें सब मिट जायेंगी।"

शिवभगवानजी ! आप निम्न सात बातोंके लिये प्राणोंकी बाजी लगाकर चेष्टा कीजिये ।

प्रेम उत्पन्न होनेके पहिले ये सात बातें अवश्य हो जाती हैं, तब प्रेम प्रकट होता है । नहीं तो, आप हों या कोई हो, रास्ता तय करना बड़ा कठिन है ।

प्रेम न बाड़ी नीपजै प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय ।।

यह बिल्कुल सत्य है । बहुत बात कर लेंगे, लीला भी सुन लेंगे, लाभ भी थोड़ा होगा ही, पर इन सात बातोंके आये बिना वास्तविक प्रेम प्रकट ही नहीं होता । यह ठीक है कि पूर्णरूपसे ये सात बातें तो तभी होती हैं, जब भगवान्‌का **साक्षात्कार हो जाता है, पर उसके पहले** साधकको चाहिये कि वह इनको अपने अंदर **पूरी--पूरी उतारनेके लिये सम्पूर्ण** प्रयत्न करे । वे बातें ये हैं –

(१) अखण्ड शान्ति बनाये रखना–इसके लिये शास्त्रमें दृष्टान्त आता है कि **राजा परीक्षित् बिना अन्न–जलके सात** दिन कथा सुनते रहे, पर उनमें शान्ति इतनी थी कि अन्न–जल उन्हें याद ही नहीं आता था ।

(२) भगवान्‌के भजनके सिवा और किसी काममें समय बिल्कुल नहीं लगाना।

(३) संसारके समस्त भोगोंसे ऐसा वैराग्य हो जाय कि ये विष्ठासे दीखने लग जायें । जिस प्रकार विष्ठाको देखकर घृणा होने लगती है, मुँह–नाक बंद करके हम चलते हैं कि कहीं दुर्गन्ध न आ जाय, ठीक उसी प्रकार समस्त भोगोंसे आन्तरिक घृणा हो जाय ।

(४) मनमें अपने अंदर मानका बिल्कुल भाव ही न रहे । शास्त्रोंमें दृष्टान्त आता है कि राजा भरत जब प्रेमके लिये व्याकुल हुए तब वे इतने अधिक मानशून्य हो गये थे कि राज्य करते समय जिन–जिन राजाओं पर विजय प्राप्त की थी, जिन–जिनसे उनकी शत्रुता थी, उन्हींके घरमें जाते थे और उनकी दी हुई रोटीके टुकड़े माँग–माँगकर पेट भरते हुए भजन करते थे–और अपने शत्रुको ही नहीं, चाण्डालतकको प्रणाम करते थे ।

(५) दिन–रात मनमें यह विश्वास, यह भरोसा बढ़ता रहे कि मुझे श्रीकृष्ण अवश्य–अवश्य मिलेंगे । यह विश्वास मनसे एक क्षणके लिये भी दूर न हो ।

(६) निरन्तर नामका गान अतिशय प्रेमसे हो, भाररूपसे नहीं–मालाकी संख्या पूरी करनेके लिये नहीं, बल्कि नाम इतना प्यारा लगे कि प्राण भले छूट

जायें, पर नाम नहीं छूटे ।

(७) जहाँ–जहाँ भगवान्‌की लीलाएँ हुई हैं, उन–उन स्थानों के प्रति अतिशय प्रेम हो ।

ये सात बातें तो धारण करनेकी हैं और चार बातें विघ्नरूप हैं, जिनसे बचनेकी चेष्टा प्राणोंकी बाजी लगाकर करनी चाहिये । ये चार बातें ही प्रेमकी प्राप्तिमें बाधक होती हैं । जहाँ ये छूटीं कि बस, प्रेमका रास्ता बड़ी शीघ्रतासे तय होने लगता है । इनको शास्त्रमें 'अनर्थ' कहते हैं, जो असलमें भगवान्‌से हटाते रहते हैं । वे चार ये हैं –

(१) दुष्कृतजात अनर्थ – अर्थात् पूर्वजीवनमें तथा इस जीवनमें जो–जो बुरे कर्म किये हैं, उनके संस्कार मनपर जमा रहते है और वे बार–बार बुरे कर्मोंकी स्फुरणा कराकर साधकको बुराईकी ओर घसीट ले जाते हैं। अतः पहले जो हो चुके उनके लिये तो क्या किया जाय, पर अब यह पूरा ध्यान रखना चाहिये कि बुरे कर्म हमारे द्वारा भूलसे भी, कभी भी न हों। झूठ–कपट आदि सभी बुरे कर्मोंके मार्गसे हम बहुत दूर हट जायें ।

(२) सुकृतजात अनर्थ – आपने जो पूर्वजीवनमें एवं इस जीवनमें पुण्य किये हैं, उनके फल आकर बाधा डालते हैं–जैसे पुण्यके फलसे आपको धन–मान प्राप्त हो गया है, जो आपके मार्गमें बाधा दे रहा है । इससे बचनेका उपाय यह है कि सच्चे मनसे भगवान्‌को अपने सब पुण्य समर्पण कर दिये जायँ तथा भीतरी हृदयसे उनका फल नहीं चाहा जाय ।

(३) अपराधजात अनर्थ – दस प्रकारके नामापराध एवं चौसठ प्रकारके सेवापराधोंसे, जहाँतक हो बचना चाहिये । ये इतने भयानक दोष हैं कि बहुत ऊँचे उठे हुए साधकोंको भी नीचे गिरा देते हैं । इनसे बचनेका उपाय है–सच्चे मनसे भगवान्‌से प्रार्थना करना कि 'हे नाथ ! मुझे अपराधोंसे बचाओ' तथा जान–बूझकर कभी अपराध न करनेकी पूरी चेष्टा करना । अबतक बहुत अपराध हो चुके हैं और अब भी होते हैं, इसीलिये रास्ता रुक रहा है ।

(४) भक्तिजात अनर्थ – यह विघ्न आपको कम सतायेगा । यह हमारे–जैसे सन्यासी तथा साधकोंको बहुत तंग करता है । यह है भक्ति करके उसके द्वारा सम्मान–बड़ाई, पूजा–प्रतिष्ठा चाहना । इससे भी मार्ग रुक जाता है।

इन चारों अनर्थोंसे बचते हुए उपर्युक्त सातों बातोंको धारण करनेकी चेष्टा करें । खुशामदकी बात दूसरी है, पर सच बात तो यह है कि रास्ता तय करना हो तो फिर ये काम अवश्य कीजिये । मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मैं आपसे जो बातें कहूँगा, उनसे मेरा तो लाभ ही होगा । पर आपका रास्ता मेरी समझसे तो

तभी तय होगा, जब आप कमर कसकर चलनेकेलिये तैयार हो जायेंगे।

धन, स्त्री, शरीरका अभिमान रत्ती–रत्ती चूर हुए बिना रास्ता नहीं कटेगा। खूब तेजीसे चलिये, नहीं तो मर जाइयेगा । मरते समय चित्तकी वृत्ति जहाँ रहेगी, वहीं आप चले जायँगे । मकान, रुपया, धन, परिवार, मान–बड़ाई, सब–के–सब या तो आपको पहले ही छोड़ देंगे या आप इनको छोड़कर चले जायँगे । विष्ठा–मूत्रसे भरा हुआ यह शरीर मिट्टीमें मिल जायगा । इसे जानवर खा जायँगे तो यह विष्ठा बन जायगा । जलाया जायगा तो इसकी राख हो जायगी और गाड़ दिया गया तो सड़कर कीड़ोंके रूपमें परिणत हो जायगा । इसके आरामकी तथा विलासकी चिन्ता छोड़िये।

ये बातें केवल सुननेकी नहीं हैं, करनेसे होगा, बड़ी तत्परतासे करनेपर होगा । नहीं तो सुनते रहिये–न शान्ति मिलेगी, न दुःख मिटेगा । प्रेम तो कहाँसे मिलेगा !

आप नित्य ये सब बात सुनते हैं, फिर भी आपकी रुपये एवं परिवारकी ममता तथा अभिमान नहीं मिटते । इसका अर्थ यह है कि अभी आप रास्तेपर चलनेकेलिये तैयार नहीं हैं । यदि प्रत्येक बार आप मनको दण्ड देने लगें तो फिर यह मन सीधा हो जाय ।

असल बात है–सच्ची तीव्र–से–तीव्र लालसाका होना । यह हुई कि उसी क्षण सारा नक्शा पलट जायगा । अभी चाह है, पर मन्द–से–मन्द है। जितनी परवाह संसारकी वस्तुओंके लिये है, भगवान्‌के लिये उतनी भी नहीं है। आप कुछ भी करें–देखें, श्रीकृष्णसे छिपा तो कुछ है नहीं, वे सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वसमर्थ हैं और उनमें अपार करुणा भी है । फिर आप उनके सामने रोते क्यों नहीं, रोना क्यों नहीं आता ?....का लड़का बीमार था । मनमें कितनी व्याकुलता थी, रात–दिन मस्तिष्कमें एक ही बात थी । 'हे राम ! लड़का ठीक हो जाय ।' रोना सीखना नहीं पड़ता था । अपने–आप रोना आता था। जिस दिन जीवन श्रीकृष्ण–प्रेमके बिना सूना दीखेगा, उनका वियोग असह्य हो जायगा, उस दिन रोना स्वयं अपने–आप आने लग जायगा। वैसी लालसा ही नहीं है । इसीलिये न तो रोना आता है और न उतनी परवाह ही होती है । बिल्कुल ठीक मानिये–घर, धन, परिवार, पुत्र–सभी फिर, इतने फीके लगने लगेंगे कि मानो इनसे कैसे हमारा पिण्ड छूट जाय । पर अभी तो आप स्वयं इच्छा करके मन चलाकर इनको पकड़ते हैं । इसका अर्थ यही है कि आपको उनकी लालसा नहीं है, और जब लालसा ही नहीं है, तब फिर कहाँसे लायें ! मोल तो वह मिलती नहीं । इसके लिये संतलोग अपने अनुभवसे यह कहते हैं कि 'मलिन अन्तःकरणमें यह लालसा उत्पन्न ही नहीं होती।'

हमारा अन्तःकरण मलिन है, इसीलिये यह लालसा उत्पन्न नहीं हो रही है । जिस क्षण यह लालसा उत्पन्न हुई कि उसी क्षण भगवान् में भी लालसा उत्पन्न हो जायगी । .अतः अन्तःकरणको निर्मल बनानेकी चेष्टा ही कर्तव्य होता है, पर हमारा अन्तःकरण निर्मल हो, यह लालसा भी तीव्र नहीं है, क्योंकि उसके जो उपाय हैं, उनका आचरण जब हमसे नहीं होता, तब कैसे कहा जाय कि हम चाहते हैं कि हमारा अन्तःकरण निर्मल हो। फिर भीं संतलोग तथा शास्त्र कहते हैं कि 'घबराओ मत । यदि एक बार भी भगवान्की ओर झूठी–मूठी प्रवृत्ति भी तुम्हारी हो गयी है तो फिर तुम भले ही भगवान्को छोड़ दो, भगवान् तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ेंगे ।'

शिवभगवानजी ! यह नितान्त सत्य है कि अब भगवान् आपका कल्याण तो करेंगे ही, परन्तु यदि आप अच्छे बच्चेकी तरह शास्त्र और सन्तोंका कहना मानते हुए शुभ आचरण एवं भजन करेंगे तो आपकी राह सुखपूर्वक कटेगी, अन्यथा भगवान् आपको सुधारनेकेलिये दुःख रूपी दण्ड– बिधान कर देंगे, अशान्तिकी चाबुक लगायेंगे । तब आपको रोते हुए, बिलख–बिलख कर सीधे रास्ते आना ही पड़ेगा । अन्य तो आपकी गति हो ही नहीं सकती । यह निश्चय ही सत्य मान लीजिये ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२०

मात्र भगवान्‌का एक नाम लेनेसे ही जीव तर जाता है

रतनगढ़
ता. ३ अगस्त १९४१ ई.

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । मैने पूरे मनोयोगसे उसे दो–तीन बार पढ़ा है।

आपको विश्वास करा देना तो कठिन है, पर एक बिल्कुल सच्ची बात आपको बतला रहा हूँ । बहुत ही मर्मकी बात है कि कैसे एक नाम लेनेसे ही मनुष्य तर जाता है । भगवान्‌में नाम–नामी, देह–देहीका भेद नहीं है । जो इस बातको मान लेता है, उसको समझानेका तरीका तो दूसरा है, पर जो यह नहीं मानता, उसके लिये दूसरा तरीका है । अवश्य ही उसे शास्त्र एवं भगवद्वचनोंपर कुछ–न–कुछ विश्वास तो होना ही चाहिये । नहीं तो, फिर नास्तिकको समझाना तो बड़ा ही कठिन है । भगवान् कहते हैं –

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

अब इसके अनेक अर्थ होते हैं । एक यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि 'जो मेरा नाम निरन्तर लेगा, उसका नाम मैं निरन्तर लूँगा ।' अच्छी बात है–नाथ ! मुझसे निरन्तर नाम नहीं लिया जाता, मैंने जीवन भरमें एक बार आपका नाम लिया हैं तो एक बार बदलेमें आपने भी मेरा नाम लिया होगा। अब यदि यह प्रश्न होता है कि तुमने मनसे नहीं लिया था, वाणीसे यों ही निकल गया था, तो ठीक है, आपने भी बदलेमें एक बार वाणीसे ही मेरा नाम लिया होगा, पर नाथ! आपमें मेरी तरह वाणी और मनका भेद तो है नहीं । (भगवान् की वाणी और मन एक हैं) आप मेरे नाम लेनेके बदलेमें केवल वाणीसे भी मेरा नाम लेते हैं, तो मेरा निश्चय ही उद्धार हो गया ।

अब असल बात भी यही है । जिस क्षण हमारे मुखसे एक नाम निकलता

है, उसी क्षण भगवान्‌की सारी कृपा हम पर प्रकट होनेके लिये विधान बन जाता है, परंतु वह कृपा जब तक प्रकट नहीं होती, तभी तक इधर–उधर भटकना जारी रहता है । यदि किसी प्रकार भगवान् या किसी सच्चे संतके प्रति सच्चे हृदयसे अत्यन्त कातर प्रार्थना हो जाय तो उसी क्षण इस बातपर उसे विश्वास हो जाता है और उसकी सारी अशान्ति मिट जाती है, परंतु यह प्रार्थना होती नहीं । हो तो, देखियेगा–सचमुच भगवान् इतने करुणामय हैं, उनका हृदय इतनी जल्दी पिघल जाता है कि जगत्‌में उसकी तुलना ही असम्भव है । जो चाहियेगा, जैसे चाहियेगा वही उसी प्रकार वे कर सकते हैं । यह नियम केवल लौकिक बातोंमें ही नहीं, परमार्थमें भी यही नियम है । मान लें, कि आप प्रार्थना करें कि 'हे भगवान् ! मुझे धन दो, मान दो ।' इस प्रार्थनाको वे जैसे जल्दी–से–जल्दी सुन सकते हैं, पूरी कर सकते हैं, वैसे ही उतनी ही जल्दीसे जल्दी 'हे भगवान् ! मेरा आपमें दृढ़ विश्वास हो जाय, आपमें मेरा प्रेम हो जाय' इस प्रार्थनाको भी सुन सकते हैं, पूरी कर सकते हैं । पर धनके माँगनेके समय तो आपका हृदय ठीक–ठीक उस धनको भीतरी हृदयसे माँगता है, और विश्वास, प्रेम माँगते समय ऊपरी मनसे मात्र–नियम पूरा करता है । पूजापर बैठकर यह भी एक नियम है–कर लेते हैं, पर सचमुच वह व्याकुलता नहीं होती ।..... के लड़केकी बीमारीको लेकर जैसी व्याकुलता थी, क्या उन लोगोंमें कोई भी उतना ही व्याकुल होकर यह चाहते हैं कि 'हमारा मन भगवान्‌में लगे, भगवान्‌पर हमारा विश्वास हो ।' विश्वासकी अपेक्षा भी हृदयकी व्याकुलताकी अधिक आवंश्यकता है; क्योंकि व्याकुलता विश्वास करा देगी । अब उस लड़केकी बीमारीमें जो आदमी जो उपाय बतलाता था, वही वे करते थे । विचार भी नहीं रहा था कि यह ठीक कहता है या झूठ । ऐसा इसीलिये था कि व्याकुलता थी । उसी प्रकार जिस दिन आप सच्चे मनसे चाहने लगेंगे, व्याकुल हो जायँगे कि हमारी साधनाकी वैसी स्थिति एक घंटे ही रहकर क्यों छूट जाती हैं, क्यों नहीं निरन्तर बनी रहती है, उसी दिन, उसी क्षण भगवान् सुन लेंगे । अभी आपको यह सहन हो रहा है कि स्मरण छूट गया तो क्या हुआ । दिनभर मौजसे रहे, भोजन किया, साँझको यहाँ आ गये, बातें कर रहे हैं । पर जब व्याकुलता होगी तब पागलकी–सी अवस्था होकर स्मरणकी स्थिति छूटते ही उसी क्षण, वहींपर लाज–शरम छोड़कर आप रोने लगियेगा और जबतक वह पुनः स्थिति नहीं हो जायगी, तबतक आपका रोना बंद नहीं होगा।

जो हो, ऐसी सच्ची व्याकुलताका उपाय यही है जो आप कर रहे हैं । निरन्तर अपनी जानमें यही चेष्टा रखें कि नाम–लीला–गुण–रूप सुनें, पढ़ें, कहें, स्मरण रखें । करते–करते जैसे–जैसे अन्तःकरण पवित्र होगा, वैसे–वैसे, व्याकुलता

उत्पन्न होनेकी, सच्ची लालसा उत्पन्न होनेकी भूमि तैयार होती जायगी । जिस दिन पूर्ण–रूपसे वह भूमि तैयार हो गयी कि कोई सच्चा संत या स्वयं भगवान् उसमें प्रेमके बीज बो देंगे । फिर वह उगेगा, बढ़ेगा, फूलेगा, फलेगा और निरन्तर फूलता–फलता ही रहेगा, उसका कभी फूलना–फलना बंद नहीं होगा ।

श्रीशिवभगवानजी, प्रभु जो प्रेरणा देते हैं, वह निष्कपट भावसे आपके प्रेम–वश आपके सम्मुख निवेदित करदेता हूँ । आपको मेरी बातें लाभकी, दामी समझमें आवें तो स्वीकार कर लें, अन्यथा मेरे पत्र रद्दीकी टोकरीमें डाल दें ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।

पत्र संख्या–२१

असली सन्तोंकी पहचान

रतनगढ़

ता० १२/८/१९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी !

सादर सस्नेह श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ! देखिये ! भगवान्‌का कहीं अभाव नहीं है। जिस कलमसे आप मुझे पत्र लिखते हैं, उस कलममें भी पूर्ण भगवान् हैं । और जहाँ भगवान हैं, वहीं उनकी आजतक जितनी लीला हुई है, हो रही है, एवं होगी, सबकी सब नित्य मौजूद हैं ।

आप जिस लीलाको देखना चाहें, जिस रूपको देखना चाहें, उसी रूपमें, उस लीलाके साथ इसी कलमसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं । यह बात नहीं है कि भगवान्‌के यहाँ भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल हो । वहाँ तो सब वर्तमानकाल ही है । अर्थात् जैसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनमें लीला हुई थी तो इसका यह मतलब नहीं कि वह लीला तो भूतकालकी है । इसका अर्थ यह है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनकी लीलावाली फिल्म लोगोंके सामने आयी थी । वह फिल्म तो आज भी ज्यों–की–त्यों है, केवल छिप गयी है । सिनेमा देखते हैं, वह आरम्भसे लेकर अन्ततकका खेल सजाया हुआ होता है । उसी प्रकार भगवान्‌के विराट् दिव्य शरीरमें अनादिकालसे लेकर अनन्तकाल तक होने वाली सभी लीलाएँ सजायी हुई हैं । अर्जुनने चाहा विश्वरूप देखना, उसके सामने उसके अधिकार भरका आया ।

चाह सच्ची होनी चाहिये। फिर तो पहले–से–पहले भगवान् मामूली–से–मामूली बात भी करके रख देते हैं । मनमें विचार तो पीछे आयेगा, पर भगवान् जानते हैं कि यह उस दिन उस समय यह चीज चाहेगा तथा पहलेसे ही उसकी पूरी व्यवस्था करके रख देते हैं । एक मामूली–सी बात बतला रहा हूँ–मैं. . . . . था, दिनमें किसी कारणसे भोजन कम किया था, इसीलिये जोरसे भूख लग रही थी । मनमें बार–बार भूखका ख्याल आता था। मनमें आया कहीं–से कोई वृन्दावनका प्रसाद लाकर देता तो थोड़ा खा लेता–खानेकी तीव्र इच्छा थी । वहाँसे सत्संगमें आया । आते ही एक आदमीने वृन्दावनका प्रसाद देना आरम्भ किया । मैं तो चकित रह गया ! क्योंकि मेरे पेटकी बात किसीको मालूम थी ही नहीं । सुना कि मोहनलालजी वृन्दावनसे आये है और प्रसाद ले

आये हैं ।

आपने ब्रजभावकी बात पूछी सो पहले तो ब्रजभावके अधिकारी ही बहुत बिरले होते हैं, फिर व्रजके मधुर भावके वास्तविक अधिकारी तो बहुत कम ही होते हैं । जिसके लिये गीता कही गयी, जिस गीताके जोड़का ग्रन्थ मिलना कठिन है, उसी अर्जुनने एक बार भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की–'प्रभो! आप गोपसुन्दरियोंके साथ होनेवाली अपनी लीलाकी बात हमें बतायें ।' भगवान् नट गये और बोले–उसे सुनकर तुम्हें देखनेकी इच्छा हो जायगी, इसीलिये इस बातको जाने दो।' अर्जुन व्याकुल होकर चरणोंमें गिर पड़े । इसपर श्रीकृष्णने कहा–'उसके लिये तो साधना करनी पड़ेगी । तुम्हें त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनी पड़ेगी । वे यदि प्रसन्न होकर तुम्हें दिखाना चाहेंगी, तभी देख सकते हो। दूसरा उपाय नहीं ।' कथा पद्मपुराणमें विस्तारसे है– अर्जुन गये हैं वहाँ देवीने स्पष्ट कहा है कि 'अर्जुन ! जो भक्त श्रीकृष्णको प्राणके समान प्यारे हैं, उनमें भी सबको इस लीलाके दर्शन नहीं होते । कोई–कोई विरले ऐसे भक्त होते हैं, जिन पर श्रीकृष्ण यह कृपा कर देते हैं । तुम धन्य हो, जो तुम पर उन्होंने कृपाकी है और उस लीलाके दर्शनके लिये तुम्हें मेरे पास भेजा है ।' इसके बाद अर्जुनने बड़ी–बड़ी साधना, जैसे देवीने बतायी, की है, और फिर जब वे गोपी बन गये हैं, तब श्रीराधाजी आकर उन्हें श्रीकृष्णके उस परम दिव्यधाममें जिसके परे और कुछ भी नहीं है, ले गयी हैं और वहाँका आनन्द पाकर अर्जुन कृतार्थ हुए हैं। जो अर्जुन दिन–रात भगवान्‌के साथ खाते–पीते, बैठते थे, जिन्हें गीताका ज्ञान हो गया था, उनकी यह हालत है । हमारे–जैसे तुच्छ पामर प्राणी तो इस लीलाके कहनेके भी अधिकारी नहीं हैं ।

एक रत्नावती देवी थी । यह आमेर (जयपुर) की रानी थी, उसको मारनेके लिये सिंह छोड़ा गया । सिंह महलमें गया, वह ध्यानस्थ बैठी थी । सिंह पहुँचा । वह बोली–'आइये, प्रह्लादके भगवान् ! बड़ी कृपा की।' थाल लिया, प्रसाद सजाया, आरती सजायी । सिंह चुपचाप पूजा ग्रहण करता रहा। धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करके एवं विधिपूर्वक आरती उतारकर रत्नावतीने प्रणाम किया। फिर सिंह वहाँसे उछला तथा पिंजरेमें घुसनेसे पहले दो–तीन पहरेदारोंको खा गया । सिंह तो एक ही था, पर उसने रत्नावतीकी पूजा स्वीकार की और पहरेदारोंको मार डाला । ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिये कि रत्नावतीका तो सच्चा भगवान्‌का भाव था और पहरेदार सिंहको सिंह मान रहे थे।

ऐसे ही प्रत्येक चोर, बदमाश, डाकू भी भगवान् बन सकता है । लाला बलदेवसिंह नामके एक सज्जन देहरादूनमें थे । उनको मरे कई वर्ष हो

गये। भगवान्‌के बड़े भक्त थे, असली भक्त थे । बहुत रुपयेवाले थे । एक दिन डाकुओंने नोटिस दी कि 'आज रात्रिको हम लोग लूटने आयेंगे । आप तैयार हो जाइये ।' यही नोटिस उनके भतीजेको भी मिला । भतीजे तो पुलिस सुपरिंटेंडेंटके पास गये तथा बलदेवसिंहने रसोइयोंको कहा कि 'खूब बढ़िया–बढ़िया माल बनाओ । आज भगवान्‌के पधारनेकी बात है ।' भतीजेसाहब आये । बोले–'चाचाजी! क्या इन्तजाम किया ?' बलदेवसिंहजीने कहा–'खूब बढ़िया–बढ़िया रसोई बनवा रहे हैं उनके स्वागतके लिये ।' भतीजेसाहब तो पागल समझकर चले गये । उनके घरपर पुलिसका पहरा बैठा और बलदेवसिंह सचमुच बहुत बढ़िया–बढ़िया बहुतसे आदमियोंके खानेभरकी बहुतसी रसोई बनवाकर रातभर प्रतीक्षा करते रहे कि अब आयें, तब आयें । स्वयं भी नहीं खाया । आखिर कुछ हुआ नहीं, पर यदि होता भी तो उनके घर तो डाकू नहीं आते, भगवान् ही आते।

भगवत्प्राप्ति बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है । बाघ, सिंह, हिरन, बकरीको साथ बैठा देनेसे यह नहीं माना जा सकता कि ऐसा कर देनेवाले भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुष हैं, क्योंकि ये बातें तो बहुत ही तुच्छ एवं नीचे दर्जेकी ही हैं । सर्कसवाले भी पशुओंको शिक्षण देकर वशमें कर लेते हैं। भगवत्प्राप्ति असलमें क्या चीज है, इसे भगवत्प्राप्त पुरुष ही जानते हैं । संसारी मनुष्य तो देखता है कि किसमें क्या चमत्कार है, पर चमत्कार होना भगवत्प्राप्तिका लक्षण नहीं है। दक्षिणमें एक संत हुए थे ज्ञानदेवजी । उन्हींके समय एक योगी थे चाँगदेव। वे सिंहपर सवारी करते थे । १४०० वर्षकी उनकी आयु थी । प्रत्येक १०० वर्ष पर जब मृत्युका समय आता, तब योगबलसे समाधिमें बैठ जाते और फिर १०० वर्षके लिये नया जीवन बना लेते । इतनी शक्ति थी ! ज्ञानदेवजी तीन भाई थे तथा एक उनके बहन थी, सभी भगवत्प्राप्त पुरुष थे । चाँगदेवके पास उनकी खबर पहुँची, बहुत लोग उनकी प्रशंसा करते । चाँगदेवजीको अभिमान था । सिंह पर चढ़कर मिलने चले । लोग तो बाहरको देखते हैं । बाप रे! कितना बड़ा महात्मा है कि सिंह पर सवारी करता है । लोगोंने कहा– 'ज्ञानदेवजी महाराज ! एक बहुत बड़े महात्मा आपसे मिलने आ रहे हैं, आप चलिये ।' ज्ञानदेवजीके मनमें आया कि 'अच्छा, देखें ।' उस समय तीनों भाई–बहन एक टूटी हुई दीवालपर बैठे थे, भगवत्–चर्चा हो रही थी । जब लोगोंने बहुत कहा–'महाराज ! बहुत भारी महात्मा आ रहे हैं, अगवानीके लिये चले चलिये ।' तब ज्ञानदेवजीने कहा–'ठीक है ।' फिर दीवालसे बोले––'री दीवाल ! तू चल।' कहनेकी देर थी कि वह दीवाल जमीनसे उखड़कर चल पड़ी। चाँगदेवने देखा––बाप रे ! आजतक योगके द्वारा मैं चेतन प्राणीको ही वशमें करके इच्छानुसार नचा सकता था, पर यह तो जड़पर शासन

करता है । उसी क्षण अभिमान टूट गया और चरणोंमें जा गिरे । उसी समय ६४ (अभंग) छन्दोंमें उन्हें ज्ञानदेवजीने उपदेश दिया तथा रामनामकी महिमा बतायी कि भगवान्‌के नामके सामने ये सभी बातें तुच्छ हैं । फिर उनकी छोटी बहिनने उन्हें दीक्षा दी, तब उन्हें भगवान्‌की प्राप्ति हुई ।

असली संतोंकी पहचान किसी बाहरी चेष्टासे नहीं हो सकती । एक साँईबाबा थे । उनको लोग रजाई ओढ़ा देते । साथमें कुत्ता आता, वे रजाईसे खिसकते–खिसकते बाहर हो जाते । अब इस चेष्टासे ही किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना नहीं बनता । साँईबाबाकी बात नहीं है । उनके विषयमें तो एक विश्वस्त सूत्रसे मैंने सुना है कि वे भगवत्प्राप्त पुरुष थे । यद्यपि मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं जानता । पर ऐसी चेष्टा देखकर किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना भूल है । संतका असली स्वरूप इससे अत्यन्त विलक्षण है । वृन्दावनमें ग्वारियाबाबा थे, कुछ ही वर्ष पहले शरीर छूटा है, उनका विचित्र ढंग था । वे अपनेको श्यामसुन्दरका सखा मानते थे और सचमुच थे भी । उनकी विचित्र–विचित्र बातें आती हैं । दिनभर, पता नहीं कहाँ–कहाँ घूमते रहते थे । एक दिन रास्तेमें पड़े थे । रात्रिका समय था। कई चोर उस रास्तेमें जा रहे थे । चोरोंने पूछा कौन हो ? वे बोले–'तुम कौन हो ? उन सबने कहा–'हम तो चोर हैं।' इन्होंने कहा–'हम भी चोर हैं ।' उन्होंने कहा–'चलो, तब चोरी करें।' इन्होंने कहा–'चलो ।' सब एक व्रजवासीके घरमें चोरी करने घुसे । वे सब तो चोर थे ही, उन सबने सामान बाँधना आरम्भ किया । ये कुछ देर तो खड़े रहे। फिर वहीं एक ढोलक पड़ी थी । उसे लगे जोरसे ढम–ढमा–ढम बजाने। घरके आदमी जाग गये । वे सब तो भागे, पर ये ढोलक बजाते रहे। घरवालोंने आकर चार–पाँच डंडे बाबाको लगाये । अन्धकार था । रोशनी जलायी तो देखा कि ग्वारियाबाबा हैं । उन सबको बड़ा दुःख हुआ कि महात्माको डंडे मार दिये । पूछा–'बाबा ! तुम कैसे आये ?' बोले–'चोरी करबे ताँई आये ।' उन सबने पूछा–'और कौन–कौन हते ?' बोले–श्यामसुन्दरके सखा सब हते ।' अब देखिये, इन लोगोंकी कैसी चेष्टाएँ होती हैं ।

ग्वारियाबाबा मरनेके कुछ दिन पहले बोले–'अब नोटिस आय गयी है, अब नहीं रहूँगो ।' मरनेके दो दिन बाद वहाँसे कुछ दूर एक भक्त था, उसके यहाँ गये और दूध पीया । बाबाका एक भक्त था , बड़ा बीमार था । रोने लगा कि 'बाबा, या तो अच्छा कर दो या अब पासमें बुला लो ।' स्वप्नमें आये मरनेके दूसरे दिनकी यह बात है । उससे कहा–'रोते क्यों हो ? चल, हमारा उत्सव मनाया जा रहा है; देखो ।' फिर स्वप्नमें ही उसे ले गये । जो–जो था, दिखलाया । फिर

कहा–'अमुक दिन तुम्हें ले जायँगे ।' नींद खुलनेपर उसने जाँच की । ठीक–ठीक जैसे उत्सव हुआ था, वैसे ही उसने स्वप्नमें देखा था और फिर उसी बतायी हुई तिथिको मर गया ।

उनकी ऐसी–ऐसी विलक्षण बातें हैं कि सबका समझना कठिन हो जाता है। पर वे थे सचमुच श्यामसुन्दरके सखा'। सच्चे महात्मा थे । उनकी कई चेष्टाओंका कुछ भी अर्थ नहीं लगता था । दो महीने मरनेके पहले हाथोंमें हथकड़ी डालकर घूमते रहते थें कि श्यामसुन्दरने कैद कर दिया है । बड़े भारी संगीतज्ञ थे । कहनेका सारांश यह है कि बाहरी चेष्टा भगवत्प्राप्तिका प्रमाण नहीं बन सकती । बहुत ऊँची चेष्टा करनेवालेमें भी त्रुटि रह सकती है तथा कोई बावला–सा नगण्य व्यक्ति भी बहुत बड़ा महात्मा हो सकता है ।

व्रजके प्रेमी संतोंका जीवन सुननेपर तो ऐसा मालूम होगा कि कोई रोते हैं, कोई हँसते हैं, कोई पागल हैं । कितनोंमें बाहरसे कुछ भी प्रेमके लक्षण नहीं दीखते, पर उनके भीतर श्रीकृष्ण–प्रेमका अनन्त सागर लहराता रहता है । इन प्रेमी संतोंकी पहचान बाहरसे हो ही नहीं सकती ।

व्रजजीवन कुछ इतना पवित्रतम जीवन है कि उसका कण ही यदि किसीको कल्पनामें आ जाय तो फिर सांसारिक भोगोंकी तो बात ही क्या, ऊँची–से–ऊँची मर्यादाकी पारमार्थिक स्थितियोंसे भी वह सर्वथा उपरत हो जाता है । परंतु यह करनेसे नहीं होता, यह तो भजनके फलस्वरूप– भगवत्कृपाके प्रभावसे किसी भाग्यवान् साधकमें प्रकट होता है । निरन्तर गुण–लीलाका श्रवण करते–करते, नाम लेते–लेते उस कृपाका प्रकाश होकर किसी–किसी भाग्यवान्‌के अनर्थकी जब पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है, तब व्रजप्रेमकी साधना वस्तुतः आरम्भ होती है । उसके पहलेकी साधना तो जबरदस्ती होती है, रुचिपूर्वक नहीं; पर जबर्दस्ती करना भी बड़ा उत्तम है । किसी तरह भी चलनेवालेका रास्ता तो कटता ही है ।

श्रीकृष्ण इतने सुन्दर हैं कि कहीं एक बार वे कृपा करके स्वप्नमें भी किसीको एक अपनी हल्की–सी झाँकी दिखा दें तो अनन्त जन्मोंकी आसक्ति उसी क्षण मिटकर वह उस रूपके पीछे पागल हो जाय; पर वे किसीके वशमें तो हैं नहीं। शास्त्रमें एक श्लोक है, जिसमें यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण कितने स्वतन्त्र हैं । कालियनागके फणपर तो नाचते हैं और उनके चरणोंके दर्शनके लिये बड़े–बड़े योगी बेचारे अनन्त जन्मोंसे बाट देखते हैं, पर वे सामने नहीं आते। वे श्रीकृष्ण बड़े ही मौजी हैं । एक अनुभवी भक्त कहते हैं–

गोपालांगणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनंविधत्से सताम् ।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवांघ्रिपंकजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः ।

'श्रीकृष्ण ! तुम ग्वालोंके आँगनकी कीचड़में लोटते हो, पर विप्रवरोंके यज्ञोंमें जाते हुए लजाते हो; गौ–बछड़ोंके हुंकारका उत्तर देते हो, पर सत्पुरुषोंकी सैकड़ों स्तुतियाँ सुनकर भी मौन धारण किये रहते हो, गोकुलकी पुंश्चलियोंकी दासता करते हो; पर जितेन्द्रिय पुरुषोंके चाहनेपर भी उनके स्वामी नहीं बनते। इससे यह पता लग गया कि तुम्हारे चरण–पंकज–युगल केवल प्रेमसे ही प्राप्त हो सकते हैं।' तात्पर्य यह है कि परम–असीम सुन्दर होकर भी वे परम स्वतन्त्र हैं । उनकी हल्की–सी झाँकी भी स्वप्नमें वही कर सकता है, जिसे वे कराना चाहें । खेलना उनका स्वभाव है । उनका खेल भी विचित्र है । राजाको रंक, रंकको राजा; पापीको संत, संतको पापी; श्मशानको महल, महलको श्मशान– ऐसी ही विचित्र लीला वे करते हैं । किस क्षण, किसके जीवनमें क्या होगा, यह किसको पता ? पर भक्तको डरनेकी आवश्यकता नहीं है । उसे तो उनकी ओर आशा लगाकर भजन करते रहना चाहिये । एक श्लोक है–

प्रतिज्ञा तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति ।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम् ।।

'गोविन्द ! आपकी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तका पतन नहीं होगा । मैं इसी बातको याद कर–करके प्राणोंको धारण कर रहा हूँ ।'

यहीं श्रीकृष्ण हैं । अणु–अणुमें श्रीकृष्ण हैं और जहाँ है, अपनी सम्पूर्ण शक्ति, समग्र ऐश्वर्यको लेकर ही वर्तमान हैं । अब यदि हमारा इस बातपर विश्वास हो जाय तो हम दूसरेका मुँह फिर क्यों ताकें । किसीकी भी सहायताकी आवश्यकता नहीं । आजतक जितने भी संत हुए हैं, हैं और होंगे–सब उनके अंदर हैं, सब उन श्रीकृष्णके अंदर ही हैं जो अणु–अणुमें स्थित हैं । यहाँ तक कि हम जिस मनसे सोचते हैं, उस हमारे मनमें ही वे स्थित हैं। पर हमारा विश्वास नहीं, तब क्या हो ? यह घड़ी है, इसी घड़ीके अणु–अणुमें श्रीकृष्ण हैं । श्रीकृष्ण ही घड़ी बने हुए हैं । यदि विश्वास हो, ठीक–ठीक संशयहीन विश्वास हो तो यहीं इस घड़ीमें ही वे प्रकट हो जायँ और आपसे बातें करने लग जायँ । समस्त वृदावनकी लीला आप यहीं इस घड़ीके स्थानपर ही देख सकते हैं । प्रह्लादका निश्चय था–खंभेमें भगवान् हैं, खंभा–जैसे जड़ पदार्थमें भी वह ठीक–ठीक भगवान्को देखता था । इसलिये भगवान् वहीं प्रकट हो गये, नृसिंह–रूपमें इसलिये कि उन्हें

हिरण्यकशिपुको मारना था । पर कोई चाहे कि श्रीकृष्णरूपमें ही प्रकट हों तो श्रीकृष्णरूपसे खंभेमें प्रकट होंगे और पूछेंगे– 'प्यारे ! बोलो क्या चाहते हो ?' आप खूब मजेमें कह सकते हैं ––'हमें व्रजकी लीलाके दर्शन कराइये ।' और उसी क्षण वे चाहें तो दिखा सकते हैं । अर्जुनने प्रार्थना की–'नाथ ! मैं आपका विश्वरूप देखना चाहता हूँ,' 'तो ठीक है, देखो ।' वहीं रथपर सारथीके रूपमें जो श्रीकृष्ण थे, उन्हींके शरीरमें विश्वरूप दीखने लग गया, सारथी ही बदल गया । यदि अर्जुनके मनमें प्रेममयी लीला देखनेकी इच्छा होती तो भगवान् उन्हें वहीं उसी क्षण प्रेममयी लीला भी दिखा सकते थे । यह ठीक है कि बहुत भारी कड़ी साधनासे प्रेममयी लीलाके दर्शन होते हैं, पर साधनाका बन्धन साधकके लिये है, न कि श्रीकृष्णके लिये । वे चाहें तो बिना किसी भी साधनाके उसी क्षण लीला दिखा दें। साधना श्रीकृष्ण ही करवाते हैं; पर यह बन्धन नहीं कि साधना होगी, तभी दर्शन होगा ! वे जो चाहें, वही नियम बन सकता है।

बस, विश्वास होना चाहिये–यहाँ श्रीकृष्ण हैं । बस, इतना ही । फिर हाथ जोड़कर कभी बात करें, कभी प्रार्थना करें, कभी रोयें, कभी खीझें। उनसे कहें–क्यों प्रभो ! केवल गीतामें कहते ही हो कि वैसी बात भी है ? तुमने ही तो कहा है कि मेरे लिये सब समान हैं, तो मैं भी तुम्हारे लिये सबके समान ही हूँ; फिर मुझे क्यों नहीं स्वीकार करते ? यदि कहा कि तुम चाहते नहीं तो तुम्हीं बताओ मैं क्यों नहीं चाहता ? मेरे अंदर चाह उत्पन्न करो । नाथ ! यह तो जानते ही हो, तुमसे छिपा नहीं है कि मैं सुख चाहता हूँ, दुःख कदापि नहीं चाहता, भीतरी मनसे सुख चाहता हूँ । यदि तुम कहो कि फिर मुझे भजो, मुझमें ही सुख है और कहीं भी सुख नहीं है तो बताओ, मेरे मनमें तुम्हारी इस बातपर विश्वास क्यों नहीं होता? क्यों मैं विषयोंका भजन करता हूँ ? तुम्हीं आकर एक बार बता जाओ–बस, एक बार ही सामने आकर बता जाओ, फिर चले जाना । तुम कहोगे कि मैं तो उसके सामने आता हूँ जो मेरे लिये अत्यन्त व्याकुल होता है तो फिर मेरे अंदर वही व्याकुलता उत्पन्न कर दो । यदि कहो कि तुम यह भी नहीं चाहते कि मेरे अंदर व्याकुलता उत्पन्न हो तो तुम्हीं बताओ, मैं ऐसा क्यों नहीं चाहता ? इस प्रकार बातें कीजिये । पर यह तभी होगा, जब आपका यह विश्वास हो कि श्रीकृष्ण यहाँ हैं, अवश्य हैं । विश्वासके लिये भी उपाय है–बार–बार कहें कि 'मेरे नाथ ! मुझे क्यों विश्वास नहीं होता कि तुम यहाँ हो, तुम्हीं बताओ। मैं कहाँसे विश्वास लाऊँ ? मैं दुःख चाहता नहीं; सुख चाहता हूँ–इसमें तनिक भी झूठ नहीं । तुम भी कहते हो– सुख मिलेगा मुझपर विश्वास करनेसे; तो फिर तुमपर मेरा विश्वास क्यों नहीं होता ? क्या मैं तुम्हारे लिये दूसरा हूँ ?'

ऊँचे प्रेमका एक उदाहरण है–पतिव्रता स्त्री । पति परदेशमें है । अब मन नहीं लगता, तो वह मन नहीं लगनेपर एकान्तमें बैठकर रोने लग जायगी; पर उसके मनमें यह नहीं आ सकता कि 'चलें, बाहर घूम–फिरकर मन लगायें।' इसी प्रकार भक्तका मन न लगनेपर वह एकान्तमें बैठकर भगवान्‌को याद करके रोने लगता है, रोकर ही मन शान्त करता है; उसके मनमें यह नहीं आता कि चलो, चार दोस्तोंमें बैठकर जगत्‌की–विषयोंकी चर्चा करके मन बहला लें । यहाँका पति अल्पज्ञ है, पर श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं और जहाँ भक्त रो रहा है, वहीं वे अणु–अणुमें छिपे हुए हैं । उसका रोना उनमें करुणाका संचार कर देता है और उनको यह व्यवस्था करनी पड़ती है कि जबतक मैं नहीं मिलता, तबतक इसका मन थोड़ा–बहुत लगा रहे । जैसे स्त्रीको पतिका संदेश सुननेपर बड़ी शान्ति मिलती है, वैसे ही भक्तको भगवद्‌गुणानुवाद तथा आश्वासनकी बातें अर्थात् 'वे मिलेंगे, निश्चय मिलेंगे,' सुनकर शान्ति मिलती है । इसीलिये ऐसे भक्तके लिये भगवान् संतपुरुषोंका संग देते हैं । संत दूत हैं, वहाँ उनसे मिलकर सारी बातें लाते हैं और भक्तको सन्तोष **कराते हैं** ।

परन्तु हमारी तो दशा बहुत ही निम्न कोटिकी है । हमें तो साक्षात् सन्तों **पर भी विश्वास नहीं है । हम अनेकों बार** सुन चुके हैं कि सेठजी (जयदयालजी **गोयन्दका) भगवत्प्राप्त सन्त हैं । श्रीभाईजी** (हनुमानप्रसादजी पोद्‌दार) को भी भगवान्‌के दर्शन अनेकों बार हुए हैं । हमारा इतना सौभाग्य है कि उनके परमोच्च पारमार्थिक अनुभवोंकी बात हम उनके मुख से भी सुन चुके हैं फिर भी हमारा उन पर विश्वास नहीं है । हम हन्हें छोड़कर व्यापार और विषयभोगोंके लिये कलकत्ते–बम्बई भागते हैं । यदि हमें इतना ही विश्वास हो जाय कि ये सन्त भगवान्‌के दूत हैं, भगवान्‌का कार्य करने विश्वमें आये हैं और भगवान्‌से इनका नित्य–संपर्क है, तब भी हमारा जीवन पवित्र हो जाय और हम कल्याण पथके राही हो जावें ।

परन्तु हमारा तो उद्देश्य ही अभी भगवान् नहीं हैं । हमारा उद्देश्य धन, सम्मान और संसार है । फिर केवल बातें करनेसे बातें ही होती है, हमारे भीतरका भरा संसार हमारी प्रगति भगवान्‌की ओर होने नहीं देता । क्या कहूँ। सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–२२

मनसे, वचनसे एवं दृष्टिसे जो कुछ ग्रहण होता है – सब भगवान् हैं

स्थान एवं तिथि
कुछ भी उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र यथा समय मिल गया था। आपने लिखा कि बहुत मना करने पर भी आपकी दृष्टि सुन्दर स्त्रीकी ओर चली ही जाती है । भोले–भोले सुन्दर बच्चे भी आपको मोहाकृष्ट कर ही लेते हैं । सो यह आपका मेरे प्रति प्रेम एवं विश्वास है, साथ ही आप पर भगवान्‌की महती कृपा है कि आपको अपने दोष, दोषरूपमें दीख रहे हैं । यह दशा आपकी ही नहीं, सभीकी है, परन्तु दूसरे लोग इसे दोष ही नहीं समझते । जो भगवत्कृपावश इसे दोष मानते हैं, वे भी उन्हें अपने भीतर छुपाकर ऊपरसे उजले साफ–सुथरे बने रहना चाहते हैं ।

आप विचार कर देखिये–जितने भी सुन्दर शरीर हैं, चाहे वे स्त्रीको पुरुषके अनुभवमें आवें अथवा पुरुषको स्त्रियोंके सुन्दर दीखें, सभीमें मात्र हाड़, मांस, मल मूत्र, गंदी–से–गंदी चीजें भरी हैं । फिर भी भ्रम हो जाता है और आँखें बरबस चली जाती हैं तथा मन भी यह कहता है कि देखो, कैसे सुन्दर हैं ? अब सोचिये कि यह भ्रम क्यों होता है ? इनमें आंशिकरूपसे श्रीकृष्ण मौजूद हैं और वे हैं, इसलिये यह भ्रम हो जाता है कि सुन्दर हैं। फिर भला, स्वयं श्रीकृष्ण जिस समय नटवरनागर मुरलीधरके रूपमें किसीके सामने आ जाते होंगे; उसकी क्या दशा होती होगी । जिनकी एक चमक मात्रसे ऐसा भ्रम हो जाता है कि हाड़, मांस, मल, मूत्रका थैला इतना सुन्दर प्रतीत होने लगता है, फिर जब वे ही स्वयं निज रूपसे जिस समय दर्शन देते होंगे, उस समयकी दशा कितनी विचित्र होती होगी ।

सचमुच ही यह जो कुछ है–सभी श्रीकृष्ण हैं । एक श्लोक भगवान्‌ने भागवत्‌में कहा है–इतना साफ कि क्या बताऊँ । पर हमारा विश्वास नहीं है,

इसीलिये हम दुखी हैं । कहते हैं—'मनसे, वचनसे, दृष्टिसे तथा और सभी इन्द्रियोंसे जो भी ग्रहण होता है; वह मैं हूँ—इस बातको जान लो।' अब विश्वास हो तो अपने पुत्र या स्त्रीको तो आँखसे आप देखते ही हैं और आँखसे देखी हुई चीज श्रीकृष्ण कहते हैं 'मैं हूँ ।' फिर उनके व्यवहारसे दुःख क्यों होगा ?

श्रीकृष्णका स्पष्ट ध्यान नहीं होता हो, श्रीकृष्णकी सेवाके उपकरणोंका ही ध्यान कीजिये । भावना कीजिये—भगवान्‌को धूप दे रहे हैं; धूपकी कटोरीका ध्यान करते अथवा धूपके धूएँका ध्यान करते हुए ही मर गये तो आपको निश्चय—निश्चय भगवत्प्राप्ति हो जायगी । व्रजके पेड़का ध्यान करते हुए ही मरे, पर आपको प्राप्ति होगी श्रीकृष्णकी ही; क्योंकि वहाँका पेड़ श्रीकृष्ण ही है। वह पेड़ यहाँकी तरह जड़ नहीं । मान लें, कोई ध्यान करता है—वनसे श्रीकृष्ण लौट रहे हैं, संगमरमरकी सड़क है, आगे—पीछे गाय हैं । सड़कके दोनों किनारे बड़े—बड़े आलीशान महल हैं, महलके नीचे फुटपाथ है, उसपर हरे—हरे वृक्ष लगे हैं । अब यदि श्रीकृष्णके रूपका ध्यान न होकर फुटपाथ, सड़क, वृक्ष आदि—इनमेंसे किसी भी वस्तुका ही ध्यान क्यों न हो, पर मन फँस गया तो यहीं जीवित अवस्थामें ही उसे श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँगे । साधना पूरी होनेके पहले ही मरना पड़े तो मरते समय चाहे किसी भी वस्तुका ध्यान क्यों न हो, यदि वह श्रीकृष्णके वृन्दावन—भावसे भावित वस्तु है, चाहे पेड़—पौधा ही क्यों न हो, तो उसे निश्चय ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति ही होगी । इसका कारण यह है कि वृन्दावनमें पेड़, सड़क, डंडा, पत्ता, मकान, खंभा—जो कुछ भी है, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णरूप ही है । इसलिये लीलाके ध्यानमें बहुत आसानी है।

चाहे ध्यान न लगे, पर अपनी जानमें जो कुछ समय निकालकर सच्चे हृदयसे पूरी चेष्टा करता है कि मेरा मन भगवान्‌में लग जाय, उसका ध्यान न होनेपर भी भगवान् उसे अपना भक्त मान लेते हैं । ध्यान न लगे, उतनी देर जीभसे नाम—जप तो हो ही सकता है । चेष्टा हुई या नहीं—इसकी यही पहचान है कि आप जैसे दो घंटे रोज बैठें और उतनी देर यह खयाल आयेगा कि 'अरे, मन तो भाग गया ।' बस, यह खयाल आते ही यदि आपने उतनी बार सच्चाईके साथ उसे जोड़नेकी चेष्टा की, तब तो समझना चाहिये कि पूरी चेष्टा हुई । यह न होकर जब ध्यान करने बैठे और दूसरी व्यापार—सम्बन्धी बातोंमें मन भाग गया तथा फिर जब याद आया तो याद आनेपर भी उन्हीं बातोंको सोचने लग गये और यह कहने लगे कि 'क्या करें, जब ध्यान नही होता, तब व्यापारकी ही बात सोच ल—ऐसा करना ही 'पूरी चेष्टा नहीं करना' है । मान लें दो घंटेमें ५०० बार मन भाग गया और ५०० बार ही जब—जब याद आयी, तब—तब पूरी तत्परतासे उसे

भगवान्‌में जोड़ देनेकी क्रिया करके यह निश्चय करना कि अब नहीं भागने दूँगा—यही पूरी चेष्टा है ।

भागवतमें महापुरुषकी उच्च स्थिति के लक्षण बतलाते हुए यह कहा गया है कि जिसे सचमुच ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है, उसे यह ध्यान भी नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है कि खा रहा है कि टट्टी—पेशाब कर रहा है । उसे अपने शरीरका बिल्कुल ही ज्ञान नहीं रहता । जैसे शराब पीकर मनुष्य पागल हो जाय और फिर उसके ऊपर वस्त्र है या नहीं—इस बातका उसे ज्ञान नहीं होता, वैसे ही ब्रह्मप्राप्त पुरुषको अपने शरीरका ज्ञान नहीं होता कि यह छूट गया है कि है। वह तो सदाके लिये आत्मानन्दमें डूब जाता है। शरीर लोगोंकी दृष्टिमें प्रारब्ध रहनेतक काम करता है, फिर वह भी प्रारब्ध समाप्त होते ही गिर पड़ता है । ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वाक्य हैं । अब आप सोचें—यदि कोई सचमुच ब्रह्मप्राप्त पुरुष आपको मिला है तो उसमें यदि वह सच्चा प्राप्त पुरुष है, तो ये लक्षण घटेंगे ही; पर यदि दीखता है कि वह महापुरुष पेशाब करता है, भोजन करता है, सबसे बातचीत करता है, व्यवहारमें सलाह देता है और कहीं भी पागलपन नहीं दीखता तो फिर दोमें एक बात होनी चाहिये—या तो वह प्राप्त पुरुष नहीं है, साधक है, या वह इतने ऊँचे स्तर पर पहुँचा हुआ पुरुष है कि उसके प्रारब्धको निमित्त बनाकर उसके अन्तःकरणमें स्वयं भगवान् ही उसकी जगह काम करते हुए जगत्‌में अपनी भक्ति, अपने तत्त्वज्ञानका प्रचार कर रहे हैं। इन दो बातोंके अतिरिक्त तीसरी बात मेरी समझमें नहीं आती । या तो उसमें कमी है या वह इतना ऊँचा है कि स्वयं भगवान् उसके शरीररूप खोलीके अन्दरसे काम कर रहे हैं।

देखिये, आपने भगवान्‌को देखा है ? नहीं देखा है । पर फिर उन्हें मानते क्यों हैं ? इसीलिये मानते हैं कि संतोंने उन्हें देखा है और शास्त्र कहते हैं कि 'भगवान् हैं' अतः उसी शास्त्रकी यह बात है कि संत—असली संतका स्वरूप ऐसा होता है । विश्वास होना तो कठिन है; क्योंकि अन्तःकरण सांसारिक वासनाओंसे इतना भरा होता है कि सत्यका प्रकाश उसमें छिपा रहता है । पर सच मानिये—जिस दिन आपका अन्तःकरण तैयार हो जायगा अर्थात् संसारसे बिल्कुल उपरत हो जायगा, उस दिन संतमें ही नहीं, आपकी जहाँ दृष्टि जायगी वहीं एक भगवान्—ही—भगवान् दीखेंगे । पर अभी तो जो आपको दीखता है, उसीको लेकर आपके प्रश्न पर विचार करना है । अस्तु ! आपको जहाँ संत दीखते हैं, केवल वहाँ ही नहीं, जहाँ यह घड़ी दीखती है, वहाँ भी श्रीभगवान् हैं और पूर्णरूपसे हैं। आपमें, मुझमें, इनमें और सब वस्तुओंमें हैं । आपमें, इनमें, हममें प्रकट नहीं हैं—यहाँ छिपे हुए हैं । ये ही भगवान् जहाँ आपको संतका शरीररूप खोली दीखती

है—वहाँ प्रकट रहते हैं । अवश्य ही इस बातको समझ लेना थोड़ा कठिन है; क्योंकि वास्तवमें इस बातको बतानेके लिये कोई दृष्टान्त नहीं है । पर ऐसे समझनेकी चेष्टा करें कि जिस दिन श्रद्धा हो जायगी, उस दिन तो यह घड़ी ही भगवान् बन जायगी । दीवाल, खंभे—सब भगवान् बन जायँगे और प्रह्लादकी तरह फिर सबमें भगवान्‌के ही दर्शन होंगे। यह तो श्रद्धाकी बात है; क्योंकि इन चीजोंमें भगवान् प्रकट नहीं है । पर जहाँ प्रकट हैं, वहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होती । वहाँ जरूरत होती है केवल देखनेकी, सम्पर्कमें आनेकी । घड़ी देखनेसे अपनेको भगवान्‌की अनुभूति नहीं हो सकती, न घड़ी आपका कल्याण ही कर सकती है । पर संतको देखनेमात्रसे ही, सम्पर्कमें आनेमात्रसे ही, आपको भगवान्‌की अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जायगी और संतका दर्शन आपका कल्याण कर देगा; क्योंकि वहाँ भगवान् प्रकट हैं।

जैसे आग इस कलममें भी है, इस चौकीमें भी है और हमारे शरीरमें भी है; पर फिर भी संध्या होते ही हमें ठंड लगेगी ही । पर यहीं पर यदि इस कलम, इस चौकीको घिसनेसे आग प्रकट हो जाय तो फिर तो श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होगी कि हमारी ठंड दूर हो; इसके पास बैठते ही ठंड दूर हो जायगी, चाहे आँख मूँदकर ही क्यों न बैठें । एक अंधेको भी बाहरसे लाकर यदि यहाँ बिठा देंगे, जो आग देख नहीं सकता, श्रद्धा भी नहीं कर सकता कि आग ऐसी होती है, पर ठंढ उसकी भी दूर होगी । इसी प्रकार भगवान् जहाँ—जहाँ अप्रकट हैं, वहाँके लोग दुःखसे त्राहि—त्राहि करते हैं; पर वे ही लोग यदि संतके पास जा पहुँचें, तो फिर उनको श्रद्धा नहीं करनी पड़ेगी, बिना श्रद्धाके ही, बिल्कुल बिना भावके ही उनका दुःख दूर हो जायगा। अब प्रश्न होता है कि कोई कहे कि 'हमें तो सच्चा संत मिल गया और यदि बिना भावके ही कल्याण होता है तो हमारा क्यों नहीं हुआ ? हमारे मनमें अशान्ति क्यों है ? हमें दुःख क्यों है ?' तो इसका उत्तर यह है कि आप सचमुच ही संतके सम्पर्कमें नहीं आये । नहीं तो, कल्याण हो ही जाता । श्रद्धाकी बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है केवल सम्पर्कमें आनेकी । आप नहीं आये; इसीलिये आपका दुःख नहीं मिटा। सम्पर्कमें आनेका अर्थ है यह कि आपका मन, आपकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ एवं बुद्धि तथा शरीर, सब—के—सब उस संतसे जुड़ जायँ, बिना भावके ही जुड़ जायँ । फिर देखो, एक क्षणमें ही आपकी सारी अशान्ति मिट जायगी । आप एक ऊँचे साधकसे भी जुड़ सकते हैं, पर यदि वह भगवत्प्राप्त पुरुष नहीं है, तो उससे जुड़ने पर यद्यपि इस रूपमें भी भगवान् हैं, आपका कल्याण बिना श्रद्धाके नहीं होगा । किन्तु सच्चे संत महापुरुषको बिना जाने, बिना पहचाने, बिना उनपर श्रद्धा किये, पूरा—पूरा उनसे जुड़ जायँ तो फिर

निश्चय ही उसी क्षण कल्याण हो जायगा ।

संक्षेपमें बात यह है कि श्रद्धा होनी और जुड़ना—सम्पर्कमें आना दो वस्तुएँ हैं । किसीमें श्रद्धा होना एवं उससे जुड़ना—ये दो क्रियाएँ हैं । इसे ऐसे समझें—कल्पना करें, यहाँ दो व्यक्ति बैठे हैं । एक सदाचारी साधक है, दूसरा भगवत्प्राप्त महापुरुष है । अब जहाँ वह साधक आपको दीखता है—वहाँ भी असलमें भगवान् है, पूर्ण रूपसे हैं, पर यहाँ श्रद्धा करनी पड़ेगी कि ये भगवान् हैं तथा उनसे जुड़ना पड़ेगा अर्थात् मन, वाणी, समस्त इन्द्रियाँ आदिको इनसे जोड़ना पड़ेगा, तब आपका कल्याण होगा । पर महापुरुषके लिये यह बात नहीं है । वहाँ श्रद्धा चाहे बिल्कुल ही न हो कि ये भगवत्प्राप्त पुरुष हैं, केवल इन्द्रियाँ—मन—बुद्धि आदि जुड़ जायँ, बस, आपका काम बन जायगा । कोई कहे कि 'हम तो महापुरुषसे जुड़े हुए हैं' तो मैं आपको कसौटी बताता हूँ कि वे जुड़े हैं या नहीं—इसकी जाँच कर लीजिये । मनका जुड़ना—मनका रूप है दिनभर चिन्तन करना, कुछ—न—कुछ संकल्प—विकल्प करते ही रहना । इसका यही स्वरूप दर्शनशास्त्रमें बताया गया है । अब आप सोचें कि आपका मन दिनभरमें कितना संकल्प—विकल्प महापुरुषके सम्बन्धमें करता है और कितना संकल्प—विकल्प उनके अतिरिक्त पदार्थोंसे । आँखका जुड़ना क्या है ? आँख देखती है । दिनभरमें आप कितनी देर उन्हें देखते हैं, उनकी लिखी हुई पुस्तकोंको देखते हैं ? इसी प्रकार समस्त इन्द्रियों एवं बुद्धिकी चेष्टाको औसत पर जाँच लें कि वे किस पदार्थसे जुड़ी हैं ।

जिस दिन किसीका मन वैर—भावसे भी महापुरुषसे सोलहों आने जुड़ जायगा, उस दिन उसका कल्याण हो जायगा; क्योंकि श्रद्धाकी बिल्कुल आवश्यकता ही नहीं है, आवश्यकता है जुड़ने की । श्रद्धाकी वहाँ आवश्यकता होती है, जहाँ भगवान् छिपे रहते हैं । जहाँ प्रकट हैं, वहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता बिलकुल ही नहीं है । प्रेमसे या वैरसे किसी प्रकार जुड़ना चाहिये । जुड़ते ही काम बन जाता है । यह ठीक है कि महापुरुषसे वैर—भावसे जुड़ना आदर्श नहीं हो सकता तथा वैर—भावसे जुड़नेवालेको मोक्षरूप ही कल्याण मिलता है, भगवत्प्रेमकी प्राप्तिरूप परम कल्याणकी प्राप्ति महापुरुष—द्वेषीको प्रायः नहीं ही होती । मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि संत बिना श्रद्धाके ही काम कर देते हैं, पर जुड़नेकी आवश्यकता तो होगी ही । यह भी एक परम आश्वासनकी बात है कि जिसका एक क्षणके लिये भी किसी इन्द्रियसे वास्तविक महापुरुषके साथ जुड़ना हो गया; उसका कल्याण हो ही जायगा; क्योंकि धीरे—धीरे उसकी समस्त इन्द्रियाँ जुड़ ही जायँगी और जिस दिन समस्त जुड़ गया कि बस, काम बन गया । यही

महापुरुषकी विशेषता है । स्त्री—बच्चोंसे तो आप अनन्त जन्मोंमें—अनन्त योनियोंमें जुड़ चुके हैं । उन स्त्री—बच्चोंके रूपमें भी स्वयं भगवान् ही थे, पर अभी तक आपका उद्धार नहीं हुआ । उनसे जुड़े भी भीतरी मनसे ही थे, प्रत्येक योनिमें आप जुड़े रहे हैं; पर काम नहीं बना । इसीलिये भगवान्‌की यही अनन्त कृपा जीवपर होती है कि वे अवताररूप तथा संतरूपमें प्रकट हो जाते हैं और उनके प्रकट स्वरूपसे बिना भावके ही जो कोई एक क्षणके लिये भी जुड़ जाता है, उसका कल्याण हो ही जाता है । जुड़ना पूरा—पूरा हुए बिना कल्याणमें देर होती है । चाहे एक जन्ममें हो या एक और जन्म धारण करके, पर यह सर्वथा सत्य है कि महापुरुषसे एक क्षणके लिये जुड़ा हुआ भी आगे चलकर पूरा—पूरा जुड़ ही जाता है तथा उसका पूर्ण कल्याण हो ही जाता है ।

यह मार्ग ही ऐसा है कि इसपर सर्वथा अहंकारशून्य होकर सारी ममता—माया छोड़कर, बस, श्रीकृष्णको ही एकमात्र जीवनका सार—सर्वस्व बनाकर चलना पड़ता है । जबतक बिल्कुल अपनपा मिटा नहीं दिया जाता, तबतक प्रेम प्रकट ही नहीं होता । आप एक भी सच्चे व्रजप्रेमीके जीवनमें भी यह बात नहीं देखेंगे कि उनके मनमें संसार भी हो और श्रीकृष्णप्रेम भी हो। अन्धकार और प्रकाश दोनों साथ रह ही नहीं सकते या तो संसार रहेगा या श्रीकृष्ण रहेंगे ।

श्रीकृष्णकी कृपासे आपके मनमें एक धुँधली चाह उत्पन्न हुई है, पर यह चाह इतनी मन्द है कि इसको बहुत तेजीसे बढ़ानेकी तथा यह सूख न जाय—इसके लिये चेष्टा करनेकी पूरी आवश्यकता है । बात यह है कि जबतक मन श्रीकृष्ण—प्रेम—रससे सिक्त नहीं होगा, तबतक कोई भी वस्तु सदा रहनेवाली शान्ति दे ही नहीं सकती । इसे आप अपने जीवनमें अनुभव करेंगे, पर धीरे — धीरे ।

एक खास बात और है—वह यह है कि आप खूब तेजीसे वैराग्य बढ़ाइये। आपके लिये ही नहीं, किसी भी प्रेम चाहनेवाले साधकके लिये यह आवश्यक है कि विषयोंसे तीव्र वैराग्य तथा मनके द्वारा निरन्तर भगवत्—चिन्तन हो । यह नहीं होगा तथा कोई आपको कहे कि शान्ति मिल जायगी तो समझ लें कि या तो वह कहनेवाला स्वयं भ्रममें है, या जान—बूझकर आपको धोखा दे रहा है । संसारमें जबतक भगवद्‌बुद्धि बिल्कुल स्थिर नहीं हो जायगी, तबतक यदि संसारका तनिक भी चिन्तन होगा तो वह अशान्ति करेगा ही । आगको पकड़कर मनुष्य जले नहीं, यह असम्भव है । इसी तरह संसारको संसारके रूपमें देखते रहनेपर इसके चिन्तनसे जलन बढ़ेगी ही, चाहे आप कहीं भी—किसी भी देशमें चले जायँ । आपको पता नहीं है—शायद वृन्दावनमें रहने वाले भी कई व्यक्ति बहुत अशान्त रहते हैं । जिन्हें वे आँखें प्राप्त नहीं हैं, वे वृन्दावनमें भी जाकर राग—द्वेषसे बचे नहीं

रह सकते । वहाँ भी उन्हें क्षणिक शान्ति ही मिलेगी। वृन्दावनकी चिदानन्दमयताका अनुभव उन्हें नहीं ही होगा । धामके वस्तुगुणसे अन्तमें उनका कल्याण हो जाय, यह बात दूसरी है ।

रास देखकर भगवद्भाव हो तो वह वस्तुतः भगवत्—प्राप्तिकी परमोच्च साधना होती है, पर आप नाराज न हों, आपका मन भगवान्‌की ओर नहीं लगता। वह लगता है वहाँकी सजावटपर । जिस मनमें कूड़ा (विषय) है, वह गंदा मन रासके भगवत्—स्वरूपोंमें ज्यादा दिन टिकेगा ही नहीं । रही वृन्दावनकी बात, सो वृन्दावन असलमें जड़ वस्तु नहीं है कि वह एक देशमें सीमित है, वह भगवान्‌का स्वरूप—तत्व है, सर्वव्यापक है । श्रीराधारानी—श्रीकृष्णकी कृपासे जिनकी वह दृष्टि हो जाती है, उन्हें अणु—अणुमें श्रीधामके दर्शन हो सकते हैं, होते हैं । भूलोकमें आप जिस वृन्दावनका दर्शन करते हैं, वह सर्वथा निस्संदेह सच्चिदानन्द विभुतत्व है; पर जिन्हें उस स्वरूपका अनुभव या उसपर श्रद्धा नहीं है, उन्हें वहाँ रहकर भी शान्ति नहीं ।

सच मानिये—कहीं भी जायँ, शान्ति तभी मिलेगी जब कि मनसे संसार निकलेगा । यह नियम ऐसा है कि कभी टलेगा नहीं । आपके प्रति जो मैं प्रार्थना करता हूँ, उसमें यह न समझें कि मैं कोई अपनी बात आप पर लादना चाहता हूँ। केवल इतनी बात आपसे निवेदन कर देता हूँ कि मेरी समझमें आपको संसार मनसे निकालना ही पड़ेगा । यह न करके चाहेंगे कि अशान्ति मिट जाय तो नहीं मिटेगी । अशान्ति तो संसारकी सत्ता मिटनेसे ही मिटेगी । आपके लिये यह एक बात जँच रही है कि आप पूरे निश्चयके साथ चौबीसों घंटे लीलाका श्रवण, चिन्तन, मनन—जब जैसा सम्भव हो, करते रहें । युक्ति मैं आपको बतला रहा हूँ, कुछ दिन करेंगे तो मेरा विश्वास है कि उन्नति होनी ही चाहिये । करनेपर चौबीस घंटे यह अनुभव होगा कि श्वासके साथ पावन वृन्दावनकी वायु मेरे हृदयमें प्रवेश कर रही है । फिर इतनी निश्चिन्तता आयेगी कि शरीर रहे या जाय, मैं तो वृन्दावनमें ही हूँ । साथ ही लीलाका चिन्तन जितनी देर कीजियेगा वह और भी आनन्द बढ़ायेगी, पर यह सब करनेसे होगा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं आपके अन्तःकरणमें ही बैठे हैं । जब उनसे आपको शान्ति नहीं मिली, तब मुझ—जैसे मलिन मनवाले प्राणीकी बातसे कैसे शान्ति मिलेगी । शान्ति तो तभी मिलेगी जब कि या तो संसारके प्रत्येक अन्तःकरणमें आप श्रीकृष्णको देखें; पुत्र, स्त्री, माँ—ये सब—के—सब बिल्कुल उनके ही रूपमें दीखने लग जायँ । या इन सबको भूलकर पावन वृन्दावनमें मन इतना रम जाय कि बस, ये हैं कि नहीं, इसकी स्मृति भी मनमें न रहे ।

ये दो बातें जीवनमें उतरनी परम आवश्यक हैं । मृत्युके पूर्व यह स्थिति प्राप्त कर ली तो सब कुछ पा लिया, अन्यथा फिर एक बार अवसर चूकने पर कृपाकी लहर फिर कब आवेगी, कहा नहीं जा सकता । सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२३

भगवान्‌में सुखही सुख है

रतनगढ
दिनांक उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र यथा समय मिलगया था । मैं भाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) के साथ रतनगढ़के बाहर प्रवासमें था । प्रवासमें उत्तर लिखनेवालेकी समुचित व्यवस्था नहीं होनेसे पत्रोत्तर समय पर नहीं लिखाया जा सका ।

एक दिन श्रीभाईजीने सत्संगमें बहुत ही मर्मकी बात कही थी । एक विषयोंके लिये रोता है और एक भगवान्‌के लिये रोता है । जो विषयोंके लिये रोता है, उसके तो आदि–मध्य–अन्तमें दुःख–ही–दुःख हैं; क्योंकि विषयोंमें दुःख–ही–दुःख है और जो भगवान्‌के लिये रोता है, उसके आदि–मध्य–अन्तमें सुख–ही–सुख है; क्योंकि भगवान्‌में सुख–ही–सुख हैं । विषयीका मन रोते समय विषयमें तदाकार होता है । इसका अर्थ है कि उसका मन दुःखमें तदाकार होता है और भगवान्‌के लिये विरहमें रोनेवालेका मन भगवान्‌में तदाकार होता है । इसका अर्थ यह है कि उसका मन आत्यन्तिक सुखसे तदाकार हो रहा है ।

आपने अभी व्रज–प्रेमका साधन कदाचित् आरम्भ ही किया है । यह खाँड़ेकी धार है । ज्ञान और भक्ति दोनोंसे ही यह न्यारी चीज है । यह इतनी ऊँची चीज है कि इसके मार्गमें पैर रखकर चलनेपर संसारको छोड़ ही देना पड़ता है । पर आपका मन अभी संसारकी उन्नतिमें फँसना चाहता है, घर–गृहस्थीके झंझटमें आप कूद–कूदकर पड़ते हैं । मामूली–से–मामूली तुच्छ बातके लिये उखड़कर लोगोंसे चिढ जाते हैं तथा परिवार इतना प्यारा है कि इसके लिये आपको बुरा–भला करनेमें कोई ग्लानि नहीं होती । आप ही सोचें, श्रीकृष्ण–प्रेमके मार्गपर चलनेवालेका भला, यह ढंग हो सकता है ? देखें, चित्तकी बदमाशी नहीं छूटना एक बात है, तथा उसके लिये परवाह न होना दूसरी बात है । पर मेरी दृष्टिमें चाहे गलत हो, मुझे ऐसा लगता है कि अभी आपके मनमें यह पूरी लालसा ही नहीं है कि हमारा मन व्रजमें रमे; क्योंकि उसका लक्षण यह है कि मनके

भागनेपर, जैसे याद आया कि मन व्रजसे कहीं अन्यत्र गया है, बस, वैसे ही तीव्र व्याकुलता होगी और तुरंत आप उसे व्रजसे जोड़ देंगे; किंतु आप तो शायद जान–बूझकर व्रजप्रेमका चिन्तन छोड़कर दूसरा काम करते हैं ! ऐसी स्थितिमें श्रीकृष्ण ही आपकी सहायता करें, मैं और क्या कहूँ ।

व्रजप्रेमी जितने हुए हैं; जितनोंका जीवन मैंने पढ़ा है, प्रायः सभी कहते हैं कि हमारी शक्ति नहीं है कि हम अपना सुधार करें और सचमुच ऐसा ही मानते हैं। पर सुधार न होनेके कारण वे दिन–रात रोते हैं; उनमें कड़ापन, खासकर संतोंके प्रति अकड़ किसीके भी जीवनमें नहीं मिलेगी । अभिमानको तो वे लोग जड़से ही छोड़ देते हैं । इस प्रेमके पीछे न जाने कितने करोड़पति भिखारी बनकर रोटीके सूखे टुकड़े माँगते मारे–मारे फिरे हैं । न तन पर वस्त्र है, न खानेको अन्न । परिवारसे छिपकर अपना जीवन भजनमें बिता चुके हैं । पर आपके जीवनमें अभी तक मुझे नहीं दीखता है कि आपमें व्रजभक्तोंकी निरभिमानता आ गयी है, रुपयेका महत्त्व कम हो गया है । रुपयेको आप धूलि समझते हों और मानको विष समझते हों–ऐसी बात मुझे अभी नहीं दीखती। उलटे मुझे तो यह दिखता है कि अभी आपके मनमें धन प्राप्त करनेकी चाह है । और यदि चालू रही तो मेरी समझमें आपका उद्धार तो हो सकता है, पाँच प्रकारकी मुक्ति भी आपको मिल सकती है; पर, यह ढंग रखकर, शास्त्रोंको, जो मैने पढे हैं, सुने हैं, उनके आधार पर कहता हूँ–आपको यह व्रजप्रेम प्राप्त हो जाना तो बड़ा ही कठिन दीखता है । व्रजप्रेम केवल उसीके लिये है, जो उसके पीछे अपना सबकुछ जलाकर भस्म कर डालनेकी इच्छा रखता हो । संस्कृतमें प्रेमके सिद्धान्तपर बड़े–बड़े सुन्दर ग्रन्थ हैं, इस मार्गके बड़े–बड़े आचार्य हुए हैं और उन्होंने इस व्रजप्रेमके मार्गको अलग छाँटकर बड़े विलक्षण ढंगसे समझाया है । उन्हें देखनेपर पता चलता है कि यह हँसी–खेल नहीं है, इसमें भीतरी मनसे अनन्त जन्मोंतक नरक तकमें सड़नेकी तैयारी जिसके मनमें होती है, वही बढ़ सकता है। वास्तवमें जो श्रीकृष्णप्रेम है, वह कुछ ऐसी दुर्लभ वस्तु है कि उसके लिये सर्वस्व त्याग करना ही पड़ता है, तुच्छ परिवार, धन–जनकी तो बात ही क्या है। शान्ति मिले, आनन्द मिले, हमें शान्ति नहीं मिलती, नहीं मिली–ये बातें जिसके मनमें हैं, उसके लिये व्रजप्रेमकी बात करना, कहना, सुनना तो मजाक उड़ानेकी तरह है ।

नारायन घाटी कठिन जहाँ प्रेमको धाम ।
बिकल मूरछा सिसकिबो ये मगके विश्राम ।।

श्रीकृष्ण आपपर कृपा करें–और कुछ नहीं, केवल आपके मनमें किसी प्रकार इस संसारसे छूटनेकी लालसा जाग जाय और दीनता आ जाय, फिर काम बने,

नहीं तो यों संसारको पकड़े रहना और व्रजप्रेम पाना आजतक तो कहीं हुआ नहीं है ।

यह जो अशान्ति है और साधना नहीं बनती–इसमें हेतु यही है कि आपको संत एवं भगवान्‌पर श्रद्धा नहीं है । पापके संस्कार श्रद्धा होनेमें बाधक होते हैं। इसीलिये संत कहते हैं–'भजन करो, निरन्तर भजन करो ।' भजन करनेसे अन्तःकरणका मल मिट जायगा और मल मिटा कि बस, विक्षेप और आवरण तो बहुत ही आसान चीजें हैं । श्रीभाईजीने एक बार बड़े प्रेमसे कहा था–मनुष्यको केवल एक काम करना है; भजनके द्वारा मलका नाश कर देना; बिल्कुल इतना ही काम उसको करना पड़ेगा और यह काम उसे ही करना पड़ेगा । रहा विक्षेप अर्थात् मनकी चंचलता, इसे दूर कर देंगे संत तथा भगवान्‌ने जो पर्दा डाल रखा है, उसे हटाकर वे सामने आ जायँगे । यही आवरणभंग है।' दृष्टान्त दिया था–जैसे दर्पण है, उसपर चिकटा मल चढ़ा है, वह हिल रहा है और पर्दे लगे हैं। अब रगड़–रगड़कर साफ कर दो–बस, तुम्हारा इतना ही काम है । संत नीचे–ऊपर पेंच कसकर हिलना–भटकना नष्ट कर देंगे । भगवान् पर्दा हटा देंगे। बस, फिर मुख स्पष्ट दीखने लग जायगा । रगड़नेसे यदि परिश्रमका अनुभव हो तो साबुनसे धो दो । निरन्तर नामका जप सहज साबुन है । मनकी मलिनता ही भगवान्‌का आनन्द नहीं लेने देती । अभी आपने लीलाकी, तत्वकी इतनी बातें सुनीं; पर इनका आनन्द सबको एक समान नहीं मिला होगा । इसमें एकमात्र हेतु है मनकी मलिनताकी घनता । जिसका मल जितना अधिक घन है, उतना ही इन बातोंका आनन्द वह नहीं उठा सकेगा । नहीं तो, इतनी देरकी बातचीतमें श्रीकृष्णका नाम जितनी बार आया, जब–जब उनके गुणोंकी बात आयी और वृत्तिने उसे पकड़ा, उतनी–उतनी बार हृदय पिघलकर बहने–सा लगा होता । आप पद सुनते हैं––

'कृष्ण नाम जबते श्रवन सुन्यौं री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री ।'

इसमें रत्तीभर भी अत्युक्ति नहीं, न यह निरी भावुकताकी बात है । बिल्कुल सत्य है । यही दशा श्रीगोपीजनोंकी श्रीकृष्णके नाम–रूप–गुणकी स्मृति–श्रवणसे हो जाती है ।

आन्तरिक प्रेमके चिन्ह बाह्य शरीरपर प्रकट हो जाते हैं और उनका शास्त्रोंमें विस्तारसे वर्णन है । आज भी सच्चे प्रेमियोंमें वे चिन्ह प्रकट होते हैं । एक रघुबाबा गोरखपुरमें थे । उनमें 'तनुता' का प्रकाश हुआ था । और भी कई प्रेमविकार उनके शरीरपर स्वयं भाईजीने समय–समयपर देखे । प्रेमपथकी बात

ही निराली है । साध्य–साधन एकमात्र श्रीकृष्ण होंगे, वहाँसे पथ शुरू होगा । अभी तो जड़ 'शरीरका आराम' और 'नामका मोह' पग–पगपर पछाड़ रहा है ।

प्रेम उत्पन्न होनेपर बिल्कुल –'रही न काहू कामकी'–सी दशा भीतर–भीतर हो जायगी, संसारमें कोई भी आकर्षण आपके लिये नहीं रहेगा । इसकी साधना अपने–आप होती है । अपने–आप परिवारसे, धनसे सभी प्राणियोंसे मोह हटकर दृष्टि निरन्तर श्रीकृष्णकी ओर लग जाती है । केवल श्रीकृष्ण–चर्चा, केवल श्रीकृष्ण–भजन ही जीवनका उद्देश्य नहीं, स्वभाव हो जाता है । प्रेमकी इतनी पवित्र अवस्था प्रारम्भमें ही होती है कि उसमें किसी प्रकारका स्वार्थ, किसी प्रकारका आकर्षण (प्रेमास्पदके अतिरिक्त और किसीके प्रति) रहता ही नहीं । इसकी प्रारम्भिक साधना है––

पर्वतकी तरह दृढ़ निश्चय लेकर मनसे श्रीकृष्णका स्मरण, जीभसे भजन, कानोंसे श्रवण एवं निरन्तर सजातीय वासना–विशिष्ट सत्संगमें जीवन–यापन।

महाप्रभुने पाँच उपाय बतलाये हैं––

(१) निरन्तर नाम–जप, (२) सजातीय वासनाविशिष्ट सत्संग, (३) श्रीमद्‌भागवतका आस्वाद, (४) श्रीविग्रहसेवा, (५) श्रीव्रजवास ।

श्रीरूपगोस्वामीने लिखा है कि ये पाँचों इतनी विलक्षण शक्ति सम्पन्न साधनाएँ हैं कि कल्पनातीत शीघ्रतासे भाव, जो प्रेमकी पूर्वकी अवस्था है और जिसका एक नाम 'रति' भी है, उत्पन्न हो जाता है । पर 'सद्धियाम्' इसकी टीका की गयी है–'अपराधविहीनानाम्'। अर्थात् जो भगवत्सेवापराध एवं नामापराधसे रहित हैं, उनमें इस साधनासे एक क्षणमें ही भाव उत्पन्न हो जाता है, अपराधयुक्त प्राणीमें नहीं ।

जैसे लकड़ीके दो टुकड़े हैं । उन दोनोंमें अग्नि तो पर्याप्त है । न विश्वास हो तो रगड़कर देख लें, उसमेंसे आग निकलेगी । इसी प्रकार भगवान् प्रत्येक प्राणीमें बाहर–भीतर, नीचे–ऊपर व्याप्त हैं । अब जैसे आग कहीं प्रकट हो जाय और प्रकट होकर किसी लकड़ीके खण्डको पकड़ ले तो फिर लकड़ी उसी आगमें जलकर स्वयं आग बन जाती है । जहाँ अग्निका संयोग हुआ कि वह लकड़ी फिर लकड़ी रह ही नहीं सकती । वह निश्चय–निश्चय आग बन जाती है। ठीक इसी प्रकार, जिस समय भगवान्‌का वास्तविक साक्षात्कार संतको होता है, उसी क्षण वह भगवान्‌में मिल जाता है । ठीक भगवान्‌के रूपका बनकर ही वह तब भगवान्‌का अनुभव करता है । उसे किसी भी दृष्टान्तसे समझाया नहीं जा सकता; क्योंकि सभी दृष्टान्त जड़–जगत्‌के हैं और संत एवं भगवान्‌के मिलनकी बात चिन्मय जगत्‌की है । पर यदि इस दृष्टान्तको कोई ध्यानमें रखें तो वह

कुछ–कुछ कल्पना कर सकता है । भगवान् हैं तो प्रत्येक प्राणीमें, पर कहाँपर किसी कारण से (प्रेमकी रगड़से) प्रकट हुए और प्रकट होते ही उन्होंने अपने आधारको अर्थात् जिसके लिये जिसमें प्रकट हुए थे उसे बिल्कुल पूरा–पूरा अपने समान बना लिया । जलनेके बाद जिस तरह काठ बिल्कुल काठ न रहकर अग्नि हो जाता है, ठीक वैसे ही संत देखनेमें तो मामूली मनुष्यकी तरह खाता–पीता, व्यवहार करता है, हँसता–रोता है, संन्यासी न हो तो घर–गृहस्थी भी करता है; परंतु वस्तुतः वह भगवान्‌की ही एक लीला है, जिससे वे अपनेको छिपाये रहते हैं। प्रश्न यह होता है कि फिर उस शरीरको भगवान् रखते क्यों हैं ? रखते हैं इसीलिये कि उसके स्पर्शमें आकर कुछ और भी प्राणी उस आगमें जलकर उसीकी तरह बन जायँ, इसीलिये प्रारब्धकी लीलाका निर्वाह होता है ।

शास्त्र पढ़नेसे तो अनेक प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सच्चे भगवत्प्राप्त संत भगवान्‌से अभिन्न हो जाते हैं । युक्तियोंके द्वारा भी मनुष्य इसे समझ सकता है । पर वही समझेगा कि जिसने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बनाया है कि 'मुझे प्रभुसे मिलना है ।' फिर होता क्या है कि संत स्वयं अपनी गरमी–अपना तेज उसे प्रकट करके दिखलाना शुरू कर देते हैं । उनके तेजका असर तो सबपर होता है, पर बीचमें अहंकार, संसारकी वासना, विषय–सुखकी चाह, उनसे लौकिक स्वार्थपूर्तिकी वासना–ये सब खड़े होकर उनके तेजको देरसे ग्रहण होने देते हैं । जिस दिन जीवनका उद्देश्य एकमात्र भगवान् हो जाते हैं, उस दिन ये सब व्यवधान झड़ जाते हैं, साधक इनको फेंककर अकिंचन बन जाता है।

फिर जहाँपर संत दीखते हैं, उस स्थानपर श्रीकृष्ण दीखें–इसमें तो कहना ही क्या है, उसकी दृष्टिमें सर्वत्र एक श्रीकृष्ण ही रह जाते हैं और वह दिव्य पावन आनन्दके समुद्रमें डूब जाता है । जबतक यह हो, तबतक शास्त्र आज्ञा देते हैं कि 'चाहे किसी भावसे हो, सम्बन्ध जोड़े रहो।' भगवान्‌की करुणा जैसे अहैतुकरूपसे भगवान्‌में रहती है, सन्त रूप भगवान्‌की मूर्तिमें भी वह करुणा वैसे ही रहती है और वह करुणा किसी दिन एक क्षणमें तुम्हारे व्यवधानको दूर कर देगी । अवश्य ही अलग हटोगे तो भी निस्तार तो होगा ही; क्योंकि एक बारका सम्बन्ध ही निस्तारके लिये पर्याप्त है । पर कुछ देर लगेगी; क्योंकि आखिर नियमसे सब होता है । कोई कहे कि संत अपने–आपको प्रकट करके जीवोंका उद्धार क्यों नहीं करते तो उसका उत्तर यह है कि, यदि इसमें लाभ होता तो आप ठीक समझें; वे प्रकट होकर नाचते । जिस समय प्रकट होनेसे लाभ होता है, उस समय प्रकट भी होते हैं–हुए हैं । पूर्वकालमें महाप्रभु चैतन्यदेव प्रकट हुए थे और खुलेआम प्रेमका वितरण उन्होंने किया था । उस दिन पेटमें प्रेमकी भूख थी । आज तो

जगत्‌के प्राणी चाहते हैं–हमको धन मिले, मान मिले । यह देना उन्हें अभीष्ट है नहीं । अधिकांश जगत्‌का वातावरण आज इसी कामनासे कलुषित हो रहा है । फिर इससे भी ऊपरकी एक बात यह है कि भगवान् कब कौन–सा ढंग स्वीकार करते हैं–इसका रहस्य यदि हम समझ जायँ तो फिर भगवान् भी हमारी तरह मामूली ही सिद्ध हों, उनकी भगवत्ता ही क्या रह जाय । अतः शास्त्र एवं संत स्वयं कहते हैं कि चाहे उनकी कोई चेष्टा ऐसी हो कि जिससे जगत्‌को कम लाभ होता हुआ दीखे; पर निश्चय–निश्चय मान लीजिये कि इसी चेष्टासे इस समय अधिक लाभ होगा। यदि न होता तो वे वैसी चेष्टा करते ही नहीं; क्योंकि उनमें भ्रम–प्रमादकी गुंजाइश ही नहीं है । इसपर विश्वास करवा देना बड़ा कठिन है; पर बात बिल्कुल सत्य है–शास्त्रकी है, मेरी नहीं । उन ऋषियोंकी बात है, जिनकी बातें त्रिकाल–सत्य हैं ।

बिल्कुल उनकी कृपासे ही कोई उन्हें जान सकता है । मुझ–जैसे मलिन प्राणी तो संत एवं भगवान्‌के तत्त्वकी वास्तविक कल्पना भी नहीं कर सकते। बंगालकी बात है–हालकी ही । एक माई थी–विधवा हो गयी, पर भगवान्‌में उसका वात्सल्य भाव हो गया । फिर गोपालको पुत्र मानकर उसने तीस वर्षतक उपासना की । प्रतिदिन गोपालकी भावनासे भोजन कराया करती थी । अब गोपालको दया आ गयी । एक दिन आये और सचमुच खाने लग गये । पर आधा खाकर ही भाग गये । वह तो प्रेमसे पगली हो गयी । 'गोपाल', 'गोपाल' चिल्लाती हुई मारी–मारी फिरती । उन्हीं दिनों रामकृष्ण परमहंस नामके कलकत्तेमें एक बहुत बड़े महात्मा हुए थे । कुछ लोग उन्हींके पास जा रहे थे । लोगोंने उस माईसे कहा–'चल, बुढ़िया ! गोपाल वहाँ मिलेंगे।' यह तो पगली थी ही, थोड़ा चावल और नमक बाँध लिया कि गोपाल मिलेगा तो खिलाऊँगी । वहाँ पहुँची । लोगोंकी भीड़ थी । परमहंस उपदेश कर रहे थे । तरह–तरहके उपहार, मिठाई, फल आदि लोग लाये थे । सब सामने रखा हुआ था । बुढिया गयी। परमहंसको देखते ही बिल्कुल शान्त हो गयी । परमहंसने उपदेश बंद कर दिया । बोले–'मैया, मैं तो खिचड़ी खाऊँगा ।' खिचड़ी बनी । बुढ़ियाको होश हो गया था । वह सोचने लगी कि 'मैं पगली हो गयी थी। ये महात्मा हैं, इनकी कृपासे अच्छी हो गयी हूँ ।' इसको आज्ञा हुई–लोगोंने देखा बुढ़ियाका अहोभाग्य है । बुढ़िया लजा गयी, पर लोगोंने कहा–'परमहंस तुम्हारी खिचड़ी खाना चाहते हैं ।' परमहंस रामकृष्ण भी पागलकी तरह रहते थे । बुढ़ियाने खिचड़ी बनायी। पर संकोच था, केवल नमक–चावलकी खिचड़ी महात्माको कैसे खिलाऊँ । रामकृष्ण सभामण्डपसे उछले तथा कूदते–फाँदते वहाँ पहुँचे । 'मैया ! खिला, भूख लगी

है ।' रामकृष्ण बैठ गये; बुढ़ियाने परोस दिया । परोसते ही रामकृष्ण गोपालके रूपमें हो गये। बुढ़िया फिर गोपाल, प्यारा गोपाल–कहकर चिल्लाने लगी । उस दिनसे बुढिया एवं गोपालका सम्बन्ध नित्य हो गया । कहनेका मतलब यह है कि एक नहीं–ऐसी कितनी घटनाएँ प्रत्यक्षमें होती हैं कि जिनसे संत एवं भगवान् बिल्कुल अभिन्न हैं – यह तो सिद्ध हो जाता है, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि ग्राहक नहीं हैं, इसीलिये संत उस रूपमें प्रकट नहीं होते । ऐसे–ऐसे संत हुए हैं कि जिन्होंने केवल एक दृष्टि डालकर मलिन–से–मलिन प्राणीमें उसी क्षण प्रेमका संचार कर दिया है ।

एक बात और समझ लेनेकी है । संत एवं भगवान्‌में भेद न होनेपर भी जो प्रेमी संत होते हैं, उनमें 'प्रेमी एवं प्रेमास्पद' ये दो भाव रहते हैं ।

जिस प्रकार राधारानी एवं श्रीकृष्ण तत्त्वतः एक हैं, पर फिर भी दोनों दो बने रहते हैं उसी प्रकार प्रेमी संत भगवान्‌से अभिन्न होते हुए भी पृथक् बने रहते हैं और जैसे राधारानीको प्रसन्न करनेका गुर श्रीकृष्णकी सेवा और श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका गुर राधारानीकी सेवा है, वैसे ही भक्त और भगवान्‌का भी जोड़ा है ।

या तो संतकी अनुभूति सर्वथा मिटा दीजिये और उसकी जगहपर भगवान्‌की ऊँची–से–ऊँची कल्पना जो आपके मनमें हो, उसके अनुसार, उसी भगवत्–सत्ताको अभिव्यक्त देखिये; अथवा भगवान्‌को भी भूलकर सर्वथा एकाग्रचित्तसे एकमात्र यही उद्देश्य बना लीजिये कि संतके चरणारविन्दमें कैसे प्रेम हो । दोनोंका फल एक ही होगा । दोनोंको एक साथ लेकर चल सकें, तो भी एक बात है । पर इन दोनों बातोंके अतिरिक्त जो चीज है–वह व्यवधान है, उसे हटा दीजिये । विषयासक्ति, लौकिक स्वार्थ, पारिवारिक मोह–ये व्यवधान हैं । जितनी श्रद्धा है, काफी है । यह नियम है कि वस्तुतः संत यदि कोई हो तो उसमें श्रद्धाकी जरूरत नहीं है; उसकी ओर तो उन्मुख होनेकी जरूरत है । श्रद्धासे तो पत्थरकी मूर्ति भी कल्याण कर देती है । श्रद्धा न हो और फिर ऊँची–से–ऊँची चीज मिल जाय, यही महापुरुषकी विशेषता है । यहाँ फैसला श्रद्धाके तारतम्यसे नहीं होता, उन्मुखताके तारतम्यसे होता है । यही उन्मुखताका तारतम्य ही पारमार्थिक स्थितिके ऊँचे–नीचे स्तरकी प्राप्तिमें हेतु हो जाता है । यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि आप संतके वास्तविक स्वरूपको जानें, बिना जाने सर्वथा अंधकारमें ही रहकर यदि अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दें तो स्थिति आपको वही मिलेगी, जो जाननेवालोंको मिलेगी । जाननेवालेको कुछ विशेष मिले, यह बात नहीं है; उन्मुख कौन अधिक है–इस बातपर ही स्थिति निर्भर है। कोई भी हो; वह कितनी मात्रामें अपने आपको

मिटाकर उसकी जगह संतको बैठा देनेके लिये तैयार है–यह प्रश्न है । फिर वहाँ जो वास्तविक अभिव्यक्ति अचिन्त्यशक्ति है, भगवत्–सत्ता है, वह उसको उस मात्रामें अपना लेगी । इसलिये उपर्युक्त दो बातोंमें एक बात कीजिये–मेरे कहनेसे नहीं, सर्वथा शास्त्रीय प्रमाणको देखकर। 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' – सूत्रको रटकर संतके ढाँचेकी जगह भगवान्‌को देखिये । अथवा 'हे संत, हे संत, हे संत–' यह रट लगाकर बस, सर्वथा ' अनन्यममता विष्णौ' की जगह 'अनन्यममता संतचरणेषु' – कर लें । सच मानिये, एक ही फल मिलेगा ।

मनुष्यका स्वाभाविक हृदय ऐश्वर्यप्रवण होता है और वह ज्यों–ज्यों आगे बढ़ेगा–मान लें, किसीने संतकी जगह सर्वथा भगवान्‌को देखकर चलना प्रारम्भ किया–त्यों–ही–त्यों स्वाभाविक ही उसके मनमें भगवत्–ऐश्वर्यका उदय होगा और वह सोचेगा कि ये सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं । पर इस सम्बन्धमें एक नियम याद रखना चाहिये, वह यह कि कल्याण–गुणताके अंशमें (अर्थात् जगत्–उद्धारकी क्रियाके संपादन रूप अंशमें} महापुरुषकी ज्यों–की–त्यों वही शक्ति है जो शक्ति **अवतारमें अभिव्यक्त होती है । परन्तु ऐश्वर्यके** प्रकाशकी शक्ति श्रद्धालुकी श्रद्धापर **निर्भर है । ऐश्वर्यका प्रकाश केवल उस श्रद्धालुके** लिये ही होगा कि जिसका **सर्वथा संशयहीन विश्वास, परिपूर्ण विश्वास संतमें** एकमात्र भगवान्‌के ही होनेका हो **चुका है; जिसके मनमें जरा भी संतपनेकी अनुभूति** अलग अवशिष्ट है, उसके लिये बेधड़क प्रकाश नहीं होगा । **हमलोगोंमेंसे ऐसा** अभी कोई नहीं है, जो किसी संतके प्रति सर्वथा इस श्रद्धाके स्तरपर पहुँचा हो अतः उसे यह ध्यानमें रखना चाहिये कि ऐश्वर्य–अंशमें भगवत्ताके प्रकाश अर्थात् सर्वज्ञता, सर्वसमर्थताकी अभिव्यक्तिकी ओरसे दृष्टि मोड़ ले । अन्यथा होगा यह कि उसकी श्रद्धाकी कमीके कारण इस शक्तिके प्रकाशमें उसे त्रुटि दीखेगी और वह फिर उधेड़–बुनमें पड़ेगा। इस भागवतीय नियमको याद रखना चाहिये । अवतारमें और भगवद्‌रूप संतमें, जो जीवभावको लिये हुए जन्मे थे और फिर भगवत्–सत्तामें विलीन हो गये–(दोनोंमें) अन्तर यही है कि जो अनादिसिद्ध भगवान्‌का अवतार है, उसमें तो दोनों शक्तियोंकी अभिव्यक्ति अर्थात् कल्याण–गुणता एवं ऐश्वर्यकी शक्तियोंकी अभिव्यक्ति बिना श्रद्धाके ही होती है । पर सर्वोच्च संतमें केवल कल्याणगुणता ही प्रकाशित होती है, ऐश्वर्य श्रद्धालुकी संशयहीन श्रद्धा होनेपर ही कहीं प्रकाशित होता है ।

काम करते समय जिस–किसी वस्तुपर दृष्टि जाय उसीमें एक बार श्रीश्यामसुन्दरकी उस मधुर छविको देखनेका अभ्यास कीजिये । साथ ही 'नाम' निरन्तर चलता रहे । छूटे, फिर पकडें, इस प्रकार अपनी जानमें ईमानदारीके साथ

जीभसे नाम एवं मनके द्वारा लीलाका या रूपका चिन्तन करनेकी पूरी चेष्टा करें । फिर यदि एक पाई भी सफलता न हो तो कोई आपत्ति नहीं, बिल्कुल आपत्ति नहीं । साधना न हो तो दोषकी बात बिल्कुल नहीं है, पर उसके लिये मनमें महत्त्व न होकर उसे छोड़ देना दोष है । मान लें–समस्त जीवन चेष्टा करते रह गये, न वृत्ति सुधरी, न भाव हुआ, न विश्वास, यहाँतक कि रूपकी मामूली धारणाकर मन एक सेकंडके लिये भी स्थिर नहीं हुआ । पर यह लालसा लगी रही और बार–बार करते ही गये तो फिर मैं तो संशयहीन होकर ही यह कहता हूँ कि आपको ठीक वही चीज भगवान् देंगे, जो सर्वथा साधनाकी परिपक्व अवस्थामें ऊँचे साधकोंको मिलती है । ध्यान करते समय कोई चित्र नहीं बँधता, तो घबराइये मत । कभी वृन्दावनमें गये ही हैं । वहाँका सर्वोत्तम दृश्य, जो आपके मनमें हो उसको, उन पेड़–पत्तोंकी धुँधली–सी स्मृति मानस–पटलपर क्या नहीं ला सकते ? मैं ठीक कहता हूँ–मस्तिष्क यदि पागल हो जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा निश्चय ला सकते हैं । प्रतिदिन नियमसे एक बार ही स्मरण कीजिये, पर कीजिये अवश्य । फिर देखेंगे वह एक बारकी स्मृति–उन वृक्षोंकी स्मृति ही आगे चलकर अनन्तगुनी हो जायगी तथा मरते समय यदि उन लता आदिकी ही कोई धुँधली–सी स्मृति हो गयी तो निश्चय समझें, आप निहाल हो गये । व्रजमें लता बनेंगे और स्वयं राधारानी एवं श्रीकृष्ण उस लतारूप, सच्चिदानन्दमय लतारूप आपके समीप आकर अपने हाथोंसे फूल तोड़ेंगे तथा आप चाहें तो उसी क्षण अपने इच्छानुसार रूप धारण करके उनकी सेवा कर सकते हैं, व्रजकी लताका ध्यान करके लता बननेवाला ब्रह्मप्राप्त पुरुषसे कम नहीं है । यह भावुकताकी बात हो, ऐसी बात नहीं है । अवश्य ही इस सिद्धान्तको श्रीकृष्णकी अतिशय कृपासे ही आप समझेंगे और विश्वास कर सकेंगे ।

स्वयं तो पहले तत्त्वतः श्रीकृष्ण बनकर ही तब व्रजकी लता बनेंगे, क्योंकि श्रीकृष्णके व्रजकी लता स्वरूपतः जड़ वस्तु नहीं है, वह सच्चिदानन्दमय है । सोचिये, श्रीकृष्णकी कितनी कृपा है – बिना उस दिव्य लताको देखे ही प्राकृत धारणामें आयी हुई लताका आप ध्यान करते हैं, पर वे इसीको अपना ध्यान मान लेते हैं, इसीको निमित्त बनाकर वे आपको सर्वोच्च स्थिति प्रदान कर देते हैं ! आपसे क्या लता, पेड़, पत्ते, मिट्टीके घड़े, पीतलके कलसेका भी ध्यान नहीं हो सकता ? और मजा यह है कि इनमेंसे किसीका व्रजभावसे भावित होकर ध्यान करनेपर बिल्कुल सच्चिदानन्दमय राज्यमें ही प्रवेशाधिकार मिल सकता है ।

संध्या–समय आपने देखा होगा, गायें वनसे लौटती हैं । ठीक उसी तरहका एक धुँधला चित्र व्रजभावसे भावित होकर इस समय अपने मानस–पटलपर

लाकर देखिये–गायें आ रही हैं, बस, श्रीकृष्ण मान लेंगे कि यह मेरा ध्यान कर रहा है ।

योगीके लिये मन लगाना, मन स्थिर करना कठिन है; क्योंकि उसे तन्मय करना है एक वस्तुमें । पर यहाँ तो गायसे मन उचटे तो पेड़में, पेड़से मन उचटा तो यमुनाके जलमें, वहाँसे मन उचटा तो वनकी पगडंडीमें, वहाँसे मन गया तो गोबरमें, धूलिमें (सब सच्चिदानन्दमय हैं) मन लगाकर कहीं– कुछ भी ध्यान करके कृतार्थ हो सकते हैं । क्या परिश्रम है ? केवल चाहकी कमी है ।

यहाँ बैठे–बैठे इस कलममें देखें, भावना करें–यह पेड़–सा दीखता है, वृन्दावनमें हरे पेडोंका रंग इससे कुछ भिन्न है । अब इस प्रकारके चिन्तनको ही श्रीकृष्ण अपना चिन्तन मान लेंगे और ठीक इसे निमित्त बनाकर मरते समय आपको सर्वोच्च स्थितिका दान कर देंगे । वे देखेंगे, अपनी जानमें इसने मनको मेरी प्यारी वस्तुओंमें लगाया है । गायें मुझे प्यारी हैं, वन मुझे प्यारे हैं, पेड़–लता मुझे प्यारे हैं – इसने मेरी प्यारी वस्तुओंका चिन्तन किया है । इसका तो मैं ऋणी हूँ । यह भी जाने दें; और कुछ न सही, एक बार कहिये–राधा–राधा । ये शब्द–भावुकताकी बात नहीं है – श्रीकृष्णको ऋणी बना देंगे :–

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदापराधान् मधुपति–
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति ।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृतरसं
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैकमनसाम् ।।

आपकी समस्त अशान्ति एक क्षणमें दूर हो जायगी । आप केवल व्रज–लीलामें मनको थोड़ा–सा भी ले जानेका अभ्यास डाल लें, यद्यपि यह है सर्वथा कृपासाध्य। बड़े–बड़े ऊँचे अधिकारी हो सकते हैं, पर उनकी अभिरुचि ही इस ओर नहीं होती। समस्त जीवन रचे–पचे रहनेपर भी आनन्द–शान्ति उनके भागमें बहुत ही कम हाथ लगते हैं; क्योंकि उन्हें भगवत्कृपाका अवलम्बन प्रायः नहीं रहता । पर यह ब्रज–लीला ऐसी है कि इसमें रुचि यदि हुई तो यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त मान लें कि किसी विलक्षण महात्माकी अहैतुकी कृपा आपको उस स्तरमें ले जानेके लिये हो चुकी है । नहीं तो, रुचि असम्भव है । आप तो अपना परम सौभाग्य समझें । अब केवल थोड़ा–सा और आगे बढ़ जाइये। इस व्रज–लीलाकी कल्पनामें अपने मनको तदाकार कर दें । यह इतना आसान है कि इसकी कल्पना भी बिना लगे हो नहीं सकती अवश्य ही यह होनी चाहिये सच्ची । व्रजभावसे भावित चित्तसे लता पेड़, पत्ते, पगडंडी, वन, गायें, गोशालाकी भीत, साड़ी, साफा देखते–देखते ही मन इस नश्वर राज्यसे उठकर वहाँ चला जायगा, वहाँ जाकर आप यहाँकी परिस्थितिके

लिये सर्वथा चिन्ताहीन हो जायँगे, यहाँकी उधेड़–बुन रहेगी ही नहीं, मन एक अनिर्वचनीय आनन्दसे भर जायगा ।

अत्यन्त तुच्छ–से–तुच्छ पदार्थ, गंदी–से–गंदी चीज आगमें पड़कर अपना समस्त मैल–अपनी समस्त दुर्गन्ध त्यागकर ठीक आगका रूप धारण कर लेती है, वह इतनी तेज हो जाती है कि वह स्वयं अपने सम्पर्कमें आनेवाली वस्तुको भी भस्म कर देती है । इसी प्रकार किसी भी भगवत्–प्रेमी संतसे मिलिये तो सही, मिलते ही थोड़ा नहीं, पूरा–का–पूरा–सब कुछ, जो भी वे हैं, जो भी उनका है, सब ..... आपमें उतर आयेगा । आग तो जड है और संत चेतन ही नहीं, इस विलक्षण जातिके चेतनके रूपमें रहते हैं कि उसकी कोई उपमा ही नहीं है । कोई दृष्टान्त नहीं है कि उस स्थितिको हम या आप बुद्धिके द्वारा समझ लें । जबतक आप ठीक–ठीक उस रसमें ढलकर अपने–आपको मिटाकर उसी रसके अनुरूप नहीं हो जायँगे, तबतक स्थिति क्या है–यह समझना सम्भव ही नहीं है । बस, रस सच्चिदानन्दमय है; आप स्वयं जबतक समस्त जडतासे सम्बन्ध नहीं तोड़ लेंगे, तबतक उस रसका आस्वाद नहीं हो सकता । अभी तो मान प्यारा लगता है । पुत्र, परिवार धन प्यारे लगते हैं । जड़ वस्तुओंकी तह–की–तह चारों ओरसे लिपटी हुई है । वास्तविक आनन्दकी बात छोड़ दें; संतके प्रति साधारणसे सम्बन्धका जो फल होना चाहिये, वह भी हम लोगोंमेंसे शायद ही किसीमें अभिव्यक्त हुआ हो ! देखें, मैं कहता हूँ–'आप यह कार्य कर दें,' और संत भी मेरी तरह ठीक यही बात कहते हैं । दोनों ही शब्द हैं, पर दोनोंमें इतना अन्तर है कि उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती । मेरा कहना, मेरी आवाज, उस चेतन सत्ताके आधारपर है, जिसकी संज्ञा 'जीव' है और जिसमें यह अहंकार वर्तमान है कि मैं हूँ; परंतु आप यह कार्य कर दें – संतके मुखके निकले हुए ये शब्द उस विलक्षण अनिर्वचनीय चेतन सत्ताके आधारपर हैं जो कहता है –

'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।।'
'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।'
'अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।।'

परंतु क्या आपको वह आनन्द मिलता है ? निश्चय ही नहीं मिलता। मिलता होता तो आपकी स्थिति ही बदल जाती । वहाँ संतके ढाँचेके अन्तरालमें वह बोलता है, जो सर्वेश्वर है, जो 'सुहृदं सर्वभूतानाम्' की घोषणा करता है; जिसमें केवल आनन्द–ही–आनन्द है । पर आपको तो डर लगता है, प्रतिकूलताकी प्रतीति होती है । जहाँ प्राणकी व्याकुलता लेकर सदाके लिये उसीमें समा जानेकी इच्छा [illegible] चाहिये थी, वहाँ उपरामता भी आती है । ऐसा क्यों होता है ?

इसलिये कि उसमें मिले नहीं । आगकी तरह उसकी कृपा आपको चारों ओरसे घेर रही है, घेरे हुए है और आगे चलकर मिला भी लेगी निश्चय; परंतु अभीतक आप अपनी ओरसे मिले नहीं। अपनी दुर्गन्धसे आपको घृणा नहीं है। आप उससे मिल जानेकी तीव्र लालसा नहीं रखते। विश्वास कीजिये– 'आप चाहे मलिन–से–मलिन प्राणी क्यों न हों, केवल मैलेकी तरह आपमें दुर्गन्ध ही क्यों न भरी हो, बाहर–भीतर, नीचे ऊपर, केवल बदबू आ रही हो; पर 'संत' नामकी वस्तु इतनी पवित्र है, इतनी सरस है कि उसका स्पर्श होते ही आप बिल्कुल उसी ढाँचेमें ढल जाइयेगा । आग क्या यह देखती है कि यहाँ मैला है? मैला आगमें पड़ा कि सारा–का–सारा अंगारा हो जायगा । अस्तु, मिलिये, उसमें मिलिये । अपनी सारी मलिनता, सारी दुर्गन्ध लेकर मिलिये ! दिन–रात उसके इशारे पर चलनेकी चेष्टा कीजिये । दिन–रात सोचिये, संत कितने कृपालु हैं । दिन–रात यह विचार कीजिये – 'कृपामय ! तुम्हारी कृपा ही मुझे भले अपना ले, मुझमें तो बल नहीं ।' दिन–रात नाम लीजिये, चलते–फिरते नाम लीजिये इससे बड़ी सहायता मिलेगी। दिन–रात यही इच्छा कीजिये कि संतका संग छूटे नहीं। दिन–रात यही सोचिये कि संतके लिये परिवार, संत के लिये इज्जत यदि बाधक है तो संतके चरणोंमें इनको भी समर्पण कर देना है । इसका यह अर्थ नहीं कि मैं किसीको संन्यासी बननेकी उत्तेजना देता हूँ । बाहर कपड़ा रँगकर भी क्या होगा । परंतु यह ठीक है, नितान्त सत्य है, सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये तैयारी मनसे ही करनी पड़ेगी । बाहरका ढ़ाँचा ज्यों–का–त्यों रहकर मन बिल्कुल खाली हो जायगा, तभी आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी । यदि किसी संतकी दृष्टि–अमृतमयी दृष्टि, अमोघ दृष्टि पड़ चुकी है तो आपके लिये परवाना काटा जा चुका; परंतु आप यदि अपनी ओरसे देनेके लिये–जिसकी चीज है, उसकी ही चीज उसको लौटानेके लिये तैयार हो जायँ, अर्थात् अपनी ममता उठाकर सबपर उसका अधिकार मान लें तो फिर शीघ्र–से–शीघ्र कृपा प्रकाशित हो जायगी । आपने पूछा और मेरे ऊपर आपका प्रेम भी है इसीलिये कहता हूँ–रोटी मुझे भी भगवान् ही देते हैं, कपड़े भी वे ही देते हैं, आपको भी वे ही देते हैं और देंगे । फिर अपनी एवं परिवारकी चिन्ता क्यों करते हैं ? मैं जिस दिन उनका होऊँगा, उसी दिन मेरा मन यह ठीक कहेगा कि 'मुझसे सम्बद्ध समस्त चीजें उनकी हैं–वे उन्हें नष्ट कर दें, तोड़ दें, फेंक दें या जो भी चाहे करें–मैं क्यों कहूँ – ऐसा करें, वैसा करें। मेरी कोई चाह नहीं – उनकी चाह ही, बस आपकी चाह ।' यह भाव ही संत–चरणोमें प्रेम होनेकी पहली सीढ़ी है ।

आप पाँच सूत्रोंको याद रखें –

१. विषय–त्यागसे प्रेम ।
२. लीला–गुणोंके श्रवणसे प्रेम ।
३. अखण्ड–तैलधारावत् भजनसे प्रेम ।
४. मुख्यतः भगवान्‌के भक्तकी कृपासे ही प्रेम होता है । और–
५. यह कृपा उनकी कृपासे ही प्राप्त होती है ।

पर निमित्तरूप उपाय है – रोना, भगवान्‌के सामने रोते जाना । मनमें केवल श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें न्योछावर होनेकी लालसा रहकर बाकी सब लालसा मिट जानी चाहिये ।

पुत्र, स्त्री, बच्चे, परिवारका चित्र बहुत आग्रहपर ही मनमें आये; अन्यथा वे कैसे हैं, उनका क्या हो रहा है, उनका भला–बुरा किस बातमें है–इन सबको सर्वथा विश्वासके साथ भगवान्‌पर छोड़कर सर्वथा निश्चिन्ततापूर्वक जागनेसे सोनेतक केवल भजन–स्मरणमें समय बिताना–यही ऊँचे स्तरके त्यागका बाहरी रूप है।

एक मित्रको मैंने उनके जीवन–सुधारका यही उपाय बतलाया है कि पापसे बचो, बचनेकी चेष्टा करो, परन्तु जब भी, जिस प्रकार भी बुरे विचार मनमें आयें, उन्हें साफ–साफ लिखकर किसी सन्तके पास भेजते रहो, फिर कोई परवाह नहीं।

विज्ञानका नियम है– काँच ही नहीं, समस्त धातु बनते ही हैं सूर्यसे। सूर्यकी किरणोंसे ही समस्त धातुओंका निर्माण होता है । सूर्यकान्तमणि भी बनती है सूर्यसे ही । उसी प्रकार ठीकसे कोई भी भगवान् एवं संतकी कृपाको ग्रहण करके एक क्षणमें ही उच्च–से–उच्च अधिकारी बन सकता है । आज व्याख्यानमें सुना–लाखों वर्षके अन्धकारको मिटानेके लिये लाख वर्षकी जरूरत नहीं है । जरूरत है प्रकाश पहुँचनेकी, प्रकाश आते ही उसी क्षण उजाला हो जायगा । ठीक इसी प्रकार रत्तीभर भी कोई साधना नहीं चाहिये, जरूरत है–बस, आप सच्चे मनसे चाह लें, उनकी कृपाको ग्रहण करना । निश्चय समझें, फिर वह उसी क्षण प्रकाशित हो जायगी । उसी सच्ची चाहका स्वरूप यही है कि कोई भी चाह मनमें न रहे और वह चाह किसी अन्य द्वारा अन्य साधनसे मिटे नहीं ।

सर्वत्र भगवद्दर्शन तथा महापुरुषोंके प्रति तीव्र आकर्षण, दोनों ही बातोंकेलिये जिस क्षण तीव्र उत्कण्ठा, तीव्र चाह उत्पन्न होगी, उसी क्षण आपकी दशा बड़ी विलक्षण हो जायगी । जीवनमें केवल एक ही उद्देश्य रह जायगा–कैसे ये दो बातें पूरी हों, कैसे किस उपायसे जल्दी–से–जल्दी यह हो जाय । उस समय जो भी उपाय आपको बताया जायगा, कोई मामूली व्यक्ति विनोदमें भी आपको बता देगा

तो आप वही करने के लिये पागलकी तरह तैयार हो जाइयेगा । वह करना नहीं पड़ता, स्वाभाविक मनकी ऐसी दशा हो जाती है । पर अभी क्या दशा है–विचारें, चेष्टा करनेके लिये मन बहुत कम तैयार है । भगवद्दर्शनके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय–सबसे सरल उपाय जिसमें मनकी बहुत कम जरूरत है, ऐसा भगवान् कृष्णने उद्धवको श्रीमद्भागवत–समाप्तिके समय बताया, पर उसे कौन करनेकेलिये तैयार है ? भगवान्‌ने कहा है –

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीड़ां च दैहिकीम् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ।।
यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ।।
अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ।।

(श्रीमद्भा० ११/२१/१६–१७)

'हँसनेवालोंकी परवाह छोड़ दो, लज्जा एवं देहाभिमान भी छोड़ दो तथा कुत्ते, चाण्डाल, गौ, गधेतकको भूमिपर गिर कर साष्टांग दण्डवत् करो । जबतक सभी भूतोंमें मेरी अभिव्यक्ति न दीखे, तबतक शरीर, मन एवं वाणीकी वृत्तिसे यह उपासना करो । भगवत्प्राप्तिके जितने उपाय हैं, उनमें सबसे सुन्दर उपाय मेरी रायमें यही है कि सभी भूतोंमें मन, वाणी एवं शरीरकी वृत्तिसे मेरी भावना की जाय।

ये भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखके वाक्य हैं । भगवान् श्रीकृष्णसे बढ़कर उपदेशक न कोई है, न हुआ, न होगा । पर कौन उपर्युक्त उपायको करनेके लिये तैयार है ? आपका शरीर इसे कर ही नहीं सकेगा । तरह–तरहकी युक्ति का, योग्यताका, महापुरुषकी रायका बहाना बताकर आप इसे टाल देंगे । इसी प्रकार महापुरुषोंमें श्रद्धाके लिये जिस समय सर्वस्व–त्यागका प्रश्न खड़ा हो जाय, उस समय इतने ऊँचे त्यागकी बात छोड़ दीजिये, तुच्छ–सा–तुच्छ त्याग भी सहन नहीं होगा । आपको जीवन–निर्वाहके लिये कमी नहीं है, मनमें रुपयेका महत्त्व रहनेके कारण होता यह है कि जरासा कहीं भी उसमें नुकसान पहुँचनेकी बात ध्यानमें आ जाय सबसे पहले उसकी रक्षाका प्रश्न उठ खड़ा होता है । ऐसे ही जिस दिन भगवद्दर्शन, संतप्रेमका महत्त्व मनमें घर कर जायगा, उस दिन अपने–आप सभी उपाय आप करने लग जायँगे।

जैसे जब युवक बड़ा होता है और पिताकी गद्दीमें बैठने लगता है तो अपने

आप पैसे कमानेके गुण सीख लेता है, उसी प्रकार जब लगन लगती है तो अपने–आप सभी साधन ध्यानमें आ जाते हैं और उनपर कैसे चला जाय – यह सब भी समझमें आ जाता है । मनमें भगवान्‌की लगन लगे, यही आवश्यक है और क्या कहूँ, सभी इष्ट मित्रोंको सादर सप्रेम यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।
पत्र संख्या–२४

ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे भगवान् न दे पावें

रतनगढ़
२ अक्टूबर १९४१

प्रिय श्रीशिवभगवानजी ।

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र मिला । आपने जो लिखा, उसके उत्तरमें मुझे यही कहना है कि वास्तवमें हमलोग भगवान्‌की महिमा जानते ही नहीं । हमारा जब भगवान्‌के अस्तित्वके संबंधमें भी विश्वास डगमगाता है, तो फिर उनकी अपार अनन्त सर्वकर्तुम् सामर्थ्य और महिमा पर हमारा चित्त पूर्ण विश्वस्त और स्थिर होजाय, यह कैसे संभव है । यदि हम भगवान्‌की महिमा जानते होते तो उनके साथ नये–नये प्रेमका व्यवहार करनेवाले महापुरुषोंको देखकर हमारे जीवनकी ऐसी विलक्षण दशा हो जाती कि उसका वर्णन करना ही असंभव होता । विचारें, भारतवर्षके प्रधानमंत्रीसे ही जब कोई मिलकर उसके बँगलेसे बाहर आता है और वह यदि किसीसे हाथ मिला लेता है अथवा किसीकी ओर देखकर मुसकुरा देता है तो वह आदमी समझता है, मानो हम तो बस, निहाल ही हो गये, तथा कहीं वह किसीको मोटरमें साथ बैठाले, उस समय तो उसके गौरवकी, उसके मनमें अपने ऊँचे होनेकी जो तरंगें उठती हैं, उसकी कोई सीमा ही नहीं है । अब भला, ऐसे–ऐसे अनन्त मुख्यमंत्री ही नहीं, अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके इशारेसे एक क्षणमें पलक मारते–मारते बन जाते हैं और दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाते हैं, वे अखिल ब्रह्माण्डपति स्वयं जिसके सामने आकर अत्यन्त प्रेमसे बातें करें, जिनके साथ तरह–तरहकी लीलायें करें, तो ऐसे पुरुषसे बढ़कर जगतमें और कौन है ? मानलें, जैसे भाईजी (हनुमानप्रसादजी पोद्दार) ही हैं, वे एकान्त कमरेमें बैठे विष्णु भगवान्‌से बातें कर रहे हैं, उसी समय आप आये, आपने कमरेके बाहरसे पुकारा और पुकारतेही उन्होंने आपसे बड़े प्रेमसे कहा–आओ! पधारो !! अब आप

रत्तीभर भी इस बातका महत्त्व जानते तो आपको निश्चय ही अनुभव होता कि जगत्में आपसे बढकर कोई नहीं है । क्योंकि वे ही भाईजी हैं, जिनसे भगवान् विष्णु बात करने आ चुके हैं, जिनसे नारद एवं अंगिरा ऋषि मिलने आ चुके हैं, यह हम सब जानते हैं, उन्हीं भाईजीसे हम भी तो अति निकटकी आत्मीयता पा रहे हैं। हमसे बढकर भाग्यवान् और कौन हो सकता है ? अशान्तिकी तो छाया भी हमको छू नहीं सकती । हमारा मन तो ऐसे अतुलनीय आनन्दसे छलकते रहना चाहिये कि जगत् हमको देखकर दंग रह जाये ।

जिस शरीरसे भाईजीने भगवान्की (सेठजीके कथनानुसार) पूजाकी है, जिस भाईजीके शरीरको भगवान् विष्णुके शरीरका संस्पर्श मिल चुका है, उसी शरीरसे भाईजी आपको स्पर्श करते हैं, जिन आँखोंसे सेठजी भगवान् नारायणका दर्शन करते हैं, उन्हीं आँखोंसे हम सबको भी देखते हैं, सच मानिये – यदि किसी दिवस भगवान्की कृपासे उनकी अनन्त महत्ता पर आप विश्वास कीजियेगा, उसी दिवस श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजी जैसे महापुरुषके मिलनेका क्या आनन्द होता है – यह समझ सकियेगा ।

शिवभगवानजी ! हम सभीका मन विषयोंसे कूट–कूटकर भरा है । हम लोगोंका मन एकदम गंदा है । इसीलिये महापुरुषोंके दर्शनका हमें आनन्द नहीं मिलता । समझना–समझाना कठिन है । वस्तुतः भाईजी–सेठजी जैसे महापुरुषोंके संगका आनन्द इतना दिव्य, इतना विलक्षण, इतना असीम है कि बस, इस आनन्दकी कहीं भी, किसी भी सुखसे तुलना हो ही नहीं सकती । इन महापुरुषोंका संग–जनित आनन्द ऐसा है जो क्षण–क्षण नवीन–नवीन मंगलका सृजन करेगा । वह क्षण–प्रतिक्षण बढता ही जायेगा, एवं कभी समाप्त नहीं होगा । हाथ जोड़कर, दीन होकर रोते हुए हम लोग प्रार्थना करें – "प्रभो ! अत्यंत पामर, दीन, हीन मलीन, विषयोंके कीट हमलोगोंपर अपनी कृपा प्रकाशित करो । नाथ ! तुम्हारे जन सन्तोंके प्रति निस्वार्थ प्रेम, केवल प्रेमके लिये प्रेम उत्पन्न कर दो ।" यह प्रार्थना बिना किसी व्यवधानके प्रतिदिन ही हो और यदि दिनमें भी अनेक बारकी जा सके, और भी उत्तम हो ।

शिवभगवानजी ! प्रार्थनासे बड़ा काम होता है । सच मानिये – ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे भगवान् नहीं दे सकें । ऐसी कोई प्रार्थना नहीं, जिसे भगवान् पूरी नहीं कर सके । वे एक क्षणमें असंभव को संभव कर सकते हैं । हमारी कठिनाई यही है कि उन पर हमारा विश्वास नहीं । यही हमारा सबसे भीषण दुर्भाग्य है।

हरिसे लागा रहु रे भाई ।
तेरी बनत बनत बनि जाई ।।

जिसकी अपार कृपासे, अहैतुकी कृपासे, आप यहाँ पारमार्थिक पवित्रतम वातावरणमें आ पहुँचे हैं, उसीकी अपार कृपा निश्चय ही बिना किसी भी शंका–संदेहके आपके आगेका रास्ता भी तय करा देगी, भक्त भारतेन्दु बाबूका एक पद है, उसकी दो पंक्तियाँ हैं –

जो हम बुरे होइ नहिँ चूकत नितकी करत बुराई ।
तो तुम भले होइ छाँड़त हौ काहे नाथ भलाई ।।

'नाथ ! मैं बुरा हूँ, बुरा करना मेरा स्वभाव है, मैं नित्य–निरन्तर बुराई ही करता रहा हूँ, बुराई करनेसे कभी भी नहीं चूकता, अपना स्वभाव मैं नहीं छोड़ता, तब मेरे नाथ ! तुम भले होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ते हो ? तुम्हारा स्वभाव तो भला करना है ही, फिर तुम भी अपना स्वभाव मत छोड़ो।'

बिल्कुल ऐसी ही बात भगवान् करते हैं निश्चय मानिये – जैसे सूर्यमें यह शक्ति ही नहीं कि वह किसीको अन्धकार दे सके, वैसे ही भगवान्‌में, विनोदकी भाषामें कहनेपर, यह कहा जा सकता है कि उनमें यह शक्ति नहीं कि वे किसीकी बुराई कर सकें । अब आप ही सोचें, जीत किसकी होगी ? एक ओर अखिल ब्रह्माण्डपति अपने स्वभावका पालन करेंगे और एक ओर तुच्छ प्राणी अपने स्वभावका पालन करेगा । इन दोनोंमें निश्चय ही जीत भगवान्‌की होगी ।

सूर्यसे ही सब वस्तुएँ बनती हैं । काँच, सोना, चाँदी और मणियाँ–सब सूर्य ही बनाते हैं । सूर्यकी किरणोंसे ही सब बनता है परन्तु उन्हींकी बनायी हुई चीजोंमें किसी पर तो किरण खूब चमकती है, किसी पर किरण पड़कर थोड़ा गरम होकर ही रह जाती है । इसी प्रकार भगवान्‌की अहैतुकी कृपा ही सबमें भगवद्‌विश्वास पैदा कराती है । धीरे–धीरे यह कृपा ही पूर्ण विश्वास कराती है। कृपामें पड रहकर अपने आप अन्तःकरण पूर्ण कृपा–प्रकाशका अधिकारी बन जाता है । इसलिये घबराना नहीं चाहिये–बस, पड़े रहना चाहिये कृपारूप किरणोंके प्रकाशमें । फिर अपने आप ही सर्वोत्तम बन जाइयेगा ।

यदि आप अभी किसी दूरस्थित मित्रको याद करें तो उसकी मानसिक मूर्ति तो सामने आ जायगी, पर उसका शरीर यहाँसे बहुत दूर किसी अन्य स्थानमें होनेके कारण नहीं दीखेगा; परंतु भगवान्‌में यह बात नहीं है । भगवान् और भगवान्‌का स्मरण दो वस्तु नहीं हैं । जिस समय आप भगवान्‌की मूर्ति अपने मानसपटलपर लाते हैं, उसी समय वहीं पूर्णरूपसे भगवान् आपके मनमें आ जाते हैं । पर वे बोलते इसलिये नहीं हैं कि आप उन्हें भावनाका चित्र मान लेते हैं और

थोड़ी देर बाद फिर दूसरे काममें लग जाते हैं । अब कोई एक भी लीला चित्र बाँधकर मनको उसमें डुबाये रक्खें तो उसी भगवान्‌की मूर्तिमें भगवान् प्रकट हो जायँगे; क्योंकि भगवान् वहाँ पहलेसे ही हैं । जबतक मन नहीं लगायेंगे, तबतक 'मैं भगवान्‌को चाहता हूँ' यह कहना बनता नहीं । आप ही सोचें–धन चाहनेपर मन उसमें कैसे लगता है ? कौन–सी युक्ति मन लगानेकी आपने किसी से पूछी थी ? नहीं पूछी थी, मनकी स्वाभाविक गति धनकी ओर लग रही थी, क्योंकि धनकी चाह थी । इसी प्रकार जहाँ भगवान्‌की चाह है, वहाँ मनकी गति उसी ओर दौड़ेगी । धन तो चाहने मात्रसे नहीं मिलता, उसके लिये न जाने कितने उद्योग करने पड़ते हैं, फिर उद्योगके सफल होनेका निश्चय नहीं । पर इसमें केवल चाहकी जरूरत है । 'हे नाथ ! तुम मुझे मिल जाओ – यह चाह होते ही वे मिल जायँगे । आप ही सोचें–जब भगवान्‌का चिन्तन छोड़कर मन दूसरी चीजपर जाता है, तब उसके लिये भगवान्‌से अधिक मूल्य उस वस्तुका है या नहीं ? और जब उसकी कीमत आपके मनमें अधिक है तो भगवान् क्यों आयें ? मुझे सचमुच ज्ञात नहीं कि भगवान्‌के लिये सच्ची चाह कैसे उत्पन्न होती है; पर यह ठीक–ठीक जानता हूँ कि सच्ची चाह उत्पन्न होते ही वे मिल जायँगे। मैं तो अपनी बात कहता हूँ–सचमुच मुझे यही लगता है कि चाह होते ही भगवान् उस चाहको पूर्ण कर देंगे ।

मोहन मुखारबिंद पर मनमथ कोटिक वारौं री माई ।
जहँ जहँ अंगन दृष्टि परति तहँ तहँ रहत लुभाई ।।
अलक तिलक कुंडल कपोल छबि, इक रसना मो पै बरनि न जाई ।।
गोबिंद प्रभुकी बानिक ऊपर, बलि बलि रसिक चूड़ामनि राई ।।

जगत्‌का समस्त सौन्दर्य इकट्ठा कर लेनेपर भी श्याम–सुन्दरके श्रीविग्रहके सौन्दर्यसागरकी एक बूँदके भी बराबर नहीं होता । त्रिभवनमें सबसे सुन्दर कामदेव माने जाते है; पर शास्त्रमें ऐसा वर्णन मिलता है कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके रूपके करोड़वें अंशके करोड़वें अंशसे कामदेवमें सुन्दरता आती है । श्रीकृष्णके एक–एक अंगपर करोड़ों कामदेवोंकी छबि फीकी पड़ जाती है । यह केवल भावुकताकी बात नहीं है । सचमुच ही जिन संतोंको उनकी हल्की–सी झाँकी मिल जाती है, वे बिल्कुल पागलसे हो जाते हैं । इसी त्रिभुवनमोहन नामको सुनकर श्रीकृष्णके प्रति श्रीगोपीजनोंका हृदय बिक जाता है । साधनाके बाद जब गोपीभावके साधकोंका नित्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावनधाममें जन्म होता है और गोपीदेहमें जब किशोर–अवस्थाका प्रादुर्भाव होता है, तब श्रीकृष्णका रूप देखनेका, श्रीकृष्ण–नाम सुननेका एवं उनकी वंशीध्वनि सुननेका सुअवसर उन्हें प्राप्त होता

है । बस, एक बार इन तीनोंमेंसे किसीको देखने या सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ कि एक अनिर्वचनीय दशा प्रारम्भ होती है, जिसकी जगत्में कहीं कोई तुलना ही नहीं है । सूरदास, नन्ददास आदि महात्माओंने इसी दशाका वर्णन करते हुए जो पद लिखे हैं, उन्हें 'हिलग'के पद कहते हैं,। यथार्थ दशाका वर्णन तो वाणीमें आ ही नहीं सकता । जो आता है, वह भी उसीको अनुभव हो सकता है कि जो निरन्तर भजन–स्मरण करते–करते अपनी सारी विषयासक्ति खो चुका है । अस्तु, जब गोपियोंकी व्याकुलता–श्रीकृष्णसे मिलनेकी व्याकुलता, चरम सीमाको पहुँच जाती है, तब पहले–पहल उनका रासलीलामें श्रीकृष्णके साथ मिलन होता है और इसके बाद उन्हें सेवाका अधिकार मिलता है । फिर एक लीला होती है – विरहकी लीला, अर्थात् श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंको छोड़कर मथुरा चले जाते हैं और वहाँसे द्वारका चले जाते हैं । इसी वियोगकी दशामें प्रेमका यथार्थ स्वरूप खिलता है। प्रेम क्या वस्तु है ? यह व्रजसुन्दरियोंकी दशासे कुछ–कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । इसी दशाका वर्णन करते हुए महात्माओंने लीला देख–देखकर जो पद लिखे हैं, वे विरहके पद कहे जाते हैं । महात्माओंके जो पद मिलते हैं, उनमें भी कुछ ऐसे हैं, जो कल्पनासे लिखे गये हैं और कुछ लीला देखकर–अनुभव करके लिखे गये हैं यह निर्णय पहुँचे हुए संतलोग ही कर सकते हैं कि कौन अनुभवका है, कौन कल्पनाका । पर हमारे–जैसे तुच्छ प्राणियोंकेलिये, पामर प्राणियोंके लिये तो सभी पद–चाहे कल्पनाके हों, चाहे अनुभवके हों–पवित्र करनेवाले ही हैं । अतः श्रद्धासे युक्त होकर व्रजसुन्दरियोंकी चरणधूलिकी वन्दना करते हुए, उनकी कृपाके एक कणरूप भीख माँगते हुए हमलोग उनकी विरह–चर्चा करें, सुनें । मन लगानेके उद्देश्यसे नहीं, मनको पवित्रतम करनेके उद्देश्यसे विरहकी चर्चा सुनें, करें ।

उन विरहके पदोंमें भी कई तो श्रीराधाजीके विरहके पद हैं और कई उनकी सखियोंके विरहके । पर यह भी निर्णय करना कठिन है कि कौन किसके हैं । अस्तु, किसीके भी हों, हमारे जैसोंको चरणोंमें स्थान देकर, हमारी मलिन आत्माओंको अपनी कृपाकी बूँद देकर कृतार्थ करें–यही राधारानीसे, व्रज–सुन्दरियोंसे एवं श्रीकृष्णसे प्रार्थना है ।

प्रेमकी सब अवस्थाओंका, ऊँचे–से–ऊँचे भावोंका विकास श्रीराधारानीमें होता है । रसशास्त्रके पण्डितोंने तथा भावुक, अनुभवी वैष्णवोंने इन बातोंकी विस्तारसे आलोचना की है ।· उसी प्रेमकी एक अवस्थाका नाम है–प्रेम–वैचित्त्य। इसका प्रकाश प्रायः राधारानीमें ही होता है तथा उनकी अष्टसखियोंमें ही होना सम्भव है। इसमें होता है यह कि श्रीकृष्ण पासमें रहते हैं, राधारानी स्वयं श्रीकृष्णकी

गोदमें सिर रखकर लेटी रहती हैं, पर उन्हें यह भान होने लग जाता है कि श्रीकृष्ण हमें छोड़कर कहीं चले गये और रोने लगती हैं–इतनी व्याकुलता हो जाती है कि फिर सर्वथा मरणकी दशा उपस्थित हो जाती है । श्रीकृष्णकी गोदमें रहकर ही ऐसी दशा होती है। श्रीकृष्ण यह देखकर, आनन्द–निमग्न होते है तथा राधाप्रेमकी अतुलनीय दशाका आस्वाद लेते हैं ।

रासलीलामें सब गोपियोंको छोड़कर श्रीकृष्ण राधारानीको एकान्तमें ले चले । वे दो ही रह गये और उच्चतम प्रेमकी तरगोंका प्रवाह आरम्भ हुआ । श्लोकोंमें उसका संकेत श्रीशुकदेवजीने किया है । इसके बाद अत्युच्च अवस्था, मानकी अवस्था आरम्भ हुई । यह मान यहाँका निकृष्ट अभिमान नहीं है, लोग सोचते हैं कि श्रीराधारानीने अभिमान कर लिया, इसीलिये श्रीकृष्ण उन्हें छोड़कर चले गये; पर वहाँ तो बात ही अत्यन्त विचित्र हुई थी । यह मैं केवल अपने अनुभवहीन ज्ञानपर नहीं कह रहा हूँ, परम रागमार्गीय भक्त सनातन गोस्वामीको इस लीलाका संकेत प्राप्त हुआ था और उन्होंने अपनी रासकी टीकामें इसका संकेत भी किया है । अस्तु, प्रेमकी उच्चतम अवस्था बढ़ते–बढ़ते वैचित्त्यकी अवस्था आरम्भ हो गयी और राधारानी ठीक श्रीकृष्णके पास रहकर भी यह अनुभव करने लगी कि श्रीकृष्ण मेरे पास नहीं हैं । 'हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ !' आदि उस प्रेम–वैचित्त्यकी अवस्था है, जहाँ श्रीकृष्णकी गोदमें पड़ी हुई राधारानी यह श्लोक कह रही हैं और श्रीकृष्ण आनन्दमें डूब रहे हैं । श्रीराधारानी मूर्च्छित हो जाती हैं। उसी क्षण गोपियाँ खोजती हुई वहाँ आ पहुँचती हैं । श्रीकृष्णको उनकी आहट मिल जाती है और इसके पहले कि वे राधारानीको सचेत कराकर दूसरी अवस्थामें ले चलें, उन्हें गोपियाँ दीखने लग जाती हैं । इसलिये श्रीकृष्ण वहीं वृक्षोंकी आड़में खड़े हो जाते हैं, गोपियाँ आती हैं, श्रीराधारानीको मूर्च्छित अवस्थामें पाती हैं, उनको चेत कराती हैं । राधारानी समझती हैं कि श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर बहुत पहले चले गये हैं, पर श्रीकृष्ण तो उन्हें अभी–अभी छोड़कर गये हैं, इसके पहले तो प्रेम–वैचित्त्यके कारण वे वियोगका अनुभव कर रही थीं ।

यह अत्यन्त ऊँचे स्तरके प्रेमकी बात है, जिसका विकास श्रीप्रियाजी में ही होता है । हमलोग तो केवल एक अत्यन्त निम्नस्तरमें भी जा पहुँचें तो जगत्की सभी पारमार्थिक स्थितियाँ उसके सामने फीकी हो जायँ।

दो प्रकारकी लीलाएँ होती हैं – एक सखियोंके साथ, सखियोंकी उपस्थितिमें और दूसरी केवल दोके बीचमें, जहाँ श्रीकृष्ण और श्रीराधा दो ही रहते हैं । प्रेमके ऊँचे–ऊँचे स्तरोंका विकास जब दो रहते हैं, तभी होता है उनमेंसे कुछका आस्वाद अर्थात् दर्शन मंजरियोंको, दासियोंको, सहेलियोंको, सखियोंको – निकुंजछिद्रोंसे

होता है और कुछका तो बिल्कुल ही नहीं होता ।

ऐश्वर्य, गुण–ज्ञान आदि समस्त भगवत्ता राधारानीमें ज्यों–की–त्यों रहती है, पर मुग्धताका इतना सुन्दर आवरण वे अपनी इच्छासे ही धारण किये रहती हैं कि लीला अनुपम–सर्वथा सब ओरसे अनुपम हो जाती है ।

परन्तु इस राधारानीके राज्यकी गंध भी हमें तभी प्राप्त होगी जबकि हमारे जीवनका एक मात्र उद्देश्य श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जायगा । मनसे अधिकसे अधिक श्रीकृष्णका चिन्तन करें । जब यह चिन्तन अखण्ड होने लगेगा तभी श्रीराधारानी एवं गोपियोंके प्रति आकर्षण बढेगा । आकर्षण जबतक विषयोंके प्रति है और वह कूट–कूटकर भरा है, तब तक मात्र बातें करनेसे क्या होता है। मानव जीवनकी सफलता इसी बातमें है कि जिस किसी भी प्रकारसे मनमें श्रीकृष्णके गुणोंकी, लीलाकी, नामकी मधुर–मधुर स्मृति बनी रहे । बस, इसी बातकी चेष्टा करें, इसीमें आपका एवं मेरा दोनोंका हित, कल्याण, सुख, मंगल कुछ भी कहें, है । सब इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२५

अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको भगवान्‌से जोड़ें

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आँखोंके सामने आप यह स्थान देख रहे हैं । पाल तना हुआ दिख रहा है । यहीं पर दिव्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावन–राज्य है, यहींपर श्रीकृष्ण हैं और समस्त लीला ठीक यहींपर चल रही है । मनसे चिन्तन कीजिये–'संध्याका समय है । वनसे श्रीकृष्ण गायें चराकर लौट रहे हैं । आगे गायोंकी कतार है, गायें हुमग–हुमगकर श्रीकृष्णके पास जाना चाहती हैं । पीछे भी गायोंकी कतार है । बीचमें श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर स्वरसे वंशी बजा रहे हैं । ध्वनिकी मधुरताके कारण गायोंमें भी एक अत्यन्त शान्ति–सी बीच–बीचमें आ जाती है । श्रीकृष्ण पीताम्बर पहने हुए हैं । घुँघराले केश मन्द–मन्द हवाके झोंकोंसे ललाटपर आ जाते हैं । उन्हें वे बायें हाथसे हटा देते हैं । सड़कके किनारे श्रीगोपीजनोंकी कतार लगी हुई है। श्रीकृष्ण अपने बालोंको हटाकर कभी किनारेकी ओर, कभी पीछेकी ओर ताक देते हैं, मुसकरा देते हैं । थोड़ा आगे बढ़ते हैं, गायें भी आगे बढ़ती हैं । ग्वालबाल कभी उनके पीछे हो जाते हैं, कभी आगे....., इस प्रकार मनको कभी गायमें, कभी ग्वालबालमें, कभी श्रीकृष्णमें, कभी श्रीकृष्णके मुकुटमें, कभी उनकी घुँघराली अलकोंमें, कभी वंशीमें, कभी चरणोंमें, कभी वृन्दावनके कदम्बके पेड़में, कभी आमके पेड़में और कभी अमरूदके पेड़में स्थिर करनेकी चेष्टा करें । मनको मुकुट देखनेमें लगाया और फिर आसानीसे जितनी देर वह टिक सके उतनी देर उसे

टिकाकर, जब हटने लगे तो उनके किसी दूसरे अंगमें लगा लें, फिर वहाँसे उचटे तो तीसरे अंगमें लगाते रहिये । वन, नदी, पर्वत, गाय, सड़क, गोपी, ग्वाल–बाल, आम, अमरूद, छींके, डंडे, बाँसुरी–ऐसी अनन्त चीजें हैं, जिनमें चाहियेगा, तो मन लगा सकते हैं । बस, मनको फुरसत मत दीजिये। जीभ तो मशीनकी तरह नाम लेती रहे और मन वृन्दावनके किसी भी पदार्थका चिन्तन ही करता रहे । बहुत जरूरी हो तभी मनको बाहर लाइये । नहीं तो, अन्तर्मुख रहकर प्रत्येक वृत्तिको वृन्दावनीय किसी भी पदार्थमें तदाकार करते रहिये । अभ्यास करनेसे होगा, खूब आसानीसे होने लगेगा । सब भूलकर इसकी चेष्टा कीजिये; नहीं करेंगे तो फिर कोई उपाय नहीं है ।

जहाँ भीत दीखती है, मकान दीखते हैं, टीले दीखते हैं, कुँआ दीखता है, पेड़ दीखते हैं, वहाँ आँख मूँदकर एक बार खूब दृढ़तासे निश्चय कीजिये – 'ओह ! यहाँ तो वृन्दावन है; बस, वे पेड़, वे दृश्य हैं । बस, सामने श्रीकृष्ण हैं, गायें हैं, बस–बस यही है । इस प्रकार जितनी लीलाएँ पढ़ी हैं, सुनी हैं, जितनी सुनेंगे, पढ़ेंगे, उनमेंसे जिसकी ओर मन टने, उसीमें रम जाइये । तभी रास्ता तय होगा। मनको तन्मय करना पड़ेगा ही, चाहे कैसे भी करें । उनकी कृपाका आश्रय लेकर करें तो कुछ भी असम्भव नहीं ।

घबराना नहीं चाहिये । जिनकी अनन्त कृपासे मनमें धुँधली लालसा पैदा हुई है, उनकी कृपा निश्चय ही आगे भी बढ़ा ले जायगी । जल्दी या देरी, पहुँचना तो है ही ।

अभ्याससे सफलता मिलेगी ही । नाम तो खूब जल्दी सध जायगा । हाँ, मनको खास स्वरूपकी ओर अथवा लीलाकी ओर लगाकर दूसरा काम करनेमें विशेष गाढ़े अभ्यासकी आवश्यकता है । बीच–बीचमें जल्दी–जल्दी स्मृति तो थोड़े ही अभ्याससे सम्भव है ।

छिनहिं छिन सुरति होति री माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई ।।
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई ।
रूप सुधा आनंद सिंधुमें झलमलात तरुनाई ।।
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत छुड़ाई ।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सो जगमोहनी कन्हाई ।।
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई ।
बल्लभ औचक आय मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई ।।

पद्यका भावार्थ यह है – श्रीगोपी अथवा श्रीराधाजी कहती हैं–'सखि !

बार–बार स्मृति हो रही है । वह बोलना, मिलना, चलना, मुसकाते हुए देखना, प्रीतिकी रीति, प्यारभरी चतुरता बार–बार याद आ जाती है । संध्याके समय श्यामसुन्दर गायोंके साथ आते थे, उस समय उनकी मनोहर छवि देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सुन्दरतारूपी आनन्दमय–अमृतमय समुद्र लहरा रहा हो और तरुणता (किशोरावस्था) रूपी तरंगें उसमें झलमल–झलमल कर रही हों। श्यामसुन्दरका एक–एक अंग क्या था, मानो कामदेवकी सेना हो । धीरज बरबस छूट जाता था । आँखोंपर किसी अंगकी छबि पड़ते ही मालूम पड़ता था मानों श्यामसुन्दर–रूप जादूगरने टोना फेंका हो, समस्त जगत्‌को मोहनेवाले कन्हाई अपने अंगोंकी छबिका टोना फेंककर हमें मोहित कर लेते थे । एक दिन मैं वनमें, गहन वनमें भूल गयी थी – उन प्रसंगोंकी याद कर–करके मृत्युका–सा दुःख होता है । इतनेमें ही अचानक श्यामसुन्दर आये और मन्द–मन्द मुसकाकर मेरी भुजाओंको पकड़कर मुझे कण्ठसे लगा लिया ।'

पदके इन भावोंपर एकान्तमें बैठकर विचार कीजिये । विचार करते समय मनमें एक रसकी धारा बह उठेगी । आप उसमें न जाने कहाँ–से–कहाँ बह जायँगे ।

सभी प्रेममयी लीला तथा सभी ऐश्वर्यमयी लीला, समस्त लीलाओंका आधार भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी ही हैं । श्रीकृष्ण लीलाका आस्वाद लेते हैं और श्रीराधाजी लीलाका आस्वाद कराती हैं । ऐश्वर्यमयी लीलाके भी जैसे अनन्त स्तर हैं, वैसे ही प्रेममयी लीलाके भी अनन्त स्तर हैं । व्रजलीलामें ग्वालबालोंके साथ जो लीला होती है, श्रीगोपीजनोंके साथ जो लीला होती है तथा श्रीराधाजीके साथ– केवल एक श्रीराधाजीके साथ जो लीला होती है, इन तीनोंमें बड़ा अन्तर होता है ।

इन तीनों लीलाओंमें भी कई स्तर हैं । इन स्तरोंका अनुभव प्रेमी साधककी साधनापर ही निर्भर रहता है । जो जितना ऊँचा होता है, वह उतने ही ऊँचे स्तरका अनुभव करता है । इन तीनों लीलाओंमें जो गोप–ग्वाल–बालके संगकी लीला है, उसका अनुभव तो कुछ भाग्यवान् संत कर पाते है, यद्यपि उनकी संख्या भी बहुत कम ही है । पर श्रीगोपीजनोंके साथकी लीलाका अनुभव करनेवाले संत तो बहुत ही थोड़े होते हैं तथा श्रीराधाजीके साथ जो लीला होती है, उस लीलाका अनुभव करनेवाले तो इने–गिने कुछ बिरले ही होते हैं । बात कर लेना आसान है । शास्त्र पढ़कर हम बहुत–सी बातें, लोगोंको चकित कर देनेवाली बातें बता सकते हैं; परंतु सचमुच इन लीलाओंका दर्शन होकर कृतार्थ होनेका सौभाग्य, इनमें स्वयं सम्मिलित होकर कृतार्थ होनेका सौभाग्य, तो श्रीराधारानीकी, श्रीकृष्णकी

महान् कृपासे किसी–किसीको ही होता है । जहाँ समस्त परमार्थ–साधना एवं सा॰ ॰यतत्त्व समाप्त हो जाता है, वहाँ इस लीला–तत्त्वका श्रीगणेश होता है । पर यह बात दिमागमें तबतक नहीं आ सकती, जबतक कि भगवत्कृपासे अन्तःकरण सर्वथा निर्मल होकर कृपाके ही परायण नहीं हो जाता ।

वेदान्तकी सच्ची साधना यदि हो और सचमुच हम ब्रह्मप्राप्तिकी स्थिति प्राप्त कर सकें तथा इसके बाद वस्तुतः आगे जो एक रहस्यमय अनिर्वचनीय सच्चिदानन्दमय साधनाका मार्ग है, वह आरम्भ हो, तब कहीं सम्भव है कि मनुष्य असली सगुण–तत्त्वका रहस्य समझ सके । नहीं तो, होता क्या है कि दुःखकी निवृत्ति हो जाती है, ब्रह्मानन्दकी अनुभूति हो जाती है । पर इससे भी परे कुछ ऐसी रहस्यमयी बातें हैं, ऐसा अनिर्वचनीय कुछ भगवत्तत्त्व है, जो सर्वथा किसी भी साधनाके द्वारा नहीं समझा जा सकता । उस स्थितिकी प्राप्ति सभी ब्रह्मप्राप्त पुरुषोंको भी हो ही, यह निश्चित नियम नहीं है ! हो भी सकती है, नहीं भी ।

ये सब उल्टी–सीधी बातें–शास्त्रीय ज्ञान, तत्त्वज्ञानकी चर्चा आदि तो मनुष्य उसी क्षण भूल जाय, यदि स्वप्नमें भी उसे एक हल्की–सी श्रीकृष्णके रूपकी झाँकी देखनेको मिल जाय । वह जबतक नहीं मिलती, तभीतक सारी बहस, सारी उधेड़–बुन है ।

भाई श्रीशिवभगवांनजी ! प्रेम उत्पन्न होनेपर तो एक क्षणकी भी विस्मृति हो ही नहीं सकती । हमें विस्मृति इसीलिये होती है क्योंकि भगवान्‌से हमारा प्रेम नहीं है । भगवान्‌की सत्ताका उनकी महत्ताका हमें ज्ञान नहीं है । परन्तु जब तक चित्त अशुद्ध है तबतक ब्रह्माजी भी हमें समझाने आ जायें, हम भगवान्‌की ओर उन्मुख नहीं हो पावेंगे । और यह चित्त हमने ही अशुद्ध किया है, इसमें जितना विषय–कीच है, सब हमने बटोर–बटोरकर इसमें इकट्ठा किया है । अतः जबतक हम इन वासनाओंके मलको स्वयं स्वच्छ नहीं करेंगे, कोई चाहे कितना ही बड़े–से–बड़ा सन्त–महात्मा हो, हमारा कल्याण नहीं कर सकता । अतः हम चाहे आज अभी इसे स्वच्छ कर लें, चाहे अनन्त कालमें कभी इसे स्वच्छ करें, यह जब कभी भी करना होगा, हमें ही करना है । यह मेरी बात गाँठ बाँध लें ।

सभी इष्ट मित्रों एवं सत्संगियोंको जय श्रीराधे ।

(श्री शिवभगवानजी फोगलाको मोतीलाल पारीकका जय श्रीराधे)
राधा राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–२६

प्रेम ही सचमुच सार है

रतनगढ़

५ नवम्बर १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आप ज्यौनार करना चाहते हैं, करिये । सारा जगत्का व्यवहार जागतिक शरीर करे, परन्तु मन श्रीकृष्णके पास, श्रीराधारानीके पास ही रहे । मात्र कुछ कालके लिये मनको शुद्ध करनेके लिये ही मन लगानेकी आवश्यकता है । जैसे ही मनमें किसी क्षण श्रीकृष्ण आये, फिर यह पूछने–सुननेकी सारी प्रक्रिया समाप्त हो जायगी । फिर तो उन्हें देखते ही रहियेगा और सब भूल जायेंगे ।

नारायणस्वामी थे–एक बार वे बैठे हुए थे, सामने श्रीकृष्ण दीखे । वे लगे दौड़ने । दौड़ते – दौड़ते कुसुमसरोवर पर जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर देखा – श्रीकृष्ण पीठकी ओर आगये । फिर पीछे दौड़े, दौड़ते–दौड़ते अपने स्थानपर आगये । इसी प्रकार दिनभर दौड़ते देखकर पुजारीने पूछा–बाबा ! क्यों दौड़ते हो ?' उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया । बहुत आग्रह करनेपर बोले–'भैया ! श्रीकृष्ण दीखते हैं, दीखनेपर ऐसी इच्छा होती है कि पकड़कर इनके हृदयमें समा जाऊँ; पर वे भागने लगते हैं । मैं भी दौड़ने लगता हूँ । दौड़ते–दौड़ते जब थक जाता हूँ तब वे पीछे दीखने लग जाते हैं । मै फिर पीछेकी ओर दौड़ने लगता हूँ । सारे दिन यही लीला चलती रहती है ।' पुजारीने पूछा–'बाबा ! उनसे कुछ पूछते नहीं ?' स्वामीजीने कहा–'पहले तो बहुत–सी बातें याद रहती हैं और सोचता हूँ–यह बात पूछूँगा, यह शास्त्रीय बात जान लूँगा, पर रूप देखते ही सब भूल जाता हूँ । बस, देखते ही रह जानेकी इच्छा छोड़कर बाकी सब भूल जाता हूँ ।

श्रीकृष्ण श्रीगोपीजनोंसे कुरुक्षेत्रमें मिलनेपर कहते हैं – 'गोपियों ! तुमने हमें कृतघ्न समझा होगा; क्या करें, कामकाजकी भीड़में लग गये । देखो, ईश्वर ही प्राणियोंका संयोग करता है और वही पुनः वियोग करता है ।..... सौभाग्यकी

बात है कि हमारे प्रति तुमलोगोंका प्रेम निश्चल रहा ।' बस, यह प्रेम ही सचमुच सार है । इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें वर्णित है । पर वास्तवमें श्रीकृष्ण गोपीजनोंसे हटकर भी नहीं हटे थे, श्रीकृष्ण हटते ही नहीं । उद्धवजीके ज्ञानका गर्व शान्त होनेपर जब वे श्रीकृष्णके पास लौटे हैं, उस समयका बड़ा ही सुन्दर वर्णन नन्ददासजीने किया है –

गोपी गुन गावन लग्यौ मोहन गुन गयौ भूलि ।

x x x x x

करुणामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी ।
जब ही लौं नहिं लख्यौ तबहि लौं बाँधी मूठी ।।
मैं जान्यौ व्रज जाय कै तुम्हरो निर्दय रूप ।
जे तुम कौं अवलंबहीं तिन कौं मेलौ कूप ।।
कौन यह धर्म है ।
पुनि पुनि कहै अहो स्याम ! जाय वृंदावन रहिये ।
परम प्रेमकौ पुंज जहाँ गोपिन सँग लहिये ।।
और काम सब छाँड़ि कै उन लोगन सुख देहु ।
नातरु टूट्यो जात है अबहीं नेहु सनेहु ।।
करौगे फिरि कहा ।
सुनत सखा के बैन नैन भरि आए दोऊ ।
बिबस प्रेम आबेस रही नाहीं सुधि कोऊ ।।
रोम रोम प्रति गोपिका है रहि साँवर गात ।
कल्पतरोरुह साँवरौ ब्रजबनिता भईं पात ।।
उलहि अँग–अंग ते ।
है सचेत कहि भले सखा ! पठए सुधि ल्यावन ।
अवगुन हमरे आइ तहाँ ते लगे बतावन ।।
मोमें उन मैं अंतरौ एकौ छिन भरि नाहिं ।
ज्यौं देखौ मो माहिं वे त्यों हौं उनहीं माहिं ।।
तरंगनि वारि ज्यों ।
गोपी रूप दिखाय तबै मोहन बनवारी ।
ऊधौ भ्रमहि निवारि डारि मुख मोह की जारी ।।
अपनो रूप दिखाय पुनि गोपी रूप दुराय ।
'नंददास' पावन भये जो यह लीला गाय ।।
प्रेम रस पुंजनी ।

श्रीकृष्ण ही श्रीराधा हैं, श्रीगोपियाँ हैं । श्रीराधा श्रीगोपियाँ ही श्रीकृष्ण हैं। पर वियोगके बिना प्रेमका विकास नहीं होता–यह दिखानेके लिये, जगत्के साधकोंको कृतार्थ करनेके लिये, प्रेमसाधनाकी पद्धति सिखानेके लिये वियोगका अभिनय मात्र किया गया था ।

व्रजमें आज भी लीला चलती रहती है, नित्य रसमयी लीलाका प्रवाह अनादिकालसे चलता आ रहा है, अनन्त कालतक चलता रहेगा । साधक जब उस लीलामें प्रवेश करता है, तब पहले कुछ दिन वहाँ नित्य सखियोंके संगमें रहकर पकाया जाता है । वही हिलगकी स्थिति है । इसके बाद जब व्याकुलता चरम सीमाको पहुँच जाती है, तब रासमें सर्वप्रथम मिलन होकर – अनन्तकालके लिये स्वयं भी सेवामें अधिकार पाकर निहाल हो जाता है यह एक साधारण नियम है ।

यों तो यह व्रजराज्य ऐसा है, जहाँ श्रीकृष्ण जब चाहें, जो चाहें, वही नियम बन जाता है । प्रेमका साधक तो श्रीकृष्णका अपने–का–अपना होता है। उसके लिये कौन–कैसा नियम ! परन्तु प्रेममें त्याग–ही–त्याग है । जिसके जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्ण ही साध्य–साधन हैं, उसीके लिये यह पथ है, दूसरेके लिये इसकी गुंजाइश नहीं है । पतिव्रताकी तरह उसे बाट देखनी पड़ती है कि पतिका संदेशा लेकर कौन आता है, स्वयं चलकर दूतकी तलाशमें पतिव्रता नहीं जाती । स्वामीका दूत ही पतिव्रताके पास आता है । उसी प्रकार साधक श्रीकृष्णका नाम लेकर निरन्तर आँसू बहाता रहता है और श्रीकृष्णकी ओरसे समयोचित अधिकारोचित चेष्टा होती है ।

मनमें तीव्र लगन, तीव्र चाह, उत्कण्ठाकी तीव्र आग है; पर बाहर किससे कहें ? साधक समझता है – 'मेरे नाथ ! तुम्हें ज्ञात है, तुम्हारे पास साधन है, तुम चाहो तो आ सकते हो, पर मैं चलकर भी तुम्हारे पास नहीं पहुँच सकता । मेरे जीवनधन ! अनन्त जीवनकी चाह लेकर बैठा हूँ, कृपाकी डोरीको स्वयं कृपा करके पकड़ा दो । अंधा हूँ, पथ नहीं जानता । मेरे प्रियतम ! जिस पथसे चलना चाहता हूँ, उसमें कोई साथी नहीं । तुम्हारे सिवा अवलम्बन नहीं, एकमात्र तुम्हीं सम्हाल सकते हो । सम्हाल लो, नाथ ! ऐसी प्रार्थना हो, निरन्तर मशीनकी तरह नाम मुँहसे निकलता रहे तथा मन लीलाकी तरंगोंमें डूबता–उतराता रहे–यही करना चाहिये ।

आप सायंकाल ज्योनारमें बैठे रह सकते हैं, पर मनसे अपनेको बरसानेके सरोवरपर रख सकते हैं, देख सकते हैं । वहाँ श्रीराधारानी हैं, ललिता हैं, श्रीकृष्ण हैं, मधुर वंशी बज रही है । सब हो सकता है; पर चलना होगा आपको ही, इसकी तैयारी करनी पड़ेगी आपको ही । सारा प्रपंच , सारा व्यवहार इसीके

अनुकूल होनेपर ही स्वीकार्य है; अन्यथा तुरंत सबकी आहुति देनेके लिये सच्ची लगन रखनी पड़ेगी । मित्र रहेंगे, परिवार रहेगा, माँ रहेंगी; पुत्र रहेंगे; आपके सिरपर पगड़ी, टोपी, बदनपर कोट भी ऐसा ही रहेगा, पर मनमें एक विलक्षण व्याकुलताकी आग जलती रहेगी । यह जलन बढ़ती ही चली जायगी । 'कैसे श्रीकृष्ण–चरणोंमें न्यौछावर हो जाऊँ, क्या करूँ, कैसे करूँ ?' एकान्तमें बैठकर रो पड़ियेगा । यह होगा उनकी कृपासे ही; पर उसके पहले आप भावना कीजिये, उनकी कृपा अनन्त है । कृपाको ग्रहण करते चले जाइये । 'प्रेमगली अति साँकरी, तामें द्वै न समाय ।' संसार और श्रीकृष्णप्रेम दोनों साथ नहीं रह सकते। या तो संसार ही रहेगा अथवा भगवान् ही रहेंगे । और क्या कहूँ । सबको राधे राधे ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२७

ब्रह्मप्राप्त पुरुषोंमें व्रजभावका उन्मेष हो – यह आवश्यक नहीं है

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौवन्दे । आपका पत्र मिला । यहाँ आप जो वन, पर्वत, नदी, झरने, स्त्री, पुरुष, हिरन, गाय, पक्षी, महल, सड़क देखते हैं, जो कुछ भी स्त्री–पुरुषोंमें, पिता–पुत्रमें, मित्र–मित्रमें प्रेमका भाव देखते हैं, इन्हें देखकर उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी कुछ कल्पना की जाती है । पर वास्तवमें वह राज्य नहीं है, ऐसी बात नहीं है । बल्कि उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी उन–उन चीजोंके आधार पर ही ये चीजें भी कल्पित हुई हैं, उसके आधार पर ही चीजें हैं, उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी छाया–जैसी हैं । समझने–समझानेके लिये कोई दृष्टान्त ही नहीं है एक दिन सोच रहा था कैसे समझाऊँ ? पासमें कमण्डलु पड़ा था, सूर्यकी किरणोंमें उसकी छाया पड़ रही थी । मैंने कमण्डलुको घुमाना शुरू किया । विचित्र–सी छाया बनती गयी । उस छायाको देखकर कभी तो यह अनुमान हो सकता था कि कमण्डलु इस छायाका आधार है; पर कभी–कभी तो यह पता ही नहीं लग सकता था कि ऐसी छायाका आधार भी कमण्डलु हो सकता है। कुछ ऐसे ही यहाँ भी समझ सकते हैं । यहाँ जो कुछ दीख रहा है––पहाड़, नदी, वन, सूर्य, चन्द्र, गाय, सरोवर, बर्तन, साड़ी, डंडा, स्त्री–पुरुषका ढाँचा, आपसमें प्रेमका व्यवहार––सब–की–सब चीजें उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी नकल हैं। इन सबका आधार वह सच्चिदानन्दमय राज्य ही है । पर वह दिव्य राज्यं त्रिगुणात्मक मायाके आवरणके अन्तरालसे प्रतिभासित होकर विकृत हो जाता है । जहाँ आपको ये चीजें दीखती हैं, वहींपर महान अनिर्वचनीय दिव्य सच्चिदानन्दमय वृन्दावन है । पर अभी तो उसकी कल्पना सर्वथा असम्भव है। हाँ, इनको न देखकर इसके आधारपर दृष्टि डालते ही, मन टिकाते ही, इस भ्रान्तिमय छाया–स्वरूप

राज्यकी निवृत्ति हो जायगी; फिर वह चीज देखनेको मिलेगी, जो सर्वथा सब ओरसे विकारहीन सच्चिदानन्दमय है।

सच्चे वेदान्ती तो साधना करके सत्तास्वरूप सच्चिदानन्दमय राज्यमें विलीन हो जाते हैं । पर जो लड़ने—झगड़नेवाले हैं, उन्हें यह समझना ही कठिन है कि ऐसी भ्रान्ति इस रूपमें क्यों होती है । उनकी बुद्धि यह समझ ही नहीं सकती कि ठीक इस भ्रान्तिके अन्तरालमें कुछ न कुछ ऐसी ही, ज्यों की त्यों चीज है, जिसके कारण यह भ्रान्ति है ।

यहाँ आप पदोंमें सुनते हैं——श्रीकृष्ण गोपियोंको छेड़ते हैं, किसीका हाथ पकड़ लेते हैं । अब ये चेष्टाएँ यद्यपि हैं ठीक ऐसी ही, पर ऐसी होकर भी ये लौकिक नहीं, परम दिव्य हैं, सर्वथा चित्—आनन्दसे सब ओरसे ओतप्रोत हैं । उन्हें बुद्धिसे समझा ही नहीं जा सकता । उनका तो कोई बिरले भाग्यवान् महात्मा ही अनुभव करते हैं । अनुभवके पहले तो इन लीला—प्रसंगोंमें यहाँकी विकारमयी चीजोंके विकारमय भावोंका ही अधिकांश आरोप हो जाता है । महात्मा लोग ऐसी लीलाको चीनीके तूँबेसे उपमा देते हैं । चीनीका बनाया हुआ तूँबा देखकर कोई भी समझ नहीं सकता कि यह कडुवे तूँबेके अतिरिक्त कोई और चीज है । वह उसकी कटुताकी ही कल्पना करता है । ऐसे ही उस लीलाकी अत्यन्त माधुर्यमयी, सच्चिदानन्दमयी बातें भी अनधिकारियोंके द्वारा विकृत हो जाती हैं । खूब सोच लें, यह दृढ़ सिद्धान्त मान लें——समस्त जागतिक आसक्ति मिटाकर, समस्त आश्रय त्यागकर श्रीकृष्णको पकड़ना होगा, केवल तभी इस लीलाका उन्मेष सम्भव है । नहीं तो ब्रह्म—प्राप्त पुरुषोंमेंभी इसका उन्मेष हो ही, यह नियम नहीं है ।

जितनी चीजें आप देखते हैं, जो आपको प्यारी लगती हैं, जो भाव आपको प्यारा लगता है, यहाँ इस राज्यके सम्बन्धसे तोड़कर उसे दिव्य राज्यसे जोड़ दीजिये । सुन्दर—से—सुन्दर बगीचा देखा है, कुंज देखी है, उसीके आधार पर उसमें दिव्यताका भाव करके उसे वृन्दावन—कुंजके रूपमें बढिया—से—बढिया घड़ेकी जो कल्पना हो, उसका मानसिक चित्र खींचकर उससे श्रीकृष्णका हाथ धुलाना है—यह समझकर उस कलशका ध्यान कीजिये। इसी प्रकार जिस लीलाका भी वर्णन पढते हैं, उसके प्रत्येक वाक्यमें एक—एक, दो—दो, वस्तुओंका अवश्य ही उल्लेख मिलेगा, जिन्हें आपने देखा है । बस, उन्हींका चिन्तन कीजिये। एकसे मन उचटते ही दूसरेसे जोड़ दीजिये । जिस प्रकारसे भी हो, मनको उसी राज्यकी किसी वस्तुसे जोड़े रहिये । फिर निश्चय मानिये कि उसीको निमित्त बनाकर

श्रीकृष्णके दिव्य राज्यमें प्रवेशाधिकार मिल जायगा । मन टिकते ही इस भ्रान्तिमय राज्यकी निवृति हो जायगी और फिर ठीक इसी जगह सत्यवस्तु जो पहले ही है, निरन्तर है, प्रकाशित हो जायगी । पूरी चेष्टा करके मनको इस जगत्से निकालकर यहीं पर चलती हुई लीलामें, परम रमणीय रूपमें, वृक्ष, साड़ी, पगड़ी, बर्तन, बगीचे, महल आदिमें जोड़ दें, फिर निश्चय ही अभूतपूर्व शान्तिका अनुभव होगा । अभी मन दिन—रात चिन्तन करता है, कलकत्ता, बम्बई, तिजोरी, पेटी, कागज, पेंसिल, यहाँके कपड़े—लत्ते का । इनके बदले उसे वृन्दावनीय पदार्थों में जोड़ना है । यही करना, बस इतना ही करना है । फिर भगवत्कृपा का समुद्र उथलकर आपके सम्मुख सत्य वस्तुको प्रकट कर देगा और एक बार सत्य प्रकट हुआ नहीं, वह इतना आकर्षक है कि वह मनको अपने आकर्षणमें ऐसा जकड़ेगा कि मन हिलेगा ही नहीं, उसीमें पूर्णतया रससिक्त हुआ डूबा रहेगा । परन्तु यह सब होगा करने से ही । और क्या कहूँ । सभी इष्ट मित्रों, सत्संगी बन्धुओंको राधे—राधे ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२८

जो राधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं

रतनगढ
१५ दिसम्बर १९४१ ई.

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधे–राधे । आपका पत्र मिला । भगवान्‌की समस्त लीलाओंका आधार (मूल) एकमात्र श्रीराधिकाजी ही हैं । ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति हैं । स्वरूपा–शक्ति हैं । ये ही अनन्त रूप धारण करके श्रीकृष्णलीलाका सामंजस्य करती हैं । श्रीराधाजीकी प्रेम–लीला इतनी ऊँची है कि वस्तुतः वे जिसे कृपा करके कुछ दिखाना चाहें वही देख सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है । वे आज भी हैं और भावनाके अनुसार जैसी भी इच्छा कीजियेगा, वैसी ही उसी क्षण उस इच्छाकी पूर्ति कर सकती हैं । जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही राधा हैं । इनमें तनिक भी, रत्तीभर भी किसी भी प्रकारका अन्तर नहीं है। एक सच्ची घटना सुनाता हूँ, व्रजमें हुई थी ।

तीन महात्मा घूम रहे थे । घूमते–घूमते उनमें जो कुछ अधिक आयुके थे, वे तो थक गये । उन्होंने कहा––'भैया ! अब तुमलोग जाओ; मैं तो अब यहीं आराम करूँगा ।' तीनोंने दिनभर कुछ भी नहीं खाया था । अतः एक तो ठहर गये, दो आगे बढ़े । बरसाना निकट आ गया । दोनों बड़े श्रद्धालु थे । दोनोंने आपसमें सलाह करके यह निश्चित किया कि आज चलो, श्रीजीके अतिथि बनें । बात विनोदमें हुई थी; अतः उन लोगोंने फिर इसपर विचार नहीं किया । सोचा––अब रात हो गयी है, कहाँ माँगने जायँ; यहीं रातमें, मन्दिरमें, जो कुछ प्रसाद मिल जायगा, उसे खाकर पानी पी लेंगे । उस दिन मन्दिरमें उत्सव था । उत्सव देखनेमें लग गये । उत्सव समाप्त हुआ, लोग चले गये । करीब ग्यारह बजे मन्दिरके पुजारीजी जोर–जोरसे पुकारकर कहने लगे––'अरे, यहाँ दो आदमी

श्रीजीके अतिथि कौन हैं ?' इन लोगोंने आवाज सुनी, वह विनोदकी बात याद आगयी । फिर प्रेममें निमग्न हो गये । दोनोंने कह दिया––'कोई होगा ।' पश्चात् पुजारीजी इन दोनोंको ले गये और प्रसादमें जो–जो बढ़िया–से–बढ़िया चीजें थीं, भरपेट खूब प्रेमसे दोनोंको खिलायीं । इन लोगोंने प्रेममें भरकर खूब आनन्दसे प्रसाद पाया तथा पूर्ण तृप्त होकर फिर एक छतरीमें जाकर सो रहे, जो वहाँसे कुछ ही दूर हटकर थी । सोनेके बाद दोनोंको एक ही समय एक ही स्वप्न आया । दोनोंने देखा, एक अत्यन्त सुन्दर बारह वर्षकी बालिका आयी है और पूछ रही है–'क्यों, तुम लोगोंने भरपेट भोजन तो किया ? हमारे अतिथि हो न ?' उन लोगोंने स्वप्नमें ही कहा–'खूब छककर खाया।' बालिका बोली––'पर आज प्रसादमें खूब बढ़िया पान था, पुजारी वह देना भूल गया । वही पान लेकर मैं आयी हूँ ।' यह कहकर उसने दोनोंके पास दो–दो खिल्लियाँ पानकी रख दीं। उसी समय दोनोंकी नींद खुल गयी । उठकर देखा तो सिरहाने दो–दो बीड़े पानके रखे हुए हैं । दोनों रोने लगे, प्रेमसे व्याकुल हो गये । पानकी बीड़ी मुँहमें रखकर प्रेममें अधीर हो गये । दोनोंने अपना स्वप्न एक दूसरेको सुनाया–एक ही समयमें दोनोंको एक ही स्वप्न हुआ था ।

यह सच्ची घटना है और जिनको ऐसा अनुभव हुआ है, वे शायद जीवित हैं। बात इतनी ही है कि श्रीराधारानी, श्रीकृष्ण केवल विश्वास देखते हैं, फिर जैसे भरपेट भोजन देकर उनको अतिथिके रूपमें स्वीकार कर लिया, वैसे ही सच्चे विश्वासके साथ उनका दर्शन चाहनेवाले, उनकी लीलाको देखकर कृतार्थ होनेकी इच्छा रखनेवालेको वे अतिथि बनाकर उसका वैसा ही अतिथिसत्कार कर सकते हैं । उनके लिये सभी समान हैं, किसीके प्रति भेदभाव नहीं है । अतः आप यदि अनन्य मनसे आतुर होकर श्रीकृष्णसे, श्रीराधारानीसे चाहें कि 'बस, आपका निरन्तर चिन्तन हो, निरन्तर आपकी लीला सुननेको मिले, तो सच मानिये, देरका काम नहीं है । अवश्य इस प्रार्थनाको वे सुनेंगे । पर प्रार्थना सच्ची हो तब । जबतक आपकी प्रार्थना सच्ची न हो, तबतक झूठे ही मनसे बार–बार कहते रहिये। झूठी प्रार्थनाको भी वे कृपा करके समयपर सच्ची बना देते हैं ।

आपकी यह चाह बड़ी उत्तम है कि निरन्तर श्रीकृष्णका स्मरण बना रहे और लीला सुननेको मिले । यह बहुत ही उत्तम चाह है । बस, चाहते चले जाइये, झूठी–सच्ची जैसी भी चाह हो–चाहते ही चले जाइये । चाह बनी रहेगी तो वह कभी सच्ची भी हो जायगी और किसी–न–किसी दिन पूर्ण कृपाका प्रकाश होगा ही ।

श्रीगोपियाँ उद्धवजीसे कहती हैं––

नाहिन रह्यो हिय मैं ठौर ।
नंदनंदन अछत कैसैं आनिये उर और ।।
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात ।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात ।।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक–लाज दिखाय ।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाय ।।
श्याम–गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास ।।

इस पदके आधार पर ऐसी भावना कीजिये कि सचमुच सामने उद्धव–लीला हो रही है तथा एक प्रेम–रसनिमग्ना व्रजसुन्दरी कह रही है––'उद्धव ! क्या करूँ, तुम्हारी बात ठीक है, पर हृदयको तुम देखा लो;इसमें तो केवल श्यामसुन्दर–ही–श्यामसुन्दर भरे हैं ! मैं चाहूँ, तो भी क्या करूँ, जब कि जगह ही नहीं बच रही है । उद्धव ! तुम्हीं बताओ, प्रियतम प्राणनाथ श्यामसुन्दरको छोड़कर उनकी जगह दूसरे किसीको कैसे बैठाऊँ? मेरे श्यामसुन्दरने मेरे हृदयको चारों ओरसे घेरकर छा लिया है, उनके रहते हृदयमें दूसरेको कैसे बैठाऊँ ? नहीं–नहीं, उद्धव ! असम्भव है । प्राण भले ही चले जायँ, पर अब इस हृदयमें दूसरेका प्रवेश नहीं हो सकता, यहाँ तो बस, नित्य–निरन्तर श्यामसुन्दर ही रहेंगे ।'

'उद्धव ! तुम्हे विश्वास नहीं होगा––वह मूर्ति, प्यारे श्यामसुन्दरकी मूर्ति कभी एक क्षणके लिये भी हृदयसे नहीं हटती । मैं चलती हूँ, उस समय भी श्यामसुन्दरकी छबि मेरे हृदयमें रहती है । मैं जिस क्षण अपनी दृष्टिको बाहर किसी और पदार्थकी ओर ले जाती हूँ तो देखती हूँ, वहाँ भी मेरे श्यामसुन्दरकी छबि है, हृदयमें भी, बाहर भी केवल श्यामसुन्दर ही दीखते हैं । दिनभर जबतक जागती रहती हूँ, तबतक श्यामसुन्दर, एकमात्र श्यामसुन्दर ही नजरोंके सामने रहते हैं । रातमें जिस क्षण सोनेकी चेष्टा करती हूँ, उस समय भी श्यामसुन्दरका तिरछी चितवनयुक्त मुखारविन्द सामने रहता है । स्वप्न देखने लगती हूँ, देखती हूँ–श्यामसुन्दर आये हैं, मेरे सामने खड़े हैं, मेरी ओर तिरछी चितवनसे देख रहे हैं। मैं पकड़ने दौड़ती हूँ, वे पीछे हटने लग जाते है; मैं सहम जाती हूँ वे भी खड़े हो जाते हैं । फिर पकड़नेके लिये दौड़ती हूँ, फिर भागने लगते हैं । इस प्रकार उनको न पकड़ पानेपर मैं जब रोने लगती हूँ, तब बस, हँसते हुए आकर मुझे हृदयसे लगा लेते हैं । आँखें खुल जाती हैं– मैं देखती हूँ, विचार करती हूँ, स्वप्न था; पर फिर सामने देखती हूँ,–नहीं, नहीं, वे तो सामने खड़े हैं, ये हैं, ये हैं । इस

प्रकार उद्धव ! एक क्षणके लिये भी श्यामसुन्दरकी वह घुँघराली अलकोंवाली छबि मेरे मनसे नहीं हटती । उद्धव ! एक क्षणके लिये भी प्यारे श्यामसुन्दरके सिवा और कोई वस्तु नजर ही नहीं आती । नाराज मत होना––तुम श्यामसुन्दरके प्यारे सखा हो, तुम्हारी बात मैं नहीं सुन पा रही हूँ, पर न सुननेके लिये लाचार हो गयी हूँ । उद्धव ! कोई उपाय नहीं रह गया है । उद्धव ! न जाने श्यामसुन्दरने तुम्हें सिखाकर भेजा है या तुम अपने मनसे ही इस योगकी बात सुना रहे हो; पर कुछ भी हो, तुम्हीं सोचो, हम गाँवकी ग्वारिनें योग लेकर क्या करेंगी । सचमुच तुम भूलते हो, तुम ठगा गये हो; अरे, तुम जिस श्यामसुन्दरकी बात सुना रहे हो, उसके हृदयकी बात ही तुम नहीं जानते । तुम कहते हो–श्यामसुन्दर सर्वेश्वर हैं, समस्त संसारके एकमात्र स्वामी हैं ।' तुम्हें पता नहीं, वही सर्वेश्वर, वही अखिल ब्रह्माण्डनायक अपने आपको व्रजमें आकर भूल गया । तुम्हें एक दिनकी बात सुनाती हूँ, तुम चकित रह जाओगे । विश्वास करो, उद्धव ! वे मेरे प्रियतम प्राणनाथ हैं । मेरा सब कुछ उनका है और उनका सब कुछ मेरा है । तुम्हें सुनाती हूँ–

'मथुरा जानेके कुछ ही दिनों पहले मैं उनसे रूठ गयी थी । श्यामसुन्दरके सखा ! मैं देखना चाहती थी, उस दिन हृदय खोलकर देखना चाहती थी, मेरे प्रियतम मुझे कितना प्यार करते हैं । आँखोंके सामने श्यामसुन्दर थे और मैं मुँह फेरकर बैठ गयी । वे आये, बड़े प्रेमसे मेरे हाथों को पकड़कर बोले–'प्रियतमे अपराध क्षमा करना, मैं देरसे आया; तुम मेरी प्रतीक्षामें व्याकुल थी; पर क्या करूँ ? तुम्हारा ध्यान करते–करते मैं भूल गया था कि मैं तुमसे दूर हूँ; मैं तुम्हें पास ही अनुभव कर रहा था, सब कुछ भूलकर तुम्हें ही देख रहा था । विश्वास करो, मेरी प्राणेश्वरी ! मेरे हृदयमें तुम्हारे सिवा और किसीके लिये तिलभर भी जगह नहीं; तुम मेरी जीवन हो, तुम मेरी प्राण हो, प्रिये .....' उद्धव ! अब बोला जाता नहीं, कण्ठ भर आया; अब आगे तुम्हें उस दिनकी बात नहीं सुना सकूँगी । मेरे प्यारे श्यामसुन्दरकी उस दिनकी झाँकी, उस दिनकी लीला तुम्हें अब आगे नहीं सुना सकूँगी, चाहनेपर भी तुम्हें नहीं सुना सकूँगी । नाराज मत होना, सुननेपर भी तुम समझ नहीं सकोगे । उद्धव ! उद्धव ! बस, बस, इतना ही कहती हूँ कि तुम ठगे गये–मेरे प्रियतमके हृदयकी बात, हृदयका रहस्य तुम नहीं जान सके। तुम्हारे सर्वेश्वरके हृदयमें क्या–क्या है, वे इसे नहीं जानते । उद्धव ! उनका हृदय ओह! क्या बताऊँ; वह तो मेरे पास है । यह देखो, देख सको तो देखो; तुम्हारा सर्वेश्वर यहाँ मेरे हृदयमें क्या कर रहा है; पर तुम अभी नहीं देख सकोगे । जाने दो, उद्धव ! हम गँवारी ग्वालिनोंको मरने दो, श्यामसुन्दरका नाम ले–लेकर

मरजाने दो । उद्धव ! उद्धव ! तुम भूलते हो–लोक–लाजको, कुलकानको, यश–अपयशको तो आजसे बहुत पहले मैं जला चुकी हूँ; सबको भस्म कर चुकी हूँ वे सब–के–सब न जाने कभीके जलकर खाक हो गये और बह गये उस अजस्र धारामें, श्यामसुन्दरके प्रेमकी प्रबल रसधारामें । उनकी गन्ध भी नहीं बच रही है । उद्धव ! यदि तुम देख सकते तो देख पाते कि मेरे हृदयमें क्या भरा है, प्यारे सखा श्यामसुन्दरके सखाके नाते तुम मेरे भी सखा हो; पर सखा ! क्या करूँ, तुम्हारी आँखें वहाँ नहीं पहुँच रही हैं । देखो, मेरे शरीरके सूखे ढाँचेके भीतर दृष्टि ले जाओ–वहाँ देखो, देखो, केवल श्यामसुन्दरका प्रेम–समुद्र लहरा रहा है, तरंग–पर–तरंग उठ रही है । उनमें मैं हूँ और श्यामसुन्दर हैं, दोनों ही उस असीम अगाध प्रेम समुद्रके अतल तलमें डूबे हुए हैं। वहाँ और कोई नहीं है, केवल मैं हूँ और मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर ! वह देखो, मैं श्यामसुन्दर बन गयी, श्यामसुन्दर ..... ओह, तुम नहीं देख पाते । क्या करूँ, जाने दो ।'

'उद्धव ! उस प्रेम–समुद्रमें डूबे हुएको, बिल्कुल तलमें जाकर विलीन हो जानेवालेको तुम बाहर लाना चाहते हो ? प्रेमके समुद्रको तुम घड़ेमें अँटाकर रखना चाहते हो? सोचो, कितनी भूल कर रहे हो, देखो, उद्धव ! तुम चाहो, मैं चाहूँ तो भी समुद्र घड़ेमें नहीं समा सकता ! अरे, मैं पगली हो गयी हूँ––क्या कहते–कहते क्या कह जाती हूँ ! मैं भूल गयी, उद्धव ! बस इतना ही कहना है, व्यर्थकी चर्चा हमें मत सुनाओ । हम ग्वालिनें योगकी बात, ज्ञानकी बात सुनकर क्या करेंगी ? अजी, तुम हमें ठगने आये हो ? नहीं, नहीं, उद्धव ! ठग नहीं सकोगे, तुम्हारा यह योग हमें भुला नहीं सकेगा । तुम्हार यह ज्ञान हमें भुला नहीं सकेगा । मैं चाहूँ तो भी नहीं भूल सकती ।'

'सुनो, प्यारे सखा ! बड़ी छिपी बात बतलाती हूँ । आजसे बहुत दिन पहले श्यामसुन्दर आये थे, उन्होंने मेरे इस शरीररूपी घड़ेको अपने प्रेमसे भर दिया। भरकर फिर क्या किया, बताऊँ ? स्वयं रसरूप होकर बाहर–भीतर, नीचे–ऊपर, दाहिने–बायें, सब जगह पहरा देने लगे । उद्धव ! प्यारे उद्धव !! मेरे सूखे शरीरके भीतर देखो, तब पता चलेगा–देखो, श्यामसुन्दर रसरूप होकर भीतर भरे हैं । यह शरीरका घड़ा भरा है प्रेमसे, और सर्वथा सब ओरसे बंद है। इसे तुम क्षारसमुद्रमें, योगकी खारी चर्चामें डुबाना चाहते हो ? यह भी कभी सम्भव है ? उद्धव ! इस प्रयासको छोड़ दो । यह प्रेमका घट तुम्हारे योगके खारे समुद्रमें कभी डूबनेका नहीं है । यह तो डूबेगा श्यामसुन्दरके मधुर सुधामय प्रेमसमुद्रमें । स्वयं श्यामसुन्दर आयेंगे, स्वयं इसका मुँह खोलकर इसे अपनेमें मिलाकर एक कर लेंगे। प्यारे सखा ! उपाय नहीं है । लाख प्रयत्न करो, श्यामसुन्दरके हाथोंसे भरा हुआ

प्रेममय घट, अमृतमय घट तुम्हारे योगके खारे समुद्रमें डूबेगा ही नहीं । ओह ! मैं सचमुच पागल हो गयी हूँ, क्या–क्या बक रही हूँ । क्षमा करना प्यारे सखा ! मैं होशमें नहीं हूँ, यह पगलीका प्रलाप है । मेरे जले हुए––झुलसे हुए हृदयमें ज्ञान नहीं बच गया है कि मैं विचारकर तुमसे बात करूँ । कभी कुछ, कभी कुछ बकती ही चली जा रही हूँ ।'

'प्यारे श्यामसुन्दरके सखा ! तुम देख नहीं पाओगे; पर यदि देख पाते तो देखते कि श्यामसुन्दर यहाँसे कभी कहीं गये ही नहीं, एक क्षणके लिये भी कहीं बाहर नहीं गये । वे यहीं हैं, सदा यहीं रहते हैं और यहीं रहेंगे। मैं रहूँगी और मेरे प्रियतम रहेंगे । अनन्त कालतक रहेंगे । अभी–अभी कलकी बात है । तुम्हें सुनाती हूँ, कल सायंकालकी बात है । मेरे प्रियतम प्राणनाथ वनसे गाय चराकर लौट रहे थे । मैं उस क्षण घरके भीतर बैठी थी, अनुभव कर रही थी कि श्यामसुन्दर तो पास ही हैं । इतनेमें वंशी बजी, चेत हुआ, सोचा, भ्रम हो गया है, श्यामसुन्दर तो गाय चराकर अभी लौट रहे हैं । मैं सुनने लगी उस मुरलीकी मधुर ध्वनिको । मेरे नाथ, मेरे प्राणबन्धु मेरा नाम ले–लेकर मुरलीमें सुर भर रहे थे । बाहर आयी, देखा–आह ! कैसी अनुपम छबि थी । नील कमलके समान सुन्दर मुखारविन्द था, श्याम मेघके समान समस्त शरीर संध्याकालीन सूर्यकी रश्मियोंमें झलमल–झलमल कर रहा था, मुखपर धूलिके कण उड़–उड़कर पड़ रहे थे, स्वेदकी कुछ बूँदें झलक रही थीं, घुँघराली अलकें बार–बार मुखपर आ जाती थीं और मेरे प्यारे श्यामसुन्दर उन अलकोंको बार–बार बायें हाथसे हटाते रहते थे। आह, उन आँखोंकी शोभा क्या बताऊँ ! तुरंतका खिला कमल उस शोभाके सामने फीका पड़ जाता था । मेरे हृदयेश्वर बार–बार तिरछी चितवन डालकर मुझे देख लेते थे । मैं देख रही थी और वे मस्तानी चालसे, अत्यन्त मधुर चालसे चलते हुए मेरी ओर ही आ रहे थे। उद्धव ! उद्धव !! मैं मूर्च्छित होती जा रही थी, मुझपर उनकी मनोहर मुसकान जादूका काम कर रही थी । इतनेमें ही वे बिल्कुल मेरे पाससे होकर निकले । मित्र ! क्या बताऊँ ? रोक न सकी मैं अपनेको; उनमें मिल जानेके लिये, अपने–आपको उनमें मिला देनेके लिये दौड़ पड़ी । वे हँसने लगे, हँसते–हँसते लोट–पोट–से होने लगे । अपने सखा सुबलको उन्होंने कुछ संकेत किया, मैं कुछ सहमी, वे कुछ हँसकर आगे बढ़े, मैं भी आगे बढ़ी । मैं और वे दोनों आमने–सामने थे । मैं झमूरेकी तरह नाच रही थी वे आगे बढ़ते, मैं आगे बढ़ती; वे पीछे हटते, मैं पीछे हटती; वे हँसते, मैं हँसती । इस प्रकार न जाने कितनी देर हमलोग खेलते रहे । पर मैं अब अपनेको सम्हाल न सकी । मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरने ही जा रही थी, बस गिर ही चुकी थी कि मेरे प्राणनाथ दौड़े आये

और उन्होंने अपनी सुकुमार भुजाओंका सहारा देकर मुझे बैठा दिया । पास ही मेरी सखी खड़ी थी, उसे संकेत करके उन्होंने कहा–री! नेक इस बावलीको सम्हाल ।' उद्धव ! ···· अब आगे कुछ कहते नहीं बनता, बस, उस आनन्दको व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं । आह, अद्धव'! मेरे प्यारे सखाके ····· मैं भूल गयी हूँ, अपने–आपको भी भूल जाती हूँ ।'

'नहीं, नहीं, मित्र ! श्यामसुन्दर तो मथुरा गये हुए हैं, कल नहीं, कुछ दिन पहले ऐसी घटना हुई थी । सचमुच उद्धव ! मैं भूल गयी थी, सोच रही थी कि कल ही वह घटना घटी थी, इसलिये सुनाती गयी । पर प्यारे सखा ! प्यारे श्यामसुन्दरके सखा ! मोहनके सखा ! वह घटना रोज ठीक शाम होते ही आँखोंके सामने नाचने लगती है । ठीक–ठीक अनुभव करती हूँ, वैसे ही हो रहा है । अब कुछ होश हुआ है, सोचती हूँ–प्राणनाथ मथुरामें हैं, मैं तो पगली हो रही हूँ, इसीलिये उन्हें पास अनुभव करती हूँ । जो हो, मित्र ! वह मुखसरोज, वह श्याम मेघ–सा शरीर, वे कमलके समान नेत्र, वह मस्तानी चाल, उनकी वह मोहन मुसकान कभी भूली नहीं जाती । निरन्तर वे ही, वे ही आँखोंके सामने नाचते रहते हैं । प्यारे मित्र ! श्यामसुन्दरके सखा ! मेरे प्राणनाथका हृदय अत्यन्त उदार है, उसमें निष्ठुरता नामको भी नहीं है । उन्हें मेरी दशाका पता नहीं, इसीलिये वे देर कर रहे हैं । इसीलिये प्यारे उद्धव ! मैं हाथ जोड़कर एक भीख माँगती हूँ, एक विनय करती हूँ–– इतनी ही कृपा, बस, इतनी कृपा करना; जाकर मेरे श्यामसुन्दरसे, मेरे प्राणनाथ, मेरे हृदयेश्वरसे कह देना–आँखें तरस रही हैं, झुलसती जा रही हैं, उसी मुखसरोजको, उसी श्यामसुन्दर शरीरको ही, कमलदल–से नेत्रोंको, उसी ललित मस्तानी चालको, उसी मन्द मुसकानको आँखें खोज रही हैं। आँखोंको बस, इतनी ही प्यास है। प्यारे उद्धव ! मेरी ओरसे कह देना–बस, एक बारके लिये, एक ही बारके लिये, वही झाँकी कराकर वे फिर भले ही मथुरा चले जायँ, खूब सुखसे रहें ! एक बार बस, एक बार दासीके नयनोंकी प्यास बुझाकर चले जायँ । उद्धव ! इतनी ही भीख तुमसे माँगती हूँ–तुम मेरे प्राणनाथको, मेरे हृदयेश्वरको मेरे हृदयका यह संदेश सुना देना ।'

मन लगाना कोई बड़ी बात नहीं है । कई बार कहा जा चुका है कि यदि आप सचमुच व्रजलीलामें मन लगाना चाहेंगे तो श्रीकृष्णकी कृपासे यह इतना आसान है कि बस, चकित रह जाइयेगा । सोचिये–यमुना है, यमुनाका जल हवाके झोकोंसे हिल रहा है, इसका बीस सेकंड चिन्तन कीजिये । फिर देखिये––सुन्दर घाट हैं; नीलम, पन्ने, माणिक्यसे जड़ा हुआ घाट संध्याकालीन सूर्यकी किरणोंमें चम–चम कर रहा है, इसमें भी बीस सेकंड लगाइये । फिर देखिये––घाटकी चार

सीढ़ियाँ है, एक, दो, तीन, चार ..... इस प्रकार सीढ़ियोंको गिननेमें बीस सेकंड। फिर देखिये–घाटपर व्रजसुन्दरियाँ घड़े भर रही हैं । घड़ोंमें पानी भर रहा है, यमुनाके जलसे घड़े भर रहे हैं––इसके चिन्तनमें बीस सेकंड । फिर देखिये––व्रजसुन्दरियाँ घड़ोंको सिरपर उठा–उठाकर रख रही हैं, इस उठानेकी कियाको बीस सेकंडतक देखिये । फिर सोचिये, दूरपर श्रीकृष्ण खड़े हैं और गोपियाँ आपसमें उनकी ओर इशारा कर रही हैं । इस इशारेकी कियामें बीस सेकंड । इस प्रकार अनन्त चीजें आपको मिलेंगी, जिनमें मनको निरन्तर फँसाये रख सकते हैं । कभी कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ । फिर होगा यह कि आपका मन ही वृन्दावन बन जायगा । वहाँ दिन–रात मधुरतम लीला चलती रहेगी । यहाँ भले ही प्रलय होता रहे, पर आपका मन मधुर वृन्दावनमें सैर करता रहेगा; किंतु चाह रखकर, लगनसे, तत्परतापूर्वक करनेसे यह होगा । फिर कुछ भी हो, आपका शरीर और मन सब वृन्दावनमें हैं, आपको क्या फिक्र है ? भावना दृढ़ होनेपर बड़ी सुन्दर अनुभूति होगी । दाहिने दृष्टि डालियेगा, ऐं, यहाँ तो मेंहदीकी कतार है । बायें देखियेगा, ऐं, यहाँ तो जूही–बेला खिल रहे हैं । पीछे देखियेगा –– यहाँ तो यमुना लहरा रही हैं, और सामने –– यहाँ तो श्रीराधाजीका महल है। यही आकाश आपको वृन्दावनका आकाश दीखेगा।

बस ! फिर क्या है, कुछ ही कालमें श्रीकृष्ण ऐसी कृपा करेंगे कि यहीं इसी नश्वर, क्षणभंगुर, दुःखालय संसारके अन्तरालसे, इसके कण–कणके भीतरसे श्रीकृष्ण और उनका लीला–राज्य इस प्रकार अभिव्यक्त हो उठेगा, जैसे यह संसार कभी था ही नहीं, है नहीं और होगा भी नहीं । आप निहाल हो जाइयेगा। बस, मेरा तो इतना ही कहना है कि बढ चलिये । भगवान्‌की कृपासे असंभव संभव हो सकता है । विश्वास रखिये ।

राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–२९

तत्त्व–निर्णयके झगड़ेमें कभी नहीं पड़ें

रतनगढ़
१ जनवरी १९४२

श्रीशिवभगवानजी फोगला ।

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि आपको लीलायें सुननेसे बहुत तृप्ति एवं शान्ति मिलती है, मन बराबर लीलायें सुननेको व्याकुल रहता है, सो बहुत उत्तम बात है । देखिये गोपियोंकी कैसी सुन्दर रहनी है । जैसे ही संध्या होती है, बस वैसे ही गोपियाँ श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये अपने प्राणोंकी व्याकुलता लेकर अपना श्रृंगार प्रारंभ करती हैं। परन्तु उनका यह श्रृंगार कभी भी अपने सुखके लिये नहीं होता । उनके मनमें अपने सुखकी कोई वासना ही नहीं होती । गोपीप्रेमका यही विशेषत्व है, वहाँ अपने सुखकी कामनाकी गन्ध भी नहीं है । उन प्रेमवती व्रज–सुन्दरियोंके जीवनकी समस्त चेष्टाएँ एकमात्र इसी उद्देश्यसे स्वभावतः होती हैं कि हमारे प्रियतम श्रीकृष्णको सुख पहुँचे । उन्हें चेष्टा नहीं करनी पड़ती, यह उनका स्वभाव बना हुआ है । अतः उनका अपने शरीरको सजाना भी अपने लिये बिल्कुल नहीं होता। अस्तु, संध्या होते ही व्रजसुन्दरियाँ अपनेको सजाना आरम्भ करती हैं; पर यह सजाना जहाँ आरम्भ हुआ कि उसी क्षण श्रीकृष्णकी गाढ़ स्फूर्ति होकर वे इस बातको भूल जाती हैं कि मैं कहाँ हूँ, क्या कर रही हूँ। उन्हें ऐसा अनुभव होता है – यह सामने, बिल्कुल मेरे सामने मेरे प्रियतम खड़े हैं, मुझसे थोड़ी ही दूरपर खड़े हैं । फिर थोड़ा बाह्यज्ञान होता है, सजाना आरम्भ करती हैं, पर सजाने जाकर अपने–आपको विचित्र बना लेती हैं । ओढ़नीको पहन लेती हैं, साड़ीको ओढ़ लेती हैं, आँखोंमें लगानेका काजल तो चरणोंमें लगा लेती हैं और चरणोंमें लगानेका महावर आँखोंमें लगा लेती हैं । कानकी बालीको नाकमें पहन लेती हैं और नाकके बुलाकको कानमें पहन लेती हैं । गलेका हार कमरमें एवं कमरकी करधनीको गलेमें धारण कर लेती हैं । इस प्रकार उनका वेष विचित्र बन जाता है– किसी दिन कैसा, किसी दिन कैसा; प्रतिदिन ही कुछ–न–कुछ गड़बड़ी हो ही जाती है । परंतु

श्रीकृष्ण उनके इस वेषको देखकर अप्रसन्न होनेकी बात तो कल्पनासे भी दूर है, प्रेमानन्द–रस–सागरमें डूब जाते हैं । उनको देखकर श्रीकृष्णकी आँखोंसे विमल प्रेमकी अश्रुधारा बहने लगती है । वे अपने हाथोंसे उन गोपसुन्दरियोंके वस्त्र–आभूषण ठीक करते हैं, उन्हें यथास्थान पहना देते हैं। यह है प्रेमकी महिमा–इसमें बाहरके साज–शृंगारके लिये कोई स्थान नहीं है । श्रीकृष्ण तो हृदयके प्रेमका रसास्वादन करते हैं, बाहरका रूप उनकी आस्वाद्य वस्तु नहीं है। उनकी आस्वाद्य वस्तु है–प्राणोंकी व्याकुलतासे भरा निर्मल प्रेम ।

साधक साधना प्रारम्भ करता है, तब उसके मनमें यही बात–एकमात्र यही लक्ष्य रहता है कि मेरे प्रभु जिस बातसे प्रसन्न हों, वही करना है । वह पहले प्रत्येक चेष्टा भलीभाँति विचार–विचारकर करता है कि वे अधिक–से–अधिक किस बातसे प्रसन्न होते हैं । फिर यह उसका स्वभाव बनता चला जाता है । इस बातके लिये ही पहले उसकी प्रार्थना होती है–'मेरे नाथ ! मैं तुम्हारे हाथोंका यन्त्र बन जाऊँ ।' यह प्रारम्भमें होता है–आगे तो प्रेमीकी ऐसी दशा होती है कि उसे केवल वही जानता है ।

यह सिद्धान्ततः ठीक है कि महापुरुषोंको साक्षात् भगवान् मानकर उनके चरणोंमें न्योछावर होनेसे भगवत्–प्रेमकी प्राप्ति बड़ी शीघ्रतासे होती है। पर किसी मनुष्य–विशेषके प्रति प्रथम तो भगवद्बुद्धि होना कठिन है; हुई भी तो वह आगे चलकर हट सकती है और इसप्रकार अपराध बननेसे उसकी उन्नति रुक सकती है; और कहीं वह आदमी, जिसमें भगवद्बुद्धि की गयी, भगवत्प्राप्त न हो (अधिकांशमें ऐसा ही होता है, भगवत्प्राप्त महात्मा तो बिरल ही होते हैं), साधक मात्र है, तो उससे कोई खास लाभ नहीं होता और यदि ऊपरसे बना–बना हुआ प्रेमी हो, तब तो निश्चय ही साधकके लिये पश्चात्ताप होनेके लिये अवकाश है । इसलिये सर्वोत्तम, सबसे श्रेष्ठ निर्भय मार्ग यह है कि भगवान्‌के चरणोंमें जीवनको समर्पित करके उनका पवित्र मधुर स्मरण, उनका प्रेममय भजन तथा सत्संगमें रहकर जीवन बिताते हुए समस्त विश्वको ही अपने इष्टका रूप समझकर यथायोग्य सबकी सेवा की जाय । यही आत्मसमर्पणकी तैयारी है । फिर पूर्ण आत्मसमर्पण तो भगवान् कराते हैं।

एक और आवश्यक प्रार्थना यह है कि जीवनमें किसीको तत्त्व–निर्णयके झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहिये। ऐसा करनेवालोंका रास्ता प्रायः बंद–सा हो जाता है; क्योंकि वास्तविक तत्त्व तो अनिर्वचनीय है । श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपीजन, उनका प्रेम और उनकी परम पवित्र लीला मन–वाणीके विषय नहीं हैं । जो भी वाणीसे कहा जाता है, शास्त्रोंमें सुननेको मिलता है, वह तो शाखा–चन्द्रन्यायकी भाँति

संकेत है । भक्तको चाहिये कि वह सिद्धान्त–निर्णयके फेरमें बिलकुल न पड़कर सरल श्रद्धासे आत्मसमर्पणकी तैयारी–श्रीकृष्ण, श्रीराधारानीके चरणोंमें न्यौछावर हो जानेकी तैयारी करे । वह केवल तैयारी ही कर सकता है; असली आत्मसमर्पण तो होगा तब, जब श्रीकृष्ण स्वयं इस आत्मसमर्पणको स्वीकार करेंगे । उसके पहले प्राणोंकी समस्त व्याकुलता लेकर तैयारी करनी होगी कोई ज्ञानी कहे कि ब्रह्म–प्राप्ति ही सबसे ऊँची स्थिति है तो उसमें भगवद्भाव करके, प्रभु हमारी परीक्षा ले रहे हैं–यों समझकर उसे प्रणाम करके उपरत हो जाना चाहिये, भूलकर भी कभी वाद–विवाद या बहस नहीं करनी चाहिये । करने चाहियें केवल दो काम–जीभसे अखण्ड ··ामोच्चारण एवं मनसे अखण्ड श्रीकृष्ण–लीलाओंका चिन्तन! इसमें जो सहायक हों, उन्हें जोड़ते चले जाना चाहिये । बाधक हों, उन्हें तुरंत फेंकते जाना चाहिये ।

एक ही भगवान् अपनेको दो रूपोंमें बाँटकर लीलाका आस्वादन करते हैं। श्रीराधाजी श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही राधिकाजी हैं । उनमें सर्वथा सब ओरसे नित्य एकत्व ही है । ऐसा होते हुए भी अनादिकालसे लीलाका आस्वादन करनेके लिये श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाके रूपमें वे नित्य सच्चिदानन्दमय, रसमय प्रेमका घनीभूतविग्रह धारण किये हुए हैं । श्रीगोपियाँ श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा हैं, अर्थात् स्वयं श्रीराधाजी ही श्रीकृष्णको लीला–रसका आस्वादन करानेके लिये अनन्त गोपीरूप धारण किये हुए हैं तथा अनादिकालसे वह सच्चिदानन्दमयी लीला–श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं श्रीगोपीजनकी लीला चल रही है, अनन्तकालतक चलती रहेगी । साधनाके द्वारा मनुष्य पहले इन लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, फिर भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा होनेपर ही उस लीलामें स्वयं भी सम्मिलित हो जाता है । इस दुर्लभ लीलाका दर्शन किसी–किसी ज्ञानयोगीको भी ब्रह्मप्राप्तिके बाद ही होता है । पर प्रेमपंथी भक्तके लिये भगवान्की कृपासे सीधा रास्ता निकल जाता है और वह बिल्कुल सीधे एक विलक्षण ढंगसे इस लीलाका दर्शन करके कृतार्थ हो जाता है । इसे इस प्रकार समझ सकते हैं ।

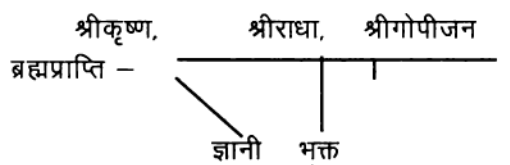

श्रीराधाजी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, हृदय हैं अर्थात् श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा दोनों सर्वथा सब प्रकारसे एक ही हैं । लीलाके लिये दो रूपोंमें अनादिकालसे बने हुए

हैं और अनन्त कालतक बने रहेंगे ।

श्रीकृष्णका स्वरूप है सत्–चित्–आनन्द । सत्में संधिनीशक्ति रहती है; चित्में चितिशक्ति (ज्ञानशक्ति) रहती है तथा आनन्द–अंशमें ह्लादिनी श्रीराधा हैं। अर्थात् श्रीकृष्ण जो सत्–चित्–आनन्द हैं, वे ही वृन्दावन बने हुए हैं, वे ही योगमाया बने हुए हैं और वे ही श्रीराधा बने हुए हैं तथा श्रीराधा ही अनन्त गोपियाँ बनी हुई हैं और यही सत् –चित्–आनन्दमयी लीला अनादि कालसे चल रही है एवं अनन्त कालतक चलती रहेगी ।

वृन्दावन, योगमाया, श्रीराधा एक ही श्रीकृष्णकी तीन शक्तियाँ, तीन रूपोंमें हैं । असली बात तो श्रीकृष्ण जानें, पर मैंने एक दिन निवेदन किया था कि उसी सत्–चित्–आनन्दमयी लीलाकी छाया यहाँ पड़ती है और वही छाया इस विश्वके रूपमें दीखती है । यहाँके स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, वन, पर्वत, समुद्र, नदी–सब उसी दिव्य सत्–चित्–आनन्दमय दिव्य राज्यकी छाया हैं ।

व्रजप्रेमकी प्रत्येक लीलामें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि वहाँ किसी भी गोपीके मनमें अपने सुखकी बिल्कुल इच्छा नहीं रहती तथा वहाँके जो श्रीकृष्ण हैं, वे ऐसे नहीं हैं कि उनको सुख नहीं चाहिये । वहाँ उनकी भगवत्ता छिपी रहती है तथा प्रत्येक गोपी यह समझती है कि श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम प्राणवल्लभ हैं, इनको सुख होता है, दुःख होगा । व्रजसुन्दरियोंकी चेष्टाओंमें यह भाव नहीं होता कि हमें सुख मिले; अपने–से–अपने जो प्राणबल्लभ हैं, उनको सुख कैसे मिले–केवल यही इच्छा रह जाती है ।

यह भी यहाँ समझनेकी बात है कि वृन्दावनमें जो चिन्मयलीला होती है, वहाँ जो गोपियोंके पति हैं, वे भी हाड़–मांसवाले नहीं हैं, वे तो श्रीकृष्णकी ही एक–एक मूर्ति हैं । पति–रूपमें भी श्रीकृष्ण ही रहते हैं । पर पतिसे इनका कुछ भी कभी भी बिल्कुल कोई सम्बन्ध नहीं होता । यहाँ तो गोपियाँ पतितकका त्याग करके श्रीकृष्णको भजती हैं, यह लीला दिखलानी है, इसीलिये यद्यपि स्वयं श्रीकृष्ण ही उनके पति हैं, पर उस रूपमें उनके साथ उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। वह लीला कुछ इतनी विचित्र है कि वाणीसे समझायी नहीं जा सकती। किसी दृष्टान्तसे भी समझाना बड़ा कठिन ही नहीं, असम्भव–सा है । मान लीजिये, जैसे स्त्री–पुरुषका एक जोड़ा है । उनका गुप्त–रूपसे विवाह हो जाय, पर इस बातका किसीको पता लगे नहीं । अब स्त्री तो पतिव्रता है, वह पर–पुरुषका मुँह भी नहीं देख सकती, बात करना तो दूर रहा । अब वह प्रेममें पागल हो जाय । लोगोंको तो यह मालूम नहीं कि इसका विवाह हो गया है । इसलिये उसी पागलपनकी अवस्थामें उसका विवाह फिरसे किसीके साथ कर दिया जाय । उसे पता भी न

चले । कुछ दिन बाद उसे जब कुछ होश होता है, तब क्या वह अपने पहले पतिको छोड़कर दूसरे का मुँह भी देख सकती है ? कुछ–कुछ इस दृष्टान्तसे श्रीगोपीजनोंके प्रेमके स्वरूपका अनुमान हो सकता है । असली बातको समझना, बिना दर्शन हुए कठिन है ।

बहुत–सी ऐसी बातें हैं कि जिनकी दिव्यताको मलिन मनका प्राणी कदापि समझ ही नहीं सकता । आप पढ़ चुके होंगे भागवतमें–श्रीकृष्ण किसी गोपीका चुम्बन करते हैं, किसीका हृदय स्पर्श करते हैं । पर ये सभी लीलाएँ इतने परेके स्तरकी हैं, इतने ऊँचे दिव्यराज्यकी हैं कि जबतक मनुष्यकी सारी कामवासना सर्वथा मिटकर मन एवं आँखें दोनों चिन्मय न हो जायँ, तबतक वह समझ ही नहीं सकता कि असलमें क्या रहस्य है । संसारमें भी देखा जाता है कि पिता अपनी छोटी पुत्रीका मुख चूमता है । बहिन भाईका हृदयस्पर्श करती है । बेटीको बाप हृदयसे चिपका लेता है; पर क्या वहाँ कभी कामविकारकी कल्पना भी होती है? फिर सच्चिदानन्दमय दिव्य पवित्रतम भगवत्–प्रेम–राज्यमें कितनी निर्विकार तथा सर्वथा भगवन्मयी लीला होती होगी, इसका जरा अनुमान करना चाहिये । वहाँ स्त्रीका अंग दीखता मात्र है, असलमें तो वह सर्वथा सब ओरसे चिदानन्दमय है । वहाँ जड़ताकी, कामकी तो गन्ध भी नहीं है । वहाँ उस लीलाके पढ़नेका इतना माहात्म्य है कि पढ़नेवाला यदि श्रद्धासे पढ़ेगा तो उसका काम–विकार नष्ट हो जायगा ।

इस व्रजलीलाका भी एक रूप नहीं है । एक–से–एक बढ़कर ऊँचे–से–ऊँचे स्तरकी लीला होती है। अब कई लीलाएँ इतनी मधुर होती है कि उनमें श्रीकृष्ण अपनी भगवत्ताको सर्वथा छिपाकर लीला करते हैं । उन बातोंको पढ़कर साधारण आदमी तो यही समझेगा कि यह तो किसी कामी पुरुषकी बात है; परंतु वह है असलमें उन भगवान्‌की लीला कि जिनके संकल्पसे अनन्त ब्रह्माण्ड बनते–बिगड़ते हैं । वहाँ ऐश्वर्य सर्वथा छिप जाता है, वहाँ तो बैठकर श्रीराधाके लिये रोते हैं । 'हाय रे, भगवान्‌की स्मृति नहीं छूटे'–इस प्रकार जिनकी स्मृतिके लिये इतनी व्याकुलता ऋषि–मुनियोंको होती है, वे ही प्रभु निरन्तर श्रीराधाजीके लिये व्याकुल होते, रोते रहते हैं ।

जैसे भी हो, पूर्ण चेष्टा करके मनुष्य इस संसारको भूलकर श्रीकृष्णकी चिन्मयी लीलामें मनको तन्मय कर दे, तभी वास्तवमें जीवनकी कृतकृत्यता है और यह तभी होगा, जब ठीक–ठीक पूरी लगनके साथ इसमें जुड़कर साधनामय जीवन बना लिया जाय ।

व्रज–प्रेममें मधुरभावकी सेवाका अधिकार पानेके लिये दो तरहकी साधना

करनी पड़ती है । एकको बाह्य साधना कहते हैं, दूसरीको आन्तरिक साधना। बाह्य साधनाका रूप यह है कि इस शरीरके द्वारा जो पाञ्चभौतिक है, निरन्तर जप, कीर्तन, श्रवण, पूजन आदिमें मनुष्य लगा रहे, सांसारिक झंझटोंमें कम–से–कम समय लगाये । आन्तरिक साधनाका यह रूप है कि मनसे दिव्य चिन्मय शरीरकी भावना करके उस शरीरके द्वारा निरन्तर चौबीसों घंटे सेवामें जुटा रहे । यही करते–करते जब प्रेम प्रकट हो जाता है, तब भगवान् भावनाको ही असली बनाकर दिखा देते हैं । दूसरे शब्दोंमें, तब भगवान्‌की वास्तविक चिन्मयी लीला प्रकट हो जाती है तथा जब पाञ्चभौतिक शरीर छूट जाता है, तब फिर प्रेमके और भी ऊँचे–ऊँचे स्तरोंका विकास होता है और अधिकारके अनुसार साधक जब प्रेमकी ऊँची–से–ऊँची अवस्थामें पहुँचता है, तब उसे सेवाका अधिकार मिलता है । यही वैष्णव आचार्योंका, शास्त्रोंका एवं प्रेमी संतोंका सिद्धान्त एवं अनुभव है ।

यहाँ जिस दिव्य शरीरकी भावना की जाती है, वही दिव्य शरीर सच्चिदानन्दमय वृन्दावनधाममें योगमायाके द्वारा पहुँचा दिया जाता है । वह शरीर किसी गोपीके गर्भसे जन्म धारण करता है तथा फिर थोड़ी–सी उम्र होते ही श्रीकृष्णके दर्शन होकर प्रेमकी ऊँची–ऊँची अवस्थाएँ–प्रेमके बाद स्नेह, स्नेहके बाद मान, मानके बाद प्रणय, प्रणयके बाद राग, रागके बाद अनुराग, अनुरागके बाद भाव और भावके बाद महाभाव इन अवस्थाओंमें पहुँचते ही श्रीकृष्णकी वंशी बजती है । वहाँ श्रीकृष्णकी रासलीलामें पहले–पहल उसे सेवाका अधिकार मिलता है । उसके बाद सदाके लिये वह साधक नित्य लीलामें सम्मिलित हो जाता है । यह एक क्रम है – जो गोपीभावसे साधना करते हैं, उनके लीलामें सम्मिलित होनेका क्रम है ।

जो सखाभावसे सेवाकी भावना करते हैं, उनका क्रम भी मिलता–जुलता ही होता है, पर सखागण रासलीलामें अधिकार नहीं पाते, उन लोगोंकी अन्तिम स्थिति वनमें गाय चराने, साथ खाने, मौज उड़ाने, कंधे चढ़नेतक ही है । इनका क्रम भी ऐसा होता है कि बाहर एवं अन्तर साधना करते–करते जब प्रेम प्रकट होता है, तब वे भगवान्‌के सखा बनकर यही लीला शुरू कर देते हैं, फिर उनका पाञ्चभौतिक शरीर छूटनेपर व्रजके किसी गोपके घर वे बालकके रूपमें जन्म लेते हैं । इसी प्रकार प्रत्येक भावकी साधनाका यह क्रम है, पर इतना ही हो, ऐसी बात नहीं है, यह तो एक नियम है । श्रीकृष्णके चाहनेपर तो वे जो चाहें, वही नियम बन सकता है, पर प्रायः इसी तरहसे साधकलोग साधनामें अग्रसर होते हैं।

आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है कि आपके मनमें व्रजप्रेमकी बात सुननेकी इच्छा होती है । आप निकुंज–लीला सुनना चाहते हैं और मैं सुनाऊँ–इससे बढ़कर मेरा एवं आपका सौभाग्य और क्या हो सकता है ? पर मैं जो सुनाने जा

रहा हूँ, वह सबके सुननेकी वस्तु सर्वथा नहीं है । मेरी तो यह धारणा है तथा अनुभवी संतोंसे भी बार–बार यह सुन चुका हूँ कि जिसके मनमें तनिक भी कामविकार है, उसे इसे कहने–सुननेका अधिकार ही नहीं है। अतः कम–से–कम इस लीलाके सम्बन्धमें सावधानी रक्खेंगे । मैं सच्चे हृदयसे कहता हूँ कि जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य श्रीराधाकृष्ण नहीं हो गये हैं । जिसके मनमें कभी भी श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाकी मधुमयी लीलाओंको सुनकर किसी प्रकार भी तनिक भी,, कोई–सा भी संदेह होता हो, जो प्रिया–प्रियतमके प्रेमके लिये अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके लिये तैयार न हो, जिसका श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाकी अपार, असीम, अनन्त भगवत्तापर, उनकी अपार असीम कृपापर दृढ़, अटूट, अडिग, अचल, अटल विश्वास नहीं हो गया हो, उसे ये बातें जो मैं मधुर लीलाके सम्बन्धमें आगे लिख रहा हूँ, कभी नहीं पढ़नी चाहिये ।

ऊँचे स्तरकी एक लीला होती है और वह नित्य चलती रहती है । वह है परकीया भावकी लीला। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी ही विलक्षण प्रेमलीला होती है तथा श्रीराधारानीका प्रेम कितना ऊँचा है, यह दिखलाया जाता है । इस परकीया भावकी लीलामें होता क्या है कि भगवान् सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण अनन्त रूपोंमें प्रकट होकर सभी गोपियोंके एक–एक पति बनते हैं तथा राधारानीके भी एक पति श्रीकृष्ण ही अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं । फिर वहाँकी प्रत्येक लीलाके द्वारा सिद्ध किया जाता है कि पवित्र प्रेम क्या वस्तु है, प्रेममें कितना त्याग होता है । सबसे कठिन जो आर्य–पथ कुल धर्म है, उसका त्याग भी श्रीराधा एवं श्रीगोपीजन सहज ही कर देती हैं। यही प्रेमकी पराकाष्ठाकी लीला है तथा प्रेमप्राप्त कतिपय वैष्णव आचार्योंने एक–से–एक बढकर लीलाएँ लिखी हैं और अनुभव करके लिखी हैं । अवश्य ही यह इतनी ऊँची प्रेममयी लीला है कि सबके कहने–सुननेकी चीज बिल्कुल नहीं है । यह इतनी ऊँची बात है तथा इसमें इतने रहस्य भरे पड़े हैं कि असलमें तो श्रीकृष्णकी कृपासे ही कोई बिरला प्रेमी साधक इसे थोड़ा–बहुत समझ सकता है ।

व्रजप्रेममें केवल त्याग ही त्याग है । उसमें रत्तीभर भी कहीं अपने सुखकी वासना नहीं है । यद्यपि स्वयं श्रीकृष्ण ही राधारानी बने हुए हैं तथा श्रीराधारानी ही अनन्त असंख्य गोपियाँ बनती हैं । वहाँ श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं श्रीगोपीजनोंमें तिलभर भी कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वहाँ सब कुछ सर्वथा सच्चिदानन्दमय है, श्रीकृष्ण ही उतने रूपोंमें प्रकट रहते हैं, फिर भी लीलाकी सिद्धिके लिये सब गोपीजनोंका अपना–अपना एक भाव रहता है । श्रीकृष्णको सभी अपना प्राणवल्लभ मानती हैं, परंतु किसी भी गोपीके हृदयमें अपने सुखकी किंचिन्मात्र भी इच्छा नहीं

रहती, सभीकी चेष्टा इसीलिये होती है कि कैसे हमारे प्रियतम प्राणवल्लभको सुख हो। तथापि सबकी सेवा करनेका अलग–अलग ढंग होता है और सबका ढंग मिलकर इतनी सुन्दर विलक्षण लीला बन जाती है कि उसकी कोई उपमा नहीं, कोई दृष्टान्त नहीं कि उसे समझा जाय।

प्रेमका वर्णन करते हुए वैष्णव आचार्य जो कहते हैं, वह संक्षेपमें इस प्रकार कहा जा सकता है––

(१) जहाँ अपनी इन्द्रियोंके सुखकी वासना होती है, वहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ काम है ।

(२) जहाँ एकमात्र श्रीकृष्णको ही सुख मिले, यह आन्तरिक इच्छा है, उसका नाम प्रेम है ।

(३) काम और प्रेमको इसी कसौटीपर कसना चाहिये कि काममें प्रत्येक चेष्टा होगी इस उद्देश्यसे कि हमें सुख मिले, अधिक–से–अधिक हमें आनन्द मिले; और प्रेममें प्रत्येक चेष्टा इस उद्देश्यको लेकर होगी कि श्रीकृष्णको सुख हो, चाहे हमें सदा ही दुःख क्यों न मिले ।

(४) उदाहरणके लिये एकमात्र श्रीगोपीजन ही हैं जिनमें अपने सुखकी कोई वासना ही नहीं है और उनका समस्त व्यवहार ही श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेवाला होता है ।

(५) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके लिये लोकधर्मका परित्याग कर देती हैं ।

(६) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये वेदधर्मका परित्याग कर देती हैं।

(७) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये अपनी देहके सुखका त्याग कर देती हैं ।

(८) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये समस्त संसारके व्यवहारको भी आवश्यकता पड़ते ही छोड़ देती हैं।

(९) श्रीगोपियाँ श्रीकृष्णके सुखके लिये लज्जाका सर्वथा परित्याग कर देती हैं ।

(१०) श्रीगोपियोंमें श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी इतनी प्रबल उत्कण्ठा रहती है कि वे अपना धैर्य भी छोड़ देती हैं ।

(११) श्रीगोपियाँ अपने–आपतकको भी भूलकर केवल श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं ।

इस प्रकार उनके जीवनमें एकमात्र श्रीकृष्णका सुख ही उद्देश्य होता है। यहाँतक कि वे अपने कुलधर्मका भी त्याग कर देती हैं; इसलिये कि हमारे प्रियतमको सुख पहुँचे । उनका श्रीकृष्णके पास जाना इसलिये नहीं होता कि वहाँ

जानेसे हमें सुख मिलेगा, बल्कि इसलिये कि श्रीकृष्णको हमारे जानेसे सुख मिलेगा।

इस गोपीप्रेमके राज्यमें सब कुछ सच्चिदानन्दमय होते हुए भी श्रीगोपियोंके कई भेद हैं । मुख्य चार भेद हैं ––

(१) नित्य–गोपियाँ अर्थात् श्रीराधारानी, उनकी सखियाँ, दासियाँ एवं सहचरियाँ; श्रीचन्द्रावली एवं उनकी दासियाँ, सखियाँ, सहचरियाँ आदि । ये अनादिकालसे हैं । इनमें कोई हेर–फेर अब हुआ हो या होगा–यह बात बिल्कुल नहीं है । जैसे श्रीकृष्ण अनादिकालसे हैं, वैसे श्रीराधा एवं नित्य–सखियाँ भी अनादिकालसे हैं और अनन्त कालतक रहेंगी । इनके अतिरिक्त जो भी गोपियाँ हैं, वे सब–की–सब साधनासे वहाँ पहुँची हुई हैं । कोई कभी, कोई कभी, इसी प्रकार साधनासे सम्मिलित हुई हैं । उनमें––

(२) कुछ तो श्रुतियाँ हैं, जो साधना करके गोपी–देह पाकर लीलामें सम्मिलित हुई हैं ।

(३) कुछ देवताओंकी स्त्रियाँ हैं, जो समय–समयपर साधनाके द्वारा गोपी–देह पाकर लीलामें सम्मिलित हुई हैं ।

(४) कुछ ऋषि हैं, जो समय–समयपर साधनाके द्वारा गोपीदेह पाकर सम्मिलित हुए हैं । अब आगे भी जो मनुष्य, जो साधक साधना करेगा और साधनामें सफल होगा, वह भी गोपीदेह पाकर उस लीलामें सम्मिलित होगा।

अब तीन प्रकारकी तो हैं साधनाके द्वारा बनी हुई गोपियाँ । इन्हीं नित्य गोपियोंके साथकी अत्यन्त विलक्षण लीला नित्य चलती रहती है और उसीके किसी एक अंशमें, जो साधना करते हैं, वे प्रवेश करते हैं । जितने ऊँचे अधिकारी होते हैं, उतनी ही ऊँचे अंशकी लीलामें प्रवेश करते हैं, ऊँचे स्तरोंकी लीलाओंको देखकर कृतार्थ होते हैं तथा उसमें स्वयं भी सेवाके अधिकार पाकर जीवन सफल करते हैं। अब जो नित्य सखियाँ हैं, दासियाँ हैं तथा स्वयं श्रीराधारानी एवं श्रीचन्द्रावलीजी हैं, इन सबका अलग–अलग भाव होता है अर्थात् एक–से–एक बढ़कर श्रीकृष्णका प्रेम इनमें होता है । सबसे ऊँचा एवं सर्वोत्तम जो प्रेमका रूप है, उसका विकास एकमात्र श्रीराधामें ही हुआ है।

इस प्रेम–लीलामें स्वकीया एवं परकीया–ये दो भाव होते हैं स्वकीया सर्वथा निकुंजकी लीला है, महावाणीमें इसीका संक्षिप्त वर्णन है । परकीयामें गोष्ठ एवं निकुञ्जकी दोनों लीलाएँ सम्मिलित रहती हैं । अस्तु, इस गोष्ठ–निकुञ्जकी सम्मिलित लीलामें जितनी गोपियाँ हैं, सब परकीयाभावकी हैं। उस दिन मैंने आपसे कहा था कि स्वयं श्रीकृष्ण ही अपनी एक–एक छायाका निर्माण करके उन

गोपियोंके एवं स्वयं श्रीराधारानीके भी स्वामी बनते हैं तथा फिर वहाँ अति पावनी, अति उच्च स्तरके त्यागकी लीला होती है । श्रीगोपीजन सभी कुछका त्याग श्रीकृष्णके लिये कर देती हैं । यही प्रेमकी पराकाष्ठा है कि प्रियतम श्यामसुन्दरके सुखके लिये सब कुछका त्याग बिना हिचकके हो जाय ।

अब एक बात याद रखिये–जैसे मूलमें एक श्रीकृष्ण हैं, वैसे मूलमें केवल एक राधारानी ही हैं । पर राधारानी ही स्वयं श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ललिता, विशाखा, चित्रा एवं अनन्त सखियों–दासियों तथा चन्द्रावलीजीका रूप धारण कर लेती हैं । इसको कायव्यूह–निर्माण कहते हैं । अर्थात् श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये, तरह–तरहकी लीला रच–रचकर सुख पहुँचानेके लिये राधारानी कायव्यूहकी रचना करके अपनेको अनन्त नित्य गोपियोंके रूपमें अनादिकालसे प्रकट किये हुए हैं । इन नित्य गोपियोंके यों तो अनन्त विभाग हैं, पर मुख्य विभाग श्रीराधा एवं चन्द्रावलीजीका है । श्रीराधा ही चन्द्रावलीजी हैं, पर इन दोनोंके दल अलग–अलग होते हैं। उस दिन जो खण्डिताके पद पढ़े थे, वह इन्हीं दो दलोंको लेकर होनेवाली लीलाका वर्णन था । श्रीकृष्ण जब राधारानीके पास आते हैं, तब चन्द्रावलीजी रूठकर मान करती हैं और जब चन्द्रावलीजीके पास श्रीकृष्ण चले जाते हैं, तब श्रीराधाजी रूठकर मान करती हैं। यही संक्षेपमें मानलीलाका सूत्र है । इसके अत्यन्त सुन्दर–सुन्दर रूप हैं एवं अत्यंत विलक्षण–विलक्षण लीलाएँ होती हैं; सबका वर्णन कोई भी कर ही नहीं सकता; क्योंकि ये अनिर्वचनीय और अनन्त हैं ।

पर असलमें बात क्या है, यह भी समझ लेना चाहिये । श्रीकृष्णको अधिक–से–अधिक सुख मिले, इसलिये श्रीराधाजी एवं श्रीचन्द्रावलीजी मान करती हैं; तथा मान करनेमें भी कितना ऊँचा–ऊँचा भाव होता है यह आपको श्रीराधाजीके प्रेमप्रलापकी कुछ बातें लिखकर कभी समझानेकी चेष्टा कर सकता हूँ । बीचमें यह लिखना भूल गया कि श्रीराधाकी सखियाँ ललिता आदि एवं श्रीचन्द्रावलीकी सखियाँ शैव्या आदि दोनों इस चेष्टामें रहती हैं कि कैसे श्रीकृष्णको अपनी–अपनी सखीके कुंजमें ले जायँ । श्रीचन्द्रावलीकी सखी राधारानीकी सखियोंकी दिव्य प्रेममयी वञ्चना करती रहती हैं और राधारानीकी सखियाँ चन्द्रावलीकी सखियोंकी वंचना करके श्रीकृष्णको ले जाती हैं । श्रीकृष्णको दोनोंको ही प्रसन्न करना पड़ता है । उसके सामने उसकी सुननी पड़ती है, उसके सामने उसकी ।

यों तो यह लीला अनिर्वचनीय है और उसके किसी भी अंशको पूरा–पूरा समझना असम्भव है । पर पढ़–सुनकर जीवन पवित्र करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका दर्शन करनेके लिये ही साधना करनी पड़ती है तथा जिन संतोंको जो

अनुभव हुआ है तथा ऋषि–महर्षि जो इस प्रकारकी लीलाएँ शास्त्रमें लिख गये हैं, उन्हींको आधार बनाकर मेरी तुच्छ बुद्धिमें जो कुछ आया है, लिख गया हूँ और भविष्यमें भी भगवत्कृपावश जो भी प्रेरणा होगी, लिख सकता हूँ ।

बस आपकी ओरसे निरन्तर भगवन्नाम–जपकी रट लगी रहे और मन श्रीकृष्णकी किसी भी लीलाको आधार बनाकर उसमें डूबा रहे और क्या कहूँ। सभी सत्संगी इष्ट मित्रोंको भी भजनमें लगनेकी प्रेरणा करें।

राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–३०

व्रजलीला अनन्तानन्त है

रतनगढ
तिथि उल्लेख नहीं

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला,

सादर सप्रेम जय श्रीराधे ।

आपका पत्र मिला । ब्रजलीलाके सम्बन्धमें आपकी अतिशय जिज्ञासा देखकर मुझे हर्ष होता है, परन्तु आपकी धन पर अतिशय महत्वबुद्धि, दूसरे अतिशय बढ़े अहंकारको देखकर यही अनुभव होता है कि भूमि अतिशय बंजर है। इसमें तो ज्ञानके अंकुर भी तत्क्षण उगने असंभव हैं, सो प्रेमांकुर तो सर्वथा ही पनप नहीं सकते । परन्तु प्रभु–कृपा पर आशा लगाकर आपकी इच्छा एवं आपका मान रखता हुआ जो कुछ प्रभु प्रेरणा दे रहे हैं, लिख रहा हूँ ।

यह व्रज लीला जितनी एवं जैसी मैं लिख रहा हूँ, उतनी एवं वैसी नहीं वरं अनन्तानन्त है । नित्य नव नवायमान रसमयी एवं नित्य नूतन है ।

जो भक्त जितना ऊँचा अधिकारी होता है, उसे उतने ऊँचे दर्जेकी लीलाका दर्शन होता है । उसी लीलामेंसे एक प्रकारकी लीलाका उदाहरण देकर आपको समझाता हूँ । श्रीकृष्णकी एक लीला है, जिसे दैनन्दिनी लीला कहते हैं, अर्थात् वह प्रतिदिन प्रातःसे लेकर राततक चौबीस घंटे एक–एक प्रकारकी होती है । इसीको अष्टकालीन लीला भी कहते हैं । स्वकीयाभावकी अष्टकालीन लीला दूसरी है । यहाँ परकीयाभावकी अष्टकालीन लीला बता रहा हूँ । इस लीलाका बहुत संक्षेपमें यह रूप है–श्रीकृष्णकी उम्र चौदह वर्ष कई महीने रहती है । श्रीराधारानी उनसे कुछ छोटी रहती हैं । यही उम्र इनकी अनादिकालसे है और अनन्तकालतक रहेगी । इसी रूपको 'नित्य–किशोर एवं नित्य–किशोरी'का रूप कहते हैं तथा इतने ही रूपमें सदा रहकर यह लीला अनादिकालसे चलती आ रही है और अनन्तकालतक चलती रहेगी । पर विलक्षणता यह है कि यद्यपि आधार तो एक रहेगा, पर यह नित्य नयी–नयी होती रहती है और नयी–नयी ही होती रहेगी, क्योंकि असलमें यह जड़–जगत्की लीला नहीं है, यह है स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी

स्वरूपभूत लीला । अतएव इसमें नित्यनूतनता रहेगी ही ।

सूत्ररूपसे ही संक्षेपमें लिख दे रहा हूँ, विस्तार तो सारा जीवन लिखा जाय तो भी समाप्त होनेका नहीं है । यह लीला ऐसे प्रारम्भ होती है–प्रातःकाल निकुञ्जमें श्रीप्रियाप्रियतम सोये रहते हैं; वृन्दादेवीके संकेतसे शुक–सारिका आदि पक्षी उन्हें जगाते हैं । जगानेके बाद सखियाँ दोनोंकी तरह–तरहसे सेवा करती हैं । सेवा होने के बाद श्रीकृष्ण अपने घर चले जाते हैं तथा रातके समय मैया यशोदा जहाँ उन्हें सुला गयी थीं, वहीं जाकर चुपचाप सो जाते है । राधारानी भी घर आकर सो जाती हैं । फिर वहाँ श्रीकृष्णको मैया उठाती हैं । वे हाथ–मुँह धोकर दतुवन करते हैं और गोशालामें जा कर गाय दुहते हैं । फिर स्नान करते हैं । इधर सखियाँ राधारानीको उठाती हैं ! मुँह धुलाकर दतुवन आदि कराकर उबटन लगाती हैं, फिर स्नान कराती हैं, फिर श्रृंगार करती हैं । इसी समय मैया यशोदाकी एक सखी राधारानीको बुलाने आ जाती है कि 'चलो, मैया तुम्हें रसोई बनानेके लिये बुला रही हैं ।' उनकी साससे कहकर वह उन्हें ले जाती है, वहाँ राधारानी रसोई बनाती हैं । उनके बनाये हुए भोजनको श्यामसुन्दर आरोगते हैं। राधारानीके द्वारा मैया रसोई इसीलिये बनवाती हैं कि इनके हाथकी रसोईको श्यामसुन्दर बड़े प्रेमसे खाते हैं तथा राधारानीको यह वर मिला हुआ है कि जो इसके हाथकी रसोई खायेगा, उसकी आयु बढ़ेगी । यशोदा सोचती हैं कि मेरा लल्ला बहुत दिन जीयेगा, इसलिये नित्य इन्हें प्रार्थना करके बुलवाती हैं । इसके बाद मैया स्वयं बहुत तरहसे कहकर राधारानीको भोजन कराती हैं । फिर श्यामसुन्दर गाय चरानेके लिये वनमें जाते हैं तथा राधारानी एवं सखियाँ वनमें फूल चुननेके बहाने तथा सूर्य–पूजाके बहानेसे वनमें चली जाती हैं । वहाँ वृन्दादेवीका सारा प्रबन्ध ठीक रहता है । श्रीकृष्ण भी संकेतपर पहुँच जाते हैं । वहाँ मिलन होता है एवं ढ़ाई पहरतक तरह–तरहकी लीला होती हैं । इसके बाद श्यामसुन्दर वनमें अपने सखाओंके पास चले जाते हैं और राधारानी घर लौट आती हैं । वे फिर श्यामसुन्दरके लिये रसोई बनाती हैं, स्नान करती हैं तथा श्रृंगार करके अपने महलकी अटारीपर चढ़कर श्यामसुन्दरके वनसे लौटनेकी बाट देखती हैं । सायंकाल होनेपर श्यामसुन्दर लौटते हैं, सखियोंकी भीड़ लग जाती है । मैया श्यामसुन्दरको गोदमें लेकर उनका मुँह चूमती हैं, शरीर पोंछकर स्नान कराती हैं, सखाओंके साथ उन्हें कुछ जलपान कराती हैं । श्यामसुन्दर गाय दुहने चले जाते हैं, गाय दुहकर लौटते हैं तथा नन्दबाबा आदि बड़े–बड़े गोपोंके साथ बैठकर भोजन करते हैं । भोजन करनेपर नन्दबाबाका दरबार लगता है, उसमें खूब नाच–गान होता है । नन्दबाबाके दोनों बगलमें बैठकर श्रीकृष्ण एवं दाऊजी

तमाशा देखते हैं । फिर मैया श्यामसुन्दरको बुला लेती हैं तथा दूध पिलाकर एक कमरेमें सुला देती हैं । जब मैया चली जाती हैं तब श्यामसुन्दर चुपकेसे निकलते हैं और जहाँपर संकेत बँधा होता है, वहाँ जा पहुँचते हैं । इधर राधारानीके पास मैया यशोदा बहुत–सी भोजन–सामग्री भेजती हैं । सखियाँ चालाकीसे श्यामसुन्दरका अधरामृतसिक्त प्रसाद भी ले जाती हैं । राधारानी एवं सखियाँ भोजन करती हैं, फिर श्रृंगार करके वृन्दादेवीकी दासीके पीछे–पीछे छिपी हुई वहाँ पहुँचती हैं । श्रीश्यामसुन्दर एवं राधारानीका मिलन होता है । वहाँ ढाई पहर राततक तरह–तरहकी लीलाएँ, वनविहार, जलविहार एवं भोजन आदि करके किसी कुञ्जमें प्रिया–प्रियतम विश्राम करते हैं । दूसरे दिन प्रातः उठनेकी लीला पहले लिखी ही गयी है । इस प्रकार प्रतिदिन अनादिकालसे यह लीला चल रही है और अनन्तकालतक चलती रहेगी । जिन भक्तोंको इस लीलाके दर्शन हुए हैं, उन्होंने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है तथा बहुतोंने साधनाके लिये भी इस लीलाका विस्तार किया है । ग्रन्थ भरे पड़े हैं। अगणित साधक अबतक हो चुके हैं और न जाने किन–किनको दर्शन भी हो चुके हैं । जो वाणीमें आ सका है, उसका भी बड़े संकोच और संक्षेपसे उन्होंने वर्णन किया है । वास्तवमें तो यह सर्वथा अनिर्वचनीय लीला है । मन–बुद्धिकी सामर्थ्य नहीं कि इसे समझ सके । भगवान्‌की असीम कृपा प्राप्त करके लाखों–करोड़ों भक्तोंमें कोई बिरले भक्त इस लीलाका अनुभव कर पाते हैं । बड़े–बड़े ऋषि–महर्षि न जाने कितनी तपस्या करते हैं; तब कहीं जाकर इसमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है । अवश्य ही जो सर्वथा सम्पूर्ण रूपसे अपने–आपको श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें न्योछावर कर देता है, उन्हींकी कृपापर ही एकमात्र निर्भर हो जाता है, उसके लिये उनकी कृपासे ही इसका दर्शन सुलभ हो जाता है ।

प्रतिदिन नयी–नयी लीला होती रहती है और जब साधकका मन फँस जाता है, तब तो एक लीला ही प्रतिदिन नयी हो जाती है, उसका मन हटना ही नहीं चाहता । यह तो ध्यान होनेपरकी अवस्था है । मैं तो बहुत साधारण व्यक्ति हूँ–न मेरा मन स्थिर हुआ है, न ध्यान ही लगा है, न दर्शन हुए हैं । श्रीकृष्णकी कृपासे ये बातें सुनने–पढ़नेको मिल गयीं, यही मैं अपने लिये अत्यन्त सौभाग्यकी बात समझता हूँ तथा जीवनको पवित्र करनेके लिये एवं आप प्रेमसे सुनते हैं, इसलिये सुनाता हूँ ।

अनादिकालसे जो लीलाएँ हुई हैं और अनन्त कालतक जो लीलाएँ होंगी, वे सब–की–सब भगवान्‌के शरीरमें वर्तमानकी तरह फिल्मकी भाँति सजी रक्खी हैं। अब यही फिल्म घूमेगी और भक्तकी जो इच्छा होगी, जो लीला वह देखना चाहेगा,

भगवान्‌की इच्छासे उसी लीलावाला हिस्सा घूमकर उसके सामने आ जायगा । जब उद्धव पहले मिले, तब उनका अधिकार कुछ कम था। इसलिये पहले वियोगकी लीला उन्हें दिखायी पड़ी। फिर श्रीगोपीजनोंका दर्शन होनेके बाद उससे भी परे एक अत्यन्त विचित्र लीला है, जिसमें यद्यपि संयोग–वियोग दोनों होते हैं, फिर भी जो अत्यन्त विलक्षण है, उसीमें की पहली, संयोगकी लीला उन्हें देखनेको मिली और उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण तो यहीं हैं, यहाँसे कहीं गये ही नहीं । इससे और भी परेकी लीला थी; किंतु सबको उद्धवने थोड़े ही देखा था !

जब श्रीगोपीजनोंकी कृपासे वह अधिकार प्राप्त हुआ; श्रीकृष्ण एवं गोपीजनोंके प्रेमका प्रभाव कुछ–कुछ विदित हुआ एवं श्रीकृष्णकी कुछ अत्यन्त परेकी लीलाओंके दर्शन उन्हें होते हैं, तब उद्धवकी आँखें खुलती हैं और वे यह प्रार्थना करते हैं कि 'हे विधाता ! व्रजमें मनुष्यका शरीर मिलना तो दुर्लभ है; यदि मुझे तुम एक झाड़ी, लता, घासका तिनका ही बना दो तो फिर तो मेरा काम बन जाय । श्रीगोपीजनोंके चरणोंकी धूलि मुझपर उड़–उड़कर पड़े और मैं कृतार्थ हो जाऊँ, बस, इतनी दया कर दो––

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।।

x x x x

कैसे होउँ द्रुम लता बेलि कुंजन बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मो पै परछाहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं, जो कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो, तौ बर माँगउँ जाय।।
कृपा करि देहिं जो ।

"हाय ! मैं कैसे इस व्रजमें लता बन जाऊँ ? अरे, कम–से–कम मुझपर श्रीगोपियोंकी परछाहीं तो इस प्रकार पड़ जायगी; बस, इतना ही मेरे लिये बहुत है । पर हे भगवन् ! मैं क्या करूँ, यह तो मेरे वशकी बात नहीं है । मेरा अधिकार होता तो अभी यहीं लता बनकर मैं सदाके लिये रह जाता । हाँ, यदि मोहन, प्यारे श्यामसुन्दर प्रसन्न हो जायँ तो मेरा काम बन जाय । मैं उनसे जाते ही यही वर माँगूँगा कि 'हे गोपीनाथ ! मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता; केवल इतनी कृपा कर दो कि मैं व्रजमें एक लता बन जाऊँ ।' पर मेरा भाग्य, पता नहीं, ऐसा होगा या नहीं । पता नहीं श्यामसुन्दर मुझे यह वर देंगे कि नहीं ।" यह दशा हुई

थी तब, जब श्रीगोपीजनोंके दर्शन उद्धवको हुए । इतना होनेपर भी उद्धवको लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं प्राप्त हुआ; केवल दर्शन–दर्शन हुए, सो भी थोड़े–से अंशके ही ।

यह बड़ी विलक्षण बात है कि यैं व्रजलीलाएँ एक–से–एक बढ़कर हैं । इनके विषयमें यह कहा ही नहीं जा सकता कि अमुक सबसे परेकी लीला है; क्योंकि सबसे परेकी लीला तो कोई तब कही जाय जब कि कोई सीमा हो । जब लीला अनन्त है, भगवान्‌की सर्वथा स्वरूपभूता है, तब वह नयी–ही–नयी होती जायगी,एक–से–एक विलक्षण आती जायगी; जितना ऊँचा अधिकारी होगा, उसके सामने उतने ही ऊँचे स्तरकी लीला आयेगी । शास्त्रमें आजतक जिन–जिन लीलाओंका वर्णन हुआ है, वह तो बहुत ही थोड़ा है । बहुत–सी ऐसी लीलाएँ हैं कि जिनका वर्णन होना ही असम्भव है । तथा ऐसी भी बहुत सी लीलाएँ हैं, जिन्हें आजतक किसीने नहीं देखा है । वैसा कोई ऊँचा भक्त हो जाय तो वह बिल्कुल नयी और सबसे ऊँचे स्तरकी लीला भी देख सकता है । हाँ, एक बात अवश्य है कि जिसको जिस लीलाका दर्शन होता है, उसको यह प्रतीति नहीं होती कि 'हमें अब कुछ देखना बाकी रह गया है ।' जैसे समुद्रमें डूब जानेपर ऊपर–नीचे, बाहर–भीतर जल–ही–जल दीखता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय लीला–सिन्धुमें डूब जानेपर वह स्वयं लीलामें तन्मय हो जाता है, अब उसे यह ज्ञान थोड़े रहता है कि अभी कुछ बाकी है । पर जैसे समुद्रमें विचित्र–विचित्र इतनी बड़ी तरंगें आती हैं कि वैसी हजारों वर्षके इतिहासमें नहीं मिलती । वैसे ही लीलासिन्धुमें भी ऐसी–ऐसी तरंगें आती हैं कि उनके प्रकट होनेपर पहली फीकी हो जाती हैं; फिर दूसरी लीलाओंके प्रकट होनेपर पहली फीकी हो जाती है; तीसरी लीलाओंके प्रकट होनेपर दूसरी फीकी पड़ जाती हैं, और चौथी प्रकट हुई कि तीसरी फीकी पड़ जाती हैं । तरंगोंकी कोई सीमा नहीं कि कब कैसी तरंग आकर पहलेवालीको फीकी–छोटी बना दे। वैसे ही भगवान्‌की लीलाका कोई हिसाब नहीं । न जाने कब कोई ऐसी विलक्षण लीला भगवान् प्रकट करेंगे कि पहलेवाली सब–की–सब फीकी हो जायँगी । पर फीकीका यह अर्थ नहीं कि पिछली लीलासे मन उपरत हो जाय। भगवान्‌की प्रत्येक लीला ही अनन्त असीम सौन्दर्यसे भरी है । यहाँ तो तुलनात्मक दृष्टिसे यह बात कही गयी है ।

इसीलिये साधना इसी बातकी करनी पड़ती है कि चाहे जैसे हो, एक बार लीला–समुद्रमें जाकर डूब तो जायँ । फिर तो तरंगें आयेंगी ही । उद्धव भगवान्‌के सखा थे, उन्हें सख्यरसका आनन्द प्राप्त था । पर भगवान् तो कृपालु हैं । उन्होंने देखा–बिचारा केवल सूखा ज्ञानका आनन्द एवं मेरे सखापनका

आनन्द ही पाता है; अब इसे व्रज भेजकर कुछ इससे भी परेका जो आनन्द है, वह दिखलाऊँ । उद्धव गये । पहले तो उन्होंने ज्ञानकी चर्चा की; पर इसके बाद जब गोपियोंकी कृपासे गोपियोंकी विरह–लीलाके दर्शन हुए, तब उनके होश उड़ गये– हाय ! मेरा जीवन तो व्यर्थ गया । इस पश्चात्तापका यह फल हुआ कि श्रीगोपियोंने और भी कृपा की तथा उन्हें उससे भी ऊँची एक लीलाका थोड़ा–सा अंश दिखलाया । इसके बाद और भी कृपा हुई होगी, हम लोगोंको उसका क्या पता ।

पर इतनी बात इसीलिये हुई थी कि उद्धवको श्रीकृष्णका साक्षात् हो चुका था । फिर भगवान्ने कृपा करके ऊँचे–ऊँचे स्तरोंकी बात उन्हें दिखायी, सुनायी। इसी प्रकार जैसे भी हो, एक बार श्रीकृष्णका साक्षात्कार मनुष्यको कर लेना चाहिये। फिर मुहर लग जाती है । जब एक बार श्रीकृष्णका साक्षात् हो जाता है, तब उसे 'पास' मिल जाता है कि अब यह हमारी लीला देख सकता है । वह जितना अधिक समय लगायेगा, उतनी ही अधिक लीला देख सकेगा। यहाँ समय लगानेका अर्थ है–लालसा बढ़ाना तथा श्रीकृष्णकी कृपापर अपने–आपको न्योछावर कर देना । वहाँ किसी राजाके सीमित महलमें देखनेकी वस्तुएँ थोड़े ही हैं । भगवान्की लीलावाले महलमें एक बार प्रवेश कर जानेके बाद फिर तो अनन्त कालतक देखने पर भी वहाँकी वस्तुएँ समाप्त नहीं हो सकतीं ।

मान लीजिये एक बहुत बड़ा सम्राट् है । अब वह जिस समय दरबारमें रहता है, उस समय उसका रोब सबपर छाया रहता है । पर जब वह महलमें जाता है, तब बच्चा उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचता है और रानी उसकी सेवा करती है । रानी यह जानती अवश्य है कि मेरे पति बड़े भारी सम्राट् हैं, पर वहाँ रानीके मनमें उसके सम्राटपनका रोब नहीं रहता । वहाँ तो सम्राट् उसके प्रियतम पति हैं । सम्राट् हैं दरबारमें, महलमें तो उसके स्वामी हैं, उनपर उसका अधिकार है । राजदरबारका कानून, बैठना–उठना, बातचीत, हँसना–बोलना, सब मर्यादासे सीमित रहता है; वहाँ सम्राटपन (ऐश्वर्य) बात–बातमें रहेगा । पर महलमें सब नियम ही दूसरे होते हैं, वहाँ केवल घर–गृहस्थीका प्रेममय नियम होता है । भगवान्के बड़े–बड़े ऊँचे–ऊँचे भक्त कोई राजमन्त्रीकी तरह समस्त विश्वकी सँभाल रखते हैं, कोई बहुत बड़े अधिकारीकी तरह काम करते हैं, यहाँतक कि युवराजकी तरह, भगवान्के पुत्रकी तरह अधिकार रख सकते हैं, पर इतना अधिकार रखकर भी राजमहलकी निर्बाध प्रेममयी स्थितिका उनको कुछ भी पता नहीं हो सकता; वे राजरानी, पटरानीको देखतक नहीं सकते–जानतक नहीं सकते कि उनकी शकल–सूरत कैसी है ?

भगवान्का द्वारकाका रूप, मथुराका रूप, अयोध्याका रूप–ये सब ऐश्वर्यके रूप हैं । बहुत ऊँचे–ऊँचे संत उनकी इस ऐश्वर्यलीलामें स्थान पाकर भगवान्की तरह–तरहकी सेवा करते हैं । पर वृन्दावनका जो रूप है, वह राजमहलका रूप है तथा जैसे राजमहलकी एक दासी भी राजमन्त्रीको ही नहीं, युवराजतकपर आज्ञा चला देती है, वैसे ही श्रीगोपीजनोंकी आज्ञा ब्रह्मा–विष्णु–महेशतकपर चलती है । अवश्य ही जिस प्रकार राजमहलमें दिन–रात आनन्दित रहनेवाली राजरानियोंको, दासियोंको यह अवकाश नहीं कि राज्यमें क्या हो रहा है यह देखें, वैसे ही मधुर लीलामें जिन्हें स्थान प्राप्त हो जाता है, उनको उस अनिर्वचनीय आनन्दसे छुट्टी ही नहीं मिलती कि जाकर देखें–बाहर राज्यमें क्या कैसे हो रहा है ।

जो रात–दिन श्रीकृष्णको रोबमें बैठे देखता है, उसे क्या पता कि ये ही श्रीकृष्ण महलमें जाकर न जाने क्या–क्या करते हैं । वह तो दिन–रात दरबारी कानूनकी मर्यादामें रहता है । मर्यादाकी जो लीला होती है, उसीमें उसका मन पगा हुआ होता है ।

जैसे साँझ हुई कि महलकी रानियाँ अटारीपर चढ़कर राज्यमें क्या हो रहा है –यह देखना चाहें तो देख सकती हैं, पर राज्यवाला कोई भी उनको देख नहीं सकता । वैसे ही जो मधुर लीलाके भक्त हैं, वे कभी इस प्रापंचिक जगत्की लीला तथा ऐश्वर्यमयी लीलाको देखना चाहें तो देख सकते हैं । पर जो दिन–रात मिश्रीके रसको चख रहा है, उसका गुड़पर मन थोड़े ही चलता है । वह तो ऐसे विलक्षण आनन्दमें छका रहता है कि क्या पूछना । उसको ऐश्वर्यकी बात सुनने–कहनेकी भी फुरसत नहीं होती ।

यद्यपि इसके लिये लोकमें कोई दृष्टान्त नहीं, फिर भी समझनेके लिये समझें कि जैसे राजाकी रानीकी स्पेशल गाड़ी कहीं जाय तो राज्यके मन्त्री आदि बड़े–बड़े अफसर सब प्रबन्ध करते हैं । सारा प्रबन्ध उन्हींका रहता है तथा उनके प्रबन्धमें ही स्पेशल जाती है । पर राजमन्त्री यह जानता है कि मेरा प्रबन्ध रहनेसे क्या हुआ, ये हैं तो राजमहलकी पटरानी । मेरा अधिकार तो ये इसलिये मानती हैं कि मेरा आदर बढ़े । पर वस्तुतः मैं तो इनका चाकर हूँ । ठीक उसी प्रकार यदि मधुर लीलामें स्थान पाया हुआ कोई भक्त या उसका अवतार हो तो उसकी देख–रेख ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं बड़े–बड़े देवता ही करते हैं, पर यह समझते हुए कि ये तो हमारे प्रभुके प्रेमी हैं ।

जो वैसे भक्त हैं या अवतार लिये हुए है, वे सब कानून मानते हैं; पर उनका यहाँका कानून मानना वैसे ही है, जैसे राजरानी सैर करने निकले और मन्त्रीके प्रबन्धमें उसे रहना पड़े । मन्त्रीने जहाँ जैसे रहनेकी, खानेकी व्यवस्था की है, उसी

व्यवस्थाका राजरानी पालन करती है । पर यह सब करते हुए भी जैसे वह अपनेको इनके शासनसे सर्वथा परे समझती है, वैसे ही जो कोई ऐसे बिरले भाग्यवान् संत होते हैं अथवा अवतार लिये होते हैं, वे यहाँ इस संसारके कानूनका ठीक–ठीक पालन तो करते हैं, पर वस्तुतः वे अपनेको इस राज्यके शासकोंकी शासनव्यवस्थासे परे अनुभव करते हैं ।

कल्पना कीजिये–सम्राट्को मजाक सूझे और उसकी इच्छासे कोई महलकी रानी वेष बदलकर राज्यमें घूमे । अब कोई राजाका चपरासी हो, उस बेचारेको तो पता है नहीं कि यह महलकी रानी है, वेष बदले हुए है । अब सम्राट्का रानीके लिये संकेत है कि 'तुमको वेष बदले हुए जब दरबारमें हम हों तो आना होगा । अब जब वह रानी जायेगी तब चपरासी तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेगा, जो वह सबके साथ करता है । ठीक, उसी तरह पहले आदेश लायेगा, तब दरबारमें प्रवेश करने देगा । वहाँ दरबारमें केवल सम्राट्को ही पता है कि यह तो हमारी रानी है, वेष बदले हुए यहाँ आयी है; और लोग तो जानते भी नहीं कि यह कौन है ? रानी वहाँ दरबारमें खूब ठाटसे, ढंगसे बात करती है; पर मन–ही–मन वह भी हँसती है तथा सम्राट् भी उसपर हुकुम तो चलाते हैं, पर मन–ही–मन खूब हँसते हैं । इसी प्रकार भगवान् भी कभी–कभी लीला किया करते हैं ।

एक बहुत सुन्दर लीला आती है––भगवान् द्वारकामें गद्दीपर बैठे हैं तथा कुछ ग्वालिनें दहीके मटके लिये दरबारमें आती हैं । भगवान् तो सब जानते हैं–पहले अदबसे बात होती है । फिर गोपियाँ कहती हैं कि 'चलो वृन्दावनमें, यहाँ गद्दीसे उतरो ।' सारा दरबार ठण्ड हो जाता है कि भला, ये गँवारी ग्वालिनें कितनी बढ़-बढ़कर बातें कर रही हैं । श्रीकृष्ण थोड़ा और भी रंग जमाते हैं । गोपियाँ कहती हैं कि 'हम राधारानीकी दासियाँ हैं; यदि सीधे मनसे नहीं चलोगे तो फिर दस्तावेज निकालना पड़ेगा !' (श्रीकृष्णने एक दस्तावेज लिख दिया था कि मैं आजीवन राधारानीका गुलाम रहूँगा ।) श्रीकृष्ण खूब हुज्जत करते हैं कि हमें याद नहीं कि हमने कहाँ क्या दस्तावेज लिखा है। फिर गोपियाँ दस्तावेज निकालकर श्रीकृष्णकी सही दिखलाती हैं और गद्दीसे उतार देती हैं । सारा दरबार चकित रह जाता है । श्रीकृष्ण पीछे–पीछे चल पड़ते हैं । अब सोचिये, वृन्दावनके महलकी दासी उनकी इच्छासे ही दरबारमें आती है तथा तरह–तरहकी लीला करती है, पर लीला देखकर यह अनुमान भी नहीं हो सकता कि ये ही राजराजेश्वर श्रीकृष्ण वृन्दावनकी गोपियोंके दास हैं । ये अप्रकट लीलाएँ प्रेमी भक्त संतोंके नेत्रगोचर होती हैं, ग्रन्थोंमें पूरी नहीं पायी जाती । और ये लीलाएँ कुछ इतनी ऊँची हैं कि मन जबतक बिल्कुल पवित्र नहीं हो जाता, तबतक इनके

रहस्यका अनुमान लगाना भी बड़ा ही कठिन होता है । किसी भी दृष्टान्तसे इनके वास्तविक रहस्यको समझा नहीं जा सकता ।

भगवान्‌की लीलाएँ अनन्त हैं । इनमें किसीमें भी मन लग जानेपर तो महीने–के–महीने बीत जाते हैं, एक ही ध्यान बँधा रह जाता है । पता ही नहीं लगता कि क्या हो रहा है । समाधि हो जाती है । परंतु जबतक ऐसी अवस्था नहीं हो जाती, तबतक चञ्चल मनको वशमें करनेके लिये दस–बारह लीलाएँ चुन लेनी चाहिये तथा खूब कड़ाईसे समय बाँध लेना चाहिये कि इतने समयसे लेकर इतने समयतक यह लीला, फिर यह लीला, फिर यह । इस प्रकार जागनेसे सोनेतक मन–ही–मन चिन्तनका तार चलता रहे । बाहर तो सुन रहे हैं, पोथी पढ़ रहे हैं, पर भीतरका काम भी चलते ही रहना चाहिये । खूब चेष्टा करनेसे भगवान्‌की कृपा होनेपर ऐसा बड़ी आसानीसे हो सकता है ।

वैष्णव–सिद्धान्तका तो यह एक निचोड़ है कि भक्त भगवान्‌से अपना एक सम्बन्ध जोड़ ले । भगवान् हमारे स्वामी हैं, मैं उनका दास हूँ । भगवान् हमारे सखा हैं, मैं उनका मित्र हूँ । भगवान् हमारे पुत्र हैं, मैं उनका पिता हूँ । भगवान् हमारे पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ । भगवान् हमारे प्रेमास्पद प्राणनाथ हैं, मैं उनकी प्रेयसी हूँ । कहनेका अभिप्राय यह है कि जो सम्बन्ध प्यारा लगे, मनको खींचे–बस, उसीको एक बार दृढ़ करके जोड़ लें और फिर ठीक उसी भावके अनुसार चौबीसों घंटे सेवामें लगा रहे । भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, जिस क्षण कोई उनसे सम्बन्ध जोड़ता है, ठीक उसी क्षण वे उसके उसी सम्बन्धको स्वीकार करके उसके लिये वही बनकर आनेके लिये तैयार हो जाते हैं । विलम्ब तो होता है हमारी उत्कण्ठाकी कमीके कारण । यही उत्कण्ठा, जैसे–जैसे भजन–स्मरण बढ़ता है, वैसे–वैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर बढ़ने लगती है और जिस क्षण उत्कण्ठा पूरी हुई, ठीक उसी क्षण वही बनकर भगवान् उसके सामने प्रत्यक्ष आ जाते हैं और फिर उस दिनसे वह भगवत्प्राप्त पुरुषोंकी गणनामें आ जाता है ।

लीलाचिन्तन करते–करते बीचमें भगवान्‌की कृपासे कई विचित्र–विचित्र घटनाएँ हो जाती हैं । मान लें, आप ध्यान कर रहे हैं, भोजनकी लीला चल रही है । बड़े, पकौड़ी, साग एवं तरह–तरहकी मिठाइयाँ मन–ही–मन परस रहे हैं और भावना कर रहे हैं––श्रीकृष्णके भोजन कर लेनेके बाद अब मुझे प्रसाद मिला है, उसे मैं खा रहा हूँ । अब वहाँ मनमें खानेका चिन्तन हो रहा था, पर ठीक वही मिठाई यहाँ इस मुँहमें आ जायगी । इसका अर्थ यह हुआ कि आज ध्यान नहीं हुआ; आज थोड़ी देरके लिये प्रत्यक्ष दर्शन हुआ ।

कभी–कभी भक्तोंको ऐसा हुआ है कि भावनासे खीर बना रहे हैं । वह

गरम ज्यादा थी, चूल्हेसे उतारते समय हाथपर पड़ गयी । वहाँ भान हुआ कि अँगुली जल गयी और खीरका बर्तन हिलकर गिर गया । अब हो तो रहा था ध्यान; पर ठीक खीरका गरम कटोरा हाथमेंसे गिर जायगा और हँसते हुए भगवान् प्रकट हो जायँगे । ध्यानमें ही भक्त चूल्हेपर खीर बना रहा था, लकड़ी जल रही थी । खीर उतारी, कटोरेमें डाली,कटोरेको उठाया, उठाते ही अँगुली हिली, हिलनेसे कटोरा गिर गया । आँख उसी समय खुल जाती है तथा देखता है कि एक कटोरेमें खीर गिर गयी है और भगवान् हँसते हुए सामने खड़े हैं ।

मधुर भावके, गोपीभावके संतलोग तो विचित्र–विचित्र तरहकी लीला करते हैं । वहाँ तो बड़े–छोटेका संकोच ही नहीं । कभी चपत लगा देते हैं । श्रीकृष्ण चपत खाकर रूठ जाते हैं । अब वे गोपीभावापन्न संत उन्हें मनाते हैं। मनाते समय श्यामसुन्दर तरह–तरहकी शर्त पेश करते हैं । यह ला दो तो मानकर फिर तुम्हारे साथ खेलूँगा । वहाँ अत्यन्त सुन्दर लीला हुई । अब उसमें कुछ श्यामसुन्दरको वह लेकर देने जा रहे हैं । वह चीज तो मानसिक थी, पर आँख खुल जाती है और वे देखते हैं कि वही चीज यहाँ इस हाथमें है।

एक बार दो भक्त थे ! वृन्दावनकी बात है । दोनों अपनेको श्यामसुन्दरकी सखी मानकर सखीका शरीर धारण करके सेवाकी भावना करते थे । सेवाकी साधनामें बहुत ऊँचे उठ गये थे । एक दिनकी बात है कि राधाकुण्डमें जल–विहारकी लीला चल रही थी । वे उसीके ध्यानमें लगे हुए थे । लीला होते–होते श्रीप्रियाजीके कानोंका कुण्डल जलमें गिर गया । अब संत तो वहाँ सखीके वेषमें थे । अतः उनकी सखी राधारानीका कुण्डल गिरनेसे वे घबड़ाकर पानीमें डुबकी मारकर खोजने लगे । इधर ध्यानमें तो एक दो मिनट ही बीता था, पर यहाँ सात दिन बीत गये । लोगोंने देखा कि आँखे बंद हैं, श्वास धीरे–धीरे चल रहा है, सात दिन एक आसनसे बैठे बीत गये हैं । उनके एक मित्र थे । उनका नाम शायद रामचन्द्रजी था । उनको लोगोंने समाचार दिया । वे स्वयं भी पहुँचे हुए थे । उन्होंने आकर देखा––देखते ही समझ गये कि यहाँ तो कुण्डलकी खोज चल रही है । बस, चटसे वे उन्हींके बगलमें बैठ गये । ध्यानमें ही वहाँ पहुँचे तथा कुण्डल, जो एक कमलकी जड़में छिपा हुआ था, उठाकर इनके हाथोंमें दे दिया । पहनानेपर प्रियाजीने प्रसन्न होकर अपने मुँहमेंका पान उनके मुँहमें दे दिया । अब पान तो ध्यानमें दिया था, पर उसी समय आँखें खुलीं । देखते हैं कि मुँह पानसे भरा हुआ है । दोनों मित्र हँसने लग गये और लोगोंने कुछ नहीं समझा । केवल इतना ही देखा कि सात दिन बाद पान चबाते हुए उठे जब दो प्रेमी साथी मिलकर ऐसी सेवाकी साधना एक साथ करते हैं तथा दोनों ही जब

ऊँची स्थितिमें पहुँच जाते हैं, तब एक–दूसरेकी क्या अवस्था है, यह भगवान्‌की कृपासे वे जान लेते हैं । यह योगकी बात नहीं है । यह तो साधनके साम्यकी बात है तथा भगवदिच्छासे ऐसा हो जाता है ।

जैसे गोपियाँ श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये एक साथ मिलकर कात्यायनीकी उपासना करती थीं । वैसे ही यहाँ भी कोई–कोई ऐसे मित्र होते हैं, जो मिलकर एक–दूसरेसे हृदयकी बात बताते हुए साधना करते हैं । फिर उनसे एकको दूसरेकी अपस्थाका श्यामसुन्दरकी इच्छासे ही कभी भी पता लग जाता है; सदा ही लगे, यह आवश्यक नहीं है ।

किसीकी सच्ची लगन हो तो आसानीसे सफलता मिल सकती है; क्योंकि भगवान् सर्वथा सर्वदा उपस्थित हैं । जो चाहिये, वही कर देंगे । पहले तो चिन्तनमें जहाँ मन लगा कि सब चाह ही मिट जायगी । पता ही नहीं लगेगा कि चिन्तन है या असली । चिन्तनका अभ्यास होते ही मन दिन–रात वहीं फँसा रहेगा आपके मनमें जो चित्र आता है, उसमें भी आपकी ही कमीके कारण सब त्रुटि है; क्योंकि आप उसे ऐसा मानते हैं कि यह तो भावनाका चित्र था । सेवा हुई, नहीं हुई; चलो, कोई आ गया है तो उससे बात कर लेंगे । भगवान् देखते हैं कि यह तो हमें भावनाका चित्र मानता है, तब हम असली क्यों बनें ? नहीं तो, फिर गरमीके दिनोंमें आपको राधारानी एवं श्रीकृष्णको पंखा झलनेसे फुरसत नहीं मिले । बाहर कुछ भी करते रहेंगे, पर मनमें सिद्धदेह धारण किये हुए पंखा झलते ही रहेंगे, बाहरके काममें भले ही त्रुटि हो, पर पंखा झलना एक मिनट भी नहीं छूटेगा । कहीं किसी झंझटके काममें फँस गये तो इतना दुःख होगा कि बाप रे, हम तो मर गये । जैसे हम गरमीके कारण छटपटा रहे थे, ठीक उसी तरह यह मालूम होगा कि ओह ! आज बहुत गरमी है, देखो तो कितना पसीना श्यामसुन्दरको आ रहा है। और फिर यहाँ शरीरका ध्यान छूटकर मनमें ही पंखा झलना चलता रहेगा । पर यह इसीलिये नहीं होता कि न तो चित्र बाँधनेका अभ्यास सधा है और न उसमें असली श्रीकृष्णभाव है । भोजन करानेकी लीला चिन्तन करते हुए जैसे धीरे–धीरे चबा–चबाकर हम प्रत्येक ग्रासको खाते हैं, वैसे अनुभव होगा कि यह लड्डू है, इसे श्यामसुन्दरने तोड़ा नमकीन खाते तो ठीक रहता ! बस, उसी समय अनुभव होगा कि दही–बड़ेको तोड़कर मुँहमें रख रहे हैं । पर वह करनेसे होगा । आप जो भाव करेंगे, उसी लीलाको वे सच्ची बना देंगे । पहले तो सुन–पढ़कर दस–बारह लीलाओंका कोर्स बनाइयेगा, फिर पीछे उनकी कृपासे नयी–नयी लीलाएँ अपने–आप ध्यानमें आने लग जायँगी । आप जिन श्रीविग्रहकी सेवा करते हैं, उनके साथ भी ऐसी घटना हो सकती है । वे सचमुच आपका भोग खा सकते हैं सामने बैठकर

खा सकते है; पर सारी बात इसपर निर्भर है––अटल विश्वासके साथ सच्चे मनसे चाहकर पूरी लगनसे चिन्तनमें लग जायँ । फिर कुछ भी करना नहीं पड़ेगा । मधुर–से–मधुर लीला एक–पर–एक मनमें उनकी कृपासे आयेगी और आप बस, देख–देखकर निहाल होते रहियेगा । फिर एक दिन यह शरीर छूट जायगा और उसीमें सदाके लिये शामिल हो जाइयेगा । पर यह सब अनन्य लगनके साथ करनेसे होगा ।

नन्ददासजी जब मरने लगे––अन्तमें यह पद गाते हुए मरे–

देखो, देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट
गोपिनके मध्य, राजैं मुकुट लटक ।
काछिनि किंकिणि कटि,
पीताम्बरकी चटक
नंददास गावैं तहाँ निपट निकट ।

अर्थात् मैं बिल्कुल नजदीक खड़ा होकर यह लीला देख रहा हूँ । यह कहते हुए प्राण छोड़ दिये । आप यदि श्रीकृष्णपर निर्भर होकर साधना करें तो नन्ददासजीकी तरह मृत्यु होना कौन बड़ी बात है ।

श्रीराधा और श्रीकृष्ण सबके सामने आते हैं, पर सबको एक प्रकारकी लीलाके ही दर्शन नहीं होते। जो जितना ऊँचा अधिकारी होता है, उसके सामने उतने ही ऊँचे स्तरकी लीला प्रकट होती है । पर एक रहस्यकी बात यह है कि जो भी लीला होती है, उसमें यह अनुभव नहीं होता कि हमें कुछ कम दर्जेकी लीला देखनेको मिली है, जिसे भी जो लीला देखनेको मिलती है, यदि यथार्थ मिलती है तो वह इतनी विलक्षण होती है कि उसके लिये उसके सिवा और कुछ भी बच नहीं रहता । न यह जगत् रहता है, न संसार, न कुछ और बात, बस, वही–वही रह जाती है । और फिर उसीपर नया–नया रंग चढ़ता जाता है तथा वह रंग इतना चढ़ता है कि बस, उसकी कोई सीमा नहीं, नित्य नया–नया हो जाता है ।

जो लीलाएँ बहुत ही उच्च कोटिकी होती हैं, उनमें ऐश्वर्य बिल्कुल नहीं होता । जिसके मनमें जरा भी ऐश्वर्यकी ओर टान रहती है, उसे उन लीलाओंको सुनकर आश्चर्य होता है । भजन करते–करते पहले पूर्ण ज्ञान हो जाता है, इसके बाद वह ज्ञान धीरे–धीरे छिपने लगता है, तब मधुर लीलाओंका प्रकाश होता है । श्रीराधा–कृष्णकी लीला एक–से–एक मधुर है, जितना भक्त ऊँचा उठता है, उतनी ही वह मधुरता गहरी होती जाती है । इसकी कोई सीमा नहीं है । आजतक जितने भक्त हुए हैं, उन्हें जो–जो अनुभव हुए हैं और वे जितना वाणीमें कह सके हैं उसीका वर्णन हम लोगोंको प्राप्त होता है । पर वह उतना ही हो, यह बात

नहीं। वह तो अनन्त है, असीम है । कोई उससे भी ऊँचा भक्त हो तो उससे भी ऊँची तथा और भी विलक्षण मधुर लीला भगवान् उसे दिखा सकते हैं ।

मन किसी प्रकार भी लीलामें फँस जाय तो काम बन गया । सोचिये–गायोंकी कतार खड़ी है, श्यामसुन्दर हाथमें दोहनी (दूध दुहनेका पात्र) लेकर खड़े हैं । गायें हरी–हरी दूब चर रही हैं । श्यामसुन्दरका सखा सुबल पासमें खड़ा है । प्रत्येक गाय रंभा रही है तथा चाहती है कि श्रीकृष्ण पहले उसे दुहें । श्रीकृष्ण तो भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं । एक ही समय एक क्षणमें जितनी गायें हैं, उतने रूपोंमें प्रकट होकर दुहने बैठ जाते हैं । बछड़ा श्रीकृष्णकी पीठ सूँघ रहा है । गाय श्रीकृष्णका सिर सूँघ रही है । दूर पर श्रीराधारानी सखीके कंधे पर हाथ रखकर यह छवि निहार रही हैं । उनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू झरते जा रहे हैं। अब इन्हीं गाय, दूध, बछड़ा–किसीमें भी मन लगा रहे और मृत्यु हो जाय तो इससे बड़ी सुन्दर मृत्यु और क्या होगी ?

निराश नहीं होना चाहिये । कभी किसी दिन एक क्षणमें ऐसी घटना हो जायगी कि बस, उस रस–समुद्रमें बह जाइयेगा । उसमें यह नियम नहीं कि धीरे–धीरे उठते–उठते तब होगा । किसी दिन हठात् कोई ऐसी कृपा की आँधी आयेगी कि उड़ाकर, बिलकुल जमीनपरसे उठाकर रस–समुद्रके ठीक मध्यमें ले जाकर पटक देगी । वहाँ से फिर लौटना असंभव होगा । किनारे जबतक पड़े हैं तभी तक आगे बढना, पीछे लौटना बन रहा है । परन्तु यह आँधी इतनी दूर उड़ा ले जायगी कि फिर जमीन का ओरछोर भी दिखना बन्द हो जायगा।

बस इतना ही कहना है कि जबतक यह कृपाकी आँधी न आवे तबतकका काल–क्षेप निरन्तर नाम–जप करते हुए बिताइये, साथमें मानसिक लीला–चिन्तन चलता रहे ।

राधा राधा राधा

।। श्रीराधाकृष्णौ वन्दे ।।

पत्र संख्या–३१

कृपाकी बाट जोहैं

रतनगढ़

तिथि उल्लिखित नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ।

आपका पत्र मिला । कृपाके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें तीन उपाय बताये हैं।

१. ऐसी कृपा होनेकी बाट देखता रहे । अब हुई, अब हुई, अब हो जायगी, कल हो जायगी, इस महीनेमें तो हो ही जायगी, इस वर्षमें तो निश्चय हो ही जायगी, हो ही जायगी – इस प्रकार प्रतिक्षण जिस प्रकार एक दरिद्र दिवालिया जूएकी बाजी जीतजानेकी बाट जोहता है तथा सौदा करता ही चला जाता है, वैसे ही भगवत्कृपाकी आशामें जो अपने पास है, सब फूँकता चला जाय। समस्त वस्तुओंको भगवत्प्रेमके लिये होमकर कृपाकी बाट जोहे । यहाँके जूएमें तो जीत चाहे न भी हो, पर वह कृपा तो आयेगी ही, भगवान्‌की कृपाकी इस बाजीमें तो जीत होगी ही ।

२. जो सुख–दुःख आकर प्राप्त हो जाय, उसे खूब प्रसन्नतासे ग्रहण करे–यह समझकर कि हमारा ही तो किया हुआ है ।

(३) हृदयसे, वाणीसे, शरीरसे निरन्तर भगवान्‌को नमस्कार करता रहे।

जो इस प्रकार जीवन बिताता है, उसे मुक्ति तो उत्तराधिकारके रूपमें ही मिल जाती है, भगवप्रेम भी उसे मिल जाता है ।

जब श्रीवनवास मिल्यौ सजनी
तब तीरथ आन गए न गए ।
जब लाड़िलि लाल कौ नाम लियौ,
तब नाम न आन लए न लए ।
पदकंज किसोरिहि चित्त पग्यौ,
तब पायन आन नए न नए ।।
जब नैन लगे मन मोहन सौं
तब औगुन आन भए न भए ।।

व्रजके एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा हुए हैं–श्रीललितकिशोरीजी, उन्हींका यह पद है । ऐसी ही निष्ठा आगे चलकर रसिक भक्तोंकी हो जाती है । पदका भाव यह है–यदि श्रीप्रियाजीके कुञ्जमें बसनेका–बृन्दावनमें बसनेका सौभाग्य मिल गया तो फिर दूसरे तीर्थोमें गये अथवा न गये । जाना, नहीं जाना बराबर है । समस्त साधनाका फल तो व्रज–वासके रूपमें मिल गया । अब और तीर्थोंमें जाकर क्या होगा । दूसरी बात यह कि जब प्रिया–प्रियतम, लाड़िली–लालका नाम मुँहसे निकल गया, तब फिर दूसरे नाम, दूसरी चर्चा मुँहसे निकली या न निकली । आवश्यकता ही कुछ नहीं है । तीसरी बात, जब श्रीप्रियाजीके चरणकमलोंमें चित्त झुककर उसमें फँस गया–उस रंगमें पग गया, तब फिर और किसीके चरणोंमें सिर नवाया या नहीं नवाया–दोनों बराबर हैं ! चौथी बात–जब दृष्टि मनमोहनसे लग गयी, नैन मोहनसे जा लगे, तब फिर दूसरा कोई अवगुण हुआ या नहीं हुआ, दोनों बराबर हैं । किसी परपुरुषमें दृष्टि लगाना बड़ा अवगुण है, पर जब वही दृष्टि श्रीमनमोहन रूप सुधाचन्द्रमें लग जाती है, तब वह परम सद्‌गुण बन जाता है।

इस प्रकार श्रीकृष्णप्रेमका भिखारी बस, चार लक्ष्य सामने रखकर बढ़ता है–जगत्‌की परवाह मिटाकर बढ़ता है । कौन क्या कहता है, इसकी ओर उसकी दृष्टि नहीं रहती । वह बिल्कुल सर्वथा जगत्‌की ओरसे, समस्त योग्यताकी ओरसे मुँह मोड़कर रम जाता है, प्रियतम प्रभुके नाम, रूप, लीला, धाम–इन चार चीजोंमें। अभ्यासके द्वारा जैसे हो, जिस प्रकार हो, बस, एक ही चर्चा, एक ही वातावरण निरन्तर बनाये रखें । लीला सुननेके लिये मिले, सुनें–नहीं मिले तो पढ़ें, चिन्तन करें । बस, मन उन्हीं बातोंमें रमता रहे । श्रीगोपीजनोंके प्रेमकी कैसी दशा होती है, इसे लिखकर तो कोई बता ही नहीं सकता । जैसे बिजलीका प्रकाश है; उसे देखकर जिसने कभी सूर्यके निर्मल प्रकाशको नहीं देखा है, वह अनुमान ही नहीं कर सकता कि वह कितना निर्मल प्रकाश है । ठीक इसी प्रकार आप जितनी बातें सुनते हैं, उनको सुनकर वास्तविक श्रीगोपी–प्रेमका क्या रूप है, यह ठीक–ठीक अनुमान ही आपको नहीं हो सकता । वह तो सूर्यकी किरणोंकी तरह अत्यन्त निर्मल प्रकाशमय वस्तु है, ज्ञानके परेकी चीज है। उसे तो देखकर उनकी अनन्त कृपा होनेपर ही उसका यत्किंचित् स्वरूप समझा जा सकता है ।

निरन्तर उनके चरणोंमें रो–रोकर प्रार्थना करनेसे ही कुछ अनुभवमें, कल्पनामें आ सकता है । इसलिये लीला पढ़ें, सुनें, प्रार्थना करें, निरन्तर कृपाकी भीख माँगते ही चले जायँ और जहाँतक बने, अब मनको प्रपञ्चके कामोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करें । एकान्तमें बैठकर रोयें, श्रीप्रिया–प्रियतमके चरणोंमें बैठकर उनके सामने रोयें । सच्चा रोना न हो, न सही । झूठे ही जैसा भाव हो, उसीको लेकर

रोयें–नाथ ! इस नीरस हृदयको सरस बनाओ, इस सूखे हृदयमें अपने प्रेमका एक कण देकर इसे भर दो । प्रभो ! अपनी ओर, अपनी कृपाकी ओर देखकर ऐसा करो । निश्चय मानिये, बार–बारकी प्रार्थना व्यर्थ जा ही नहीं सकती । झूठीको वे अपनी कृपासे सच्ची बना देते हैं ।

अभ्यास करनेके साधन पहले भी बताये गये हैं । पुनः समझ लें –

(१) कुञ्जोंका नकशा आपने देखा था । उसमें पहले श्रीविशाखाका कुञ्ज कहाँ है, यह देखकर कुछ क्षण उस समूचे कुञ्जका चित्र बाँधिये ।

(२) फिर एक कदम्बके वृक्षका सुन्दर–से–सुन्दर कल्पना कीजिये ।

(३) फिर उसकी डालियोंको देखिये ।

(४) फिर उसमें पत्ते लगे हैं, उन्हें ।

(५) कदम्बके अन्यन्त सुन्दर फूल हैं, उन्हें ।

(६) कदम्बके फूलोंपर झुंड–के–झुंड काले भौंरे हैं, उन्हें ।

(७) कदम्बकी जड़के नीचे उजला चमचम करता हुआ संगमरमरका गट्टा है, उसे।

(८) संगमरमरका गोलाकार गट्टा चारों ओर फैला है, उस गोलाईका कुछ क्षण चिन्तन कीजिये ।

(९) अंदाज दो–दो गज़ चारों ओरसे चम–चम कर रहा है, उसका ।

(१०) उसके नीचेकी जमीन भी संगमरमरके फर्शकी बनी हुई है, वह खूब चमक रही है, इसे देखें ।

(११) फर्शके चारों ओर बेलाके वृक्ष लगे हैं, उन्हें ।

(१२) उनमें बड़े–बड़े फूल खिले हैं, उन्हें ।

(१३) फिर चमेलीके वृक्ष हैं, उन्हें ।

(१४) चमेलीमें फूल लगे हैं, उन्हें ।

(१५) हरी–हरी दूबकी जमीन चारों ओर फैली है, उसे ।

(१६) उसपर कहीं स्थलकमल हैं, उन्हें ।

(१७) कहीं तगर, कहीं कुन्द, उन्हें ।

(१८) चारों ओर हरी–हरी झाड़ी दीख रही है, उसे ।

(१९) गट्टेके सहारे श्रीराधारानी बैठी हैं, उन्हें ।

(२०) नीली साड़ी है, यह ।

(२१) हाथमें कंकण हैं, यह ।

(२२) दोनों हाथोंमें कंकण हैं, उन्हें ।

(२३) इसके बाद अत्यन्त सुन्दर चूड़ियोंको ।

(२४) इसके बाद भी एक अत्यन्त सुन्दर आभूषण है, उसको ।
(२५) बाँहके पास भी सुन्दर आभूषण हैं; उन्हें ।
(२६) पैर साड़ीसे ढका है, यह ।
(२७) मुखारविन्द शोभा पा रहा है, यह ।
(२८) सिरपर चन्द्रिका है, उसे ।
(२९) चन्द्रिकामें मोतीकी झालर लटक रही है, उसे ।
(३०) ललाटपर सुन्दर कुंकुमका गोल लाल बिन्दु है, उसे ।
(३१) सिरके पास अञ्चल कुछ बायीं ओर ऊपर चढ़ गया है, उसे ।
(३२) श्यामसुन्दर उनके दाहिनी ओर हैं, उन्हें ।
(३३) सिरपर मोर–मुकुट है, उसे ।
(३४) बड़ा ही सुन्दर मुख है, इस झाँकीको ।
(३५) आँखें बड़ी–बड़ी हैं, उस सौन्दर्यको ।
(३६) आँखें नीचेकी ओर हैं, इस लावण्यको ।
(३७) अलकावलि कुछ बिखरी हुई मुखपर आ गयी है, इस झाँकीको ।
(३८) दुपट्टा दोनों कंधोंपर लटक रहा है, यह ।
(३९) दोनों हाथोंसे एक तागेमें फूल पिरो रहे हैं, यह ।
(४०) श्रीप्रियाजी भी दोनों हाथोंसे फूल पिरो रही हैं, इस मनोहर दृश्यको ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि एक लाइन पढ़कर उसमें क्या–क्या चीज आयी है, यदि उन सबपर एक–एक सेकंड भी मन रुककर उन्हें देख लें तो फिर छोटी लीलामें भी चार–छः घंटे लग जायँ । अभ्यास करनेसे होता है । मेरी समझमें यही बात आती है तथा समस्त शास्त्रोंमें एवं वैष्णव संतोंके बचनोंमें यही बात मिलती है कि मनको स्थिर करना ही पड़ेगा और स्वयं भगवान्‌ने जैसा कहा है अभ्यास और वैराग्य दोनोंके साथ–साथ पूरी तत्परतासे करनेसे ही काम बनता है। सच मानिये, इस व्रजलीलामें मन फँसानेके लिये विशेष परिश्रमकी आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ तो एकके बाद एक, एकके बाद एक इस प्रकार मन जहाँ जाय, कुछ भी सोचे, उसी स्फुरणाके साथ व्रजकी किसी चीजको जोड़ देनेसे ही ध्यान होने लग जाता है ।

मनकी जिस समय विशेष चञ्चलता हो, उस समय उसे खूब तेजीसे नचाना आरम्भ करें । हमें लिखनेमें तो देर लगती है, पर चञ्चलताके समय उसकी बड़ी सुन्दर दवा यह है कि जोरसे उच्चारण करें, हरे राम, कृष्ण, गोविन्द। फिर प्रारम्भ करें राधाकुण्ड, निकुञ्ज, ललिता, विशाखा, चित्रा, वेदी, नदी, यमुना, गोवर्धन,गाय।

इस प्रकार पागलकी तरह मनके सामने जो भी कोई चीज आये, उसे व्रजके भावमें जोड़ दें । मन जब कुछ भी सोचेगा, आप विचारकर देख लें, देखी–सुनी हुई बातको ही सोचेगा । जिस समय किसी स्त्रीपर ध्यान जाय उस समय पागलकी तरह गोपी, गोपी, गोपी रटने लग जायँ !'लड़केपर ध्यान जाय–बस, ठीक उसी समय सुबल, श्रीदाम, स्तोक मधुमंगल पागलकी तरह रटें । इसके बाद ध्यानमें आया घर–मकान बस, ठीक वहीं, उसी स्थानपर देखें, ना, यहाँ तो कुञ्ज है, महल है, ना, वह देखो, ललितारानीका कुञ्ज है । अहा ! कैसी झाड़ी है, कैसा सुन्दर सरोवर है, कैसा उपवन है । यह शब्द उच्चारण होते ही फिर आगे चलकर वह चित्र भी सामने आ जायगा। पर यह तभी होगा जब कि जीवनका उद्देश्य बस, एक ही रह जाय–चाहे मरेंगे या जीयेंगे, अब तो चौबीसों घंटे व्रजमण्डलमें ही मन रमेगा, व्रजके लता–पत्र कुछ भी बनेंगे, पर अब तो बनेंगे ही ।

इस प्रकार दृढ़ निश्चय होते ही श्रीकृष्णकी सारी कृपा साधकके ऊपर बहने लगती है । लीला एक–से–एक सुन्दर तथा एक–से–एक आकर्षक–बढ़िया हैं, आकर्षक हैं, पर सभीमें मनकी आवश्यकता होगी ही। आप–जैसे मेरे पास आते हैं; अब यदि ऐसा नियम कर लें कि अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक डेढ़ घंटा जबतक इनके पास बैठूँगा, तबतक ये जैसे–जैसे लिखते जायँगे, उसका पूरा–पूरा चित्र बाँधनेकी चेष्टा करूँगा ही तो फिर चौबीस घंटोंमें डेढ़ घंटा आपका ध्यान हो गया। इसके बाद यदि घरपर नियमसे, आज जिस लीलाको सुनें, कल ठीक चार घंटे उसमें मन लगाना ही है, इस भावनासे दृढ़तापूर्वक साधन करें, तब तो फिर पाँच–छः घंटे प्रतिदिन साधन होगा । तथा यदि विषयका संग नहीं हुआ, उससे बचे रहे, तब तो फिर उन्नति होनी ही चाहिये । पर बिना तत्परताके कुछ भी होना कठिन है।

विषयोंका संग वह है, जो भगवान्‌से हटाये । जो भी वस्तु भगवान्‌के प्रति आकर्षण कम करें, वही विषय है ।

श्रीकृष्ण तो कृपाके समुद्र हैं, उनके उन्मुख होना चाहिये; फिर उनमें पक्षपात थोड़े है कि उसपर कृपा करूँ, इसपर नहीं करूँ ।

अब सोचिये–इस समय अँधेरा हो गया है; यहींपर एक नहीं, एक साथ अनंत लीलाएँ चल रही हैं । किसीके एक कणमें मनको डुबाइये । सोचिये, श्रीराधाजीके हाथकी बनी हुई रसोईको नन्दबाबाके साथ श्रीकृष्ण आरोगनेकी तैयारीमें खड़े हैं, मैया यशोदा जल्दी–जल्दी कभी भीतर आती हैं, कभी बाहर जाती हैं ! कभी सोचती हैं– ओह ! दूधमें मिश्री डालना भूल गयी हूँ और चूल्हेके पास दौड़कर जाती हैं । श्रीकृष्ण अन्यमनस्क–से होकर अपने महलमें बाहरके बरामदेमें

खड़े ऐसा भाव प्रकट कर रहे हैं मानो उनकी दृष्टि अन्धकारको चीरकर किसीको देखना चाहती हो ।

इधर नन्दबाबाके दरबारकी तैयारी होने जा रही है । कोई बाजा लेकर, कोई पोशाककी पेटी लेकर दरबारकी ओर जा रहा है । नन्दबाबाकी पगड़ी हिल जाती है । श्रीकृष्णका हाथ नन्दबाबा पकड़े हैं, अब वे चल रहे हैं; सीढ़ियोंसे चढ़ रहे हैं । अब एक–एक वस्तुको यदि मन देखने लगे तो इतनी–सी बातमें दो घंटे बीत जायँगे । प्रतिदिन तीन–चार घंटे लीला–चिन्तन में बिताना कौन बड़ी बात है और तारीफ यह है कि कहीं किसी चीजमें मन डूबा कि श्रीकृष्णकी कृपा लीलाका प्रकाश करके मनको खींच लेगी । श्रीकृष्णकी धारणा नहीं होती, न सही; वैजयन्तीमालाकी धारणा नहीं होती, न सही; वैजयन्तीमालाकी धारणा, उनके किसी अंगकी धारणा, सीढ़ियोंकी धारणा, नन्दबाबाकी पगड़ीकी धारणा भी नहीं होगी ? होगी, अवश्य होगी । खूब शान्तिसे, अखण्ड उत्साह लेकर उनकी कृपासे किसी व्रज–भाव–भाक्ति वस्तुको सोचते चले जाइये, फिर तो श्रीकृष्ण खिंचे हुए, बँधे हुए उसीके साथ प्रकट होंगे ही ।

जैसे–जैसे वृत्तिकी मलिनता दूर होगी, वैसे–वैसे जो राधाभाव, श्रीराधाजीका रूप, श्रीकृष्णका रूप है, उसपर नया–नया रंग चढ़ता जायगा और यह रंग चढ़ना कभी समाप्त ही नहीं होता–चढ़ता ही चला जाता है, क्योंकि वह रूप अनन्त है ।

अभी मान लें आप ध्यान कर रहे हैं–मीठे झीने सुरमें श्रीकृष्ण बाँसुरीमें सुर भर रहे हैं, गायें पूँछ उठा–उठाकर गोशालामें इधर–उधर दौड़ रही हैं; नन्दबाबाके हजारों दास गायोंकी खड़ी हुई कतारके पास बैठकर दूध दुह रहे हैं, श्रीकृष्णकी दृष्टि दूरपर खड़ी हुई श्रीराधारानीपर लग रही है । x x x बस, इतना–सा ही ध्यान प्रतिक्षण नये–नये रंगमें, नये–नये भावमें रँगता चला जायगा । इसका स्वरूप कुछ दिनोंके बाद ऐसा हो जायगा, उस ध्यानमें और पहलेके ध्यानमें इतना गहरा अन्तर हो जायगा कि आप चकित रह जायँगे । ऐसे ही किसी भी लीलाका रंग, भाव सब बदल जायगा । एक बार पूरी चेष्टा करके मनको डूबनेका अभ्यासी बनाइये फिर देखेंगे–नया–नया रस मिलेगा ।

रासलीलाकी फलश्रुति है कि 'इसे श्रद्धापूर्वक सुननेवाला पराभक्ति प्राप्त करता है ।' पर 'अनुश्रृणुयात्' अर्थात् निरन्तर श्रवण करना चाहिये । तथा 'श्रद्धान्वितः' अर्थात् इसे ही एकमात्र साधन बनाकर, इसपर दृढ़ विश्वास करके सुनें। यदि लीला–श्रवणका ही आप व्रत ले लें तो केवल एक यही उपाय कृपाको प्रकाशित कर देगा; परंतु यह भी होगा पूरी लगनसे, पूरी तत्परतासे ।

एक बात सदाके लिये सभीको ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवत्कृपाका प्रकाश होकर अधिकारानुसार प्रेम प्राप्त कर लेना चेष्टाकी सफलतापर बिल्कुल निर्भर नहीं है । यह निर्भर है भावपर अर्थात् इसने कितनी सत्यतासे साधनको पकड़े रहनेकी चेष्टा की है । बेईमानी की है कि नहीं–इसीपर फैसला होता है।

एक बार एक संतने कहा था कि संतोंके संगमें किसी प्रकार टिके रहो। प्रेमी संतोंके अंदर जो प्रेमसमुद्र लहराता रहता है, वह बराबर प्रकट नहीं रहता, छिपा हुआ रहता है । किसी दिन उसमें उफान आया, तुम पासमें रहे और तुमपर एक छींटा भी पड़ गया कि उसी क्षण बिना किसी परिश्रमके भगवत्प्रेम प्राप्त करके कृतार्थ हो जाओगे ।' भाव यह था कि प्रेमी संतोंके संगका लाभ तो अमूल्य होता ही है; पर कभी–कभी उनका जो भगवत्प्रेम है, वह बाहर प्रकट होकर बहने लग जाता है । सदा ऐसा नहीं होता, अब कल्पना करें, कोई सदासे संगमें रहता आया है । वह यदि उस क्षण वहाँ उपस्थित रहता तो उसे उस प्रेमके प्रभावसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जायगी । इसलिये कोई भी दूसरी लालसा, दूसरी शर्त न रखकर,, धैर्य रखकर संतोंका संग करना चाहिये ।

वास्तवमें बात यह है कि भगवत्प्रेम साधनासे नहीं मिलता । यह तो उसीको मिलता है, जिसे भगवान् या कोई प्रेमी संत दे दें । मोक्ष साधनासे मिल सकता है, पर प्रेम नहीं । महाप्रभुके जीवनसे यह बात भलीभाँति प्रमाणित हो जाती है । एक मक्त थे; वे बेचारे सबको प्रेममें विभोर होते देखते, पर उनको प्रेम नहीं होता । एक दिन वे महाप्रभुका चरण पकड़कर रोने लग गये । महाप्रभुने कहा–'अच्छा, कल गंगा–स्नान करके आना ।' कल हुआ, वे गंगा–स्नान करके आये । प्रभुने उन्हें छू दिया । उसी क्षण वे प्रेमावेशसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े । सचमुच प्रेम कुछ इतनी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ कहीं भी वह प्रकट होता है वहाँ प्रायः ऐसे ही एकाएक प्रकट होता है । श्रद्धा होनी चाहिये ।

पद्मपुराणमें एक कथा आती है–एक राजकुमार था । उसके मनमें आया–कैसे भजन होता है, श्यामसुन्दरका प्रेम क्या वस्तु है, किससे जाकर पूछूँ, कौन बताये ! इसी चिन्तामें वह सो गया । उसके घरमें एक ठाकुरजीका विग्रह था । उन्हींके विग्रहके सम्बन्धमें स्वप्न आरम्भ हुआ । स्वप्नमें उसने देखा कि वह विग्रह राधा–कृष्णके रूपमें बदल गया । वहाँ उसे साक्षात् श्रीराधा–कृष्ण दीखने लगे । सखियाँ भी दीखने लगीं । फिर श्रीकृष्णने अपनी बायीं ओर बैठी हुई एक सखीसे कहा–'प्रिये ! उसे अपने समान बना लो ।' वह गोपी आज्ञा पाकर आयी, राजकुमारके पास खड़ी हो गयी तथा अभेद भावसे राजकुमारका चिन्तन करने लगी । राजकुमारने देखा कि एक क्षणमें ही उसके सारे अंग बदल गये, उसके

हाथ, पैर, सिर, मुँह, नाक–सब बदल गये और वह एक अत्यन्त सुन्दर गोपी बन गया । उसके बाद उस गोपीने इसे एक वीणा दे दी और कहा कि 'यह लो, श्यामसुन्दरको भजन सुनाओ ।' उसने भजन सुनाना आरम्भ किया, भजन सुनानेपर श्यामसुन्दरने प्रसन्न होकर उसका आलिंगन किया, उसे हृदयसे लगा लिया । उसी समय राजकुमारकी नींद खुल गयी । राजकुमार रोने लग गया। निरन्तर एक महीनेतक रोता रहा । फिर उसने घर छोड़ दिया और वनमें जाकर कई कल्पोंतक एक मन्त्रका जप एवं युगलसरकारका ध्यान करता रहा । तब उसे सचमुच गोपीका देह प्राप्त हुआ और उसे भजन सुनानेकी वही सेवा मिली ।

नारदजीको जब दर्शन हुआ, तब एक सखीने सब सखियोंका परिचय दिया कि पूर्वजन्ममें यह अमुक ऋषि थे । उन्होंने यह मन्त्र जपा था, यह ध्यान किया था । उसी प्रसंगमें नारदजीको उस सखीने बताया कि जिस सखीके हाथमें वीणा देख रहे हो, वह पहले जन्ममें राजकुमार रह चुकी है ।'

सारांश यह है कि यों तो प्रेम कल्पोंकी साधनाके बाद कभी किसी बड़भागीको मिलता है, पर जब वह प्रेम मिलनका उपक्रम होता है, तब एकाएक होता है । उसके लिये कोई साधना है, प्रेम मिल ही जायगा–यह कहना नहीं बनता । हाँ, यह ठीक है कि सच्चे प्रेमियों या संतोका संग अमोघ होता है। वह किसी न किसी दिन प्रेम उत्पन्न कर ही देता है । आपको प्रेमी सन्तोंका संग मिला है–ऐसा आपका विश्वास है, तो निश्चय ही आपको किसी न किसी दिन भगवत्प्रेम मिलेगा, यह विश्वास रखिये । सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–३२

भगवद्गुणानुवाद श्रवणसे प्रेम प्रकट होता है

रतनगढ़
तिथि उल्लेख नहीं

श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सस्नेह राधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला । सबसे ऊँचा प्रेम श्रीगोपीजनोंका ही है । इसी प्रेममें रासलीलामें सम्मिलित होनेका अधिकार मिलता है और किसी भी प्रेममें नहीं । पर यह गोपीप्रेम भी सचमुच साधनाका फल नहीं । यह तो किसी गोपी–भावापन्न संत, किसी गोपी अथवा श्रीकृष्णकी कृपासे ही प्राप्त होता है । हाँ, कृपा प्राप्त करनेके अधिकारी सभी हैं । श्रीकृष्णकी निन्दा करनेवाला भी कभी–कभी विलक्षण कृपा प्राप्त करके निहाल हो जाता है । फिर कृपा चाहनेवाला निहाल हो, इसमें संदेह ही क्या है । काशीमें भारतके एक बड़े भारी वेदान्ती थे । उससे बड़ा उस समय कोई नहीं था । नाम था स्वामी प्रकाशानन्दजी । दिन–रात भक्तोंका मजाक उड़ाया करते थे । महाप्रभु काशीमें आये, दर्शन हुए। दर्शन करते ही चित्तमें उथल–पुथल मच गयी । लंबी कथा है। फिर वे ऐसे प्रेमी बने कि दिन–रात सखीभावसे राधा–कृष्णके प्रेममें डूबे रहते । जब जीवन पलटता है, तब ऐसे ही पलट जाता है ।

भगवद्गुणानुवाद सुननेसे मन इस योग्य होता है कि उसमें प्रेम प्रकट हो सके । पर सुननेसे प्रेम होगा, सुननेसे प्रेम खरीद लिया जायगा–यह बात नहीं है। वह तो तभी मिलेगा, जब स्वयं भगवान् या उनका कोई प्रेमी संत दे दे ।

ज्ञान हो सकता है, मोक्ष हो सकता है, बड़े–से–बड़ा पुरुषार्थ साधनसे सिद्ध हो सकता है, पर प्रेम इतनी दुर्लभ वस्तु है कि साधनाके मोलमें नहीं मिलता । यदि किसीको इसका एक कण भी मिल जाय तो उसकी ऐसी दशा हो जाय कि सब चकित रह जायँ । मुझे तो प्रेम मिला नहीं और पता नहीं, इस जीवनमें मिलेगा या नहीं, क्योंकि वह सौदेकी चीज नहीं है । वह तो श्रीकृष्ण दें या कोई प्रेमी दे, तब मिले ।

प्रेमी भक्तोंकी दशा विचित्र होती है । कोई–कोई चाहते हैं कि मैं लता बन

जाऊँ । ऐसा होनेपर फिर उसमें फूल लगेंगे और श्रीकृष्ण आयेंगे तथा अपने हाथसे उसे पकड़ कर फूल तोड़ेंगे । फूल तोड़कर श्रीगोपीजनोंके अञ्चलमें बाँधेंगे । राधाजीके साथ मेरी पत्तियोंको पकड़कर खेल करेंगे और मैं देखूँगा । धन्य है उनकी चाहना ।

व्रजकी लता बनना भी अनन्त सौभाग्यसे ही होता है । वे लताएँ यहाँकी तरह जड़ लताएँ नहीं हैं। वे लताएँ चाहते ही गोपी बन सकती हैं; क्योंकि वृन्दावनकी सभी वस्तुएँ सच्चिदानन्दमयी हैं । वहाँ केवल रूप भिन्न–भिन्न है, तत्त्वतः सभी वस्तुएँ सच्चिदानन्दमयी हैं । लीलाके लिये कोई पेड़, कोई लता, कोई पक्षी, कोई हिरन–इस प्रकार दिखायी पड़ते हैं ।

इसलिये मैं बार–बार कहता हूँ कि वृन्दावनकी किसी भी वस्तुका चिन्तन कीजिये । चिन्तन करते–करते, मान लें पेड़का चिन्तन करते–करते ही आप मर गये और पेड़ बने तो ऐसा–वैसा पेड़, मामूली पेड़ नहीं बनियेगा । वृन्दावनका सच्चिदानन्दमय पेड़ बनियेगा और चाहते ही गोपी बनकर, सखा बनकर, जैसा रूप चाहियेगा, वैसा ही बनाकर साक्षात् सेवा कीजियेगा ।

जैसे–जैसे साधक ऊपर उठता है, वैसे–वैसे ही भगवान्का ऐश्वर्य छिपता चला जाता है तथा शुद्ध पवित्रतम मधुर राज्यकी लीला एक–से–एक बढ़कर चित्तमें आती रहती है । अब श्रीकृष्ण राधाके लिये रोयें–यह लीला उसे आनन्द दे ही नहीं सकती, जिसका मन अभी ऐश्वर्यके आनन्दकी ओर आकृष्ट होता है और सच्ची बात तो यह है कि वर्णन इसीलिये किया जाता है कि किसी प्रकार मन पवित्र हो, नहीं तो वे लीलाएँ वाणीमें आ ही नहीं सकतीं, उन्हें तो कोई बिरला भाग्यवान् बहुत ऊँचा संत ही अनुभव करता है ।

उस मधुरलीलामें श्रीकृष्ण अपने समस्त ऐश्वर्यको भूलकर, छिपाकर प्रियतमरूपसे लीला करते तथा व्रजसुन्दरियाँ भी उन्हें सर्वथा अपना 'प्राणेश्वर' ही मानती हैं । यह बात नहीं है कि उन्हें भगवान्के स्वरूपका ज्ञान नहीं होता। बात यह है कि जब प्रेमका समुद्र उमड़ता है, तब ज्ञान छिप जाता है । वह कुछ ऐसी स्थिति है कि जिसकी कल्पना बड़े ही भाग्यवान् बिरले प्रेमी अपने अन्तरमें ही कर पाते हैं ।

'कालाचाँद गीता' एक छोटी–सी पुस्तक है । बड़ी ही सुन्दर पुस्तक है । उसमें एक स्थलपर श्रीकृष्णको रोते देखकर गोपी रोनेका कारण पूछती है। उसीके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं–'सुनो, सखि ! जहाँ प्रेम है, वहाँ निश्चय ही आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहती रहेगी । प्रेमीका हृदय पिघलकर आँसओंके रूपमें निरन्तर बहता रहता है और उसी अश्रु–जल, प्रेमजलमें प्रेमका पौधा अंकुरित होकर

निरन्तर बढ़ता रहता है । सखि ! मैं स्वयं प्रेमीके प्रेममें निरन्तर रोता रहता हूँ । मेरी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा चलती रहती है । मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं बताऊँ, पर तुमने बार–बार पूछा–तुम क्यों रोते हो ? तो आज बात कह दे रहा हूँ । मैं अपने प्रेमीके प्रेममें रोता हूँ; जो मेरा प्रेमी है, वह निरन्तर रोता है और मैं भी उसके लिये निरन्तर रोता ही रहता हूँ । सखि ! जिस दिन मेरे–जैसे प्रेमके समुद्रमें तुम डूबोगी, जिस दिन तुम्हारे हृदयमें प्रेमका समुद्र–उसी प्रेमका समुद्र जो मेरे हृदयमें नित्य निरन्तर लहराता रहता है, लहराने लगेगा, उस दिन तुम भी मेरी ही तरह बस, केवल रोती ही रहोगी । सखि ! उन आँसुओंकी धारासे जगत् पवित्र होता है; वे आँसू नहीं, वे तो गंगा एवं यमुनाकी धारा हैं । उनमें डुबकी लगानेपर फिर त्रिताप नहीं रहते । सखि ! मैं देखता हूँ, मेरी गोपी, मेरे प्राणोंके समान प्यारी गोपी रो रही है, मेरी प्रियतमा रो रही है, बस मैं भी यह देखते ही रोने लग जाता हूँ । मेरा हृदय भी रोने लग जाता है । मेरी प्रिया–प्राणोंसे बढ़कर प्यारी गोपी जिस प्रकार एकान्तमें बैठकर रोती है, वैसे ही मैं भी एकान्तमें बैठकर रोता हूँ और रो–रोकर प्राण शीतल करता हूँ । यह है मेरे रोनेका रहस्य ।'

सोचकर देखिये – जिस साधकका, सिद्धका, भक्तका मन श्रीकृष्णके ऐश्वर्यको ही ग्रहण कर पाया है, वह इस परम मनोहारिणी लीलाका रस ले ही नहीं सकता। उसे भगवान्‌के यों रोनेकी ये बातें समझमें ही नहीं आयेंगी ।

जो शान्तभावसे उपासना करते हैं, उनके लिये केवल श्रीकृष्णका ऐश्वर्यमय रूप प्रकाशित होकर रह जाता है । उन्हें यह नहीं ज्ञात होता कि इससे परे भी कुछ और है; क्योंकि भगवान् जिस किसीको भी जिस रूपमें मिलते हैं, उसीमें उसको पूर्णताका अनुभव हो जाता है, कारण भगवान् सर्वत्र सब ओरसे परिपूर्ण हैं। इसी प्रकार दास्य, सख्य, वात्सल्यभावतककी प्राप्ति हो जाती है । पर यहाँतक श्रीराधाजी एवं उनके दिव्यभावका प्रकाश नहीं होता । वे प्रकट नहीं होतीं । जो इससे ऊपर उठते हैं, मधुरभावसे उपासना करते हैं और साधनाकी सिद्धि प्राप्त करते हैं, उन्हींके लिये श्रीराधाजी प्रकट होती हैं । वे ही इस ऐश्वर्यविहीन परम–मनोहारिणी लीलाका रस ले पाते हैं ।

एक बड़ा सुन्दर पद है –

स्याम स्याम रटत राधा, स्याम ही भई री ।
पूछत सखियन सौं प्यारी कहाँ गई री ।।

यहाँ प्रेमकी बड़ी विलक्षण अवस्था होती है । श्रीराधा श्रीकृष्ण बन जाती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा बन जाते हैं । यह कविकी कोरी कल्पना नहीं, यह दिव्य चिन्मय प्रेमधाममें होनेवाली लीलाको अनुभव करके उसकी झाँकीका वास्तविक

चित्र खींचा गया है । प्रेमरसमें डूबे हुए व्रजके कई संतोंने सचमुच इस दिव्य लीलाका साक्षात्कार किया था और तब पदरचना की थी ।

सूरदासजीका प्रयाण–काल जब निकट आया, तब गोस्वामी विट्ठलनाथजीने पूछा–'सूरदास ! मनकी वृत्ति कहाँ है ?

सूरदासने गाया है–

बलि बलि बलि बलि कुँअरि राधिके,
स्याम सुँदर जिन सौं रति मानी ।

पदका भाव यह है कि 'धन्य राधिके ! समस्त जगत्, समस्त ब्रह्माण्डको आनन्द देनेवालेको भी तुमसे आनन्द मिलता है ।' आगे कहते हैं कि 'तुम लोगोंका रहस्य बड़ा ही विलक्षण है । श्यामसुन्दर पीताम्बर इसलिये पहनते हैं कि उसे देख–देखकर तुम्हारी स्मृतिमें डूबते रहें और तुम नीली साड़ी इसलिये पहनती हो कि श्यामसुन्दरकी स्मृतिमें ही डूबी रहो ।' अन्तिम क्षणमें पूछा गया–'सूरदास ! नेत्रकी वृत्ति कहाँ है ?' उसपर गाया –

खंजन नैन सुरँग रस माते ।

यही पद गाकर उन्होंने प्राण छोड़ दिये । ऐसी ही मृत्यु श्रीकृष्ण हम सबको दें ।

प्रेमका आरम्भ यहाँसे होता है – 'भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो; वे जिस बातसे प्रसन्न हों वही हो, अनन्त जन्मों तक नरकमें रखकर वे प्रसन्न हों, तो मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मुझे नरकमें भिजवा दें, मुझे जलानेमें उनको सुख हो तो सदा जलायें।' यह बात नहीं कि प्रेमी ऊपरसे खाली कहता ही हो; वह सचमुच नरकमें जानेके लिये तैयार रहता है तथा यह बात भी नहीं है कि वह जानता है कि हमें नरक तो जाना ही नहीं पड़ेगा; कह दो, कहनेमें क्या लगता है । वह सचमुच ही नरककी ज्वालामें जलकर प्रियतमके सुखसे सुखी होनेके लिये तैयार रहता है । यह ठीक है कि वह नरकमें नहीं जाता; पर उसके मनमें यह बात नहीं रहती कि मैं नरकमें नहीं जाऊँगा ।

उसके मनमें स्वयं शान्ति पानेकी, स्वयं सुख पानेकी बिलकुल–रत्तीभर भी इच्छा नहीं रहती । इसीलिये शास्त्रोंमें प्रेमको पंचम पुरुषार्थ कहते हैं, इससे परे अब कोई और पुरुषार्थ नहीं है ।

श्रीकृष्ण स्वयं किसी दिन गाकर सुना दें; फिर तो जगत्‌का समस्त सगीत, सारी राग–रागिनियाँ अत्यन्त तुच्छ हो जायँ, क्योंकि यहाँकी समस्त मधुरता उनकी मधुरताके समुद्रकी एक बूँदके बराबर भी नहीं है । सोचकर देखिये – गानेवालेके गलेकी आवाजमें मिठास कहाँसे आती है भला रेडियोमें, इतने गानेवालोंके

गलेमें जो इतना मिठास भरता है, वह स्वयं कितना मधुर गाना गाता होगा । यदि श्रीकृष्णकी मधुरतापर सचमुच विश्वास हो जाय तो प्राण व्याकुल हो जायँ कि वे कैसे मिलें ।

नन्ददासजी व्रजके एक बड़े प्रेमी महात्मा हो गये हैं । ये तुलसीदासजीके गुरुभाई थे । पीछे रामप्रेमीसे कृष्णप्रेमी बन गये । एक दोहा प्रसिद्ध है, गोस्वामी तुलसीदासजीने यह लिखकर भेजा –

कहा कमी रघुनाथमें छाँड़ी अपनी बान ।

श्रीरामचन्द्रमें क्या कमी थी कि अपनी बान छोड़ दी अर्थात् रामको छोड़कर कृष्णको भजने लगे । उसीके नीचे नन्ददासजीने लिखकर भेजा – (कमी कुछ नहीं, राम–कृष्ण सर्वथा एक हैं; पर)

मन बैरागी है गयौ सुन बंसी की तान ।

कहनेका मतलब यह है कि कब भगवत्कृपा प्रकाशित होकर जीवन ऊपर उठ जायगा–यह कोई नहीं कह सकता । अतः कृपाकी आशा लगाये रहना चाहिये। चाहे किसीका जीवन कितना ही पतित क्यों न हो, कभी निराश नहीं होना चाहिये । उनकी कृपा होगी तब एक क्षणमें सारा नकशा पलट जायगा । इससे अधिक और क्या कहूँ !

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–३३

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही जीवन सुधर सकता है

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

प्रिय श्रीशिवभगवान जी

सादर सस्नेह श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । आपका पत्र मिला ।

महात्माओंकी दृष्टि पड़ते ही क्षणभरमें जीवन सुधर सकता है । दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं, उनका नाम धनुर्दास था । एक वेश्या थी–हेमाम्बा नाम था उसका । बड़ी सुन्दरी थी । उसके रूपपर वे मुग्ध थे। भगवान्‌में भक्ति बिल्कुल नहीं थी । शरीर खूब हट्टा–कट्टा था । लोग उन्हें पहलवान कहते थे । बिचारेके अन्दर कामवासना नहीं थी, रूपका मोह था । उसे रूप बड़ा प्यारा लगता था । दिन बीतने लगे । रंगजीके मन्दिरमें उत्सव प्रतिवर्ष हुआ करता था और वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजजी महाराज मन्दिरमें आया करते थे । लाखोंकी भीड़ होती थी । कीर्तनका दल निकलता था । पहलवानजी और वेश्याके मनमें भी उत्सव देखनेकी एक साथ इच्छा हुई। वे लोग भी आये । कीर्तनमें लोग मस्त थे । भगवान्‌की सवारी सजायी गयी थी । हजारों आदमी आनन्दमें पागल होकर नाच रहे थे । पर पहलवानजीको उस वेश्याके मुखकी शोभा देखनेसे ही फुरसत नहीं थी । वे वहाँ भी एकटक उस वेश्या हेमाम्बाको ही देख रहे थे । श्रीरामानुजाचार्यजीकी दृष्टि पड़ गयी । इतने बड़े महात्माकी दृष्टि पड़ी । भाग्य खुल गया । श्रीरामानुजाचार्यजी बोले–यह कौन है ? उनको दया आ गयी थी। लोगोंमें यह बात प्रसिद्ध थी ही । सबने सारा हाल कह सुनाया । श्री रामानुजाचार्यजी डेरेपर गये और कहा, उसे बुला लाओ । पहलवानजी आये । श्रीरामानुजाचार्यजीने पूछा–'भैया ! लाखों आदमी भगवान्‌के आनन्दमें डूब रहे थे, पर तुम मल–मूत्रके भाण्डपर दृष्टि लगाये हुए थे । ऐसा क्यों ?' पहलवानने बताया – 'महाराजजी ! मैं कामवासनाके कारण उस वेश्याको प्यार नहीं करता, मुझे तो सुन्दरता प्रिय है । हेमाम्बा–जैसी सुन्दरता मैंने और कहीं भी नहीं देखी।

इसीलिये मेरा मन दिन–रात उसीमें फँसा रहता है।' आचार्यजी बोले–'भैया ! यदि इससे भी सुन्दर कोई वस्तु तुम्हें देखनेको मिले तो इसे छोड़ दोगे ?' पहलवान बोले – 'महाराजजी ! इससे भी अधिक सुन्दर कोई वस्तु है, यह मेरी समझमें नहीं आता ।' आचार्यजी बोले–'अच्छा, संध्याको मन्दिरकी आरती समाप्त होनेके बाद आ जाना । केवल मैं रहूँगा ।' पहलवानजी 'अच्छा' कहकर चले गये । श्रीरामानुजाचार्यजी मन्दिरमें गये, भगवान्‌से प्रार्थना की–'प्रभो ! आज एक अधमका उद्धार करो । एक बारके लिये उसे अपने त्रिभुवन–मोहनरूपकी एक हल्की–सी झाँकी दिखा दो।' इतने बड़े महात्माकी प्रार्थना खाली थोड़े जाती । अस्तु, संध्या समयको पहलवान आये । श्रीरामानुजाचार्यजी पकड़कर भीतर ले गये और श्रीविग्रह (मूर्ति) की ओर दिखाकर बोले–'देखो, ऐसा सौन्दर्य तुमने कभी देखा है ?' पहलवानने दृष्टि डाली । एक क्षणके लिये जन–साधारणकी दृष्टिमें दीखनेवाली मूर्ति मूर्ति नहीं रही, स्वयं भगवान् ही प्रकट हो गये और पहलवान उस अलौकिक सुन्दरताको देखते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े । बहुत देरके बाद होश हुआ । होश होनेपर श्रीरामानुजाचार्यजीके चरण पकड़ लिये और बोले – 'प्रभो अब वह रूप ही निरन्तर देखता रहूँ – ऐसी कृपा कीजिये।' फिर श्रीरामानुजाचार्यजीने उन्हें मन्त्र दिया । वे उनके बहुत प्यारे शिष्योंमें तथा एक बहुत पहुँचे हुए महात्मा हुए।

आज भी ऐसी घटनाएँ होती हैं, पर लोग जान नहीं पाते, यत्किंचित् जाननेपर भी अन्तःकरणकी मलिनताके कारण विश्वास नहीं कर पाते ।

सूरदासके पूर्वजन्मकी एक विचित्र बात आती है । उद्धव जब व्रजसुन्दरियोंको ज्ञान सिखाने गये थे, तब अन्तमें खूब फटकारे गये । वहाँ फिर गोपियोंने दिखाया कि देखो, श्यामसुन्दर यहाँसे एक क्षणके लिये भी नहीं गये हैं । जब उद्धवने यह देखा, तब वे दंग रह गये । फिर चेष्टा की कि भीतर निकुञ्जमें प्रवेश करें । पर ललिताजीकी आज्ञासे रोक दिये गये । उद्धवने खीझकर शाप दे दिया कि जाओ मर्त्यलोकमें । ललिताजीने भी कहा कि तब तुम भी अंधे बनकर वहीं चलो । यह प्रेमका विनोद था । पर आखिर जबान तो उनकी सच होकर ही रहती । इसीलिये एक अंशसे ललिताजीने अवतार धारण किया, उद्धवने भी एक अंशसे सूरदासके रूपमें जन्म लिया ।

ये ललिताजी अकबर बादशाहके यहाँ एक हिंदू बेगमके पास पली । बेगम उन्हें बहुत छिपाकर रखती थीं । पर एक दिन बादशाहने देख लिया । उसने जीवनभरमें ऐसी सुन्दरता देखी नहीं थी । बेगम उस लड़कीको बहुत प्यार करती थी तथा सचमुच अपनी लड़कीके समान ही मानती थी ।

एक दिन बेगमने उस लड़कीसे कहा कि 'बेटी ! तू एक दिन मेरा श्रृंगार कर दे, क्योंकि तुझे जैसा श्रृंगार करना आता है, वैसा मैंने कभी नहीं देखा ।' उस लड़कीने मामूली श्रृंगार कर दिया । बेगम बादशाहके पास गयी । उस दिन अकबरने बेगमको ऊपरसे नीचेतक देखा तथा उसके रूपको देखकर चकित हो गया । वह बोला–'बेगम ! आज तो मैं तुम्हें देखकर हैरान हूँ; सच बताओ, आज तुमने कोई जादू तो नहीं किया है ।' अन्तमें बेगमने सच बता दिया कि 'मेरी एक बेटी है, उससे मैंने श्रृंगारके लिये प्रार्थना की । उसने मुझे मामूली ढंगसे सजा दिया । यदि मनसे सजाती तो पता नहीं क्या होता ।' बादशाहके मनमें पाप आ गया । बेगम उसे लड़की मानती थी, पर बादशाहने एक नहीं सुनी । किंतु मनमें पाप आते ही अकबरके सारे शरीरमें जलन आरम्भ हो गयी । बड़े–बड़े हकीम उपचार करके हार गये, पर कोई भी लाभ नहीं हुआ। फिर बीरबलने कहा कि यह दैवी कोप है, किसी महात्माकी कृपाके बिना यह दूर नहीं होगा । उस समय सूरदास सबसे बड़े महात्मा माने जाते थे । वे बुलाये गये । सूरदासने कृपापरवश होकर जाना स्वीकार कर लिया । वे आये तथा अकबरको देखकर कहा – 'तुम्हारे पापोंके कारण ही यह हुआ है । तुमने जिस बालिकापर बुरी दृष्टिकी है, उसीके कारण यह हुआ है ।' फिर सूरदासने कहा, 'अच्छा; तमाशा देखो ।' उस बालिकाके पास खबर भेजी गयी कि एक सूरदास आया है, वह बुलाता है । बालिका हँसी और राजसभामें पहुँची । दोनों एक दूसरेको देखकर हँसे तथा बालिका देखते–ही–देखते अपने–आप जलकर खाक हो गयी । सबको बड़ा अचंभा हुआ । अकबरने प्रार्थना की । उसी पर सूरदासने एक पद गाकर उसे सारा रहस्य बतलाया कि 'यह बालिका ललिताजीके अंशसे उत्पन्न हुई थी और मैं उद्धवके अंशसे ।'

पता नहीं यह घटना कहाँतक सत्य है; पर सिद्धान्ततः यह सर्वथा सत्य है कि दिव्यलोकके प्राणी एवं भगवान्‌की लीलाके परिकर इस युगमें भी अपने अंशसे भगवदिच्छासे प्रकट होते हैं । इसलिये यह कहा नहीं जा सकता कि किस वेषमें कौन है; सबको साक्षात् भगवान् मानकर सम्मान करनेमें ही लाभ है।

जो ईमानदार नास्तिक होते हैं अर्थात् ठीक–ठीक जैसा भीतर मानते हैं वैसा ही कहते हैं, दम्भ नहीं करते, उनपर भगवान्‌की कृपा दाम्भिकोंकी अपेक्षा शीघ्र प्रकाशित होती है ।

हालकी बात है । वृन्दावनमें एक महात्मा थे । वे इस समय हैं या नहीं पता नहीं । खूब भजन करते थे, पर पहले बहुत नास्तिक थे, कलकत्तेमें रहते थे, दलाली करते थे । श्रीकृष्णकी लीला एवं रासलीलाका मजाक उड़ाया करते

थे, बुरी तरह नास्तिक थे । कलकत्तेमें किसीके घरपर रासलीला हो रही थी। वे भी मजाक उड़ानेके लिये देखने गये । रासलीला हो रही थी । कौन–सी लीला थी, यह मुझे याद नहीं है । मुझे एक अत्यन्त विश्वासी आदमीने सब बातें बतायी थीं । पर अब पूरी तरह याद नहीं है। जो हो, रासलीला देखते–देखते हठात् श्रीजी जो बने थे, उनकी जगह एक क्षणके लिये वास्तविक राधारानी प्रकट हो गयीं और केवल उन्हींको दर्शन हुए । बस, उसी क्षण सब छोड़–छाड़कर वृन्दावन चले आये और माला फेरते रहे ।

वृन्दावनके वृक्षोंकी भी बड़ी विचित्र बात है । एक महात्माने अत्यन्त विश्वासपूर्ण स्वयं जाँच की हुई कई घटनाएँ हमको एवं भाईजीको सुनायी थीं ।

एक पेड़ था । उसे काटनेकी तैयारी हुई । रातमें एक मुसलमान दारोगाको स्वप्न हुआ कि देखो, 'मैं काशीमें एक विद्वान् ब्राह्मण था, बहुत तपस्या करनेपर मुझे व्रजमें पेड़ होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है । लोग कल मुझे काटनेकी तैयारी कर रहे हैं, तुम बचाओ । वह मुसलमान था, पर सब पता ठिकाना–आदमीका नामतक स्वप्नमें बताया गया था । इसलिये उसे जाँचनेकी इच्छा हुई । जाँचनेपर सब बातें ज्यों–की–त्यों मिलीं । उसे पहले कुछ भी इस विषयमें ज्ञात नहीं था ।

दूसरी घटना उन्होंने सुनायी थी–एक साधु जंगलमें एक लताके नीचे शौच होने जाते थे । वहाँ कुछ आवाज आती, पर वे समझ नहीं पाते । फिर उनको या शायद उनके साथीको स्वप्न हुआ या दर्शन हुआ–ठीक याद नहीं; जिससे पता लगा कि उस लताके रूपमें कहींकी एक चमारिनने बड़ी भक्तिकी, उसके फलस्वरूप जन्म धारण किया था । उसने बताया कि 'तुम्हें स्त्रीके पास जाकर शौच होनेमें लाज नहीं आती ? प्रतिदिन तुम्हें चेतावनी देती हूँ, पर तुम समझते नहीं । देखो, व्रजकी लता एवं वृक्षोंके नीचे शौच मत जाया करो ।' भागवतमें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही है कि यहाँके पेड़ प्रायः बड़े–बड़े ऋषि हैं, जो वृक्ष बनकर मेरा और श्रीबलरामजीका दर्शन करते हैं ।

व्रजमें अब भी बहुतोंको बहुत सुन्दर–सुन्दर अनुभव होते हैं । एक साधु थे । भगवान्‌के दर्शनके लिये सब जगह घूमे, पर कहीं कोई अनुभव नहीं हुआ । सोचा, अब अन्तिम जगह गिरिराज चलें ! वहाँ किसी–न–किसी रूपमें दर्शन देनेकी भगवान् अवश्य कृपा करेंगे । व्रजमें आये । न जान, न पहचान । एकादशीका दिन था । फलाहार कहाँ मिले ?' एक बालक आया । बोला, बाबाजी! मेरी माँ एकादशी करती है ब्राह्मण जिमानेके लिये आपको बुला रही है । बाबाजी गये । बुढियाने प्रसाद बड़े प्रेमसे दिया । भरपेट खाकर बोले – 'वह बालक कहाँ गया माई ? बुढ़िया बोली–'बालक कौन ?' वे बोले–जो हमें लाया था ।' बुढ़िया

बोली–'मेरा न तो कोई लड़का है, न मैंने किसी को भेजा था । आप आ गये । मैने अतिथि समझकर आपका सत्कार कर दिया।' ऐसी बहुत–सी घटनाएँ होती रहती हैं ।

श्रीकृष्ण–कृपासे असम्भव सम्भव हो जाता है । श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वृन्दावनके पत्थर पिघल जाते थे । आप तो फिर भी मनुष्य हैं । किसी दिन कृपा करके यदि एक हल्की–सी स्वप्नमें झाँकी उन्होंने दिखायी तो बस, पागल होकर जीवनभर रोते ही रह जायँगे ।

महाप्रभु संन्यासके बाद जब शान्तिपुरसे नीलाचल रहनेके लिये चलने लगे, तब सब कोई रो–रोकर बेहोश होने लगे । बड़ा विचित्र दृश्य था ! सभी धूलिमें लोटकर छाती फाड़कर रो रहे थे । ऑखोंसे आँसूका फव्वारा छूट रहा था । एक श्रीअद्वैताचार्य ऐसे थे कि उनकी ऑखोंमें आँसू नहीं थे । ये अद्वैताचार्य कोई साधारण पुरुष नहीं थे । ऐसा इतिहास मिलता है कि चालीस–पचास वर्षतक लगातार इन्होंने तुलसी–गंगाजलसे भगवान्‌की पूजा की थी और केवल यही वर माँगते रहे थे कि 'हे नाथ ! जीवोंका दुःख देखा नहीं जाता, अवतार लेकर जीवोंको भक्त बनाओ और सबका दुःख मिटा दो ।' कहा जाता है कि इनकी प्रार्थनासे ही चैतन्य महाप्रभुका अवतार हुआ था । सब रो रहे थे, पर इनकी आँखोंमेंसे आँसूकी एक बूँद भी नहीं निकली । महाप्रभु सबको छोड़कर आगे बढ़ गये । केवल अद्वैताचार्य पीछे चलते रहे । महाप्रभु सबसे अधिक इनकी बात मानते थे । जब बहुत काल तक ये नहीं लौटे तो महाप्रभुने इनसे कहा–आचार्य ! अब लौट जाइये। अद्वैताचार्यने उत्तर दिया "प्रभो ! मैं साथ चलनेके लिये नहीं चल रहा हूँ, मुझे तो आपसे इतना ही निवेदन करना है कि मेरे–जैसा अधम, पत्थर–हृदयवाला, नीरस प्राणी संसारमें दूसरा आपको नहीं मिलने वाला है। देखिये ! आपके जाते समय ऐसा कोई भी नहीं कि जिसकी आँखोंसे आँसूकी धारा न बह रही हो, पर मेरी आँखोंमें एक बूँद भी आँसू नहीं।'

चैतन्य महाप्रभु हँसे और बोले–"देखिये, आपको इसका रहस्य बता देता हूँ, मुझे आपसे काम लेना था । मैंने देखा कि सब लोग तो बेहोश होकर गिर जायँगे। कोई एक आदमी ऐसा चाहिये, जो सबको सम्हाल सके। इसलिये यह देखिये मैंने अपने कौपीनमें एक गाँठ बाँधकर आपके प्रेमको रोक रखा है। पर अब जब आप रोना चाहते हैं तो लीजिये, जी भरकर रो लीजिये ।" यह कहकर महाप्रभुने गाँठ खोल दी । खोलते ही अद्वैताचार्य बेहोश होकर पछाड़ खाकर गिर पड़े और रोने लगे ।

देखें, भगवान्‌की लीला कोई भी नहीं समझ सकता । पर यह ठीक है कि

जो प्रेममें रोना चाहेगा, नहीं रोनेके कारण जिसके हृदयमें पीड़ा होती होगी, उसे भगवान्‌का प्रेम मिलेगा ही और वह रोयेगा ही । पर सम्भव है, उन्हें किसीसे कुछ काम कराना हो, कुछ लीला करानी हो–इसके कारण ही हृदयको सूखा बनाये रखते हों। उनके रहस्योंको कौन जाने । मनुष्यको अपनी ओरसे एक ही काम करते रहना चाहिये–अत्यन्त प्रेमसे निरन्तर उनका स्मरण ।

कुछ साल पहले एक प्रेमी सज्जन वृंदावन गये थे । नावपर घूमते हुए वृन्दावनकी सैर कर रहे थे । वर्षाका मौसम था । यमुनाजीमें खूब पानी था । संध्याका समय था. इतनेमें खूब वर्षा हुई । टीले, जमीन, रास्ता दीखना बंद हो गया । नावसे उतरकर वे बिचारे अकेले एक किनारे जंगलके पास खड़े थे । इतनेमें देखा कि कुछ गायें आ रही हैं तथा दो बच्चे काली कमली ओढ़े हुए पीछे–पीछे आ रहे हैं । मुझे घटना ठीक–ठीक याद नहीं है । वे शायद रास्ता भूल गये थे । बच्चोंसे पूछा । एक बच्चा बड़ा सुन्दर था। मन बरबस उसकी ओर खिंचता चला जा रहा था । कुछ बात होनेके बाद उसने रास्ता बता दिया और आगे चलने लगा । ये पीछे–पीछे चले । उसने मना किया, पर ये माने नहीं। उसी समय गाय, बच्चे आदि सभी अन्तर्धान हो गये ।

कहनेका भाव यह है कि भगवान्‌का दर्शन तो वे जब ठीक समझेंगे, आवश्यक समझेंगे, तब हो जायेगा। आपको तो केवल प्रेमपूर्वक भजन करते रहना चाहिये ।

सभी इष्ट मित्रोंको यथायोग्य ।

राधा राधा राधा राधा

। । श्रीराधाकृष्णौ वन्दे । ।
पत्र संख्या–३४

भगवान् भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं

रतनगढ़
तिथि अज्ञात

प्रिय श्रीशिवभगवानजी फोगला !

सादर सप्रेम राधाकृष्णौ वन्दे ! आपका पत्र मिला । आपने लिखा कि मुझे तो भगवान्‌का मात्र निष्काम प्रेम चाहिये । सांसारिक कार्योंके लिये सहायता माँगना तो बहुत नीचे दर्जेकी वस्तु है । सो आपका भाव अच्छा है, परन्तु सांसारिक कार्योंमें सहायता देना और अपना प्रेम देना भगवान्‌के लिये तो दोनों ही समान हैं । असलमें भगवान् भक्तवाच्छाकल्पतरु हैं ; उनसे हम जो चाहें, वही वे करनेको तैयार हैं । हाँ, चाह सच्ची और दृढ़ विश्वासयुक्त होनेसे ही काम होता है ।

चटगाँवमें एक कृष्णानन्दजी साधु थे । उनका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति सखाका भाव था । उन्होंने पूजा करनेके लिये एक श्रीकृष्णकी पत्थरकी प्रतिमा मँगवायी । मँगानेपर उनको पसंद नहीं आयी, बोले–'तुम गड़बड़ करते हो, यह नहीं चल सकती । मैं तुमको तीन दिनका समय देता हूँ, जो मूर्ति मेरे हृदयमें है, वही मूर्ति मुझे चाहिये । नहीं तो, तीन दिन बाद मैं तुम्हें गंगामें फेंक दूँगा।' भगवान्‌को तो विश्वास चाहिये । वे देखते हैं केवल सच्चा विश्वास । उनका विश्वास ठीक था । तीन दिनमें पत्थरकी वही मूर्ति बदलकर इतनी सुन्दर हो गयी कि क्या पूछना है । इस बार गोरखपुरमें उस मूर्तिके फोटोका हमने दर्शन किया था । ऐसा जान पड़ता है, मानो जीवित पुरुषका फोटो हो। ऐसे ही आपके ध्यानकी मूर्ति भी विश्वाससे साक्षात् बन सकती है ।

भगवान्‌के विषयमें एक विलक्षण बात है । वह यह कि जो व्यक्ति जिस बातके लिये जिस रूपमें विश्वास कर ले कि भगवान् हमारे लिये यह इसी रूपमें कर देंगे, फिर निश्चय समझिये बिना कुछ भी किये भगवान् उसके लिये वही उसी प्रकार कर देंगे । यह नहीं कि भजन करो, स्मरण करो । केवल मनमें यह धारणा कर ले कि बस, भगवान् हमारे लिये तो यह कर ही देंगे । भगवत्प्रेमसे लेकर तुच्छ संसारके विषयोंतकके लिये यह नियम लागू है–सबके लिये लागू है ।

कोई कहे कि 'अमुक कार्यमें आजतक तो ऐसा नहीं हुआ, क्या तुम्हारे लिये पहले–पहल होगा ?' इसका जवाब यह है कि यदि तुमने सचमुच यह बात उनपर ढार दी है तो संसारके इतिहासमें पहले–पहल तुम्हारे लिये होगा और अवश्य होगा।

व्रजप्रेमका नियम है–अमुक बात होनेपर ही यह प्राप्त हो सकता है । पर यदि सचमुच उनपर कोई ढार दे कि हमें तो यह हुए बिना ही प्रेम देना पड़ेगा, तो ठीक मानिये उसके लिये ही नया नियम बनेगा । ठीक उसकी मान्यताके अनुरूप नियम बनाकर भगवान् उसे व्रजप्रेमका दान कर देंगे ।

जब दिव्य वृन्दावन–लीलाका प्रापञ्चिक जगत्में प्रकाश होता है, तब उसमें भी कई रहस्यकी बातें होती हैं । गत बार जो नन्द–यशोदा हुए थे, उनके विषयमें भागवतमें लिखा मिलता है कि वे दोनों तपस्यासे नन्द–यशोदा बने थे । होता यह है कि जो नित्य लीलावाले नन्द–यशोदा हैं, वह भी सच्चिदानन्दमयी ही हैं, पर किसी–किसी अंशमें उसमें प्राकृत संयोग भी रहता है; क्योंकि यह लीला प्रकट ही इसलिये की जाती है कि इसके द्वारा और–और भक्तोंको इसमें शामिल किया जाय। जो नित्यलीला है, उसमें कंस आदिका वध नहीं होता । वह लीला सर्वव्यापक है, पर प्रत्येक द्वापरके अन्तमें उसी वृन्दावनके स्थानपर प्रकट होती है। वह लीला है तो यहाँ भी, इस कलममें भी है, विश्वके अणु–अणुमें है; पर प्रकट वहीं उस वृन्दावनमें हुआ करती है । नित्य लीलाके जो–जो पार्षद हैं, या तो उनका साक्षात् प्राकट्य होता है या यहाँके जीवोंमें उनका आवेश हो जाता है । श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा एवं नित्य सखियाँ तथा नित्य सखा तो साक्षात् आते हैं तथा नन्द–यशोदा–ये दोनों भी कभी साक्षात् आते हैं; पर कभी उनका आवेश भी होता है । जैसे इस बार जो लीला हुई थी, उसमें नित्य नन्द–यशोदाका तपस्यासे बने हुए नन्द–यशोदामें आवेश हो गया था ।

असल बात तो यह है कि इसका तत्व समझना असम्भव–सा है; क्योंकि असली बात पूछें तो यह प्रश्न वहींतक बनता है जबतक वह लीला सामने नहीं आती । सामने आनेपर फिर उसके सिवा कुछ बच ही नहीं जाता । केवल वह लीला–ही–लीला रह जाती है । भगवान्की यही तो अचिन्त्य शक्ति है कि एक ही स्थानपर एक ही समय इतनी लीलाएँ चल रही हैं । जहाँपर आपको यह घड़ी दीख रही है, वहीं अनादि कालसे जो लीला हुई है, अनन्त काल तक जो होगी, वे सभी लीलायें वर्त्तमान हैं, क्योंकि वस्तुतः घड़ीकी जगह स्वयं भगवान् ही हैं और पूर्णरूपमें हैं । जबतक आपको घड़ी दीखेगी, तबतक भगवान् नहीं दीखेंगे और जब घड़ीका दीखना बंद हो जायगा और वहाँ भगवान् दीखेंगे, उस समय यह ज्ञान

भी सर्वथा लुप्त हो जायगा कि यहाँ पहले घड़ी थी । यह घड़ीका दीखना एवं घड़ीका ज्ञान तो तभीतक है, जबतक भगवान् नहीं दीखते । उनके दीखनेपर तो वे–ही–वे रह जायँगे । इसी प्रकार उनकी कोई–सी लीला दीख जानेपर यह प्रश्न नहीं बनेगा कि कौन नित्य है और कौन पीछेकी है; क्योंकि असलमें तो जो कुछ भी है , वह सब भगवान् हैं, यह तो समझानेके लिये है । जबतक भगवान् नहीं दीख रहे हैं, तबतक भेदज्ञान–यह ऊँचा, यह नीचा यह परेकी लीला, यह इधरकी लीला आदि विचार हैं ।

आपने जो प्रश्न किया कि 'वे ग्वाले, जिन्हें ब्रह्माजीने छिपा दिया था तथा वे ग्वालबाल, जो स्वयं भगवान् ही बने थे–इन दो प्रकारके ग्वाल–सखाओंमें क्या भेद था ?' तो वास्तवमें तो कोई भेद नहीं है; क्योंकि पहले भी स्वयं श्रीकृष्ण ही उतने ग्वाले बने हुए थे और फिर ब्रह्माजीके ले जानेपर वे ही उतने और बन गये। इतना कहा जा सकता है कि पहलेवाले जो ग्वालसखा थे, उनमें कई साधनसिद्ध भी सखा थे, दूसरी बार ब्रह्माके ले जानेपर जो सखा प्रकट हुए, वे सब–के–सब स्वयं श्रीकृष्ण ही बने थे; सखाओंमें भी नित्यसखा एवं साधनसिद्ध सखा–ये दो भेद तो हैं ही । आज जिसने साधन किया और साधनसे भगवान्‌की नित्य–लीलामें सम्मिलित हुआ, वह साधनसिद्ध सखा माना जायगा । पर यह मानना भी हमारी–आपकी दृष्टिसे है; श्रीकृष्णकी दृष्टिसे तो स्वयं वे सदासे हैं और सदा रहेंगे।

यही उनकी विलक्षण, मन–बुद्धिसे अत्यन्त परेकी लीला है कि वे ही जीव, वे ही जगत्, वे ही जगत्‌के मालिक–तीनों बने हुए है; परंतु जबतक हम अपने–आपको अनुभव करते हैं तबतक यह ऊँच–नीचका भेद बना ही रहेगा । इसका रहस्य वाणी एवं मनसे समझा ही नहीं जा सकता ।

शास्त्र एवं संत कहते हैं– जो है, भगवान् है; जो नहीं है, वह भगवान् है; तथा है, नहीं है–इन दोनोंसे परे भी भगवान्‌का रूप है, जो अनिर्वचनीय है । पर यह स्थिति भी तो वाणीमें आ गयी, इसलिये असली नहीं है। वह इतनी विलक्षण स्थिति है कि कुछ भी कहना नहीं बनता । यही बात दिव्य लीलाके रहस्यमें भी है । देखनेपर ही कोई यत्किंचित् समझ सकता है कि वह क्या वस्तु है ।

सब भगवान् हैं, यही पहली स्थिति है–जो साधनासे प्राप्त होती है और तब फिर असली स्थिति प्राप्त हो जाती है, जो अनिर्वचनीय है ।

बिलकुल कोई वस्तु भगवान्‌के सिवा है ही नहीं, यह ज्ञान जिसे है, और जिसे नहीं है, वे दोनों भी भगवान् ही बने हुए हैं । पर यह बात कही जाती है कि जबतक सुख–दुःख होता है, अहंकार है, तबतक साधना करो । परंतु यह

अहंकार, यह सुख–दुःख भी उन्हींका रूप है; फिर साधना क्यों करें ? इसीलिये कि प्राणीकी इच्छा है कि मेरा दुःख मिट जाय ।

मेरी राय तो यह है कि मनुष्य सृष्टितत्त्वका, भगवान् के लीला–तत्त्वका निर्णय करने, रहस्य समझनेके फेरमें न पड़कर सरल चित्तसे भगवान्का चिन्तन करे, साधनामें जुट जाय । बाह्य साधनाके अतिरिक्त मानसिक भगवत्सेवाकी साधनामें जुट जाय । नियम बाँध ले कि इतनी–इतनी सेवा तो करनी ही पड़ेगी। यदि यह नहीं हुआ तब तो फिर आज हमारा सबसे खराब दिन बीता । नहीं होनेपर कुछ प्रायश्चित्तका नियम ले ले, तब होगा ।

व्रजप्रेमकी साधनाका जहाँ शास्त्रोंमें वर्णन है, वहाँ यह आता है कि साधकको स्वयं ठीक उसी प्रकारकी देहकी भावना करके चौबीसों घंटे वहीं साथ रहनेका ध्यान करना चाहिये । उसमें नियम बँध जाता है कि यह सेवा हमें करनी है । जैसे मान लें एक सेवा है–हाथ–पैर धुलाना । अब दिनभरमें न जाने कितनी बार इस सेवाका समय आयगा, उस समय तो मनको आना ही पड़ेगा, लगन होनेपर चाहे और सब काम बिगड़े, पर साधक उतनी देरके लिये चाहे बीस सेकंड ही क्यों न हो, सब काम छोड़कर जहाँ बैठा हुआ है, जो कर रहा है, सबको गौण करके ध्यानस्थ हो जायगा । अभ्यास होनेपर लोगोंको पता नहीं चलेगा । लिखते–पढ़ते, बातचीत करते हुए वह मन–ही–मन वहाँकी सेवा करते रह सकता है ।

निरन्तर भगवत्सेवाकी मानसिक भावना करते रहनेसे मनकी क्या अवस्था होती है, यह कुछ इतनी विलक्षण बात है कि मेरा अनुमान है–आपने जो समझा होगा, उससे बिल्कुल नयी बात है । उसकी कल्पना भी अभी नहीं हो सकती कि कैसे क्या–क्या होता है । वह तो केवल वही जान सकता है, जो स्वयं इस ओर पैर बढ़ाये और श्रीकृष्णकी कृपाका आश्रय करके आगे पाँव रखता चला जाय; फिर सारी बात समझमें आती जायगी और बिल्कुल ऐसी अवस्थाका ज्ञान होगा कि वह स्वयं केवल अनुभव कर सकेगा, दूसरोंको समझा नहीं सकेगा।

जैसे भी हो एक बार चेष्टा करके भगवान्की लीलामें मनको अच्छी तरह फँसा दें । जब मन टिकेगा, तब फिर स्वयं नयी–नयी चीजें, नये–नये दृश्य मनके सामने भगवान्की दयासे आने लग जायँगे । फिर यह आवश्यकता नहीं रहेगी कि किसीसे चलकर लीला सुनें । भगवान्की कृपासे स्वयं ऐसी विलक्षण–विलक्षण झाँकी–प्रेमसे भरी हुई झाँकी आयेंगी कि मन आनन्दमें डूबा रहेगा । केवल आप ही उसका आनन्द लेंगे, दूसरेको समझा भी नहीं सकेंगे । भगवान्की कृपा सहायता करेगी । जहाँ चेष्टा करने लगे कि नया–नया कुछ–न–कुछ दृश्य दिखा–दिखाकर वे मनको खींचने लगेंगे । आरम्भिक साधनामें किसी दिन तो

बेगार–सा बड़ा बुरा मालूम होगा; क्योंकि मन भागना चाहेगा । पर यदि लगन रही तो फिर स्वयं मन लगने लग जायगा और फिर यह चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी कि चलो, पन्ना उलटकर लीला पढ़ें; अपने–आप ठीक समयपर वह फिल्मकी तरह माथेमें नाचने लग जायगी । कोई बात करेगा, उसके साथ गौणरूपसे बात भी कर लीजियेगा; पर मन भाग–भागकर वहीं चला जायगा । बिल्कुल ऐसा हो जायगा मानो अपने–आप लीलाकी फिल्म आती चली जा रही हो, एक–पर–एक आती रहेगी । पर प्रारम्भमें थोड़ी साधना करनी पड़ेगी । फिर आगे चलकर सच मानिये, भगवान्‌की कृपासे आपके लिये यह बहुत ही आसान हो जायगा ।

राधे राधे राधे राधे

ललिताम्बामर्यी धर्ममातरम्

प्रथम अध्याय

{मातृसाधनाका प्रथम सोपान गुरुवरण}

पूज्य गुरुदेवको जून १९३९ ई० में भगवती आद्याशक्ति अखिललीलाविधातृ महात्रिपुरसुन्दरीके दर्शन श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नीकी दिव्य आकृतिमें स्वप्नमें हुए थे । {जीवनीके प्रथम भागमें **गुरुदीक्षा प्रकरणमें इस प्रसंगको विस्तारसे देखें ।**} इस दर्शनसे उन्हें यही संकेत मिला था कि उनके भविष्य जीवनका विकास इन भगवती योगमाया त्रिपुराके संरक्षणमें ही होगा ।

वि0सं0 २०००–२००१ में भगवान् श्रीकृष्णने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनेका आदेश दिया था ।

वर्त्तमान वैष्णव सम्प्रदायवादी लोगोंकी बुद्धिमें भले ही यह बात नहीं उतरे कि राधाकृष्ण प्रीतिकी रसमयी साधनामें तन्त्र–साधना भी कोई महत्व रखती है, परन्तु परमोच्च पारमार्थिक सत्य यही है कि समस्त अप्राकृत एवं प्राकृत विश्व इन परमोच्च लीलामहाशक्ति त्रिपुरामें ही परिकल्पित हो रहा है। विश्वतंत्रमें कहीं कोई भी सल्लोक, चिल्लोक अथवा परिपूर्ण आनन्दलोक ही क्यों न हो, उन सबकी संचालिका, साथ ही वहाँ जो भी भागवती लीलाएँ संघटित हो रही है, उन समग्र लीलाओंकी सूत्रधार भगवती त्रिपुरा योगमाया ही हैं । फिर पू0 गुरुदेवकी तो परम अद्वैत दृष्टि थी । उन्हें तो ये भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही गोलोकमें रसराज श्रीकृष्ण संज्ञक पुरुषरूपमें लीलायमान दृष्टिगोचर होती थीं । वे शक्तिसंगम–तन्त्रका निम्न श्लोक इस विषयमें शास्त्र–प्रमाण मानते थे ।

"कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा ।

ये भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही गोलोकमें श्रीकृष्ण हैं और "एकं ज्योति द्विधा भिन्नं राधामाधव रूपकम्" एक ही प्रकाश दो, भिन्न राधामाधव रूपमें प्रकाशित है, पू0 गुरुदेवकी यही सुदृढ़ आत्मनिष्ठा थी ।

अब पू0 गुरुदेवके सम्मुख बड़ी समस्या किसी महासिद्ध तांत्रिक सद्गुरुकी प्राप्तिकी खड़ी हो गयी। गुरुवरणके बिना तो तंत्र–साधना प्रारंभ करना सर्वथा अपराध माना जाता है ।

"पुस्तके लिखितान् मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ।।"

{सांख्यायन तंत्र}

"जो भी व्यक्ति तंत्रशास्त्रकी साधनाके मन्त्र पुस्तकोंमें लिखे पढ़कर जपता है, वह जीवितावस्थामें तो चाण्डालवत् है ही, मृत्युके पश्चात् कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ।"

इस सांख्यायन तंत्रके वचनानुसार गुरुमुखके बिना यह साधना कैसे प्रारम्भ की जाय ? – इस चिन्तासे पू० गुरुदेव व्यग्र हो उठे ।

यद्यपि पू० गुरुदेवकी श्रीपोद्दार महाराज द्वारा रसदीक्षा हो चुकी थी, परन्तु रसदीक्षा एवं तंत्रदीक्षा दो भिन्न–भिन्न स्वतंत्र मार्ग हैं । पू० गुरुदेवने बहुत चेष्टा की कि दक्षिण तंत्रोपासना करनेवाला कोई गुरु उन्हें तंत्रदीक्षा प्रदान कर दे, परन्तु बात नहीं बनी । गुरुदीक्षाके बिना तंत्रमार्गमें प्रवेश ही संभव नहीं था । अन्ततः पूज्य गुरुदेवने इस समस्याका समाधान भगवान् श्रीकृष्णसे ही पूछा । भगवान श्रीकृष्णने पू० गुरुदेवको यही आदेश दिया कि "समग्र गुरुतत्वके मूल बीज–उद्गम भगवान् दक्षिणा मूर्ति हैं । ये भगवान् दक्षिणामूर्त्ति भगवान् शिवके विशुद्ध ज्ञानात्मा स्वरूप हैं । अतः भगवान् दक्षिणामूर्त्तिके आदि शंकराचार्य स्वामी द्वारा विरचित स्तोत्रका पाठ कर उन्हें मानसिक भावसे गुरुरूपमें वरण कर लो और तंत्रसाधना प्रारंभ कर दो। साधनाकी सिद्धिके रूपमें भगवती त्रिपुरा स्वयं प्रकट होकर तुम्हें मूल षोड़शाक्षरी मंत्र दान करेंगी ।" भगवान् श्रीकृष्णके इस आदेशको पाकर पू० गुरुदेव परम संतुष्ट हो गये । तंत्र–शास्त्रमें आत्मस्वरूपिणी देवता भगवती त्रिपुरा, उनका षोडशाक्षरी महामन्त्र और उसके उपदेष्टा सिद्धगुरु – इन तीनोंमें अभेद, दृढ़ भावना करनी परमावश्यक है । भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको तंत्रमार्गका गुरुवरण करने पर उन्हें उनके साथ अपनी अभेद भावना करनेमें भी कोई कठिनाई नहीं होनी थी और भगवतीके साथ पूर्ण अभेद प्राप्त करनेमें गुरुकृपा रूपमें यह स्तोत्र स्वतः महासामर्थ्यसे पूर्ण था ।

श्रीसुन्दरीतापनीयमें कहा गया है :–

यथाघटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थ वाचकाः ।
तथा मंत्रो देवता च गुरुश्चैकार्थ वाचकाः ।।

"जैसे घट, कलश और कुम्भ – ये तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही देवता, मंत्र और गुरु – ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके वाचक हैं ।

भगवान श्रीकृष्णका आदेश पाकर पूज्य गुरुदेवने भगवान् दक्षिणामूर्तिका निम्नलिखित स्तोत्र उनकी मानसपूजा करके पाठ करना प्रारंभ कर दिया ।

पू० गुरुदेवने मुझे यह रहस्य सन् १९४८ ई० में बताया था । उन दिनों मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक–पद त्याग कर पू० गुरुदेवके चरणोंमें समर्पित होने की लालसा लेकर गोरखपुर चला आया था। पू० गुरुदेवके सम्मुख मैंने जब पूर्ण सद्गुरु द्वारा स्वीकार किये जानेका उपाय पूछा तो उन्होंने मुझे इसी स्तोत्रके दस पाठ रोज करनेका नियम दिया था।

इस स्तोत्रके माहात्म्यमें उन्होंने यह भी बताया था कि यह स्तोत्र पाठ करने पर अमोघ रूपसे सच्चे सद्गुरुकी प्राप्ति कराने वाला है । उन्होंने यह भी कहा था कि जो भी तंत्र–साधक सच्चे सद्गुरुके अभावमें भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको गुरु–रूपमें वरण कर लेते हैं उन्हें तंत्र साधना करनेमें कोई भी हानि नहीं होती । साधकोंके लाभार्थ भगवान् दक्षिणामूर्त्तिका यह स्तोत्र पदच्छेद, अन्वय एवं हिन्दी अर्थ सहित यहाँ दिया जा रहा है ।

श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित
श्रीदक्षिणामूर्त्ति स्तोत्रम्

{१}

विश्वं दर्पणदृष्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षीकुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम्
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

पदच्छेद

विश्वम्, दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यम्, निजान्तर्गतम्, पश्यन्, आत्मनि, मायया, बहिः इव उद्भूतम्, यथा, निद्रया, यः साक्षीकुरुते, प्रबोधसमये, स्वात्मानम्, एव, अद्वयम्, तस्मै, श्री गुरुमूर्त्तये, नमः, इदम् श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यथा निद्रया {प्राणी} विश्वं निजान्तर्गतं बहिः उद्भूतं इव पश्यन्, {तथैव} यः आत्मनि मायया {विश्वं} दर्पणदृष्यमान नगरीतुल्यम् {पश्यन्} प्रबोधसमये स्वात्मानं एव अद्वयं साक्षीकुरुते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः।।

{हिन्दी शब्दार्थ}

जैसे निद्राके समय {स्वप्न कालमें} प्राणी सम्पूर्ण विश्वको अपने भीतर उद्भूत होने पर भी बाहर उत्पन्न हुएके समान देखता है, इसी प्रकार जो अपनी मायाशक्तिके द्वारा विश्वको दर्पणमें जिस प्रकार नगर प्रतिबिम्बित हो रहा हा, इस प्रकार अपने ही संकल्पमें प्रतिबिम्बित देखते हुए समाधिकालमें

अपने आपको ही एकमेव अद्वितीय साक्षीरूपमें अनुभव करते हैं – उन श्रीगुरुस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमस्कार है ।

{२}

बीजस्यान्तरिवांकुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुनः ।
मायाकल्पितदेशकालकलना वैचित्र्यचित्रीकृतम् ।।
मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

बीजस्य, अन्तर्, इव अंकुरः, जगत्, इदं, प्राङ्, निर्विकल्पम्, पुनः, मायाकल्पितदेशकालकलना वैचित्र्यचित्रीकृतम, मायावी इव, विजृम्भयति, अपि, महायोगी, इव, यः, स्वेच्छया, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।।

अन्वय

यः इदम् जगत् प्राङ् बीजस्य अन्तरि अंकुरः इव, निर्विकल्पम् पुनः मायावी इव महायोगी इव मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम् स्वेच्छया विजृम्भयति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः।।

{हिन्दी शब्दार्थ}

जो इस जगतको जो पहले बीजके अन्तरालमें अंकुर रहता है, इस प्रकार अव्यक्त था, फिर जैसे मायावी जादूगर जादूकी वस्तुओंको उत्पन्न करता है अथवा महायोगी जैसे अपने योगबलसे अपनी योगसृष्टिको जो उसके संकल्पमें रहती है, व्यक्त कर देता है इस प्रकार जो अपनी माया द्वारा देशकाल एवं कलाओंसे युक्त अनेक आश्चर्यजनक विचित्रताओंके रूपमें अपनेको ही संकल्पसे प्रकाशित कर देते हैं, उन श्रीगुरुमूर्त्तिके रूपमें प्रकट भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमस्कार है ।

{३}

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते ।
साक्षात्तत्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

यस्य, एव, स्फुरणम् सदात्मकम्, असत्कल्पार्थकम्, भासते, साक्षात्, तत्वम्, असि, इति, वेदवचसा, यः, बोधयति, आश्रितान्, यत्, साक्षात्करणात्, भवेत्, न, पुनरावृत्तिः, भवाम्भोनिधौ, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्,

श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यस्य सदात्मकम् स्फुरणम् एव असत्कल्पार्थकम् जगत् भासते यः आश्रितान्, साक्षात् तत् त्वम् असि इति वेदवचसा बोधयति यत् साक्षात् करणात् भवाम्भोनिधौ न पुनरावृत्तिः भवेत् तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः।

हिन्दी शब्दार्थ

जिनके सत्य आत्मस्वरूपके स्फुरण मात्रसे ही यह असत्, मिथ्या एवं नाशमान् मात्र कल्पित प्रयोजनोंसे निर्मित जगत् प्रकाशित हो रहा है । जो अपने आश्रित जनोंको तुम साक्षात् वह परमात्मा ही हो, इस प्रकार वेद वाणीका उपदेश करते हैं, जिसके अनुभव रूप ज्ञान हो जानेपर इस भवसागरमें पुनः आगमन कदापि नहीं होता उन श्रीगुरुमूर्त्ति भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{४}

नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरम्
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

नानाछिद्रघटोदर स्थित महादीपप्रभाभास्वरम्, ज्ञानम्, यस्य, तु, चक्षुः, आदि, करण, द्वारा, बहिः, स्पन्दते। जानामि, इति, तम्, एव, भान्तम्, अनुभाति, एतत्, समस्तम्, जगत्, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

नानाछिद्र घटोदर स्थित महादीप प्रभाभास्वरं यस्य ज्ञानं तु चक्षुः आदि करण द्वारा एतत् समस्तं जगत् बहिः स्पन्दते । एवं तम् जानामीति भान्तं एव एतत् समस्तं जगत् अनुभाति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जैसे एक बहुत बडे घडेके भीतर जिसमें अनेक छिद्र हैं तथा भीतर दीपक रखे होनेसे छिद्रोंके द्वारा अनेक रूपोंमें प्रकाश निकलता रहता है उसी प्रकार जिनका ज्ञान ही कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक इस समस्त जगत्के रूपमें बाहर स्पन्दित होता है एवं उन दक्षिणामूर्त्ति भगवानके "मैं जानता हूँ"

इस प्रकारके ज्ञानके प्रकाशित होनेसे ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। उन श्रीगुरुतत्त्वस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{५}

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः ।
स्त्रीबालान्धजड़ोपमास्त्वहमिति भ्रान्ताः भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे ।
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

देहम्, प्राणम्, अपि, इन्द्रियाणि, अपि, चलाम्, बुद्धिम्, च, शून्यम्, विदुः, स्त्रीबालान्धजड़ोपमाः, तु, अहम्, इति, भ्रान्ताः भृशम्, वादिनः, मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे, तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

भृशंवादिनः भ्रान्ताः स्त्रीबालान्धजड़ोपमाः तु अहम् देहम् प्राणम् अपि इन्दियाणि अपि चलाम् बुद्धिं च एवं शून्यं विदुः तस्मै मायाशक्ति–विलास–कल्पित–महा–व्यामोह–संहारिणे श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः।

हिन्दी शब्दार्थ

बहुत बुद्धिमान बनकर नाना प्रकारके ज्ञान बघारने वाले मायाभ्रममें फँसे लोग जो स्त्रियों, बालकों, अन्धे व्यक्तियों एवं जड़ वस्तुओंकी उपमाके योग्य हैं, वास्तवमें मैं देह हूँ, प्राण हूँ, इन्द्रियाँ भी हूँ एवं अति चचंल बुद्धि हूँ, साथ ही शून्य प्रकृति हूँ, ऐसा जानते हैं । यह माया–शक्ति–विलाससे कल्पित जो व्यामोह है, उसे सम्यक् प्रकारसे नाशकरनेवाले श्रीगुरुमूर्त्ति भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके लिये यह मेरा नमन है ।

{६}

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत्सुषुप्तः पुमान् ।।

प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशः, मायासमाच्छादनात्, सन्मात्रः,

करणोपसंहरणतः, यः, अभूत्, सुषुप्तः पुमान्। प्राग्, अस्वाप्सम्, इति, प्रबोधसमये, यः, प्रत्यभिज्ञायते, तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

अन्वय

यः सन्मात्रः राहुग्रस्तदिवाकरेन्दु, सदृशः मायासमाच्छादनात् यः सुषुप्तः पुमान् करणोपसंहरणतः अभूत्। प्रबोधसमये प्राक् अस्वाप्सम् इति प्रत्यभिज्ञायते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदम् नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जो सत्तामात्र हैं {परन्तु} राहुद्वारा ग्रस्त चन्द्रमा एवं सूर्यकी तरह मायासे सम्यक् प्रकारसे ढके हुए हैं तथा जो सोयेहुए पुरुषमें समस्त इन्द्रियोंके उपसंहार होने पर भी शेष रहते हैं एवं जाग्रत् होने पर पहले मैं सोया था, इस प्रकार विचार करते हैं उन श्रीगुरुरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमन है ।

{७}

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवृत्तमानमहमित्यन्तस्फुरन्तं सदा ।।
स्वात्मानंप्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

बाल्यादिषु, अपि, जाग्रत्, आदिषु, तथा सर्वासु, अवस्थासु, अपि, व्यावृत्तासु, अनुवृत्तमानम्, अहम्, इति, अन्तस्फुरन्तम्, सदा, स्वात्मानम्, प्रकटीकरोति, भजताम्, यः, मुद्रया, भद्रया, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः इदं, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।

अन्वय

यः बाल्यादिषु जाग्रदादिषु सर्वेषु अवस्थास्वपि व्यावृत्तासु अनुवृत्तमानम् अहम् इति सदा अन्तःस्फुरन्तं यः भजताम् स्वात्मानम् भद्रया मुद्रया प्रकटीकरोति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।

हिन्दी शब्दार्थ

जो बालकपन, जवानी एवं बुढापा आदि परिवर्तनशील वयोंमें, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयादि सभी अवस्थाओंमें भी व्यावृत्त एवं अनुवृत्त होते हुए भी "मैं हूँ" – इस प्रकार सदैव अखण्ड एकरस अन्तःकरणमें स्फुरण कराते रहते हैं, जो भजन करनेवाले अपने शिष्योंके सम्मुख अपने आपको भद्र मुद्राके द्वारा प्रकट करते हैं, उन श्रीगुरुमूर्त्ति श्रीदक्षिणामूर्त्ति भगवान्को

मेरा नमन है ।

{८}

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामि सम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मनाभेदतः ।।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामितः
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

विश्वम्, पश्यति, कार्यकारणतया, स्वस्वामिसम्बन्धतः, शिष्याचार्यतया तथा, एव, पितृपुत्रादि आत्मना भेदतः, स्वप्ने, जाग्रति, वा, यः, एषः पुरुषः, मायापरिभ्रामितः, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये।

अन्वय

यः एषः पुरुषः मायापरिभ्रामितः स्वप्ने जाग्रति विश्वं कार्यकारणतया स्वस्वामि सम्बन्धतः शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मनः भेदतः पश्यति तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

जो साक्षात् परम पुरुषोत्तम होते हुए अपनी मायाके प्रवाहमें परिभ्रमित हुए स्वप्न एवं जाग्रत् अवस्थामें इस विश्वको कार्य एवं कारणके, शिष्य एवं आचार्यके, इसी प्रकार पिता पुत्र आदि अनेक आत्म भेदोंके रूपमें देखते हैं उन श्रीगुरुमूर्त्तिस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमस्कार है ।

{९}

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुःपुमान्
इत्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम् ।।
नान्यत् किंचन विद्यते विमृशतां यस्माद् परस्माद्विभो
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

पदच्छेद

भूः, अम्भांसि, अनलः, अनिलः, अम्बरः, महर्नाथः, हिमांशुः, पुमान् इति आभाति चराचरात्मकम्, इदम्, यस्य, एव मूर्त्तिः, अष्टकम्, न, अन्यत्, किञ्चन, विद्यते, विमृशताम् यस्मात्, परस्मात्, विभो, तस्मै, श्रीगुरुमूर्त्तये, नमः, इदम्, श्रीदक्षिणामूर्त्तये ।।

अन्वय

यस्य भूः, अम्भांसि, अनलः, अनिलः, अम्बरः, महर्नाथः हिमांशुः पुमान्, इति अष्टकम् मूर्त्तिः एव इदं चराचरात्मकम् {विश्वं} आभाति । विमृशतां

यस्मात् विभो परस्मात् न अन्यत् किंचन विद्यते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

जिनकी पृथ्वी, जल, अग्नि, बायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र एवं पुरुष–ये आठ मूर्त्तियाँ ही चर एवं अचर समस्त विश्वको प्रकाशित कर रही हैं । विचार विमर्श करने वाले लोगोंके लिये जिन सर्वव्यापी परमात्माके न रहने पर अन्य कुछ भी नहीं रहता उन श्रीगुरुमूर्त्तिस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमस्कार है ।

{१०}

सर्वात्मत्व स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुस्मिन्स्तवे ।
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाध्यानाच्च संकीर्त्तनात् ।।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः ।
सिद्धचेतत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ।।

पदच्छेद

सर्वात्मत्व स्फुटीकृतम्, इदम्, यस्मात्, अमुस्मिन्, स्तवें, तेन, अस्य, श्रवणात्, तत्, अर्थमननात्, ध्यानात्, च, संकीर्त्तनात्, सर्वात्मत्व महाविभूति सहितम्, स्यात्, ईश्वरत्वम्, स्वतः सिद्धचेतत्, पुनः, अष्टधा, परिणतम्, च, ऐश्वर्यम्, अव्याहतम् ।

अन्वय

यस्मात् अमुष्मिन् स्तवे इदम् सर्वात्मत्वं स्फुटीकृतं तेन श्रवणात् तदर्थमननात् च ध्यानात् संकीर्त्तनात् महाविभूतसहितं ईश्वरत्वं, सर्वात्मत्वं स्वतः स्यात् पुनः अष्टधा सिद्धचेतत्, च अव्याहतम् ऐश्वर्यम् परिणतम् ।।

हिन्दी शब्दार्थ

क्योंकि इस भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके स्तवनमें इस जगतके साथ सम्पूर्ण आत्मतत्त्वको स्पष्ट कर दिया गया है इसलिये इसके श्रवणसे, अर्थके मननसे एवं ध्यानसे, साथ ही सम्यक् प्रकारसे बार बार उच्चारण करनेसे महाविभूतियोंके साथ–साथ ईश्वरत्व तथा सर्वात्मभाव अपने आप प्राप्त हो जाता है । पुनः इस सबके साथ–साथ फिर आठों सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं एवं अव्याहत {अविनाशी} ऐश्वर्य की भी प्राप्ति होती है ।

{११}

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञान दातारमारात् ।

त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्त्तिदेवं
जनममरणदुःखच्छेददक्षं नमामि ।।

पदच्छेद

वट, विटप, समीपे, भूमिभागे, निषण्णम्, सकल, मुनिजनानाम्, ज्ञानदातारम्, आरात्, त्रिभुवनगुरुम, ईशम्, दक्षिणामूर्त्तिदेवं, जनममरण, दुःखच्छेद, दक्षम्, नमामि ।।

अन्वय

वट–विटप–समीपे भूमिभागे निषण्णम् सकल मुनिजनानाम् आरात्, ज्ञानदातारम्, त्रिभुवन गुरुम् ईशम् दक्षिणामूर्त्तिदेवम् जनममरणदुःखच्छेदम् दक्षम् नमामि ।।

हिन्दी शब्दार्थ

वट वृक्षके समीप खुली भूमि–खण्डके ऊपर बैठे हुए सम्पूर्ण मुनिजनोंको आद्योपान्त ज्ञान देते हैं, ऐसे सम्पूर्ण त्रिलोकीके गुरु रूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्ति देवको जो जन्म–मृत्यु एवं दुःखोंको उन्मूल करदेनेमें चतुर हैं, मैं नमस्कार करता हूँ ।

{१२}

चित्रंवटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा ।
गुरोऽस्तु मौनव्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

आश्चर्य है कि वटवृक्षके नीचे सभी शिष्य अति वृद्ध हैं और गुरु युवक हैं । गुरु मौन रहकर व्याख्यान कर रहे हैं और शिष्योंके सभी सन्देह स्वतः छिन्न हो रहे हैं ।

ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्त्तये
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तये नमः ।।
निधये सर्वविद्यानांभिषजे भवरोगिणां
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः ।।

जो प्रणवकी व्याख्या हैं एवं विशुद्ध ज्ञानमूर्त्ति हैं, परम निर्मल है, प्रशान्त गंभीर हैं, उन दक्षिणामूर्त्ति भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ । जो सर्व विद्याओंके निधान हैं, सम्पूर्ण भवरोगकी औषधि हैं, सर्व लोकोंके गुरु हैं, उन दक्षिणामूर्त्ति भगवान्को मेरा नमस्कार है ।

भगवती परा अम्बिकादेवी

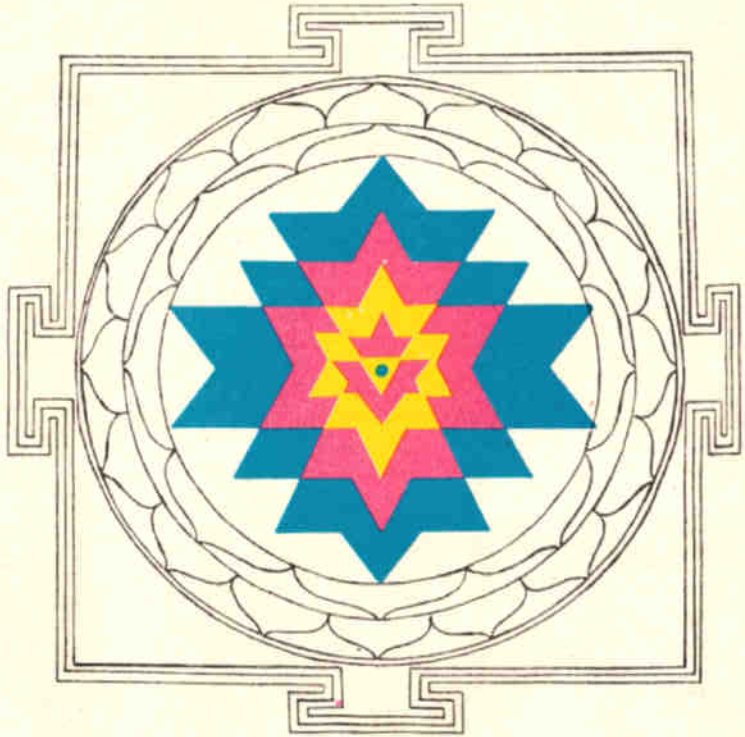

श्रीराधाबाबा द्वारा पूजित श्रीयंत्रराज

अध्याय दूसरा

{भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका संक्षिप्त परिचय}

स्वात्मशक्ति श्रीविद्या ही ललिताकामेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी हैं। ये महाकामेश्वरके अंकमें नित्य विराजमान रहती हैं । उपाधिरहित विशुद्ध हलादात्मा ही महाकामेश्वर हैं और सदानन्दरूपा हलादिनी–उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही परदेवता महात्रिपुरसुन्दरी ललिता हैं । सत्व, चित्व, एवं आनन्दत्वरूप धर्मत्रयविनिर्मुक्त विशुद्ध धर्मी मात्र अपना आत्मा ही महाकामेश्वर हैं जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, राजराजेश्वरीके आधारभूत हैं ।

{श्रीराधाकृष्ण एवं भगवान् श्रीकामेश्वर–कामेश्वरीकी एकता}

श्रीराधाकृष्ण जहाँ कंचनद्युति एवं नीलमेघवर्ण हैं, वहाँ श्रीकामेश्वर–कामेश्वरीके रक्तवर्णका ध्यान किया जाता है । श्रीपोद्दार महाराज एवं पूज्य गुरुदेव दोनोंकी ही मान्यता थी कि महाकामेश्वर–कामेश्वरी भगवान् राधाकृष्णके ही ऐश्वर स्वरूप हैं । असीम प्रेमका प्रकाश जहाँ भगवती श्रीराधामें है, वहीं असीम सामर्थ्यका प्रकाश पूर्ण ऐश्वर्यावतार भगवती कामेश्वरीमें हैं । वैसे तो भगवती त्रिपुराके तत्वकी गूढ़ अभिसंधिको उनके सिवाय दूसरा कोई जाने यह सर्वथा असंभव है ।

इस विषयमें यह कथा मुझे पू0 गुरुदेवने सन् १९५२ ई0 में सुनायी थी । मेरे साथ श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव भी थे, जो "कल्याण–कल्पतरु" में सह–सम्पादक रहे ।

पू0 गुरुदेव कह रहे थे कि भगवान् शिवजी {जो भगवान् महाकामेश्वरके ही स्वरूप हैं} परम लीलामय हैं । वे एक बार भगवती पार्वतीके साथ कैलाश पर्वत पर विराजित थे । ये भगवती पार्वती पराशक्ति भगवती ललिताका ही स्वरूप हैं । तो शिवजी महाराजने उनसे कहा – "देवि ! यदि तुम मुझ पर पूर्ण प्रसन्न हो तो तुम पृथ्वीतल पर कहीं पुरुषरूपमें अवतार लो और मैं स्त्रीरूप धारण करूँगा । यहाँ कैलाशमें जहाँ मैं तुम्हारा प्रियतम और तुम मेरी प्राणप्यारी भार्या हो, उसी प्रकार वहाँ तुम मेरे स्वामी तथा मैं

तुम्हारी भार्या बनूँगा । बस, यह लीला करना ही मुझे अभीष्ट है । तुम मेरी सर्वेच्छापूर्तिकर्त्री हो, इस इच्छाको भी पूर्ण करदो ।"

(भगवान् शिवजी {कामेश्वर भगवान्} की इच्छा पूर्ण करनेकी स्वीकृति भगवती पार्वती {भगवती कामेश्वरी} ने तथास्तु कहकर दे दी । वे बोलीं –"मेरी नवीन मेघके वर्ण वाली जो भद्रकाली मूर्त्ति है, वह श्रीकृष्ण रूपमें पृथ्वी पर अवतार लेगी अब आपभी अपने स्वरूपसे स्त्रीरूप धारण करिये ।")

(भगवान् शंकर बहुत ही संतुष्ट हुए । उन्होंने अपनेको नौ रूपोंमें प्रकट किया । आठ रूपोंसे तो उन्होंने ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, इन्दुलेखा, रंगदेवी, तुंगविद्या एवं सुदेवी सखीरूप धारण किये एवं वे स्वयं श्रीराधाके रूपमें अवतरित होगये । वे अपने शिखण्डी स्वरूपसे ललिता, श्रीकण्ठ रूपसे विशाखा, त्रिमूर्त्ति रूपसे चित्रा, एकनेत्र रूपसे चम्पकलता, एकरुद्र रूपसे इन्दुलेखा, शिवोत्तम रूपसे रंगदेवी, सूक्ष्म रूपसे तुंगविद्या एवं अनन्त रूपसे सुदेवी जी हुए । यही अष्ट मूर्त्तियाँ द्वारका लीलामें रुक्मिणी, सत्यमामादि भगवान्की आठ मुख्य पटरानियाँ रहीं । इनके अतिरिक्त भगवान् शंकरके भैरवगण भी स्त्रियोंके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र रानियाँ हुए । अब भगवती बोली –"प्रभो ! आपकी इच्छाकी सदैव जय हो, मेरी जया एवं विजया नामकी जो दोनों सखियाँ हैं, वे पुरुषरूपमें श्रीदाम एवं सुदाम गोप होंगीं । श्रीविष्णु भगवान् के साथ मेरा पहलेही निश्चय हो चुका है कि वे ही बलराम {हलायुध} के रूपमें मेरे बड़े भाई होंगे। वे सदा ही मेरा प्रिय कार्य करने वाले हैं अतः वहाँ भी मेरे सहाही होंगे । उनका नाम महाबली राम होगा इस प्रकार आपकी महती कीर्त्तिका पूर्ण विस्तार करती हुई, आपकी इच्छा पूर्ण कर मैं पुनः अपने स्वधाम लौट आऊँगी ।)

इसी निश्चयके अनुसार भगवती धरा और भगवान् ब्रह्माजीकी प्रार्थनाको निमित्त बनाकर भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी ही राधाकृष्ण एवं इनकी सहस्रों सखियोंके रूपमें लीलायमान हुए ।

इसका वर्णन गौडीय वैष्णवाचार्योंने भी अपने महाभागवत ग्रन्थमें किया है ।

{भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी ही सम्पूर्ण अवतारोंके परम कारण अवतारी परात्पर परब्रह्म परमात्मा हैं}

आगम शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन भी आता है कि पराशक्ति भगवती ललितासुन्दरीके कर नखकी एक–एक कलासे एक–एक अवतारकी उत्पत्ति

हुई है ।

'करांगुलि नखोत्पन्न नारायण दशाकृतिः' {ललिता सहस्त्रनाम}

उनके दक्षिण करांगुष्ठके नखसे कल्पका प्रथम अवतार मत्स्यावतार हुआ । इस मत्स्यावतारमें भगवान्ने शंखासुरका वध करके वेदोंकी रक्षाकी थी। भगवती ललिता {कामेश्वरी} की दक्षिण हस्तकी तर्जनीके नखसे दूसरा कूर्मावतार हुआ । इसी अवतारमें भगवान्ने अपनी पीठ पर मन्दराचलको धारण किया। इनकी ही कृपासे अमृत–मंथन संभव हो सका । भगवती कामेश्वरी ललिता त्रिपुरसुन्दरी पराम्बाके दक्षिण हस्तकी मध्यमा अँगुलीके नखसे तीसरा वराह अवतार हुआ । ये भगवान् वराह ही अपनी दाढ़के ऊपर रखकर डूबी हुई पृथ्वीको कारण समुद्रके ऊपर लाये थे । इन्होंने ही हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया था। भगवती पराम्बाके दक्षिण हस्तकी अनामिकासे भगवान् नृसिंहका अवतार हुआ । इसी अवतारमें भगवान्ने हिरण्यकशिपु दैत्यका अपने नखोंसे फाड़कर वध किया था और प्रह्लाद भक्त की रक्षा की थी । भगवती की दक्षिण हस्तकी कनिष्ठिकाके नखसे पाँचवाँ वामनावतार हुआ । इस अवतारमें भगवान्ने राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी दानमें माँगी थी और विश्वातीत रूप रखकर तीनों लोकोंको अपने तीन पगोंसे नाप लिया था ।

इसी प्रकार जगज्जननी पराम्बाके वाम करांगुष्ठके नखसे छठा परशुराम अवतार हुआ । श्रीपरशुरामने सहस्त्रार्जुन पर क्रोध करके पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर दिया । भगवतीके बायें हाथकी तर्जनी अँगुलीसे सातवाँ भगवान् रामका अवतार हुआ । इन्होंने युद्धमें लंका जाकर आततायी रावणको मारा । इस रामावतारमें देवताओंने वानररूप रखकर भगवान्की सहायता की । भगवती पराम्बा ललिताकी वाम करांगुलिकी मध्यमाके नखसे आठवाँ श्रीकृष्णावतार हुआ । इस अवतारमें भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके संग महारासादि, अनेक केलि–क्रीड़ायें की एव अनंगको परास्त कर उसे अपनी सेवामें स्वीकार किया । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रथम पटरानी रुक्मिणीके गर्भसे, जो साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपिणी थीं, अनंगने जन्म लेकर भगवान् शिवके तृतीय नेत्रसे दग्ध शरीरको पुनः प्राप्त किया । भगवती पराम्बा ललिताके वाम हस्तकी अनामिका अँगुलीके नखसे नौवाँ श्रीबुद्धावतार हुआ । इसी अवतारमें इन्होंने दीक्षा देकर हजारों मनुष्योंको भिक्षु आश्रमगामी बनाया । भगवतीकी वामहस्तकी कनिष्ठिका अँगुलीके नखसे दसवाँ अवतार कल्किका होगा । इनकी प्रख्याति अश्वावतारके रूपमें भी होगी, क्योंकि

इनके अश्वके खुरोंके आघातसे पृथ्वी पवित्र होगी । इसी अवतारमें कलियुग पलायन करेगा ।

इन्हीं महाशक्तिके करांगुलिके नखोंकी ज्योतिसे जहाँ भगवानके दशावतार होते हैं, वहीं ये महाशक्ति दस महाविद्याओंके रूपमें भी प्रादुर्भूत होती हैं ।

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी एवं कमला इन दस महाविद्याओंका भी भगवान्‌के दस अवतारोंसे सम्बन्ध आगम शास्त्रोंमें वर्णित है । शास्त्र भगवती कालीसे कृष्णावतार, तारासे रामावतार, भगवती छिन्नमस्तासे नृसिंहावतार, भगवती भुवनेश्वरीसे वामनावतार, बगलामुखीसे कूर्मावतार, धूमावतीसे मत्स्यावतार, भगवती त्रिपुराषोडशीसे परशुरामावतार एवं त्रिपुरभैरवीसे बलरामजीका अवतार, भगवती कमलासे बुद्धावतार और भगवती दुर्गासे त्रितापनाशी भगवान् कल्किका अवतार मानते हैं ।

इस प्रकार पू० गुरुदेवकी परमाद्वैत दृष्टिमें परात्पर श्रीकृष्ण एवं भगवती ललिताम्बा दो थे ही नहीं । एक ही तत्वका जहाँ रसात्मक स्वरूप श्रीराधाकृष्ण थे, वे ही अपने ऐश्वर रूपमें भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी थे ।

{भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासना और दोनोंकी एकता}

निरुपाधिक कहनेसे केवलत्व और सदानन्दपूर्ण कहनेसे धर्म विशिष्टत्वकी प्रतीति होती है । विशिष्ट और केवल अवयव–अवयवीके समान अयुत सिद्ध हैं। इनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध ही हो सकता है, न कि भेद घटित संयोगादि सम्बन्ध । प्रकृतमें कामेश्वर–कामेश्वरी विग्रहात्मक स्थूल दो रूपोंका सम्बन्ध भगवान् कामेश्वरके अंकमें स्थित कामेश्वरीके विराजमान होनेमें ही पर्यवसित है। स्थूल दृष्टिसे तो यह भेद सम्बन्ध ही प्रतीत होता है, परन्तु रहस्य दृष्टिमें यह स्वरूप शिवशक्ति सामरस्यात्मक ही है । इस प्रकारकी वासना ही इनके रक्तवर्णकी भावना है ।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णका कृष्णत्व और भगवती श्रीराधाका राधात्व ह्लादिनीसार महाभाव से ही है, ठीक उसी प्रकार महाशक्ति भगवती कामेश्वरीके उल्लासरूप सान्निध्यसे ही भगवान् कामेश्वर शिवकी शिवता स्फुरित होती है।

भगवान् शंकर स्वामी सौन्दर्यलहरी स्तोत्रमें कहते हैं –

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।

हिन्दी अर्थ

भगवान शिव परमात्मा यदि शक्ति सहित होते हैं, तभी सृजन, पालन, संहार आदि करनेमें समर्थ होते हैं । यदि ऐसा नहीं हो तो अपने नेत्र हिलानेकी भी सामर्थ्य उनमें नहीं संभव है ।

{पंच प्रेतासन}

श्रीविद्या भगवती कामेश्वरी पंच प्रेतासन पर विराजमान हैं । इसका रहस्य इस प्रकार है :–

भगवती ब्रह्मशक्ति कामेश्वरी जो ललिता, राजराजेश्वरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, भगवती श्रीराधा, सीता आदि नामोंसे विख्यात हैं, स्वशक्ति विलासके द्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र एवं सदाशिव पाँच नामोंको प्राप्त कर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, आदि तत्तत् शक्तिके सान्निध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रह रूप पंचकृत्योंको सम्पादित करती हैं। जब ब्रह्मादि देव अपनी वामादि शक्तियोंसे रहित होते हैं और जिन कार्योंमें अक्षम होजाते हैं तब वे प्रेत कहे जाते हैं । ये प्रेत ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्र ही भगवतीके सिंहासनके चार पाद हैं और सदाशिव फलक हैं, उसपर महाकामेश्वरके अंकमें भगवती महाकामेश्वरी विराजित हैं ।

{भगवती कामेश्वरीके चार आयुध}

भगवती कामेश्वरीकी चार भुजायें हैं । इनमें पाश, अंकुश, इक्षु, धनुष और पाँच पुष्प बाणोंके आयुधोंका ध्यान किया जाता है । उनका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है – छत्तीस तत्वोंमें राग ही उनका पाश नामक आयुध है। "रागः पाशः" {भावोपनिषद् सूत्र २३} । ये छत्तीस तत्व निम्न हैं – शिव तत्व, शक्ति तत्व, सदाशिव तत्व, ईश्वर तत्व, शुद्ध विद्यातत्व, माया, काल, कला, विद्या, नियति, राग, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि {तेजस्}, जल, पृथ्वी । इनमें राग होना ही पाश नामक आयुध है । "द्वेषोऽकुंशः" {भावोपनिषद् सूत्र २४} इन छत्तीस तत्वोंसे द्वेष, वैराग्य ही अंकुश नामक आयुध है। इक्षु धनुः । मन इक्षु धनुः {भावोपनिषद् सूत्र २२} । संकल्पविकल्पात्मक मनही भगवतीका इक्षु धनुष है ।

शब्दादि तन्मात्राः पंच पुष्प बाणाः {भावोपनिषद् सूत्र २;} । शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध – पंच तन्मात्रायें ही भगवतीके हाथमें पाँच पुष्प बाण हैं।

उत्तर चतुःशती शास्त्रमें इन आयुधोंका यथार्थ स्वरूप इस प्रकार कहा है –

इच्छा शक्तिमयं पाशमंकुशज्ञान रूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणाः धनुषदधदुज्ज्वलम् ।।

अर्थात् पाश – इच्छाशक्ति, अंकुश – ज्ञानशक्ति एवं बाण तथा धनुष क्रियाशक्ति स्वरूप हैं ।

{भगवतीकी पूजा}

पू0 गुरुदेव सन्यासी होनेके नाते उपचार विधियोंको पूर्ण नहीं कर पानेके कारण बाह्य पूजा सम्पादित नहीं करते थे । वैसे बाह्य पूजा अनेक पद्धतियोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित है । इसके बारेमें विस्तार भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है । पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा रहस्य–पूजा ही किया करते थे, अतः उसका ही अति संक्षेपमें दिग्दर्शन किया जा रहा है ।

पूर्ण सर्वव्यापक आह्लादमयी चित् शक्तिकी अपनी महिमामें प्रतिष्ठा ही भगवतीको आसन प्रदान करना है । वियत्, व्योम, तेज, रस एवं गन्ध {जल एवं पृथ्वी} इन स्थूल प्रपंच रूपोंके नाम रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैकरूपत्व भावना रूप जलसे चिच्छक्तिके चरणोंमें प्रक्षालन करना ही पाद्यार्पण करना है। भगवती चित्शक्तिके करोंमें सूक्ष्म प्रपंचके नामरूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक रूप भावना जलसे प्रक्षालन करना ही अर्घ्य प्रदान करना है । सच्चिदानन्द रूप भावनाका जो भी कवली करण है वही आचमन प्रदान करना है ।

अखिल अवयव अवच्छेदसे सत्व, चित्व, आनन्दत्वादि भावना जल संपर्क ही भगवतीका स्नान है । उक्त अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्ति विषयताकी वृत्ति अविषयत्व भावना रूप वस्त्रसे प्रोञ्छन ही देह प्रोञ्छन है । निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्वादि अनेक धर्मरूप आभरणोंमें धर्मीसे अभेद भावना करना ही आभरणार्पण है । स्वशरीर घटक पार्थिव भावोंकी जड़ता हटाते हुए उनमें चिन्मात्र भावना करना ही गन्ध विलेपन है । इसीतरह स्वशरीर घटक आकाश भागोंकी चिन्मात्र भावना करना ही पुष्पार्पण है । वायवीय भागोंकी चिन्मात्र भावना करना ही धूपार्पण

है । तेजस भागोंकी चिन्मात्र भावना करना दीप दर्शन है । अमृत भागोंकी चिन्मात्र भावना करना नैवेद्य अर्पण करना है । षोड़शान्त इन्दु मण्डलकी चिन्मात्रता भावना करना ही ताम्बूलार्पण है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी आदि निखिल वाणीका नादरूपसे परात्पर परब्रह्ममें उपसंहार करनेकी भावना ही भगवतीकी स्तुति करना है । विषयोंकी ओर दौड़ने वाली चित्तवृत्तियोंका विषय जड़ता निरसन पूर्वक ब्रह्म शक्तिमें विलय करनाही प्रदक्षिणी करण है । चित्तवृत्तियोंको विषयोंसे परावर्त्तित कर ब्रह्मैक प्रवण करना ही प्रणाम करना है ।

यह अत्यन्त संक्षेपमें पू0 गुरुदेव द्वाराकी जानेवाली भगवती पराम्बाकी पूजाका दिग्दर्शन है । आगे पू0 गुरुदेव महायागक्रमसे जो पूजा किया करते थे, उसे अलग परिच्छेदके रूपमें दिया जायगा ।

पू0 गुरुदेव महायागक्रमसे हजारों लोगोंको स्मरण करके अपने साथ एकात्म करके प्रति दिवस भगवतीकी चारों प्रहरकी पूजा सम्पादित किया करतें थे । इसीको वे कहा करते थे कि भैया ! मैं तेरे लिये प्रतिदिन चार बार विशुद्ध प्रेमामृतसे भरी थाली परोसकर लाता हूँ परन्तु तुम मेरे प्रेमको स्वीकार ही नहीं करते ।

{भगवतीका साक्षात् विग्रह}

भगवती आद्याशक्ति ललिताके चतुर्विध रूप

{१} भक्तोंकी उपासनाके फलीभूत होनेपर भगवती अपने स्थूल रूपमें भक्तोंको प्रत्यक्ष होती हैं । पू0 गुरुदेव के सम्मुख ई0 ९-५-५१ तदनुसार अक्षय तृतीया सं0 २००८ वि0 के दिन कर चरणादि अवयवोंसे भूषित निरतिशय सौन्दर्य विग्रह धारणकर भगवती ललिता प्रकट हुई थीं । पू0 गुरुदेवके नेत्रोंके सम्मुख उनका लोकोत्तर आह्लादक महातेजोराशि समन्वित रूप जब प्रत्यक्ष हुआ तो पू0 गुरुदेव अति चमत्कृत एवं रोमाञ्चित हो उठे थे। पू0 गुरुदेवने उनका यथाविधि भावात्मक पूजन किया एवं अपने हाथोंसे उनके चरण स्पर्श किये । पू0 गुरुदेव कहते थे कि इन हड्डी-मांस युक्त हाथोंसे भगवतीके परम सुकोमल, निराविल, पवित्र चरणोंको स्पर्श करनेमें मुझे उसी प्रकार हिचक हो रही थी, जैसे कोई मलिन शूकर परमं पवित्र देव-प्रतिमा का संस्पर्श करे । उनकी हिचकिचाहट देखकर भगवती मुसकायीं। तत्पश्चात् उनका समग्र शरीर ही परम दिव्य होगया और उस दिव्य शरीरसे पू0 गुरुदेव द्वारा भगवतीका परम दिव्य उपचारोंसे पूजन सम्पन्न हुआ ।

{भगवतीका मंत्रात्मक विग्रह}

{२} पू0 गुरुदेवके सम्मुख परम भट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुर सुन्दरीका दूसरा षोडशाक्षरी मन्त्रात्मक रूप भी उसी दिवस जिस दिवस पू0 गुरुदेवको उनके दिव्य दर्शन हुए थे, भगवतीने प्रकट किया था । बहुत काल पश्चात् पू0 गुरुदेवने श्रीमुखसे इन मंत्रका दान श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री सावित्रीबाई फोगलाको दिया ।

ललिता सहस्रनाममें भगवती त्रिपुरसुन्दरीके मंत्रात्मक विग्रहका निम्न प्रकारसे वर्णन आता है ––

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजा ।
कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी ।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।
मूलमंत्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा ।।

वाग्भव कूट एवं पञ्चदशी अथवा षोड़शाक्षरी मंत्रके प्रथम पाँच अथवा छः अक्षरोंका वाग्भव कूट इनका मुख–कमल है । द्वितीय मध्यकूट इनका कण्ठके नीचेका कटिपर्यन्त भाग है और तृतीय शक्तिकूट इनका कटिसे नीचे चरणतकका भाग है ।

मंत्रमय देंवताके मंत्रवर्णोंमें ही देवताके शरीर अवयवोंकी कल्पना मंत्रद्रष्टा महासिद्ध ऋषियोंने की है, अतः यह मंत्रात्मक स्वरूप मन्त्रध्वनि श्रवण रूपमें कर्णेन्द्रियोंसे तथा मंत्रोच्चारण रूपमें वागिन्द्रियसे गोचर होता है। जैसे रूप नेत्रोंसे प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार कर्णेन्द्रियों एवं वागिन्द्रियोंसे गोचर होनेके कारण मंत्रमयस्वरूपको, देह अवयवों सहित रूपसे किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं आँकना चाहिये अथवा मंत्र पर अश्रद्धा होनेके फलस्वरूप मंत्र अपराध घटित होता है ।

इसी प्रकार सर्व मंत्रोंका मूल मातृका सरस्वत्यात्मक अथवा भारती विद्या रूप भी मंत्रात्मक रूप कहा जाता है । जैसे उदाहरण रूपमें स्वर एवं व्यंजन रूप पचास वर्णोंसे ही विश्वके सभी देवताओंके मंत्र निकले हैं, अतः इन वर्णोंको भी देवताका मंत्रात्मक रूप माना जाता है ।

पूज्य गुरुदेव पूजा करते समय इन मातृकाओंसे अपने अंगोंमें न्यास करते थे ।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः शिरसि {सिरमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः आं नमः मुखवृत्ते {मुखमें}

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः इं नमः दक्षनेत्रे {दक्षिण नेत्रमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ईं नमः वामनेत्रे {वाम नेत्रमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः उं नमः दक्षकर्ण {दक्षिण कानमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऊँ नमः वामकर्णे {वाम कानमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऋं नमः दक्षनासापुटे (दाहिने नासापुटमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॠं नमः वाम नासापुटे {बायें नासापुट में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लृं नमः दक्ष कपोले {दक्षिण कपोल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॡं नमः वाम कपोले {वाम कपोल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे {ऊपर के ओष्ठ में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऐं नमः अधरोष्ठे {नीचे के अधर में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ओं नमः ऊर्ध्व दंत पंक्तौ {ऊपर दंत पंक्ति में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः औं नमः अधः दंत पंक्तौ {नीचे दंत पंक्ति में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः जिह्वाग्रे {जीभ के अग्रभाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अः नमः कण्ठे {कण्ठ में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कं नमः दक्ष बाहुमूले {दक्षिण बाहु के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः खं नमः दक्ष कूर्परे {दषिण बाजू में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः गं नमः दक्ष मणिबन्धे {दक्षिण मणिबन्ध में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः घं नमः दक्ष करांगुलिमूले {दक्षिण हाथ की अंगुलियों के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ङं नमः दक्ष करांगुल्यग्रे {दक्षिण हाथ की अँगुलियों के अग्र भाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः चं नमः बाम बाहुमूले {बाम बाहुमूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः छं नमः वाम कूर्परे {बाम बाजू में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः जं नमः वाम मणिबन्धे {वाम मणिबन्ध में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः झं नमः वाम करांगुलिमूले {वामकर की अँगुलियों के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ञं नमः वाम करांगुल्यग्रे{ ,, ,, अग्रभाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः टं नमः दक्षोरुमूले (दक्षिण जंघाके मूलमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ठं नमः दक्ष जानुनि (दक्षिण जानुमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः डं नमः दक्ष गुल्फे (दक्षिण गुल्फमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ढं नमः दक्ष पादांगुलिमूले (दाहिने पैरकी अँगुलियोंके मूलमें)

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः णं नमः दक्ष पादांगुल्यग्रे (दाहिने पैरकी अँगुलियोंके अग्रभागमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः तं नमः वामोरुमूले (बायें जंघामूलमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः थं नमः वाम जानुनि (बायें जानुमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः दं नमः वाम गुल्फे {वाम ऐडीके ऊपर की गाँठमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः धं नमः वाम पादांगुलिमूले
{वाम पैरकी अँगुलियोंके मूलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः नं नमः वामपादांगुल्यग्रे
{वाम पैरकी अँगुलियोंके अग्रभागमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः पं नमः दक्ष पार्श्वे {दक्षिण बगलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः फं नमः वाम पार्श्वे {वाम बगलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः बं नमः पृष्ठे {पीठमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः भं नमः नाभौ {नाभिमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः मं नमः जठरे {पेटमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः यं नमः हृदये {हृदयमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः रं नमः दक्षकक्षे {दक्षिण काँखमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लं नमः गलपृष्ठे {गलेके पीछेके भागमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः वं नमः बामकक्षौ {बायीं काँखमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः शं नमः हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः षं नमः हृदयादि वामकरांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः सं नमः हृदयादि दक्षपादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः हं नमः हृदयादि वामपादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लं नमः हृदयादि कट्यादि पादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः क्षं नमः हृदयादि ब्रह्मरंध्रान्ते

"एतस्यां साधितायां तु सिद्धास्यान्मातृका यतः"

इस न्यासको करनेसे पू० गुरुदेव सर्व मन्त्रमय और सृष्टिके सर्व देवतामय होकर भगवतीकी पूजा करते थे ।

{भगवतीका वासनात्मक रूप}

तीसरा भगवतीका वासनात्मकरूप है, जिसमें ललिता देवी नित्य अखण्ड एकरस निवास करती हैं, महा पुण्यवान् साधकोंके लिये केवल मन इन्द्रियोंसे ही यह ग्रहीत होता है । आगम शास्त्रोंमें कहा है – "चैतन्यमात्मनो रूपम्" । आनन्दोल्लास स्वरूपिणी जगदम्बाका स्वात्मशक्तिचैतन्यही स्वरूप है । आत्म चैतन्यका अनुभव मन ही कर पाता है । उत्तम मध्यमादि

अधिकारी भेदसे ये तीनों रूप साधकोंकी उपासनाके योग्य हैं । इनसे अतिरिक्त तुरीय रूप जो वाक्, मन आदि सभी इन्द्रियोंसे अतीत है, उसका केवल परम पूज्य गुरुदेव जैसे महासिद्ध मुक्त लोग ही अखण्ड अहंताके रूपमें अनुभव करते हैं । वह रूप भी अनन्तानन्त है ।

{गुरु, मंत्र एवं देवतामें अभेद भावना}

आत्मस्वरूपिणी भगवती श्रीविद्या ललिता, उसका मंत्र और उस मंत्रके उपदेष्टा महासिद्ध गुरु – इन तीनोंमें दृढ़ अभेद भावनाकी पूर्णता होना ही परम सिद्धिलाभ है । पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबाने तो भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको ही गुरु रूपमें स्वीकार कर उपासनाक्रम प्रारम्भ किया था अतः उन्हें अपनी आत्मशक्तिकी उनसे अभेद मावना करनेमें कहीं कोई कठिनाई नहीं थी । भगवान् आदि शंकर स्वामिकृत स्तुति ही पूर्ण अभेदात्मक है अतः भगवान् दक्षिणामूर्त्ति एवं भगवतीमें अभेद भावनाकर उन्हें अपनी स्वात्मा समझनेमें पू० गुरुदेवको कहीं कोई कठिनाई नहीं थी और गुरुदेवको श्रीविद्या भगवतीके साथ तत्क्षण ही पूर्ण अभेदकी सिद्धि हो गयी थी । फिर पूज्य गुरुदेव तो गुरुकृपाके पूर्ण अधिकारी थे ही । सुन्दरी तापनीयोपनिषद्में कहा गया है –

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः ।
तथा मंत्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः ।।

जैसे घट, कलश और कुम्भ–ये तीनों शब्द एकही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही देवता, मंत्र और गुरु – ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके द्योतक हैं।

श्रीविद्याके बारह सम्प्रदाय तथा कामराज विद्याका महत्व

भगवती श्री विद्याके बारह उपासक प्रसिद्ध हैं । {१} भगवान मनु, {२} चन्द्रमा, {३} कुबेर, {४} लोपामुद्रा, {५} कामदेव {मन्मथ}, {६} अगस्त्य, {७} अग्नि, {८} सूर्य, {९} इन्द्र, {१०} स्कन्द, {११} शिव, {१२} दुर्बासा {क्रोध भट्टारक मुनि} ।

इनमेंसे प्रत्येकका पृथक्–पृथक् सम्प्रदाय था । इस समय भारतमें मन्मथका कादि एवं लोपामुद्राका हादि सम्प्रदाय ही प्रचलित है । त्रिपुरा रहस्य माहात्म्य खण्डके अनुसार भगवान् मन्मथानन्दनाथने अपनी निर्व्याज आराधनासे भगवती ललिता महाभट्टारिकासे अनेक दुर्लभतम वर प्राप्त किये और स्व उपासित कामराज विद्याके उपासकोंके लिये भी बहुतसी सुविधायें प्राप्त कर लीं । तबसे कामराज विद्याका ही विशेष प्रचार है ।

{कामराज विद्याका स्वरूप}

कामराज विद्या ककारादि पञ्चदश वर्णात्मक है । इसीको कादि विद्या भी कहते हैं । तंत्रराजमें भगवान् शिव देवीसे कहते हैं – हे

पार्वती ! कादि विद्या तुम्हारा स्वरूप ही है और उससे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

कादि विद्याका उद्धार अथर्वण त्रिपुरोपनिषद्में इस प्रकार है :–

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादि विद्या ।।ॐ।।

काम {क}, योनि {ए}, कमला {ई}, वज्रपाणि–इन्द्र {ल}, गुहा {ह्रीं}, ह, स, मातरिश्वा–वायु {क}, अभ्र {ह}, इन्द्र {ल}, पुनः गुहा {ह्रीं}, स,क,ल और माया {ह्रीं} यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ।

{भावार्थ}

शिवशक्ति–अभेदरूपा, ब्रह्म–विष्णु–शिवात्मिका, सरस्वती–गौरी–लक्ष्मीरूपा, अशुद्ध–मिश्र–शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देने वाली, सर्वतत्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी – यही इस मंत्रका भावार्थ है ।

यह मंत्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है एवं मंत्रशास्त्रमें पंचदशी, कादि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है । नित्य षोड़शिकार्णव ग्रन्थमें इसके विस्तारसे अनेक भेद बताये हैं । "वरिवस्या रहस्य" नामक ग्रन्थमें भी इसके विस्तृत अर्थ अवगम्य हैं । श्रुतियोंमें भी ये मन्त्र क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा, लक्षितलक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्–पृथक् अवयव दरसाकर जानबूझकर विश्रृंखल रूपसे कहे गये हैं । इससे यह मालूम होता है कि ये मन्त्र परम गोपनीय और महत्वपूर्ण हैं ।

षोड़शाक्षरी मन्त्र इससे भी परम गुह्य है जो मात्र गुरुमुखसे परम्परासे प्राप्त होना संभव है । पू0 गुरुदेवको साक्षात् भगवतीने षोड़शाक्षरी मन्त्रका उपदेश किया था ।

{भगवती लोपामुद्रा ही हादि विद्या हैं}

यह हादि विद्या भी पञ्चदश वर्णात्मिका है । भगवती कामेश्वरांकस्थिता कामेश्वरीके पूजा मन्त्रोंमें यह प्रचलित है । अवशिष्ट मनु–चन्द्रादि दस विद्याऐं केवल आम्नाय पाठमें ही उल्लिखित हैं । प्रचलित उपासना पद्धतियोंमें उनका विशेष उपयोग नहीं है ।

{श्रीविद्या ही त्रिपुरा हैं}

श्रीकामराज विद्याकी अधिष्ठातृ "श्रीविद्या" का ही नामान्तर त्रिपुरा है। त्रिमूर्त्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा सरस्वती, लक्ष्मी एवं पार्वतीसे भी पुरा

अर्थात आद्या जो शक्ति हैं, वे त्रिपुरा हैं । ये गुणत्रयातीता हैं, त्रिगुण नियन्त्री शक्ति हैं, इसलिये ये भगवती ब्रह्माणी, लक्ष्मी एवं पार्वतीकी भी आराध्या हैं । गौड़पादीय सूत्रमें कहा है "तत्वत्रयेण भिदा" । त्रिमूर्त्ति {ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश} की जननी होनेसे, त्रयी {ऋक्, यजुः एवं साम} त्रिवेदमयी होनेसे, महा–प्रलयमें त्रिलोकीको अपनेमें लीन करलेनेसे, जगदम्बा श्रीविद्याका त्रिपुरा अथवा त्रिपुरसुन्दरी नाम प्रसिद्ध हुआ है । नामकेश्वर तंत्रमें इनको ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्ति स्वरूपिणी बताया है । इच्छाशक्ति इनका शिरोभाग है, ज्ञानशक्ति मध्यभाग एवं क्रियाशक्ति इनका अधो भाग है। शक्ति–त्रयात्मक होनेसे ये त्रिपुरा कहलाती हैं ।

{भगवती त्रिपुरसुन्दरीका माहात्म्य}

इन पराशक्तिका माहात्म्य अवर्णनीय है । सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, त्रिलोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी अभीतक इनका न तो पूर्ण स्वरूप पहचानते–जानते हैं, न ही इनका धाम कहाँ है, उसका इनको ज्ञान है ।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी गति ब्रह्मा–ब्रह्माणी, शिव–पार्वती, भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी, इन्द्रादि लोकपालों, मरीचि आदि प्रजापतियों, बड़े–बड़े ऋषियों मुनियोंके लिये अगम्य रही – वे भगवान् श्रीकृष्णका महा प्रस्थान देखने बड़ी उत्सुकतासे वहाँ एकत्रित हुए, परन्तु जब भगवान् श्रीकृष्णने अपने धाममें प्रवेश किया, कोई भी न तो उनके धामका अनुसन्धान पा सका और न ही उनकी गति जान सका, इसी प्रकार भगवती भी अविज्ञात गति हैं। जैसे अग्निकी ज्वाला प्रज्ज्वलित अंगार रूपमें समष्टिमें आविर्भूत होकर जब शान्त होती है, तब वह कहाँ गयी अथवा किसमें अन्तर्भूत है – यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्त मातृमण्डल संघट्टरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्रीविद्याका क्या स्वरूप है, वे कहाँसे कैसे आविर्भूत होती हैं और किसमें अन्तर्भूत होती हैं–यह किसीको भी ज्ञात नहीं है । युक्ति एवं तर्कका तो उनमें प्रवेश ही वर्जित है । "अहमस्मि"– मैं हूँ, इस प्रतीतिके सिवा उनकी उपलब्धिका दूसरा प्रमाण असंभव है । वेद, शास्त्र, तन्त्र, पुराण सभी इनके वर्णनमें असमर्थ हैं । "वस्तुतः ये भगवती ऐसी हैं" इस प्रकार वर्णन करनेकी किसीमें सामर्थ्य संभव ही नहीं । प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेय मात्रका ही ग्रहण करते हैं, उन अप्रमेय शक्तिके स्वरूप तक तो उनकी पहुँच ही नहीं हो सकती । "मैं हूँ" इसी आह्लादमें ये सदा निमग्न रहती हैं । शास्त्रोंमें जहाँ जो भी वर्णन है, वह सब इनके लीला विग्रहोंका ही वर्णन है । इनके

असंख्य लीला–विग्रह हैं और उनका महात्म्य भी अनन्त है ।

{श्रीविद्याके लीला–विग्रह}

वैसे तो भगवतीके अनन्त लीला–विग्रह हैं, परन्तु त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्ड तथा ब्रह्माण्ड पुराण, उत्तरखण्ड आदि इतिहासोंमें इनके मुख्य विग्रहोंकी परिगणना इस प्रकार है –

{१} कुमारी – इन्द्रादि देवोंका गर्व–परिहार करनेके लिये भगवती कुमारी रूपमें प्रकट हुई थीं ।

{२} त्रिरूपा – कारण पुरुष ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कार्योंमें सहायता करनेके लिये भगवतीने वाणी, लक्ष्मी, रुद्राणी आदि शक्तियोंको अपने शरीरसे प्रकटकर उन तीनोंसे इनका विवाह करा दिया ।

{३} काली, चण्डिका, कात्यायनी एवं दुर्गा इन चारों अवतारोंकी कथा सप्तशतीमें आती है ।

{४} भारती एवं भगवती ललिताकी कथा त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्डमें वर्णित है – विस्तार भयसे यहाँ नहीं दी जारही है । भगवती ललिताकी कथा संक्षेपमें इतनी ही है कि भण्ड नामके असुरने भगवान् शिवसे अभय रूप वर प्राप्त कर लिया था । वह त्रिलोकाधिपति हो गया । वह इन्द्रादि देवताओंसे अपनी पालकी कहारोंकी तरह उठवाया करता था । उसने असुरोंकी राजधानी शोणितपुरको मयासुर द्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवायी । उसका नाम शून्यकपुर रखा । उसके भयसे इन्द्राणी भगवती गौरीके आश्रयमें कैलाश चली गयीं । उसने कैलास जाकर इन्द्राणीकी माँगकी । भगवान् गणेशजी अपने प्रमथ गणों सहित उससे युद्ध करने लगे । अपने पुत्रकी सहायतामें भगवती गौरीने भी उससे युद्ध किया । भगवती गौरी जब उसका संहार करने जा रही थीं, तभी ब्रह्माजीने गौरीसे भगवान् शंकर द्वारा दिये उसे अमरत्वके वरदानकी बात कही। लाचार गौरीको उसे छोड़ना पड़ा ।

अब देव लोगोंने असहाय होकर भगवती त्रिपुराकी शरण ली । जब देवलोग माताकी स्तुति कर रहे थे उस समय ज्वालाके मध्यसे महा घोर शब्द करती तेजस्विनी भगवती प्रकट हुईं । उन्होंने देवताओंसे विशेष तप करनेकी बात कही । देवलोग तप करने लगे । इसी समय भण्डासुरने पुनः उनपर आक्रमण कर दिया । देवताओंने भगवतीकी प्रार्थना करते हुए

अपनेको यज्ञकुण्डमें होम कर दिया । देवोंको भस्मीभूत समझ वह असुर चला गया । इसके पश्चात् तडित्प्रभा–सी भगवती त्रिपुरा प्रकट हुईं । श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनापर सुमेरु पर्वत पर रहना स्वीकार कर लिया । भगवान् विश्वकर्माने ब्रह्माजीके कथनानुसार श्रीपुरका निर्माण किया । फिर माता श्रीचक्रात्मक रथ पर आरूढ़ होकर भस्मासुरको मारनेको उद्यत हुईं । भगवतीकी दो शक्तियों मन्त्रिणी एवं दण्डिनी {राजमातंगी एवं वाराही} और इतर अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमसे दैत्य सैन्यमें खलबली मचा दी। अन्तमें भगवतीने पाशुपतास्त्रका प्रयोगकर समस्त असुर सैन्यको शून्यकर दिया और महा कामेश्वरास्त्रसे समस्त शून्यपुर एवं भण्ड को अपने पुत्र–पौत्रों सहित शून्यमें विलीन कर दिया । यह भगवती श्रीविद्याका अति संक्षेपमें परिचय है । सामान्यतः 'श्री' शब्द लक्ष्मीके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है । परन्तु पुराणेतिहासोंमें वर्णित "श्री" शब्दका मुख्यार्थ महा त्रिपुरसुन्दरी देवी ही है।

महालक्ष्मीने भगवतीकी चिरकाल आराधनाकर जो अनेक वर प्राप्त किये थे उनमें "श्री" शब्दसे ख्यात होनेका भी उन्हें एक वर प्राप्त हुआ था । तभीसे "श्री" शब्दका अर्थ महालक्ष्मी होने लगा । मुख्यतया "श्री" नाम तो भगवती परम आद्याशक्ति भगवतीका ही है । इनकी प्रतिपादिका विद्या अथवा मन्त्र "श्रीविद्या" है। वाच्य वाचकको अभेद मानकर इस मन्त्रकी अधिष्ठातृ देवी "श्रीविद्या" कही जाती हैं ।

———————

अध्याय तीसरा

{पू0 गुरुदेवकी साधनामें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी साधनाका प्रयोजन}

किसीके भी मनमें यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठ सकता है कि पू0 गुरुदेव राधाबाबाको जब भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो चुके थे, उनका उनके लीला–राज्यमें प्रवेश हो चुका था, वे मंजरीभावमें भगवानकी अष्टयाम सेवामें सम्मिलित हो चुके थे, फिर उन्हें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाका आदेश किस हेतुसे दिया गया ।

इस सम्बन्धमें पू0 गुरुदेव द्वारा जो कुछ बताया गया है, उसे यहाँ उल्लेख किया जा रहा है :–

विश्वके सभी सन्तोंमें अथाह करुणावृत्तिकी प्रधानता रहती ही है । वे जिस प्रकार स्वयं आत्यन्तिक सुखसिन्धुमें डूबे रहते हैं, उसी प्रकार जगत्के समस्त प्राणियोंको और विशेषतया उनसे जुड़े हुए जीवोंको तो उसमें निमग्न करनेकी चाह करते ही हैं ।

एकबार सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी अन्तरंग सत्संग गोष्ठीमें पू0 गुरुदेव बैठे थे । यद्यपि पू0 गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके पास ही व्रत लेकर अखण्ड रूपसे रह रहे थे, परन्तु जब श्रीसेठजी एवं श्रीपोद्दार महाराज एक ही नगरमें होते और श्रीसेठजी सत्संग कराते होते तो उन दिनोंमें श्रीसेठजीके सत्संगमें गुरुदेव अवश्य सम्मिलित होते थे । श्रीसेठजी कह रहे थे कि –"शास्त्रोंमें उल्लेख है कि रामजी अपने साथ सभी अयोध्यावासियोंको सशरीर जीवन्मुक्ति पद देकर साकेतधाम लेगये । मात्र अयोध्याके राजा होनेका उन्होंने सम्पूर्ण प्रजाको मुक्त करके कर्त्तव्य निर्वाह किया । अपनी प्रजाको तो उन्होंने साकेत–धाम दिया ही, रावण, खरदूषणादि जितने राक्षसोंका उनके द्वारा वध हुआ, वे भी उनकी अहैतुकी कृपासे साकेत–धामको गये ।"

"इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्णने भी जितने असुर राजाओं और सेनाओंका वध किया, यहाँ तक कि जरासन्ध सत्रहबार तेईस–तेईस अक्षोहिणी सेना लेकर आया और महाभारतमें भी जो लाखों प्राणी मारे गये, सभीको अपनी

अमोघ कृपा दृष्टिसे मुक्त कर दिया । जितने असुर–कंस, शिशुपाल, दंतवक्रादि उनके हाथों मारे गये थे, वे सभी उनसे स्वरूपदान पाकर कृतार्थ होगये। ब्रजमण्डलको तो वे अपने साथ ही गोलोक धाम लेगये । ये कुछ परमार्थ जगत्में भगवदवतारों द्वारा बहायी जाने वाली कृपासमुद्रकी सर्वोच्च लहरें हैं। परन्तु भागवती करुणा–समुद्रका ऐसा उच्छलन अभीतक नहीं हुआ है कि कोई अवतार अथवा सन्त अपने समग्र दृष्य जगत्का ही कल्याण कर देता । आजतक तो ऐसा हुआ नहीं है । क्योंकि यदि किसीने ऐसा किया होता तो हम सभी विषयी प्राणी इसभवसागरमें पड़े नहीं होते ।"

श्रीसेठजी श्रीमद्भगवद्गीता पर बहुत निष्ठा रखते थे । अतः उनका कथन था कि यदि विश्वमें घर–घर गीताका तत्व एवं रहस्य सहित अध्ययन–मनन होने लगे एवं इसका प्रचार होजाय तो भगवती गीता महारानी सम्पूर्ण मनुष्य जातिको मुक्त कर सकती है ।

जबतक पू0 गुरुदेव विवर्त्तवादी अद्वैत मतावलम्बी वेदान्ती सन्यासी थे तबतक तो वे भी श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाकी तरह प्रपञ्चको अपनी ही मिथ्या भ्रम–मूलक प्रतीति मानते थे । उनके सम्मुख कोई जीव था ही नहीं, मात्र ब्रह्म ही ब्रह्म था । जैसे श्रीसेठजीकी तात्विक दृष्टिमें सर्वत्र अखण्ड घन आनन्द ही सत्य था, पू0 गुरुदेव भी एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित सच्चिदानन्दघन भगवान् वासुदेवको ही देखते थे ।

परन्तु इधर उनके मनमें यह बात दृढ़ होगयी थी कि यह सम्पूर्ण जगत् अघटन–घटना–पटीयसी भगवान् श्रीकृष्णकी योगमाया शक्तिका परम स्वातंत्र्यमूलक संकल्प भर है । अतः वे अपने आराध्य सगुण साकार भगवान् श्रीकृष्णसे ही प्रार्थना करने लगे –

"सो दासी रघुवीर कै समुझै मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ।।"

"हे प्रभो ! मायाकी प्रचण्ड सेना संसार भरमें छायी हुई है । कामादि {काम, क्रोध एवं लोभ} उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं, परन्तु यह माया तुम्हारी दासी है । यद्यपि समझ लेने पर यह मिथ्या ही है, किन्तु समझना इतना सरल नहीं है, जैसा कहा जाता है । यह आपकी कृपाके बिना छूटनी असंभव है । अतः हे प्रभो ! जिस प्रकार आप भक्तराज प्रह्लादके सम्मुख उसके सम्यक् दर्शन मात्रसे उसके तात्त्विक

कथनको सत्य करनेके लिये नृसिंह रूपमें प्रकट होगये, उसी प्रकार मेरी प्रार्थनाके फलस्वरूप मेरे सम्पूर्ण दृष्यमें अपनेको अभिव्यक्त कर दीजिये । जैसे ही आप मेरी सत्य दृष्टिके फलस्वरूप मेरेसे जुड़े सम्पूर्ण जीव समुदायमें व्यक्त होओगे, वे सम्पूर्ण प्राणी मायामुक्त होकर आपके अनन्त सौन्दर्य–माधुर्ययुक्त स्वरूपका दर्शन प्राप्त करके विषयान्धतामुक्त हो जावेंगे । उन्हें सर्वत्र आपका रस–विलास अनुभव होने लगेगा ।

पू0 गुरुदेवका आराध्य प्रियतम श्रीकृष्ण पर इतना अटूट अखण्ड विश्वास था कि वे अनहोनीको भी संभव करने के लिये उनसे प्रार्थना करने लगते थे ।

पू0 गुरुदेवकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सचमुचही करुणार्द्र हो उठे । भगवान् श्रीकृष्णने पू0 गुरुदेवके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट होकर यह कहा कि –"तुम मेरी ऐश्वर रूपा लीलाविधातृ शक्ति भगवती राजराजेश्वरी योगमाया त्रिपुरसुन्दरी ललिताकी उपासना करो । वे सर्वाभीष्ट फलदात्री हैं। तुम्हारा म ोरथ अवश्य पूर्ण होगा ।"

भगवान् श्रीकृष्णने पू0 गुरुदेवके सम्मुख यह तथ्य भी उद्घाटित किया कि भगवती श्रीविद्या ललिताकी उपासना अनादिकालीन है । आदि शंकराचार्यके परमगुरु गौड़पाद स्वामी, स्वयं शंकराचार्य एवं उनके तदनुवर्त्ती सुरेश्वर, पद्मपाद, विद्यारण्य स्व मी प्रभृति सभी अद्वैत वेदान्ती आचार्य इनके उपासक थे । मीमांसकोंमें आच र्य प्रवर खण्डदेवके शिष्य शम्भु भट्ट, भास्कर भट्ट प्रभृति इसी विद्याके उद्भट उपासक थे । महाप्रभु चैतन्यदेवके अभिन्न हृदय माने जानेवाले नित्यानन्द महाप्रभु भी श्रीविद्याके उपासक थे । शैवाचार्य अभिनवगुप्त प्रभृति भी शिवोपासनाके साथ श्रीविद्योपासना किया करते थे । आज भी यह सम्प्रदायक्रम म्लानभावसे ही सही परन्तु चल रहा है ।"

भगवान् श्रीकृष्णकी यह कृपामयी उक्ति सुनकर पू0 गुरुदेव समझ गये कि वास्तवमें जीवको भगवान्के स्वरूपतत्वका ज्ञान यथार्थ रूपमें उनकी अघटन–घटना–पटीयसी योगमाया शक्तिकी कृपासे ही संभव है ।

भगवान् श्रीकृष्णका पू0 गुरुदेवको भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनामें लगानेका एक और अति अन्तरंग प्रयोजन भी था । यद्यपि पू0 गुरुदेवका भगवान्की अति अन्तरंग लीलाओंमें प्रवेश होगया था, परन्तु उन्हें अभी महाभावकी अति उच्च मोहन–मादनादि अवस्थाओंसे परिचय भी नहीं था । फिर इनसे भी उच्चातिउच्च भावावस्थाओंका जिनका रसिकाचार्योंने अपने

रसग्रन्थोंमें उल्लेख ही नहीं किया है, उनका तो उन्हें परिचय भी नहीं था । जिन प्रेम अवस्थाओंकी गन्ध भी पू0 गुरुदेवको नहीं लगी थी, उन अपूर्व अलौकिक स्थितियोंका दान भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें कराना चाहते थे । पू0 गुरुदेव जब इन रहस्योंका बखान करते थे, तब उनके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे छलक पड़ते थे । वे बतलाते थे कि –"मैं सोच–सोचकर हार जाता था कि श्रीकृष्णका इतना प्रेम मुझ पर क्यों था, किन्तु इसका कोई हेतु कभी भी मेरी समझमें नहीं आया । मैं तो जानता ही नहीं था कि महाभाव क्या होता है? जब मुझे इन भावोंके ककहरेका भी ज्ञान नहीं था तो उसकी उच्च मोहन, मादनादि अवस्थाओंके ज्ञानका तो प्रश्न ही नहीं था । फिर उनसे भी ऊँची अनुभूतियाँ जिनका शब्द–परिचय भी असंभव मान रसिकाचार्योंने जिनका अपने रसशास्त्रोंमें संकेत तक नहीं किया, उन भावदशाओंकी मैं अथवा कोई भी कल्पना भी किस प्रकार कर पाता । जिन प्रेम–जन्य उच्चातिउच्च अवस्थाओंका मुझे ज्ञान नहीं, परिचय नहीं, उन्हें श्रीकृष्णने स्वेच्छासे मुझे दान किया ।"

वे एक स्वरचित दोहा बोला करते थे –

नियम हुतौ गुन–देहमें महाभाव नहिं हौन ।
मेरे हित पिय साँवरो सोहू कीनौं गौन ।।

अर्थात् – यह नियम था कि प्राकृत त्रिगुणात्मक देहमें महाभावकी उच्च अवस्थाएँ प्रकट नहीं हों, परन्तु मेरे लिये मेरे प्रियतम श्रीकृष्णने इस नियमको भी गौण कर दिया और मुझे इस प्राकृत त्रिगुणात्मक शरीर रखते हुए ही इन उच्चाति उच्च महान् प्रेम–भावोंका अनुभव करा दिया ।"

कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि प्राकृत–अप्राकृत लीलाविधातृ महाशक्ति भगवती योगमाया त्रिपुराम्बाकी कृपा एवं उनके "तथास्तु" के बिना पू0 गुरुदेवका मंजुश्यामा भावसे भगवती श्रीराधाके परमोच्च मोहन, मादन भावमें लहराना – जो श्रीकृष्णको अभिप्रेत था, असंभव था । अतः उन्हें इस परमोच्च स्थितिका दान करानेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने उनसे भगवती आद्याशक्ति योगमाया त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करायी । इस उपासनाके फलस्वरूप ही पू0 गुरुदेवको अक्षय तृतीया सं0 २००८ वि0 के पावन दिन भगवती त्रिपुराके साक्षात् दर्शन हुए और उनमें ऐसी अदम्य शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ जिससे वे दसों हजार व्यक्तियोंको भगवान्के साक्षात् दर्शनोंका भविष्यमें विधान सृजन करनेके हेतु हो पाये एवं लगभग पैंतीस सौ लोगोंको अप्राकृत

लीला–राज्यमें प्रवेश करानेका भविष्य निर्माण करनेमें वे हेतु हो गये ।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि पू0 गुरुदेवके मतमें सृष्टि दो प्रकारकी है । प्रथमतः आत्मार्थ सृष्टि एवं दूसरी जीवार्थ सृष्टि । श्रीमद्भागवतके प्रख्यात टीकाकार श्रीमद्बल्लभाचार्य अपनी सुबोधिनी टीका में कहते हैं –

सा च माया द्विविधा । स्वप्रतिकृत्या सम्बन्धं भगवन्तं जगद्रूपेण करोति, स्वेच्छया प्रादूर्भूतां जीवांश्च व्यामोहयति । तदेवं सृष्टि जीवार्था भवति। अतो मायया इदानींतनाया जीवमायेति नाम ।१।१०।२२।।

प्रथम योगमाया शक्ति जिसे पू0 गुरुदेव आत्मार्थ सृष्टि कहा करते थे, अपनी अनन्त प्रतिकृतिका स्पर्श करने पर भगवान्को ही जगद्रूपसे प्रकाशित करती है और दूसरी जीवार्थ सृष्टि, मोहिनी मायाशक्ति जो जीवोंका व्यामोह करके उसे सृष्टिमें आसक्त कर देती है ।

जीवार्थ सृष्टि अविद्यारूपिणी होती है । इसी जीवार्थ सृष्टिमें भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं अथवा सन्तरूपमें अपनी कृपाका प्रकाश करते हैं और जीवोंका कल्याण करते हैं । यह जीवार्थ सृष्टि भगवान्की आत्मार्थ सृष्टिकी अविद्या, मायामें छाया है ।

पू0 गुरुदेव इस रहस्यका प्रकाश अपनी "प्रेम–सत्संग–सुधा माला" नामक पुस्तकमें भी करते हैं । वे लिखते हैं कि इस माया–राज्यमें जो भी नदी, वन, पर्वत, झरने, स्त्री–पुरुष, हरिण–गाय, पक्षी, कीट–पतंग, पथ–राजपथ, प्रासाद, गृह, तालाब, सरोवर, वन–उपवन, लताएँ, पुष्प आदि देखते हैं, यह सब भगवान्के अप्राकृत राज्यकी अथवा आत्मार्थ सृष्टिकी अविद्या मायामें छाया है । अप्राकृत राज्यकी छाया इस मायामें पड़ रही है। अब कोई इस विकृत छायाको देखकर अनुमान ही नहीं लगा सकता कि सच्चिन्मय बिम्ब इस छायाका आधार हो सकता है । कुछ ऐसी ही यहाँ–वहाँकी समता है ।

सारांश यही है कि भगवती आद्याशक्ति त्रिपुराकी कृपा प्राप्त कर पू0 गुरुदेव अप्राकृत लोकके सर्वोच्च पद भगवती श्रीराधासे अपरोक्ष तादात्म्य लाभ कर सके, साथ ही इस अविद्या राज्यके हम जैसे हजारों नारकीय जीवोंके उद्धारके भी हेतु हो गये ।

अध्याय चौथा

{प्रातः स्मरण}

पू० गुरुदेव भगवती परमाद्या योगमाया त्रिपुरसुन्दरीकी यह स्तुति अपने उपासना कालमें प्रतिदिन प्रातः किया करते थे । पू० गुरुदेवने अनेक साधकोंको भी प्रतिदिन यह स्तुति करनेका नियम दिया था । इस भगवती पराम्बाके निम्नलिखित प्रातःस्मरणका तंत्र–जगत्में बहुत ही माहात्म्य है ।

प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि ललिता वदनारबिन्दं
बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम् ।
आकर्ण दीर्घ नयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम् ।।

भावार्थ

मैं प्रातः {ब्राह्म मुहूर्त्तमें शय्या त्याग करके, भू–प्रार्थनादि, करके, मुख प्रक्षालनके पश्चात्} हे भगवती ललिते ! तेरा स्मरण करता हूँ । अहा ! तेरे पूर्ण विकसित अरविन्दके समान मुख–सरोजकी कैसी निर्मल शोभा है । तेरे लाल–लाल अधर बिम्बफलके सदृश हैं और तेरी सुघड़ नासिकामें अत्यन्त मोटा {पृथुल} मोती जड़ा आभूषण नथ है । तेरे नेत्र कानों तक पहुँचते दीर्घ हैं और कान मणिजटित कुण्डलोंसे सुशोभित हैं । तेरे अधरों पर मन्द मुसकान,शोभायमान हैं और तेरा उज्ज्वल चौड़ा भालदेश कस्तूरीसे चर्चित है ।।१।।

"काव्यार्थ"

मैं प्रातः समय स्मरण करता हूँ, माँ ललिताका वदन–कमल ।
जिनकी नासामें पृथुल सुमुक्ता–युत नथ शोभित शुचि निर्मल ।।
हा ! कैसे निर्मल अरुण अधर मानो द्वय विकसित बिम्ब सुफल ।
आकर्ण विलम्बी दीर्घ नयन करुणा कज्जल युत तीक्ष्ण अमल ।।
कानोंमें शोभित हैं कुण्डल द्युति दमक कपोल रहे झलमल ।
है उन्नत उज्ज्वल भाल तिलक युत चर्चित–मृगमद अति सुविमल ।।
सर्वत्र बिखेर रही हैं शुभ शुचि मंद मधुर मुसकनि निश्छल ।
अति करुणा भरी कर रही हेतुरहित सुप्रीति वर्षा अविरल ।।१।।

{२}

प्रातर्भजामि ललिता भुजकल्पवल्लीं
रक्तागुंलीयलसदंगुलिपल्लवाढ्यम् ।
माणिक्य हेम वलयांगदशोभमानाम्
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषु–सृणीर्दधानम् ।। २।।

भावार्थ

हे ललिते महारानी ! मैं प्रातः नित्य तेरी कल्पक्ल्लरियोंकी शोभा अपहृत करनेवाली भुजाओंका भजन करता हूँ, जिनमें नव पल्लवोंके समान लाल–लाल कोमल अँगुलियाँ हैं और उनमें लाल माणिक्य मणियोंसे जटित लाल अँगूठियाँ आभूषणके रूपमें दमक रही हैं । आपकी भुजाओंमें स्वर्णके वलय एवं अंगद शोभायमान हैं, साथही इन भुजाओंमें स्वर्णिम इक्षु धनुष और कुसुमोंके बाण धृत हैं एवं भ्रमरोंकी प्रत्यंचा लगी है ।।२।।

पद्यभाव {२}

मैं प्रातः भजन करूँ अविरल माँकी द्वय युगल भुजाओंका ।
जो मूलोच्छेदन निरत नित्य मम अति दुष्कर विपदाओंका ।
हैं कल्पवल्लरीसी कोमल पल्लव सम अंगुलियाँ जिनमें ।
शोभित स्वर्णिम माणिक्य जटित अँगुलीयक आभूषण उनमें ।
माणिक्य हेम वलयांगद हैं अतिशय सुगोल वरदायक जो ।
धृत पाशांकुश पुण्ड्रेक्षु चाप कुसुमेषु सृणी शुभदायक सो ।। २।।

{३}

प्रातःर्नमामि ललिता चरणारविन्दं भक्तेशदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्
पद्मासनादि सुरनायक पूजनीयं पद्मांकुशध्वज सुदर्शन लाञ्छनाढ्यम्

{भावार्थ}

हे मातेश्वरी ललिते ! मैं तेरे विकसित अरविन्दके समान चरणोंका निरे प्रातःकाल नमन करता हूँ । भवसिन्धुको पार करनेके लिये जो जहाज सदृश हैं और अपने भक्तोंका निरन्तर इष्ट सम्पादित करते रहते हैं । जो पद्मासन ब्रह्माजी एवं सुराधिपति इन्द्रके द्वारा नित्य पूजनीय हैं और जिनमें पद्म, अंकुश, ध्वज, एवं सुदर्शन चक्रके चिन्ह शोभा पा रहे हैं ।।३।।

पद्यार्थ

मैं प्रातः नित्य नमन करता माँ तव शुभदायक चरण कमल ।
भक्तेष्ट दान सुनिरत भव सिन्धु पार करते जो पोत सदृश ।

हैं परमवंद्य सुरनायकके पद्मासन भी हैं नित्य प्रणत ।
पद चिन्ह सुदर्शन चक्र ध्वजा पद्मांकुश जिनमें परिलक्षित ।।३।।

{४}

प्रातस्स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्य विभवां करुणानवद्यां ।
विश्वस्य सृष्टि विलय स्थिति हेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगम वाङ्मनसातिदूराम् ।।४।।

भावार्थ

हे ललिते ! हे शिवे !! हे भवानी !!! माँ, मैं तेरी प्रातः नित्य स्तुति करता हूँ । तू निराविल करुणाकी मूर्त्ति है । माँ ! तेरा वैभव मात्र वेदान्त वेद्य है, तू ही समस्त सृष्टिकी सृजन, पालन एवं विलय क्रियाकी एक मात्र कारण है । हे समस्त विद्याओंकी ईश्वरी श्रीविद्ये ! तू इन्द्रिय, मन एवं वाणीसे अगोचर है । समस्त श्रुतियाँ अपनेको तेरे गुण वर्णनमें अक्षम समझ शान्त एवं मौन हैं ।

पद्यार्थ {४}

मैं प्रातः नित्य स्तवन करता परशिवा, भवानी ललिताका ।
वेदान्त वेद्य पर–विभवाका करुणा–प्रतिमा अनवद्याका ।।
जो विलय–सृजन संपालनकी हैं एक मात्र कारण भूता ।
सब विद्याओंकी जो जननी श्रुति अगम–निगम वंदिता स्तुता ।।४।।

{५}

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्य नाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।।
श्री शाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति।५।

भावार्थ

हे माते ! मैं तेरी पावनतम नामावलीका नित्य प्रातः गायन करता हूँ। अहा कैसी कल्याणकारी नामावली है । हे माँ कामेश्वरी ! हे कमले !! हे महेश्वरी !!! हे श्रीविद्ये !!!! हे शाम्भवी !!!!! माँ जगज्जननी ! हे वाग्देवी, हे त्रिपुरेश्वरी करुणामयी तुम्हारी सदा जय हो ।

पद्यार्थ

माँ तव पावनतम नामावलि मैं नित प्रातः गायन करता ।
कहते ही कमले, शिवे जननि मम तन–मनमें अमृत भरता ।।

हे कामेश्वरी, महेश्वरि, शिवे, शाम्भवी श्री वरदायिनि माँ ।
त्रिपुरे वाग्देवी, पराशक्ति तव चरण सिवा गति मुझे कहाँ ? ।।५।।

{६}

यः श्लोक पञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः ।
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते ।।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना ।
विद्या श्रियं विमल सौख्यमनन्त कीर्तिम् ।।

भावार्थ

जो भी व्यक्ति माँ ललिताम्बाके इन महा सौभाग्यदायी सुललित पाँच श्लोकोंका नित्य प्रातःकाल पाठ करता है उसे भगवती श्रीसुन्दरी शीघ्र ही प्रसन्न होकर विद्या, श्री {लक्ष्मी} एवं निर्मल पाप–रहित सुख, साथ ही अनन्त कीर्त्ति दान करती हैं ।

पद्यार्थ

अति सौभाग्यप्रद पाँच श्लोक जो जननीके प्रातः पढ़ता ।
सुर–मुनि–ऋषिवंदित पद पाता नित जननी सन्निधिमें रहता ।।
झटसे प्रसन्न होकर माता उसको देती शुभ कीर्त्ति विमल ।
विद्या, श्री, सुख, अखण्ड जीवन सेवनरत माँके चरण कमल ।।

{७}

प्रातः प्रभृति सायांन्तं सायांदि प्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम् ।।
मञ्जु शिञ्जित मञ्जीरं वाममर्धं महेशितु ।
आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं सचराचरम् ।।७।।

भावाथ

हे पराम्बे ! सम्पूर्ण सृष्टिकी आदि–योनि स्वरूपे !! मैं प्रातःकालसे लेकर सायंकाल तक और सायंकालसे प्रातःकाल तक अष्ट पहरमें जो कुछ भी करता हूँ, वह सब तुझमें ही पर्यवसित है, अतः वह सबकुछ तेरा पूजन ही है । हे माँ ! तेरे अतिशय सुभग मञ्जीर {नूपुर} झंकार कर रहे हैं, तू भगवान् महेश {कामेश्वर} के वामार्ध भागमें सुशोभित है, मैं तेरी, हे जगन्मूले! शरण ग्रहण करता हूँ क्योंकि सचराचरकी तू ही परमाश्रया, परमाधार है ।

अध्याय पाँचवाँ
{भगवती पराम्बाका ध्यान एवं स्तुति}

{प०पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भगवतीके उपासनाके-ध्यानके कुछ अनमोल श्लोक यहाँ दिये जा रहे हैं। उनकी अपनी एक विशेष डायरी थी, जिसमें उनकी विशेष उपासनाकी वस्तुएँ लिखी रहती थीं । लेखकने पू. गुरुदेवसे अनुमति प्राप्तकर पू. गुरुदेवके काष्ठ मौनके पूर्व ये भगवतीके ध्यानके श्लोक उसीमेंसे उतारे थे । यहाँ ये श्लोक पाठकोंके लाभार्थ दिये जारहे हैं । इनके भावार्थ लेखकने स्वयं किये हैं, अतः उसमें यदि कोई त्रुटि विद्वज्जनोंको समझमें आवे तो यह लेखकके अल्प संस्कृत–ज्ञानका परिणाम है । ऐसा अनुमान है कि इनमें एकाध श्लोक भगवान् आदि–शंकराचार्य विरचित 'सौन्दर्य लहरी' नामक भगवतीकी स्तुतिमेंसे है, शेष किस शास्त्रसे उद्धृत हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता । इतना निश्चित है कि उपासकोंके लिये ये ध्यानके अमृतश्लोक बहुत ही उपयोगी हैं ।}

{भगवती पराम्बाका ध्यान}

ध्यायेत् कामेश्वरांकस्थां कुरुविन्दमणिप्रभां
शोणाम्बर स्रगालेपां सर्वांगीण विभूषणाम् ।।
सौन्दर्य शेवधिं सेषू चाप पाशांकुशोज्ज्वलां
स्वभाभिरणिमाद्याभिः सेव्यां सर्वनियामिकाम् ।।

{हिन्दी भावार्थ}

मैं उन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी, लौकिक अलौकिक सम्पूर्ण लीला–जगतकी एकमात्र नियामिका भगवती जगदम्बाका ध्यान करता हूँ, जो भगवान् कामेश्वरके अंकमें स्थित रहती हैं, जिनके कलेवरसे कुरुविन्द मणिकीसी रक्तिम आभा, लालप्रभा {ज्योत्स्ना} छिटकती रहती है ।

जो अपने ही वर्णके समान लाल वस्त्र धारण करती हैं और जिनके अंग–प्रत्यंग उत्तमोत्तम आभूषणोंसे भूषित हैं, जिनके अनन्त सौन्दर्यकी कहीं सीमा {अवधि} ही नहीं है जो अपनी चारों भुजाओंमें क्रमशः इक्षुका चाप, पुष्पोंके बाण, उज्ज्वल आभासे झलमलाता अंकुश और पाश धारण किये हैं। जिनकी अंग–प्रभा {प्रकाश}से अणिमा–महिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्रकट होकर सेवारत रहती हैं, उन सर्व–सेव्या माँका मै ध्यान करता हूँ ।

{२}

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परम शिव पर्यंकनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीं ।।

{भावार्थ}

मैं परमातिपरम धन्या चिदानन्दलहरी {सच्चिदानन्दमयी} माँ ! तेरा भजन करता हूँ, तू अमृत–समुद्रके मध्य स्थित मणिद्वीपमें वृक्षोंकी वाटिकासे घिरे कदम्ब-कल्पवृक्षोंके उपवनमें चिन्तामणियोंसे निर्मित गृहमें शिवाकार मञ्चके ऊपर परम शिवके पर्यंकमें आसीन है ।

{३}

ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्त्रयविमोहिनीं
अशेष व्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम् ।
उद्यत् सूर्य सहस्राभां दाडिमी कुसुमप्रभां
जपाकुसुम संकाशां पद्मराग मणि प्रभाम् ।।

{भावार्थ}

मैं उस निरामय {शोक, दुःख, व्याधि रहित} वस्तुका ध्यान करता हूँ जो तीनों लोकों {ऊर्ध्व, मध्य एवं अधःस्थित}को मोहित करने वाली हैं । जो पराचिति {संवित्} स्वरूपा हैं और विश्वके समस्त लीला–उपक्रमों {व्यवहार}की एकछत्र स्वामिनी विधाता हैं । सद्योदित सहस्रों बाल सूर्योंके समान रक्तवर्ण जैसी जिनकी आभा है और जो जपापुष्प एवं दाडिम कुसुमोंके रंगवाली हैं, पद्मराग मणिकी सी ज्योतिर्मान हैं ।

{४}

स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीं
रक्तोत्पलदलाकारां पादपल्लव राजिताम् ।
अनर्घ रत्नखचित मञ्जीरचरणद्वयाम्
पादांगुलीयकक्षिप्त रत्नतेजोविराजिताम् ।।

{भावार्थ}

जो समस्त सुरमण्डलकी ईश्वरी हैं, जिनकी आभा तपाये हुए स्वर्णके सदृश है एवं जिनके विकसित कमलके समान कोमल एवं सुन्दर अथवा लाल–लाल सुकोमल नवपल्लवोंके समान चरण हैं । दोनों चरणोंमें अनमोल

रत्न–खचित मंजीर आभूषण हैं, चरणोंकी अंगुलियोंमें जो रत्न जड़े हैं, उनसे तेजस्वी प्रभा निकल रही है ।

{५}

कदली–ललित–स्तंभ सुकुमारोरु कोमलां
नितम्ब–बिम्ब–विलसद्रक्तवस्त्र परिष्कृतां ।
मेखलाबद्ध माणिक्य–किंकिणी–नाद–विभ्रमां ।
अलक्ष्य मध्यमां निम्न नाभिं शातोदरीं पराम् ।।

{भावार्थ}

जैसे कदली वृक्षके स्तंभ खड़े हों ऐसी सुकुमार जिनकी जंघाएँ हैं । बिम्बफलके समान लाल–लाल रंगके वस्त्रोंसे आवृत जिनके नितम्ब हैं । माणिक्यकी मेखला {करधनी}में लगे घुंघुरुओंके किंकण नादसे वे सर्वलोकोंको विभ्रमित कर रही हैं । जिनकी गंभीर नाभि है, ऐसे लघु उदर वाली, अलक्ष्य–मध्यमा परादेवीका मैं ध्यान करता हूँ ।

{६}

रोमराजिलतोद्भूत महाकुचफलान्वितां ।
सुवृत्त निविड़ोत्तुंग कुचमण्डल राजितां ।।
अनर्घ मौक्तिकस्फारहारभार विराजितां ।
नवरत्नप्रभाराजत् ग्रैवेयक विभूषणां ।।
श्रुतिभूषा मनोरम्य कपोलस्थल मंजुलां ।
उद्यदादित्य संकाशं ताटंकसुमुख प्रभां ।।

{भावार्थ}

जिनकी रोमावली रूप लतामें दो बड़े–बड़े कुच {स्तन} रूपी फल लगे हों– इस प्रकार सुवृत्त {गोलाकार}, घने एवं ऊँचे उठे हुए स्तन मंडलसे जो शोभायमान हैं । उनकी ग्रीवामें परम निर्मल मुक्ताहारोंका भार है साथ ही ग्रैवेयक आभूषणमें जटित नौ प्रकारके रत्नोंकी प्रभा बिखर रही है । कानोंके आभूषण परम मनोरम हैं, जो कपोलोंकी शोभाको मंजुल बना रहे हैं एवं जैसे बाल–रवि उदय हुआ हो, ऐसी प्रभा उनके कुण्डलोंसे निकल रही है।

{७}

पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां वरनासिकां
स्फुरन्मदनकोदण्ड सुभ्रुवं पद्मलोचनां ।।

ललाट पट्ट संराजद्रत्नाढ्य तिलकांकितां ।
मुक्तामाणिक्य घटित मुकुटस्थल किंकिणीम् ।।

{भावार्थ}

पूर्ण राकाचन्द्रके समान मुखवाली माँ जिनका आनन खिले पद्मके समान शोभायुक्त है एवं जिनकी श्रेष्ठ नासिका है, जिनकी सुन्दर भौंहें कामदेवके धनुषके समान धीरे–धीरे संचारित हो रही हैं, जिनके ललाट स्थलमें बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नका तिलक अंकित हुआ शोभा पा रहा है एवं मुकुटमें मुक्ता एवं माणिक्यकी लडें किंकिणीकी तरह शोभित हैं ।

{८}

स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटां च त्रिलोचनां ।
प्रवालवल्लीविलसद्बाहुवल्ली चतुष्टयाम् ।।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषु पाशांकुश चतुर्भुजां ।
सर्वदेवमयीमम्बां सर्व–सौभाग्य–सुन्दरीम् ।।

{भावार्थ}

त्रिनयना माँके मुकुटमें चन्द्रकला विराजित है । उनकी चारों भुजाओंकी ऐसी शोभा है मानों प्रवाल मणियोंकी लताएँ हों । वे चारों भुजाओंमें इक्षुका धनुष, पुष्पोंके बाण, पाश तथा अंकुश धारण किये हैं, वे श्रीसुन्दरी अम्बा सर्वदेवमयी हैं एवं सर्वसौभाग्यदात्री हैं ।

{९}

सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकामप्रपूरिणीं ।
सर्वमंत्रमयीं नित्यां सर्वागमविशारदां ।।
सर्वक्षेत्रमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवां ।
सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम् ।।

{भावार्थ}

हे माता ! आप सर्व तीर्थमयी हैं, आप परम दिव्य स्वरूपा हो, सब कामनाओंको पूर्ण करदेनेवाली हो, सर्व मन्त्रमयी हो, सनातनी नित्या हो, सारे आगम शास्त्रोंकी विशारद हो, सर्व क्षेत्रमयी भगवती धरा आपका ही स्वरूप है और सर्व विद्यामयी शिवा भी आप ही हो । आप सर्व यज्ञमयी हैं एवं सर्व देवस्वरूपिणी महाविद्या भी आप ही हो ।

{१०}

सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागमनमस्कृतां ।
सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतन–सेवितां ।।
सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं परां ।
एवं ध्यायेत् परामम्बां सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।।

{भावार्थ}

माता ! आप सर्वशास्त्रमयी हो, आप शाश्वत, नित्य एवं सनातन हो । सारे आगम आपकी स्तुति करते हैं । आप उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊर्ध्व, अधः सर्वआम्नायमयी हो । सम्पूर्ण प्रयत्नोंसे मात्र आपका भजन करना ही जीवमात्रका कर्त्तव्य है । सर्व–आयतनों {मन्दिरों}में आपकी ही सेव्य मूर्त्तियाँ हैं, जहाँ आपकी ही पूजा–सेवा हो रही है । आप सर्वानन्दमयी हैं । आप ज्ञानाग्निकी कुण्ड हैं एवं परा–संविद् {बोधस्वरूप चेतन सत्ता} स्वरूपिणी हैं । इस प्रकार उन सच्चिदानन्द–स्वरूपिणी पराम्बाका नित्य ध्यान करना चाहिये ।

भगवती पराम्बाकी स्तुति

{ये स्तुतिके पद भी पू. गुरुदेवकी डायरीसे उद्धृत हैं। इनमेंसे भी कतिपय पद भगवान् आदि–शंकरस्वामिकृत "सौन्दर्य लहरी" स्तोत्र में से हैं ।}

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्नवदनैः
प्रजानामीशान त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि ।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति–
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसर ।।१।।

{भावार्थ}

हे माता भवानी ! औरोंकी तो बात ही क्या, अखिल सृष्टिके रचयिता प्रजापति ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते, त्रिपुरहर भगवान् शंकर पाँच मुखके रहते हुए भी इस विषयमें मूक होकर रह जाते हैं । देव–सेनापति भगवान् कार्त्तिकेय छः मुखवाले हैं, परन्तु वे भी मन–मारकर बैठ जाते हैं । इन सबके ऊपर भगवान् शेष हजार मुख रखते हैं, परन्तु वे भी तुम्हारी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। कोई करे भी तो कैसे, तुम्हारे गुणोंकी थाह पावे, तब न ! फिर मेरे जैसे साधारण जीवकी तो सामर्थ्य ही क्या है ?

{२}

ईशित्व–भाव–कलुषाः कतिनाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः ।।
एकः स एव जननी स्थिर सिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति ।।

{भावार्थ}

हे माते ! ईश्वरत्वके भावको कलुषित करनेवाले अनेक ब्रह्मादि देवता हैं, जो अपनेको समझते ईश्वर हैं परन्तु प्रत्येक युगमें प्रलयकाल होने पर नष्ट होजाते हैं । हे माँ ! एक तू ही सबको जन्म देनेवाली है, जिसका अनन्त महाप्रलय भी कुछ भी बाल–बाँका भी नहीं कर सकते, तू माँ, उस महा–प्रलयकी भी साक्षी–द्रष्टा बनी रहती है । माँ ! तेरे चरणोंको मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

{३}

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया ।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ।

{भावार्थ}

हे सर्वशरणदात्री माँ ! तुम्हें छोड़कर जितने दूसरे देवता हैं, सभी अपने हाथोंसे ही अभय–दान करते हैं, वे वरदान भी हाथों द्वारा ही देते हैं। इसीलिये प्रायः सभी वरद अथवा अभय मुद्रा धारण किये रहते ही हैं । तुम्हीं एक ऐसी हो जो इन दोनों मुद्राओंको धारण करनेका स्वाँग नहीं रचतीं । तुम्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं । तुम्हारे दोनों चरण ही आश्रितोंको सब भयोंसे मुक्त करने तथा उन्हें इच्छित फलसे अधिक देनेमें समर्थ हैं । तुम्हारे हाथ तो निरन्तर शत्रु–संहारके कार्यमें लगे रहते हैं । भक्तोंके लिये तो तुम्हारे चरण ही पर्याप्त हैं ।

{४}

दृशा द्राघीयस्या दरदलित नीलोत्पलरुचा
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकर निपातो हिमकरः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! अधखिले नील कमलके समान कान्तिवाले अपने विशाल नेत्रोंसे तुम्हारे सुर–मुनि–दुर्लभ चरणोंसे बहुत दूर पड़े हुए मुझ दीन पर भी अपने कृपा–पीयूषकी वर्षा कर दो । 'तुम्हारे ऐसा करनेसे मैं तो कृतार्थ हो जाऊँगा ही और तुम्हारी कुछ भी क्षति नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारा कृपाका भण्डार अटूट, अक्षय है। मुझ पर कुछ छींटे डाल देनेसे उसका दिवाला नहीं निकलने वाला है । माँ ! तुम क्यों नहीं मुझे एक बार ही सदाके लिये निहाल कर दे रही । चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे सभी जगह समान रूपसे अमृतवर्षा करता है। उसकी दृष्टिमें एक वीरान जंगल और राजाधिराजकी गगनचुंबिनी अट्टालिकामें कहीं कोई अन्तर नहीं है । फिर तुम्हीं मुझ दीन पर क्यों नहीं ढरतीं। मुझसे इतना अलगाव क्यों कर रखा है ? क्या इस प्रकारका वैषम्य तुम्हें शोभा देता है? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। कृपया शीघ्र मुझे अपनाकर अपने शीतल चरणतलका आश्रय दो । जिससे सदाके लिये मैं तुम्हारा क्रीतदास बन जाऊँ, तुम्हें छोडकर दूसरी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताकूँ ।

{५}

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदाः मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपाल

{भावार्थ}

हे माते ! चारों वेद तेरे ह्रींकार नामकी महिमा गाते हैं । हे त्रिनयने, त्रिपुरे, जगज्जननी तू त्रिकोणमें निवास करती है । तेरे स्मरण करने मात्रसे यमके शूरवीर दूत भयसे भाग जाते हैं और जीवोंके सम्मुख लोकपाल देवताओंके साथ नन्दनवन स्वर्ग प्रकाशित हो उठता है ।

{६}

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा विरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमण मदनाद्याहुति विधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्या पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितुम् ।।

{भावार्थ}

हे माते ! जब मैं हूँ ही नहीं, मात्र तू ही तू है तो मेरा हिलना–चलना, विलसना सभी तेरी जप–मुद्रा है एवं खाना–पीना सब मात्र तेरी सपर्याका

पर्याय ही तो है । मेरा भाषण, बोलना तेरा जप एवं गुण–कीर्त्तन है । मेरी सब अंग–प्रत्यंगसे सेवाके लिये की गई शरीर क्रिया तुम्हारी पूजाके लिये करणीय मुद्रायें हैं । माँ ! तेरी सेवाके लिये मेरा गमनागमन तेरी प्रदक्षिणा करना ही है। तेरी नैवेद्य वस्तुओंको खाना, खाद्य–पेय–लेह्य–चोष्यादि भोजन, आहुति विधिसे हवनमें आहुतिं दिया जाना है । मेरा शयन तेरे चरणोंमें प्रणाम है । इस प्रकार मेरा सम्पूर्ण सुख सर्वानन्द–घन तुझमें मेरा समर्पण ही है ।

{७}

ह्रींकार त्रय संपुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् ।।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगाः लक्ष्मीश्चिरःस्थायिनी
वाणी नैर्मल सूक्तिभारभरिता जागर्त्ति दीर्घं वयः ।।

{भावार्थ}

हे माते ! जो भी मंत्रवेत्ता व्यक्ति प्रति दिवस इस स्तोत्रको जिसमें तीन बार "ह्रीं" मन्त्र सम्पुटित है एवं भगवतीके मंत्रसे दैदीप्यमान है, तेरे सम्मुख जप {पाठ} करता है, उसके सम्स्त पृथ्वीके सम्राट् वशवर्त्ती हो जाते हैं एवं उसके यहाँ भगवती लक्ष्मी चिरस्थायिनी होकर निवास करती हैं, उसकी वाणी परम निर्मल एवं विशिष्ट ऋषियोंकी उक्तियोंसे सम्पन्न होजाती है और वह दीर्घ आयुको भोगता हुआ जीवित रहता है ।

{८}

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधर राजन्य तनये ।
तदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शंके परिहृतनिमेषा स्तव दृशः ।।

{भावार्थ}

हे शैलेन्द्रतनये ! शास्त्र एवं सन्त यह कहते हैं कि तुम्हारे पलक मारते ही यह संसार प्रलयके गर्भमें लीन हो जाता है और पलक खोलते ही वह फिरसे प्रकट हो जाता है । संसारको बनाना तथा बिगाड़ना तुम्हारे लिये एक पलकका खेल है । तुम्हारे मात्र पलक उघाड़नेसे जो यह संसार खड़ा होगया है, वह पुनः नष्ट नहीं हो जाय, प्रतीत होता है, इसीलिये तुम कभी

पलक गिराती नहीं, सदा निर्निमेष दृष्टिसे अपने भक्तोंकी ओर निहारती ही रहती हो ।

{९}

घृत द्राक्षाक्षीर मधु मधुरिमा कैरपि पदै
विशिष्यानाख्येयो भवति रसना मात्र विषयः ।
तथा ते सौन्दर्य परम शिव दृङ्मात्र विषयः
कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ।।

{भावार्थ}

हे माता ! घी, दूध, दाख अथवा शहदका स्वाद कैसा है, उनके स्वादमें क्या–क्या अन्तर है – इसे शब्दोंके द्वारा पृथक्–पृथक् करके किसी प्रकार भी नहीं समझाया जा सकता । इसका सही ज्ञान तो केवल रसनाका ही विषय है । इसी प्रकार हे देवि, तुम्हारी अनुपम छवि का कोई वर्णन नहीं कर सकता, वह तो केवल परमशिवके प्रत्यक्षका ही विषय है । सौन्दर्यकी तो बात ही क्या, तुम्हारे और–और गुणोंका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। वेद और उपनिषत् भी हार मान जाते हैं और "नेति" नेति कहकर ही अपना पिण्ड छुड़ाते हैं ।

{१०}

कृपापांगालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्ली परिकरैः ।।

{भावार्थ}

हे देवि ! मुझ शरणागत पर शीघ्र ही अपने कृपा–कटाक्षका निक्षेपकर मुझे कृतकृत्य करो । माना कि मेरे आचरण साधुओंके से नहीं हैं, किन्तु मैं तेरी शरणमें तो चला ही आया हूँ । क्या शरणमें आये हुएकी तुम्हें उपेक्षा करनी चाहिये? यदि शरणमें चले आने पर भी तुम यह विचार करोगी कि इसके आचरण उत्तम हैं या नहीं और मुझ–जैसे मन्द आचरण वालोंसे बेरुखीका व्यवहार करोगी तो फिर तुममें और दूसरे देवताओंमें अन्तर ही क्या रहा ? कल्पवृक्षके नीचे चले आने पर भी यदि किसीकी इच्छा पूरी नहीं हो तो फिर उसमें और साधारण वृक्षोंमें अन्तर ही क्या रहा ? कल्पवृक्षका धर्म ही है अर्थार्थीकी कामनाको पूर्ण करना । फिर तुम अपने धर्मको कैसे

छोड़ सकती हो? तुम्हें अपने बिरदकी रक्षाके लिये ही मेरी बाँह पकड़नी होगी, मुझे अपनी शरणमें लेना होगा । यदि मेरा परित्याग करती हो तो साथ–ही–साथ अपनी शरणागतवत्सलताका बाना भी छोड़ना होगा ।

{११}

अयःस्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथारथ्यापाथः शुचि भवति गंगौघमिलितम् ।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ।।

{भावार्थ}

हे माते ! पारसमणिका स्पर्श पाते ही लोहा तत्काल सोना बन जाता है और नालेका गन्दा पानी भी जगत्पावनी गंगाजीकी धारामें मिलकर स्वयं जगत्पावन हो जाता है । फिर अनेक प्रकारके पापोंसे कलुषित हुआ मेरा मन क्या तुम्हारे प्रेमको प्राप्त करके भी निर्मल नहीं होगा ?

{१२}

त्वदन्यस्मादिच्छा विषय–फल–लाभे न नियम
स्त्वमज्ञानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे ।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन
स्त्वदासक्तं नक्तन्दिवमुचितमीशानि कुरु तत् ।।

{भावार्थ}

तुम्हारे अतिरिक्त जो दूसरे देवता हैं, उनके द्वारा उनके उपासकोंको इच्छित फलकी प्राप्ति हो ही, ऐसा नियम नहीं है । क्योंकि प्रथम तो वे सर्वसमर्थ नहीं हैं, वे अपनी–अपनी शक्तिके अनुसार ही अपने उपासकोंकी इच्छाको पूर्ण कर सकते हैं । अपनी सामर्थ्यसे अधिक वे नहीं दे सकते । फिर जो कुछ भी वे देते हैं, उसके लिये मूल्य भी पूरा–पूरा वसूल करते हैं। मूल्य पूरा अदा नहीं करनेसे अथवा साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि रह जाने पर अथवा विधिमें वैगुण्य होनेसे वे इच्छित फल सामर्थ्य होने पर भी, नहीं देते । माँ ! तुम्हारी बात तो कुछ दूसरी ही है। तुम तो अपने भक्तोंको उनकी इच्छासे अधिक भी दे सकती हो ।

बात यह है कि हम अल्पज्ञ जीव तुम्हारी अतुल सामर्थ्यको न जानकर तुमसे बहुत ही छोटी–छोटी चीजें माँग बैठते हैं । तुम तो इतनी दयालु हो कि हमें आशातीत फल प्रदान करती हो और देवता तो हमारी सांसारिक

इच्छाओंकी पूर्त्तिको अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं । तुम हमारी सांसारिक कामनाओंको भी पूर्ण करती हो, साथ–ही–साथ अपनी विमल भक्ति भी देती हो । ब्रह्मादिक पूर्वजोंने तुममें और अन्य देवताओंमें यही अन्तर बतलाया है । इसीलिये मेरा मन रातदिन तुम्हारा ही चिन्तन करता है ।

हे परमेश्वरि ! अब जैसा उचित समझो करो । मैं तो तुम्हारी शरणमें पड़ा हूँ । मुझ–जैसे अधमोंका अब और कहाँ ठौर ठिकाना है ? आश्रयहीनको आश्रय देनेवाली तुमसे बढ़कर अब किसको कहाँ पाऊँगा ?

{१३}

पिता माता भ्राता गुरुरथ सुहृद्बान्धव जनः
प्रभुस्तीर्थं कर्माविकलमिह चामुत्र च हितं ।
विशुद्धा विद्या वा पदमपि च तत्प्राप्यमसि मे
त्वमेव श्रीमातः स्वपिमि गतशंकः सुखतमः ।।

{भावार्थ}

हे मेरी माँ ! तू ही मेरी पिता है, माता है, भ्राता, गुरु, सुहृद् एवं बन्धुजन तू ही है । तू ही मेरी प्रभु {ईश्वर}, तीर्थ, इस संसारके अविकल कर्म है एवं तू ही मेरा हित है । मेरी विशुद्ध विद्या, मेरा प्राप्तब्य पद भी तू ही है । माँ ! एक तू ही है जिसकी गोदमें मैं परम सुखसे सब शंकाओंसे परे हुआ विश्राम कर सकता हूँ, शयन कर सकता हूँ ।

{१ ४}

हे सद्रूपिणि हे चिदर्चिरुचये हे कामराजप्रिये
हे भण्डासुरहंत्रि हेऽद्भुतनिधे हेऽनंगसंजीवनी ।
हे विश्वप्रसविनी हे सकरुणे हे दीन रक्षामणे
हे श्रीमल्ललिताम्ब हे परशिवे मां पाहि डिम्भं जनम् ।।

{भावार्थ}

हे सत्स्वरूपिणी माँ ! तेरी शोभा ऐसी है मानो चैतन्य अग्निदेवकी तेजोराशि हो, हे कामेश्वर भगवान्की प्रिये, हे भण्डासुरका वध करनेवाली, हे परमाद्भुत लक्ष्मीस्वरूपे, हे कामदेवको जीवनदान देनेवाली, हे सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाली, हे करुणापूर्णे, हे दीनजनोंकी रक्षा करनेवाली महा सामर्थ्यवान् मणि, हे समग्र श्रीस्वरूपे माँ ललिते, हे परशिवे, मुझ अपने मूर्ख बालककी रक्षा करो ।

{१५}

नमो हेमाद्रिस्थे शिव सति नमः श्रीपुरगते
नमः पद्माटव्यां कुतुकिनि नमो रत्नगृहगे ।
नमः श्रीचक्रस्थेऽखिलमयि नमो बिन्दुनिलये
नमः कामांकस्थितिमति नमस्तेऽम्ब ललिते ।।

{भावार्थ}

हे माता ! तू सुमेरु पर्वतके स्वर्ण शिखर पर वास करती है, तुझे मेरा नमस्कार है । हे श्रीपुरमें निवास करनेवाली शिव–सती, आपको मेरा नमन है। हे पद्माटवीमें रसविलास–कौतुक करती, चिन्तामणि रूप रत्नभवनमें निवास करनेवाली माँ, तुझे मेरा नमन है । हे श्रीचक्रराजमें स्थित अखिल सृष्टिमयी, हे बिन्दुनिलये, हे कामेश्वरअंकस्थिते, विद्यास्वरूपिणी, अम्बे, ललिते, तुझे मेरा नमस्कार है ।

{१६}

जय जय जगदम्ब भक्तवश्ये
जय जय सान्द्रकृपावशान्तरंगे ।
जय जय निखिलार्थ दानशौण्डे
जय जय हे ललिताम्ब चित्सुखाब्धे ।।

{भावार्थ}

हे जगदम्बे ! निज भक्तोंके वशमें रहनेवाली, तेरी जय हो ! हे घनीभूत कृपाके वशमें रहनेवाली, परम समीप रहनेवाली, आत्मस्वरूपे– तेरी जय जय हो, हे सम्पूर्ण सौभाग्य–दान करनेवाली, तुम्हारी जय जय हो, हे चित्सुखकी अगाध उदधि तेरी जय–जय, परम जय हो । हे माँ ललिते ! तेरी जय हो।

{१७}

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिवे ।

{भावार्थ}

हे शिवे ! भूमिमें यदि किसीका पैर स्खलित हो जाये तो वह गिरकर भूमिमें ही पडेगा, उसका भूमिके अतिरिक्त अन्य अवलम्बन तो संभव ही नहीं। इसी प्रकार हे माँ शिवे ! तेरे प्रति अपराधोंकी मुक्ति मात्र तेरी ही शरणागतिसे संभव है । अन्य उपाय तो संभव ही नहीं ।

अध्याय छठा

{श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्रम्}

{पाठकोंके मनमें स्वाभाविक ही जिज्ञासा हो सकती है कि पू0 गुरुदेव श्रीराधाबाबा भगवती महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासना किस विधिसे किया करते थे ? पू0 गुरुदेव चतुर्थाश्रमी सन्यासी होनेके नाते क्रियात्मक पूजा पद्धतिका अवलंबन साधनोंके अभाववश ले नहीं सकते थे, अतः वे नित्य चार बार माँ आद्याशक्तिकी मानस–पूजा किया करते थे । यहाँ नीचे अर्थ–सहित वे शताधिक श्लोक भावार्थसहित दिये जा रहे हैं जो भगवान् आदिशंकर स्वामी द्वारा विरचित हैं और इन्हीं श्लोकोंसे पू0 गुरुदेव राधाबाबा की सम्पूर्ण पूजा पुष्पार्चनसे सम्पादित होती थी ।}

मम न भजनशक्तिः पादयोस्ते न भक्तिः
न च विषयविरक्तिर्ध्यानयोगे न सक्तिः ।
इति मनसि सदाऽहं चिन्तयन्नाद्यशक्ते
रुचिरवचनपुष्पैरर्चनं सञ्चिनोमि ।।१।।

हे आद्याशक्ते ! मुझमें न तो तेरा भजन करने योग्य सात्त्विक बल है, न ही तेरे चरणोंमें इस प्रकारकी तीव्र भक्ति ही है, जिसके प्रतापसे वह सात्त्विकबल उपलब्ध हो जाये, न ही मेरे हृदयमें विषयोंसे पूर्णतया विरक्ति ही हुई है, अतः विरक्ति नहीं होनेसे मेरा विषयासक्त मन चंचल रहता है और इसीलिये ध्यानयोगमें मनकी रुचि ही नहीं होती, इन सभी असमर्थताओंको अपने भीतर पाते हुए मैंने मनमें निरन्तर विचार करके यही निर्णय लिया है कि मैं आपका अर्चन अपनी वाणीके पुष्पोंसे ही सम्पन्न करूँ ।

{मणिद्वीपके महाकाशका अर्चन}

व्याप्तं हाटकविग्रहैर्जलधरैरारूढदेवव्रजैः
पोतैराकुलितान्तरं मणिधरैर्भूमीधरैर्भूषितम् ।
आरक्तामृतसिन्धु मुद्धुरचलद्वीचीचलव्याकुल
व्योमानं परिचिन्त्य सन्ततमहो चेतः कृतार्थीभव ।।२।।

{भावार्थ}

जिसमें स्वर्णमूर्त्तियोंके समान शोभा ग्रहण करनेवाले बादल घिरे हैं और इन बादलोंको अपना वाहन बनाकर उनमें देववृन्द आरूढ़ हैं, इन

बादलोंके नीचे रक्तिम वर्णवाला अमृतसिन्धु उत्ताल तरंगें लेता लहरा रहा है, इस समुद्रकी लहरोंके आघातसे, आकुल हृदय जहाजकी तरह, अनन्त बहुमूल्य अलौकिक मणियोंसे आच्छादित भूमि एवं उन्नत शिखर पहाड़ोंसे युक्त मणिद्वीप नामक भगवती का श्रीधाम है – अहा मेरा चित्त इस परम चिन्मय महाकाशको देखकर परम कृतकृत्यता लाभ कर रहा है ।

{मणिद्वीपको नमस्कार}

तस्मिन्नुज्वलरत्नजालविलसत्कान्तिच्छटाभिः स्पुटं
कुर्वाणं वियदिन्द्रचापनिचयैराच्छादितं सर्वतः ।
उच्चैः शृंगनिषण्णदिव्यवनितावृन्दाननप्रोल्लसद्
गीताकर्षणनिश्चलाखिलमृगं द्वीपं नमस्कुर्महे ।।३।।

{भावार्थ}

इस द्वीपमें सर्वत्र दैदीप्यमान अलौकिक रत्नोंकी कान्तिसे चतुर्दिक् शोभाका स्फोट हो रहा है, ऐसा अनुभव होता है, मानों सर्वत्र आकाशके इन्द्रधनुषोंके समूहोंने इस पृथ्वीको आच्छादित कर लिया हों, पहाड़ोंकी ऊँची चोटियोंमें आसीन भगवतीकी दिव्य सेविकाओं – स्त्री समूहोंकी मुख शोभासे यह द्वीप नित्य उल्लसित है। उनके गायनके आकर्षणसे इस द्वीपमें विचरण करते मृग एकटक ऊर्ध्व कर्ण किये निश्चल हैं, ऐसे भगवती पराम्बाके श्रीद्वीपको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जातीचम्पकपाटलादिसुमनस्सौरभ्यसम्भावितं
ह्रींकारध्वनिकण्ठकोकिलकुहूप्रोल्लासिचूतद्रुमम् ।
आविर्भूतसुगन्धिचन्दनवनं दृष्टिप्रियं नन्दनम्
चञ्चच्चञ्चलचञ्चरीकचटुलं चेतश्चिरं चिन्तय ।।४।।

{भावार्थ}

जहाँ जाती, चम्पक एवं पाटल पुष्पोंकी सुरभि सर्वत्र सम्यक् रूपसे व्याप्त है, आम्रवृक्षोंमें आसीन कोकिलायें अत्यन्त उल्लसित हुईं ह्रींकार स्वरमें कुहक रही हैं । सर्वत्र मानो चन्दनवनकी सी सुगन्ध व्याप्त है और दृष्य ऐसा मनोहर है मानो नन्दनवन हो । चतुर्दिक् चंचल भ्रमरोंका चटुल निनाद हो रहा है । हे मेरे चित्त, तू अनन्तकाल तक इस भगवतीके मणिद्वीप श्रीधामके चिन्तनमें रमा रह ।

{कल्पोद्यानराज वर्णन}

परिपतितपरागैः पाटलक्ष्मोणिभागो
विकसितकुसुमोच्चैः पीतचन्द्रार्करश्मिः
अलिशुकपिकराजीकूजितैः श्रोत्रहारी
स्फुरतु हृदि मदीये नूनमुद्यानराजः ॥५॥

{भावार्थ}

जहाँ सर्वत्र पुष्पोंका पराग परिपूरित है, भूमिभाग पाटल पुष्पके वर्णका है, जहाँ सर्वत्र ऊँची–ऊँची कुसुम लताओंमेंसे सूर्यकी किरणें चन्द्रमाके तुल्य पीले रंगकी प्रतीत हो रही हैं, जहाँ भ्रमर, शुक एवं कोकिलाओंके समूह श्रवणोंको मोहित करनेवाली ध्वनिमें कूजन कर रहे हैं उस भगवती पराम्बाका महामहिम वह उद्यानराज मेरे हृदयमें स्फुरित होवे ।

{कनक प्राकार वर्णन}

रम्यद्वारपुरप्रचारतमसां संहारकारिप्रभ–
स्फूर्जत्तोरणभारहारकमहाविस्तारहारद्युते ।
क्षोणीमण्डलहेमहारविलसत्संसारपारप्रद–
प्रोद्यद्भक्तमनोविहारकनकप्राकार तुभ्यं नमः ॥६॥

{भावार्थ}

जिस प्राचीरमें अतिरमणीय बड़े–बड़े कपाटयुक्त द्वार हैं, जो श्रीपुरमें व्याप्त रात्रिगत तमके संहारार्थ प्रभा बिखेर रहे हैं । प्राकारमें बन्दनवारें बँधी हैं, इन हारोंसे सुशोभित स्वर्णिम बन्दनवारोंकी द्युतिके सम्मुख प्राकारका विस्तार लघु हो जाता है । यह प्राचीर यहाँ मणिद्वीपके भूमिमण्डलके चतुर्दिक् मानो हेम–हार पहनाया गया हो, इस प्रकार प्रतीत होता है और संसारके पार पहुँचानेवाला मोक्ष–प्रदाता है । जो प्राचीर देवी भक्तोंके मनोविहारके लिये सदा उद्यत रहता है, ऐसे प्राचीरको हमारा नमस्कार है ।

{श्री मण्डप वर्णन}

उद्यत्कान्तिकलापकल्पितनभ स्फूर्जद्वितानप्रभः
सत्कृष्णागरुधूपवासितवियत्काष्ठान्तरे विद्युतः ।
सेवायातसमस्तदैवतगणैरासेव्यमानोऽनिशम्
सोऽयं श्रीमणिमण्डपोऽनवरतं मच्चेतसि द्योतताम् ॥७॥

{भावार्थ}

मानो उदय होते हुए सूर्यकी कान्ति–कलाप से सम्पूर्ण नभ भर गय

हो, इस प्रकार जिस मण्डपके चन्दौवेकी प्रभा छिटक रही है, जिसका आकाश कृष्णागरु एवं धूपसे सुवासित है एवं जिसके सभी काष्ठ ऐसे दैदीप्यमान हैं, मानो विद्युत् इनके भीतरसे चमक रही हो । जो निरन्तर दिन–रात सेवातत्पर सम्पूर्ण देवतागणों द्वारा सेव्य है, ऐसा भगवती त्रिपुरादेवीका महामहिमामय मंडप अनवरत मेरे चित्तमें प्रकाशित हो ।

{मणि मन्दिर वर्णन}

क्वाऽपि प्रोद्भटपद्मरागकिरणव्रातेन सन्ध्यायितं
कुत्राऽपि स्फुटविस्फुरन्मरकतद्युत्या तमिस्रायितं ।
मध्यालम्बिविशालमौक्तिकरुचा ज्योत्स्नायितं कुत्रचित्
मातः श्रीमणिमन्दिरं तव सदा वन्दामहे सुन्दरम् ।।८।।

{भावार्थ}

हे माँ, मैं तेरे परम सुन्दर मणिमन्दिरकी सदा वन्दना करता हूँ, जहाँ कहीं तो विशाल एवं अतिश्रेष्ठ पद्मराग मणियोंकी ज्योत्स्नाके कारण अरुण सन्ध्याकाल हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता है एवं कहीं–कहीं मरकत मणियोंकी कृष्णद्युतिसे अन्धकारसा प्रतीत होता है, मध्यमें विशाल मुक्तामणियोंकी मौक्तिक ज्योत्स्ना छिटकती दीखरही है ।

मणिसदनसमुद्यत्कान्तिधारानुरक्ते
वियति चरमसंध्याशंकिनो भानुरश्वाः ।
शिथिलितगतकुप्यत्सूतहुंकारनादैः
कथमपि मणिगेहादुच्चकैरुच्चलन्ति ।।९।।

{भावार्थ}

मणिसदनसे उठी हुई लालरंगकी कान्ति–धाराको आकाशमें देखकर सूर्यके घोड़ोंको सन्ध्या हो जानेका भ्रम हो जाता है, वे अपनी गतिको शिथिलकर देते हैं, जिससे कुपित होकर सूत हुंकार करने लगता है, तब वे अश्व मणिगेहको किसी प्रकार ऊपरसे फाँद कर पार करके तब अपनी चालमें आते हैं ।

विदूरमुक्तवाहनैर्विनम्रमौलिमण्डलैः–
र्निबद्धहस्तसम्पुटैः प्रयत्नसंयतेन्द्रियैः।
विरिञ्चविष्णुशंकरादिभिर्मुदा तवाम्बिके
प्रतीक्षमाणनिर्गमो विभाति रत्नमण्डपः ।।१०।।

{भावार्थ}

अपने वाहनोंको दूरतः ही छोड़कर, अत्यन्त विनम्र भावसे अपने मस्तकोंको झुका कर, दोनों हाथोंको, जोड़कर प्रयत्नपूर्वक अपनी सभी इन्द्रियोंको संयतकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकरादि, हे माँ ! तेरे आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अति प्रसन्न मुद्रामें जहाँ स्थित हैं, ऐसे तेरे रत्नमण्डपकी शोभा है।

ध्वनन्मृदंगकाहलः प्रगीतकिन्नरीगणः
प्रनृत्यदिव्यकन्यकः प्रवृत्तमंगलक्रमः ।
प्रकृष्टसेवकव्रजः प्रहृष्टभक्तमण्डली
मुदे ममाऽस्तु सन्ततं त्वदीयरत्नमण्डपः ।।११।।

{भावार्थ}

जहाँ मृदंगकी ध्वनन् ध्वनि हो रही है, किन्नरीगण गायन कर रही हैं, दिव्य कन्यायें जहाँ मंगलक्रममें प्रवृत्त हुईं नृत्य कर रही हैं, बलशाली सेवकवृन्द जहाँ सन्नद्ध हैं और भक्तमण्डली जहाँ पूर्ण हर्षसे भरी है, ऐसा तेरा रत्न मण्डप हे माता ! मेरे संतत आनन्दको बढ़ानेवाला हो ।

{तोरण द्वार}

सुवर्णरत्नभूषितैर्विचित्रवस्त्रधारिभिः
गृहीतहेमयष्टिभिर्निरुद्धसर्वदेवतैः ।
असंख्यसुन्दरीजनैः पुरःस्थितैरधिष्ठितो
मदीयमेतु मानसं त्वदीयतुंगतोरणः ।।१२।।

{भावार्थ}

स्वर्ण एवं रत्नोंके आभूषणोंसे भूषित, विचित्र वेषभूषाओंमें सजी, हाथोंमें स्वर्णके रत्नजटित दंड लिये हुए, सर्वदेवताओंकी भीड़को प्रवेश करनेसे रोकती हुईं, असंख्य सुन्दरी स्त्रियाँ जिस पुरके आगे अधिष्ठित हैं, हे माँ, मेरे मनमें तेरा वह विशाल ऊँचा तोरण द्वार बसा रहे ।

{भगवती मातंगीका स्मरण}

कस्तूरिकाश्यामलकोमलांगीं कादम्बरीपानमदालसांगीं ।
वामस्तनालिंगितरत्नवीणां मतंगकन्यां मनसा स्मरामि ।।१३।।

{भावार्थ}

मैं उन मतंग मुनिकी कन्याका मनसे स्मरण करता हूँ, जो कस्तूरीके वर्णकी श्यामरंगकी हैं, परन्तु परम सुकोमल जिनका गात्र है, जो कादम्बरी {कदम्बवृक्षके फलसे बननेवाली} सुरा पान कर मदसे अलसाये अंग वाली हो

रही हैं, जिनके वामस्तनसे सटी हुई रत्नजटित वीणा है ।

{दूतिका देवीका स्मरण}

प्रमत्तवारुणीरसैर्विघूर्णमानलोचनाः
प्रचण्डदैत्यसूदनाः प्रविष्टभक्तमानसाः ।
उपोढकज्जलच्छबिच्छटाविराजिविग्रहाः
कपालशूलधारिणीःस्तुवे त्वदीयदूतिकाः ।।१४।।

{भावार्थ}

जो वारुणी रसपानके कारण प्रमत्त हो रही हैं, जिनके लाल–लाल लोचन मदसे विघूर्णित हो रहे हैं, जो दैत्योंका नाश करनेमें अति प्रचण्ड हैं, साथ ही निज भक्तोंके मानसमें प्रविष्ट रहती हैं, जिनकी कृष्ण कज्जल छवि है एवं जिनके विग्रहमें शोभा समायी रहती है, उन कपाल एवं शूल धारण करनेवाली तेरी दूतिका देवीकी मैं स्तुति करता हूँ ।

{श्रीमण्डपके आभ्यन्तर मन्दिरका वर्णन}

आस्तीर्णारुणकंबलासनयुतं पुष्पोपहारान्वितं
दीप्तानेकमणिप्रदीपसुभगं राजद्वितानोत्तमम् ।
धूपोद्गारिसुगन्धिसंभ्रमिलदभृंगावलीगुंजितं
कल्याणं वितनोतु मेऽनवरतं श्रीमण्डपाभ्यन्तरम् ।।१५।।

{भावार्थ}

जिसमें ऊनके अरुण गलीचे बिछे हैं एवं पुष्पोंकी परम सुगन्धित मालायें लटक रही हैं, अनेक सुभग मणि प्रदीप जहाँ प्रकाश फैला रहे हैं, जहाँ उत्तम चँदोवा शोभा पा रहा है, चारों ओर धूपकी सुगन्ध महक रही है एवं उससे संभ्रमित भृंगावली गुंजन कर रही है, ऐसा शोभाशाली, माँ, तेरे मण्डपका भीतरी भाग अनवरत मेरे लिये कल्याणकारी होवे ।

{परदेवताका स्मरण}

कनकरचिते पंचप्रेतासनेन विराजिते
मणिगणचिते रक्तश्वेताम्बरास्तरणोत्तमे ।
कुसुमसुरभौ तल्पे दिव्योपधानसुखावहे
हृदयकमले प्रादुर्भूतां भजे परदेवतां ।।१६।।

{भावार्थ}

जो स्वर्ण रचित मंचमें प्रेतासनोंसे युक्त आसन पर विराजित हैं उस आसन पर अनन्त मणियाँ खचित हैं एवं लाल एवं श्वेत उत्तम अम्बरका

बिछौना लगा है, उस शय्यामें कुसुमोंकी विलक्षण महक उठ रही है एवं सुख देने वाले दिव्य तकिये लगे हैं, हे माँ ! मेरे हृदय कमलमें प्रादुर्भूत परदेवताकी इस छविका मैं भजन करूँ ।

सर्वांगस्थितिरम्यरूपरुचिरां प्रातः समभ्युत्थितां
जृम्भामञ्जुमुखाम्बुजां मधुमदव्याघूर्णदक्षत्रयां ।
सेवायात समस्तसन्निधिसखीस्सम्मानयन्तीं दृशा
सम्पश्यन् परदेवतां परमहो मन्ये कृतार्थं जनः ।।१७।।

{भावार्थ}

प्रातः जो सद्य जाग्रत होकर उठी हैं, फिर भी जिनके सर्वांग अति मनोहर रुचिर हैं, मुख सरोजमें जँभाई आरही है, वह अति सुन्दर लग रहा है, मधु पानके मदसे तीनों नेत्र चलायमान चंचल हैं, सेवाकरनेवाली समस्त सखियोंका जो उनकी सन्निधिमें हैं वे अपने नेत्रोंसे ही सम्मान कर रही हैं, ऐसी शोभामयी परदेवताके दर्शनसे मैं अपने आपको परम भाग्यवान मानता हुआ कृतार्थ जान रहा हूँ ।

{मंगल – आरती}

उच्चैस्तोरणवर्त्तिवाद्यनिवहध्वाने समुज्जृम्भिते
भक्तैर्भूमिविलग्नमौलिभिरलं दण्डप्रणामे कृते ।
नानारत्नसमूहनद्धकथनस्थालीसमुद्भासितां
प्रातस्ते परिकल्पयामि गिरिजे नीराजनामुज्ज्वलाम् ।।१८।।

{भावार्थ}

महलके बाहरी मुख्य द्वार पर सुमधुर वाद्य ध्वनि विकसित हो रही है, भक्त लोग अपने मस्तकोंको पृथ्वी पर टेक–टेककर दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं, ऐसे समय प्रभातकालमें नाना प्रकारके रत्नसमूहोंसे भरी अत्यन्त प्रकाशमान थाली लेकर हे गिरिजे ! मैं आपका उज्ज्वल नीराजना करनेका संकल्प {परिकल्पना} करूँ ।

{पाद्य–अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन एवं प्रणिपात}

पाद्यं ते परिकल्पयामि पदयोरर्घ्यं तथा हस्तयोः
सौधीभिर्मधुपर्कमम्ब मधुरं धाराभिरास्वादय ।
तोयेनाचमनं विधेहि शुचिना गांगेन मत्कल्पितं
साष्टांगप्रणिपातमीशदयिते दृष्ट्या कृतार्थीकुरु ।।१९।।

{भावार्थ}

माँ ! मैं तेरे चरणोंमें पाद्य देनेका संकल्प कर रहा हूँ तथा हाथोंमें अर्घ्य देनेका संकल्प कर रहा हूँ । सुधाके समान धाराके रूपमें प्रदान किये मधुर मधुपर्कका हे माँ, आप स्वाद लें । मेरे द्वारा संकल्प करके लाये पवित्र गंगाजल से माँ ! आप आचमन करें, इसके उपरान्त मेरे साष्टांग प्रणामको स्वीकार करके हे भगवान शिवकी प्रिये, मुझे कृतार्थ करें ।

{दर्पण–दर्शन, दन्तधावन, मुखधोना–पौंछना तथा ताम्बूल समर्पण}

मातः पश्य मुखाम्बुजं सुविमले दत्ते मया दर्पणे
देवि स्वीकुरु दन्तधावनमिदं गंगाजलेनान्वितम् ।
सुप्रक्षालितमाननं विरचयन्स्निग्धाम्बरप्रोञ्छनं
द्रागंगीकुरु तत्वमम्ब मधुरं ताम्बूलमास्वादय ।।२०।।

{भावार्थ}

हे माता ! मेरे द्वारा दिये दर्पणमें अपने विमल मुखकमलका दर्शन करें, साथ ही दन्तधावनके लिये मेरे द्वारा लाये इस गंगाजलको भी हे देवि! स्वीकार करें । अपने मुखको अच्छी प्रकार धोकर एवं अत्यन्त सुकोमल वस्त्रसे पौंछकर हे अम्बे ! आप परम मधुर ओठ लाल करनेवाला ताम्बूल आस्वादन करें ।

{पादुका–समर्पण एवं स्नानगृहकी ओर गमन}

निधेहि मणिपादुकोपरि पदाम्बुजं मज्जना–
लयं व्रज शनैः सखीकृतकराम्बुजालम्बनम् ।
महेशि करुणानिधे तव दृगन्तपातोत्सुकान्
विलोकय मनागमूनुभयसंस्थितान्देवतान् ।।२१।।

{भावार्थ}

हे माता ! अपने चरणकमलोंमें इस मणिपादुकाको पहन लें तथा धीरे–धीरे सखी द्वारा दिये आलम्बनको स्वीकार कर उसका हाथ पकड़ स्नानगृहकी ओर चलें । हे महेशि ! करुणामयी, आपकी दृष्टिकी कोरकेद्वारा देखे जानेको लालायित इन भयग्रस्त देवताओंको क्षणभर देख लीजिये ।

{स्नानगृह दर्शन}

हेमरत्नवरणेन वेष्टितं विस्तृतारुणवितानशोभितं
सज्जसर्वपरिचारिकाजनं पश्य मज्जनगृहं मनो मम ।।२२।।

{भावार्थ}

हे मेरे मन ! तू स्वर्ण एवं रत्नोंके आवरण {दीवार} से घिरे एवं सुन्दर चँन्दोवेसे सुशोभित, बहुतसी परिचारिकाओंसे सब प्रकारसे सुसज्जित, जगदम्बाके स्नानगृहका दर्शन कर ।

{स्नानगृहमें प्रवेश}

कनककलशजालस्फाटिकस्नानपीठाद्युपकरणविशालं गन्धमत्तालिमालं ।
स्फुरदरुणवितानं मञ्जुगन्धर्वगानं परमशिवमहेले मज्जनागारमेहि ।।२३।।

{भावार्थ}

जहाँ पर स्वर्णके जलकलशोंकी पंक्तियाँ रखी हैं एवं स्फटिककी स्नानचौकी बनी है, स्नानके सभी विशाल उपकरण, जैसे फव्वारे, स्नानके लघु कुण्डादि, सभी बिल्लौरी पत्थरसे निर्मित हैं, जहाँ चतुर्दिक् इत्रादि पुष्पसारोंकी गन्धसे मत्त भ्रमरोंकी टोलियाँ गुंजार कर रही हैं, जिसपर अरुण वर्णका चन्दौवा तना है, गन्धर्वगण सुमधुर स्वरोंमें गायन कर रहे हैं, शिव महलके इस स्नानघरमें आप प्रवेश करें ।

{दासियोंकी वंदना}

पीनोत्तुंगपयोधराः परिलसत्सम्पूर्णचन्द्रानना–
रत्नस्वर्णविनिर्मिताः परिलसत्सूक्ष्माम्बर प्रावृताः ।
हेमस्नानघटीस्तथा मृदुपटीरुद्वर्तनं कौसुमं
तैलं कंकतिकां करेषु दधतीर्वन्देऽम्ब ते दासिकाः ।।२४।।

{भावार्थ}

जिनके बड़े–बड़े ऊँचे उठे हुए स्तन हैं, जिनका पूर्ण राकाचन्द्रके समान मुख परम शोभामय है, जो हाथोंमें तैल, कंघे आदि लिये हैं, साथ ही स्नान करानेके उपरान्त पहनानेके लिये अनेक स्वर्णखचित रत्नजटित सूक्ष्म अम्बर हाथोंमें लिये हुए हैं, स्नानके लिये स्वर्णके घड़े जो उठाये हैं और उबटनके लिये लाल उबटन भी लिये हैं, माते ! मैं उन तेरी दासियोंकी वन्दना करता हूँ ।

{स्नान करती भगवतीका ध्यान}

तत्र स्फाटिकपीठमेत्य शनकैरुत्तारितालंकृति–
नींचैरुज्झित कञ्चुकोपरिहिता रक्तोत्तरीयाम्बरा ।
वेणीबन्धमपास्य कंकतिकया केशप्रसादं मनाक्
कुर्वाणा परदेवता भगवती चित्ते मम द्योतताम् ।।२५।।

{भावार्थ}

वहाँ स्फटिक पत्थरकी स्नानपीठ पर पहुँचकर निर्मित तालमें उतरकर लाल रंगकी ओढ़नी• {उत्तरीय} एवं चोली उतार देती हैं, तब वेणीबन्ध खुलवाकर जो कंघीसे केश–प्रसाधन करवा रही हैं – इन परदेवता भगवतीकी छवि मेरे चित्तमें प्रकाशित होती रहे ।

{अभ्यंग, उद्वर्त्तन, नृत्य–संगीत एवं वाद्य–सेवा}

अभ्यंगं गिरिजे गृहाण मृदुना तैलेन सम्पादितं
काश्मीरैरगरुद्रवैर्मलयजैरुद्वर्त्तनं कारय ।
गीते किन्नरकामिनीभिरभितो वाद्ये मुदा वादिते
नृत्यंतीमिह पश्य देवि पुरतो दिव्यांगनामण्डलीम् ।।२६।।

{भावार्थ}

हे माता ! सखियाँ सुगन्धित तैलके द्वारा अपने मृदु हाथोंसे तेरे अंगोंमें अभ्यंग करें, इस सेवाको स्वीकार करें, इसके पश्चात् केसर, अगरु एवं मलयज चन्दनसे अपने अंगोंमें उद्वर्तन {पीठी} करावें । हे देवि ! आपके सम्मुख किन्नर कामिनियाँ अति प्रसन्न हुईं वाद्योंका वादन एवं गीतोंका गायन कर रही हैं । हे देवि ! देखिये दिव्यांगना मण्डली आपके सम्मुख नृत्य कर रही है ।

{स्नान–सेवा}

उद्गन्धैरगरुद्रवैस्सुरभिणा कस्तूरिकावारिणा
स्फूर्जत्सौरभयक्षकर्दमजलैः काश्मीरनीरैरपि ।
पुष्पाम्भोभिरशेषतीर्थसलिलैः कर्पूरपाथोभरैः
स्नानं ते परिकल्पयामि गिरिजे भक्त्या तदंगीकुरु ।।२७।।

{भावार्थ}

हे गिरिजे ! जिसकी गन्ध महक रही है ऐसे सुरभित अगरुके द्रवसे एवं कस्तूरीके घोलसे सुगन्धित किये जलसे एवं बहुत ही सुगन्धित अंगराग {यक्षकर्दम} के जलसे और केसरके जलसे, फिर गुलाबजल एवं केवड़ाजल आदि पुष्पाम्भोंसे तथा अंतमें समग्रतीर्थोंके जलमें कर्पूर घोलकर उससे, मैं तेरे स्नानकी भक्तिपूर्वक परिकल्पना कर रहा हूँ, कृपया स्वीकार करें ।

{स्नानाम्बर मोचन}

प्रत्यंगं परिमार्जयामि शुचिना वस्त्रेण संप्रोञ्छनं
कुर्वे केशकलापमायततरं धूपोत्तमैर्धूपितम् ।

आलीवृन्दविनिर्मितां यवनिकामास्थाय रत्नप्रभं
भक्तत्राणपरे महेशगृहिणी स्नानाम्बरं मुच्यताम् ।।२८।।

{भावार्थ}

हे महेशगृहिणि ! मैं आपके प्रत्येक अंगको स्वच्छकर अति स्वच्छ वस्त्रसे उन्हें पौंछना चाहता हूँ । आपके गीले केशोंको उत्तमोत्तम धूप से धूपितकर–सुखाकर घने केशोंकी कंघीकर केशरचना करना चाहता हूँ । सखियोंने खचित रत्नोंकी ज्योतिसे दैदीप्यमान यवनिका निर्माण कर तान दी है, हे भक्तोंको संकटसे त्राण दिलाने वाली माँ ! अपने स्नानके समय वस्त्रोंको त्याग दें ।

{वस्त्र एवं कंचुकी पहनना}

पीतं ते परिकल्पयामि निविडं चण्डातकं चण्डिके
सूक्ष्मं स्निग्धमुरीकुरुष्व वसनं सिन्दूरपूरप्रभम् ।
मुक्तारत्नविचित्रहेमरचनाचारुप्रभाभास्वरं
नीलं कञ्चुकमर्पयामि गिरिशप्राणप्रिये सुन्दरि ।।२९।।

{भावार्थ}

हे चंडिके ! मैंने आपके लिये घना पीले रंगका चण्डातक परिकल्पित किया है । आप सूक्ष्म, स्निग्ध सिन्दूरकी प्रभावाला पहनने का वसन स्वीकार करें, मुक्ता, रत्न एवं स्वर्णके विचित्र मेलसे रची सिन्दूर प्रभासे ज्योतित नीली कंचुकी हे गिरीशप्राणप्रिये ! मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ ।

{भूषा मण्डप प्रवेश}

विलुलित चिकुरेणच्छादितांसप्रदेशे
मणिनिकरविराजत्पादुकान्यस्तपादे ।
सुललितमवलम्ब्य द्राक्सखीमंसदेशे
गिरिशगृहिणि भूषामण्डपाय प्रयाहि ।।३०।।

{भावार्थ}

हे गिरीश गृहिणी ! अतुलनीय सौन्दर्यशाली केशोंसे आपकी ग्रीवा और स्कंध प्रदेश ढँका हुआ है, आपके चरणोंमें मणि समूहोंसे जटित पादुका पहनी हुई है, द्राक् सखीके स्कंधदेशमें हाथ रखे हैं एवं अत्यन्त ललित रूपमें उसका अवलंबन लिये हैं– आप भूषा मण्डलकी ओर गमन करें।

{श्रृंगार कक्षमें हेम–सिंहासनमें विराजना}

लसत्कनककुट्टिमस्फुरदमन्दमुक्तावली
समुल्लसितकान्तिभिः कलितशक्रचापव्रजे ।
महाभरणमण्डपे निहितहेमसिंहासनं
सखीजनसमावृतं समधितिष्ठ कात्यायनि ।।३१।।

{भावार्थ}

अहा ! श्रृंगारकक्ष कुटीकी कैसी विलक्षण सुन्दर शोभा है । वह कुटी कनकसे निर्मित है, वहाँ मुक्तावलीके असंख्य हार पड़े हैं, जिनसे मन्द ज्योत्स्ना प्रसरित है । कहीं नील मणियाँ, कहीं प्रवाल, कहीं माणिक्यराशि बिखरी होनेसे शक्रचाप {इन्द्र धनुष} की कान्ति सर्वत्र समुल्लसित है । इस महाभरणमण्डपमें हेम सिंहासन रखा है । हे कात्यायनि माँ ! सखीजनोंसे घिरीं आप इस पर विराजमान होवें ।

{केशरचना, सीमन्त–विरचन, स्वर्णसूत्र एवं
मुक्ताओंसे अलकावलि गूँथना एवं वेणी–संरचना}

स्निग्धं कंकतिकामुखेन शनकैस्संशोध्य केशोत्करं
सीमन्तं विरचय्य चारु विमलं सिन्दूररेखान्वितम् ।
मुक्ताभिर्ग्रथितालकां मणिचितैस्सौवर्णसूत्रैःस्फुटं
प्रान्ते मौक्तिकगुच्छकोपलतिकां ग्रथ्नामि वेणीमिमां ।।३२।।

{भावार्थ}

अत्यन्त सुकोमल कंघीके दाँतोंसे धीरे–धीरे केशोंको सुलझाकर एवं अलकोंमें मोतीमालायें गूँथकर, मणियों एवं स्वर्णसूत्रसे वेणी बाँधकर एवं पीछे मुक्ताओंके गुच्छ बाँधकर मैंने आपकी वेणी गूँथी है एवं केशोंको सीमन्तरेखाके पाससे दो भागोंमें करके मध्य रेखामें सिन्दूर रेखा अंकित कर दी है ।

{चूड़ामणि समर्पण}

विलम्बिवेणीभुजगोत्तमांगस्फुरन्मणिश्रान्तमुपानयन्तम् ।
स्वरोचिषोल्लासितकेशपाशं महेशि चूड़ामणिमर्पयामि ।।३३।।

{भावार्थ}

अत्यन्त लम्बी वेणी जिसकी उपमा उत्तम सर्पसे की जा सकती है, उसपर हे महेशी ! मैं चूड़ामणि लगाना चाहता हूँ जो अपनी ज्योत्स्नासे केश–पाशको और अधिक उल्लासयुक्त शोभा प्रदान करदे ।

{अंग–वन्दना}

त्वामाश्रयद्भिः कबरीतमिस्रैर्बन्दीकृतं द्रागिव भानुबिम्बं ।
मृडानि ! चूड़ामणिमादधानं वन्दामहे तावकमुत्तमांगम् ।।३४।।

{भावार्थ}

हे मृडानि ! आपके आश्रयका कैसा माहात्म्य है कि उसे पाकर कबरी रूपी अन्धकारने चूड़ामणि रूप भानुबिम्बको बन्दी कर लिया है । मैं आपके उन उत्तम अंगोंकी जहाँ चूड़ामणि सुशोभित है, वन्दना करता हूँ।

{भाल–भूषण}

स्वमध्यनद्धहाटकस्फुरन्मणिप्रभाकुलं
विलम्बिमौक्तिकच्छटाविराजितं समन्ततः ।
निबद्धलक्षचक्षुषा भवेन भूरि भावितं
समर्पयामि भास्वरं भवानि भालभूषणम् ।।३५।।

{भावार्थ}

जो स्वर्णसे निर्मित है, परन्तु मध्यमें जिसके मणियाँ जड़ी हैं, जो मणिकी प्रभासे आकुल है एवं सीमन्तमें विराजित मुक्ताओंकी लड़ियोंकी घटाको जो पूरी तरहसे हतप्रभ कर रहा है, आँखोंको अपने रूपमें जो बाँध लेता है एवं भगवान् शंकर जिसके सौन्दर्यकी भूरि–भूरि भावना करते हैं, ऐसा तेजोमय भाल–भूषण हे भवानी ! मैं आपको समर्पित करता हूँ ।

{दिव्यांजन प्रदान}

मीनाम्भोरुहखञ्जरीटसुषमाविस्तारविस्मारके
कुर्वाणे किल कामवैरिमनसः कन्दर्पबाणप्रभां ।
माध्वीपानमदारुणेऽतिचपले दीर्घे दृगम्भोरुहे
देवि ! स्वर्णशलाकयोर्जितमिदं दिव्यांजनं दीयताम् ।।३६।।

{भावार्थ}

जो मीन, कमल, खञ्जन पक्षीकी सुषमासे भी अधिक शोभा सम्पन्न हैं एवं जो कामवैरी, भगवान शंकरके मनमें कन्दर्प बाणके दुर्धर्ष तेजको प्रकट कर देते हैं, जो कदम्ब–माध्वीके पानसे अरुणाई लिये रहते हैं, अत्यन्त चपल हैं, दीर्घ हैं, ऐसे आपके नेत्रकमलोंमें हे देवि ! मैं स्वर्णकी शलाका अर्जित दिव्य अंजन लगाना चाहता हूँ ।

{नथ–आभूषण समर्पण}

मध्यस्थारुणरत्नकान्तिरुचिरां मुक्तामुगोद्भासितां ।
दैवाद्भार्गवजीवमध्यगरवेर्लक्ष्मीमधः कुर्वतीं ।
उत्सिक्ताधरबिम्बकान्तिविसरैर्भौमीभवन्मौक्तिकां
मद्दत्तामुररीकुरुष्व गिरिजे नासाविभूषामिमाम् ।।३७।।

{भावार्थ}

जिसके मध्य अरुण रत्नकी रुचिर कान्ति दमक रही है एवं इधर–उधर मोती, मूँगा आदि रत्न उद्भासित हो रहे हैं, जो लक्ष्मीकी शोभाको तुच्छ कर रहा है तथा जिसका रत्न, शुक्रके नक्षत्रकी तरह चमक रहा है, अधर बिम्बकी लाल आभासे बेसरका मोती मंगल नक्षत्रकी तरह प्रतीत हो रहा है, हे गिरिजे ! ऐसा यह मेरे द्वारा प्रदान किया, नासिकाका आभूषण आप ग्रहण करें ।

{स्वर्ण ताटंक प्रदान}

उडुकृतपरिवेषस्पर्द्धया शीतभानोरिव
विरचितदेहद्वन्द्वमादित्यबिम्बं ।
अरुणमणिसमुद्यत्प्रान्तविभ्राजिमुक्तं
श्रवसि परिनिधेहि स्वर्णताटंकयुग्मम् ।।३८।।

{भावार्थ}

हे ! माता नक्षत्रोंकी शोभाकी स्पर्द्धामें, शीतल सूर्यके बिम्बके समान जिनकी आकृतिका निर्माण किया गया है, बीचमें अरुण मणि है और चारों ओर मुक्ता शोभित हैं, ऐसे कानोंमें युगल स्वर्ण ताटंक आभूषण, माँ ! आप ग्रहण करें।

{कण्ठाभरण प्रदान}

मरकतवरपद्मरागहीरोत्थितगुलिकात्रितयावनद्धमध्यम् ।
विततविमलमौक्तिकञ्च कण्ठाभरणमिदं गिरिजे समर्पयामि ।।३९।।

{भावार्थ}

श्रेष्ठ नीलम {मरकत} मणि, पद्ममणि एवं हीरामणियोंकी तीन लड़ियोंके मध्यमें, विमल मोतियोंसे निर्मित इस कण्ठाभरणको, हे गिरिजे ! मैं आपको समर्पित करता हूँ ।

{चतुष्किका हार प्रदान}

नानादेशसमुत्थितैर्मणिगणप्रोद्यत्प्रभामण्डल–
व्याप्तैराभरणैर्विराजितगलां मुक्ताच्छटालंकृतां ।
मध्यस्थारुणरत्नकान्तिरुचिरां प्रान्तस्थमुक्ताफल
ब्रातामम्ब चतुष्किकां परशिवे वक्षस्थले स्थापय ।।४०।।

{भावार्थ}

देश–विदेशके नाना प्रकारके अनमोल मणियोंसे जिसका प्रभा मण्डल दिप–दिपा रहा है, गलेमें अनेक आभरणोंके मध्य अपने निर्मल मोतियोंकी छटा बिखेरता हुआ, चारों ओर मुक्ता एवं मध्यमें अरुण कान्तिके रुचिर रत्नोंके समूहसे निर्मित, इस चतुष्किका नामक आभूषणको, हे माता ! आप वक्षस्थलमें धारण करें।

{त्रिवली हारत्रयी समर्पण}

अन्योन्यं प्लावयन्ती सततपरिचलत्कान्तिकल्लोलजालैः
कुर्वाणा मज्जदन्तःकरणविमलतां शोभितेव त्रिवेणी ।
मुक्ताभिः पद्मरागैर्मरकतमणिभिर्निर्मिता दीप्यमानै–
र्नित्यं हारत्रयी ते परशिवरसिके चेतसि द्योततां नः ।।४१।।

{भावार्थ}

अपने भीतरसे उद्गमित कान्तिकी हिलोरोंके जालसे जो अन्य–अन्य आभूषणोंको आप्लावित कर दे रही हैं, जो त्रिवेणीकी शोभा बिखेरती हुई विमलतासे अन्तःकरणको नहला रही हैं, ऐसी मुक्ता {गंगा}, पद्मराग {सरस्वती}, मरकत {यमुना} मणियोंसे निर्मित त्रिवेणीकी शोभा धारण करने वाली आपकी हारत्रयी, हे परशिवरसिकिनी ! मेरे हृदयको नित्य प्रकाशमान करती रहे ।

{युग्म कनक–कटक {कड़े} समर्पण}

करसरसिजनाले विस्फुरत्कान्तिजाले विलसदमलशोभे चञ्चदीशाक्षिलोभे
विविधमणिमयूखोद्भासितं देवि दुर्गे कनककटकयुग्मं बाहुयुग्मे निधेहि ।।४२

{भावार्थ}

जो कर–कमल–नाल–रूपी बाहुओंमें शोभाजाल प्रस्फुटित कर रहे हैं, अपनी परम निर्मल शोभाके विलाससे भगवान् शंकरकी चञ्चल आँखोंमें लुब्धताका सृजन कर रहे हैं, अनेक प्रकारकी मणियोंकी ज्योत्स्नासे जो दमक रहे हैं, हे देवि दुर्गे ! आपकी बाहुओंमें ऐसे इन स्वर्णके दोनों कड़ोंको धारण कर लीजिये ।

{वलय श्रेणी {चूड़ियाँ} समर्पण}

विततं निजमयूखैर्निर्मितामिन्द्रनीलैः
विजितकमलनालालीनमत्तालिमालां
मणिगणखचिताभ्यां कंकणाभ्यामुपेतां
कलयवलयराजीं हस्तमूले महेशि ।।४३।।

{भावार्थ}

जो इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित हैं और जिन्होंने अपनी कान्तिसे कमलनालमें रसपान निमग्न मत्त–भ्रमर पंक्तियोंकी शोभाको पराजित कर दिया है एवं जिनमें अनेक अन्य बहुमूल्य मणियाँ भी खचित हैं तथा जो कंकणोंसे मिली हुई हैं, ऐसी वलय {चूड़ियों}की पंक्ति हे महेशि ! आपके हाथोंके मूलदेशको सुशोभित करें ।

{अंगुलीयक {अँगूठी समर्पण}

आलवालमिव पुष्पधन्वना बालविद्रुमलतासु निर्मितम् ।
अंगुलीषु विनिधीयतां शनैरंगुलीयकमिदं मदर्पितम् ।। ४४।।

{भावार्थ}

भगवान् कामदेवसे जो आलवालकी तरह घिरी रहती है, बाल विद्रुमकी लताकी तरह जो निर्मित है, ऐसी मेरे द्वारा समर्पित अँगूठी, हे माता ! आप अँगुलियोंमें धारण करें ।

{कटिमेखला समर्पण}

विजितहरमनोभूमत्तमातंगकुंभ–स्थलविलुलितकूजत्किंकिणीजालतुल्यां ।
अविरतकलनादैरीशचेतो हरन्तीं विविधमणिनिबद्धां मेखलामर्पयामि ।। ४५।।

{भावार्थ}

जिसने भगवान् शंकरका मन हरण कर लिया है एवं जो मत्त हाथीके मस्तक पर सुशोभित किंकिणीकी तरह शब्द कर रही हैं, जिनकी अविरत सुन्दर झंकारसे भगवान् शंकरका चित्त हरण किया जा रहा है, ऐसी विविध मणियोंसे गुँथी मेखला मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ ।

{नीवी–बंधनकी डोरी}

व्यालम्बमानवरमौक्तिकगुच्छशोभि विभ्राजिहाटकपुटद्वयरोचमानम् ।
हेम्ना विनिर्मितमनेकमणिप्रबन्धं नीवीनिबंधनगुणं विनिवेदयामि ।। ४६।।

{भावार्थ}

जो लम्बी आकृतिकी है एवं श्रेष्ठ मुक्ताओंके गुच्छ जिसमें शोभा दे रहे हैं, जिनके दोनों ओर स्वर्णकी पुट दी गयी है, जिससे उनकी शोभा बढ़ रही है, जो स्वर्णसे निर्माणकी गयी हैं एवं अनेक मणियाँ जिनमें गुँथी हैं, ऐसी नीवी निबन्धनकी डोरी मैं माँ आपको अर्पित कर रहा हूँ ।

{चरण–सरोजकी अँगुलियोंमें बिछुआ आभूषणका ध्यान}

विनिहतनवलाक्षा पंकबालातपौघे मरकतमणिराजीमञ्जुमञ्जीरघोषे ।
अरुणमणि समुद्यत्कान्तिधाराविचित्रस्तवचरणसरोजे हंसकः प्रीतिमेतु ।।४७।।

{भावार्थ}

जिनमें बाल रविकी शोभा वाली नई लाक्षा–पंक बहुतायतसे लगी है एवं मरकत मणियोंकी अवलियों {लडियों}से युक्त मञ्जुल मंजीर निनादित कर रही हैं, जिनकी कान्ति ऐसी है मानो अरुण मणियोंकी विचित्र शोभा धारा प्रवाहित हो रही हो, ऐसे आपके चरण कमलोंमें संलग्न हंसक {पैरकी अँगुलियोंके बिछुए} नामक आभूषणमें मेरी प्रीति बढ़े ।

{कनक–घुंघुरुओं का ध्यान}

निबद्धशितिपट्टकप्रवरगुच्छसंशोभितां
कलक्वणितमंजुलां गिरिशचित्तसम्मोहिनीम् ।
अमन्दमणिमंडलीविमलकान्तिकिम्मीरितां
निधेहि पदपंकजे कनकघुंघुरूमम्बिके ।।४८।।

{भावार्थ}

शुभ्र कपड़ेमें जो बँधे एवं जिनमें श्रेष्ठ गुच्छ शोभा दे रहे हैं जो मंजुल रुचिर ध्वनि कर रहे हैं एवं भगवान् शिवके चित्तमें सम्मोहिनी डाल रहे हैं, जिनमें तेजस्वी मणि–समूह खचित हैं, जिनकी परम निर्मल कान्ति सर्वत्र फैल रही है, ऐसे कनक घुँघुरू हे अम्बे ! आपके चरणोंमें धारण कर लीजिये।

{पद्मरागमणि नूपुर–द्वयी समर्पण}

विस्फुरत्सहजरागरंजिते शिञ्जितेन कलितां सखीजनैः ।
पद्मरागमणिनूपुरद्वयीमर्पयामि तव पादपंकजे ।।४९।।

{भावार्थ}

चरणोंकी लालिमासे जो सहज ही रंजित हैं एवं जिनकी शिञ्जन ध्वनिको सुनकर सखीगण आनन्दसे विकसित हो उठती हैं, हे माते ! मैं

आपके दोनों चरणकमलोंमें ऐसी शोभामयी पद्मराग मणियोंकी नूपुर–द्वयी समर्पण करता हूँ ।

{नखमण्डलीकी शोभा}

पादाम्बुजमुपासितं परिगतेन शीतांशुना
कृतां तनुपरस्परामिव दिनान्तरागारुणाम् ।
महेशि नवयावकद्रवभरेण शोणीकृतां
नमामि नखमण्डलीं चरणपंकजस्थां तव ।।५०।।

{भावार्थ}

चरण–कमलोंकी जो अपनी शीत–किरणोंसे उपासना करते रहते हैं एवं दिनान्त समयके {संध्याकाल} सूर्यकी लाल–किरणोंकी घटासे शोभायमान रहते हैं; हे महेशि ! मैं आपके चरण कमलोंमें स्थित आपकी नखमण्डलीको नमन करता हूँ, जो गीली नवीन यावक {अलक्तक} के द्रवसे लाल हो रहे हैं।

{कल्हार माला समर्पण}

आरक्तश्वेतपीतस्फुरदुरुकुसुमैश्चित्रितां पट्टसूत्रैः
देवस्त्रीभिः प्रयत्नागरुसमुदितैर्धूपितां दिव्यधूपैः ।
उद्यद्गन्धान्धपुष्पन्धयनिवहसमारब्धझंकारगीतां
चंचत्कल्हारमालां परिपरशिवरसिके कण्ठपीठेऽर्पयामि ।।५१।।

{भावार्थ}

जो लाल, श्वेत एवं पीत शोभाशाली कुसुमोंको पट्टसूत्रमें पिरोकर गूँथी गई है, देवांगनाओं द्वारा जो अगरु एवं दिव्य धूपसे सुवासित हुई समुदित है, जिसकी गन्धसे आकृष्ट अन्धे हुएसे भ्रमरोंकी झंकार गीतोंसे जो स्तुत्य है, ऐसी चपल कल्हार माला हे परशिवरसिके अम्बे ! मैं तेरी कण्ठ–पीठ पर अर्पित करता हूँ ।

{अमृत–पान, ताम्बूल वीटिका–ग्रहण, मुकुर–दर्शन, मणि पादुका समर्पण}

गृहाण परमामृतं कनकपात्रसंस्थापितं
समर्पयमुखाम्बुजे विमलवीटिकामम्बिके ।
विलोकय मुखाम्बुजं मुकुरमण्डले निर्मले
निधेहि मणिपादुकोपरि पदाम्बुजं सुन्दरि ।।५२।।

{भावार्थ}

हे माते ! सुन्दर रत्न जटित कनक–पात्रमें रखी हुई यह विमल वीटिका {ताम्बूल बीड़ी} अपने मुख कमलमें ग्रहण करो, इसके पश्चात् निर्मल मुकुरमण्डलमें अपने आननसरोजको आप निरखें, हे सुन्दरि ! मणि–पादुकाओंको अपने चरणकमलोंमें धारण करें ।

{सभा मंडपकी ओर प्रस्थान करती माँकी शोभा}

आलम्ब्य स्वसखीं करेण शनकैस्सिंहासनादुत्थिता
कूजन्मन्दमरालमञ्जुलगतिप्रोल्लासिभूषाम्बरा ।
आनन्दप्रतिपादकैरुपनिषद्वाक्यैःस्तुता वेधसा
मच्चित्ते स्थिरतामुपैतु गिरिजा यान्तीसभामण्डपम् ।।५३।।

{भावार्थ}

अपनी प्रिय सखीके हाथका सहारा लेती हुईं जो शनैः सिंहासनसे खड़ी हो गयी हैं, जिनकी गति हंसिनीकी तरह अति मन्द–मन्द एवं अति मंजुल है, साथ ही जो अपनी वस्त्रभूषासे उल्लसित प्रतीत हो रही है जिनके स्वरूपभूत आनन्दकी उपनिषद्वाक्यों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र एवं इन्द्रादि स्तुति कर रहे हैं – वे भगवती गिरिजा सभामण्डपकी ओर जाती हुईं, मेरे चित्तमें स्थिरता पूर्वक निवास करें ।

{भगवतीकी विभूति महिमा}

वेधाः पादतले पतत्ययमसौ विष्णुर्नमत्यग्रतः
शम्भुर्दैहिदृगञ्चलं सुरपतिं दूरस्थमालोकय ।
इत्येवं परिचारिकाभिरुदिते सम्माननां कुर्वती
दृग्द्वन्द्वेन यथोचितं भगवती भूयाद्विभूत्यैः मम ।।५४।।

{भावार्थ}

ब्रह्माजी {विधाता} जिनके चरणोंमें पड़े हैं, भगवान् विष्णु आगेसे विनम्र होकर नतमुख नमन कर रहे हैं, भगवान् शिव नयन बिछाये हैं एवं इन्द्र दूरसे दर्शन कर रहे हैं, {निकट प्रवेश नहीं पा रहे हैं}– इस प्रकार परिचारिका द्वारा सभीकी भक्तिभावनाकी सूचना दिये जाने पर जो अपने युगलनेत्रोंसे ही यथोचित सबके सम्मानको ग्रहण कर रही हैं, वे भगवती और उनकी महामहिमा मुझ पर कृपालु हों ।

अग्रे गायति किन्नरी कलपदं गन्धर्वकान्ताशनै–
रातोद्यानि च वादयन्ति मधुरं सव्यापसव्यस्थिताः ।

कूजन्नूपुरवादमञ्जु पुरतो नृत्यन्ति दिव्यांगना
गच्छन्तः परितः स्तुवन्ति निगमस्तुत्यां विरिञ्चादयः ।।५५।।

{भावार्थ}

जिनके आगे किन्नरियाँ सुन्दर भावोंके पद गायन कर रही हैं एवं गन्धर्वपत्नियाँ अत्यन्त मन्द स्वरमें मधुर स्वरमें बायें एवं दाहिने खड़ी हुईं आतोद्य {वीणा, मुरज, बंशी आदि वाद्य} बजा रही हैं एवं सम्मुख दिव्यांगनाएँ नूपुरकी मंजुल झंकार करती नृत्य कर रही हैं एवं आगे बढ़ने पर जिनके सम्मुख विरिञ्चादि देवगण वेद–स्तुति करते खड़े हैं ।

{मिथुन शरभकी वन्दना}

तव दहनसदृक्षैरीक्षणैरेव चक्षु
र्निखिलपशुजनानांभीषयद्भीषणास्यं ।
कृतवसति परेशप्रेयसि द्वारि नित्यं
शरभमिथुनमुच्चैर्भक्तियुक्तो नतोऽस्मि ।।५६।।

{भावार्थ}

जिनका मुख ही इतना भीषण है कि जो समग्र पशुजातिको भयभीत करता है एवं अग्नि के समान जलती आँखोंसे जो देखते हैं किन्तु जो तेरे द्वारमें सदा {दरबानकी तरह} स्थित रहते हैं, हे परेशप्रेयसी ! मैं उन शरभोंके जोड़ेको भक्तिभावसे नमस्कार करता हूँ ।

{सिंहासनकी वन्दना}

स्वस्थानस्थितदेवतागणवृते बिन्दौ मुदा स्थापितं
नानारत्नविराजिहेमविलसत्कान्तिच्छटादुर्दिनम् ।
चञ्चत्कौसुमतूलिकासनयुतं कामेश्वराधिष्ठितं
नित्यानन्दनिदानमम्ब ! सततं वन्दे च सिंहासनम् ।।५७।।

{भावार्थ}

जो अपनी महिमारूप स्वस्थानमें स्थित है, देवगणोंसे जो सदा घिरा रहता है, आनन्द बिन्दुमें जिसकी संस्थापना है, नानाप्रकारके रत्नोंको स्वर्णमें खचित {विलसित} करनेके कारण जिसकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो दिन उदय हो गया हो, सेमर, अरण्डकी रूईसे भरा कुसुम्भी रंगके आसनसे युक्त जिसमें भगवान् कामेश्वर विराजित हैं, नित्य आनन्दका जो मूलकारण है, हे अम्बे! मैं आपके ऐसे सिंहासनकी सतत वन्दना करता हूँ ।

{हेम छत्र–समर्पण}

प्रान्तस्फुरद्विमलमौक्तिकगुच्छजालं चञ्चन्महामणिविचित्रितहेमदण्डं ।
उद्यत्सहस्रकरमण्डलचारुहेमच्छत्रं महेशमहिले विनिवेशयामि ।।५८।।

{भावार्थ}

जिसके किनारोंमें निर्मल मुक्तामणियोंके गुच्छोंका जाल लगा है एवं जो चमचमाती महामणियोंसे विजड़ित स्वर्णके दण्डसे युक्त है, जैसे हजारों किरणोंसे युक्त सूर्य उदय हो रहा हो, ऐसी जिसकी शोभा है, हे महेशमहिले! मैं ऐसा हेम–छत्र आपको समर्पित कर रहा हूँ ।

{देवता वन्दन}

संतुष्टां परमामृतेन विलसत्कामेश्वरांकस्थितां
पुष्पौघैरभिपूजितां भगवतीं त्वां वन्दमाना मुदा ।
स्फूर्जत्तावकदेहरश्मिकलनाप्राप्तस्वरूपाभिदाः
श्रीचक्रावरणस्थितास्सविनयं वन्दामहे देवताः ।।५९।।

{भावार्थ}

जो अमृतपानसे परम संतुष्ट हैं, कामेश्वर भगवान्के अंकमें जो विहरती रहती हैं, जो पुष्पोंके ढेरसे पूजित होती हैं, जो वन्दना द्वारा अति प्रसन्न हैं, जिनके देहसे निकली रश्मि समूहसे अभेद स्वरूपकी प्राप्ति होती है, उन श्रीचक्रावरणमें स्थित देवताकी मैं वन्दना करता हूँ ।

{भगवतीके चतुष्टय स्वरूपकी वन्दना}

आधारशक्त्यादिकमाकलय्य मध्ये समस्ताधिक योगिनीं च।
मित्रेशनाथादिकमत्र नाथचतुष्टयं शैलसुते नतोऽस्मि ।।६०।।

{भावार्थ}

आधार शक्तियोंको लेकर, मध्यमें समस्त योगिनियों सहित तब मित्रेशनाथादि नाथ–चतुष्टय सहित हे शैलसुते ! मैं सबको नमन करता हूं।

{आसन षटक की वन्दना}

त्रिपुरासुधार्णवासनमारभ्य त्रिपुरमालिनीं यावत् ।
आवरणाष्टकसंस्थितमासनषटकं नमामि परमेशि !।।६१।।

{भावार्थ}

हे परमेशि ! त्रिपुरासुधार्णवासन से लेकर त्रिपुरमालिनी पर्यन्त आठ आवरण एवं इनमें संस्थित आसन षटककी मैं वन्दना करता हूँ ।

{दिशाधिपति देवताओंकी वन्दना}

ईशाने गणपं स्मरामि विचरद्विघ्नान्धकारच्छिदं
वायव्ये बटुकञ्च कज्जलरुचिं व्यालोपवीतान्वितम् ।
नैऋत्ये महिषासुरप्रमथिनीं दुर्गाञ्च सम्पूजय
नाग्नेयेऽखिलभक्तरक्षणपरं क्षेत्राधिनाथं भजे ।।६२।।

{भावार्थ}

ईशान कोणमें भगवान् गणेशको मैं स्मरण करता हूँ जो समग्र विघ्न अन्धकार का समूल नाश करने वाले हैं । वायव्य कोणमें मैं बटुक भैरवकी वन्दनाकरता हूँ जो सर्पका उपवीत धारण करते हैं एवं कृष्ण कज्जल की सी आकृति वाले हैं । नैऋत्यमें महिषासुरमर्दिनी दुर्गाकी मैं सम्यक् प्रकारसे पूजा कर रहा हूँ एवं आग्नेय में अखिल भक्तोंकी रक्षा करने वाले क्षेत्राधिनाथ भगवान्का मैं भजन करता हूँ ।

{सर्व पीठोंकी स्तुति}

उड्डयाणजालन्धरकामरूपपीठानिमान्पूर्णगिरिप्रसक्तान् ।
त्रिकोणदक्षाग्रेमसव्यभागमध्यस्थितान् सिद्धिकरान्नमामि ।।६३।।

{भावार्थ}

उड्डीयान, जालन्धर, कामरूप एवं पूर्णगिरि आदि सम्पूर्ण पीठोंको जो भगवतीके स्वरूपभूत त्रिकोणके दक्षिण, आगे, बाँयें एवं मध्यमें स्थित हैं – जो सर्व सिद्धियोंको देने वाले हैं, मैं नमस्कार करता हूँ ।

{पंचप्रेतोंकी वन्दना}

लोकेशः पृथ्वीपतिर्निगदितो विष्णुर्जलानां प्रभु –
स्तेजोनाथ उमापतिश्च मरुतामीशस्तथा चेश्वरः ।
आकाशाधिपतिस्सदाशिव इति प्रेताभिधामागता –
नेतांश्चक्रबहिःस्थितान्सुरगणान्वन्दामहे सादरम् ।।६४।।

{भावार्थ}

जिन्हें पृथ्वीपति लोकेश {ब्रह्मा} कहा जाता है और जलके अधिदेवता प्रभु भगवान् विष्णु, तेजोनाथ उमापति भगवान् रुद्र, मरुतोंके ईश स्वामी इन्द्र एवं आकाशाधिपति भगवान् सदाशिव – ये सभी प्रेत नामसे विख्यात देवगण जो चक्रके बाहर स्थित हैं, इन सभीकी मैं आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ ।

{भगवान् चन्द्रमाकी षोडश कलाओंकी वन्दना}

तारानाथकलाप्रवेशनिगमव्याजाद्गतासुप्रथं
त्रैलोक्ये तिथिषु प्रवर्त्तितकलाकाष्ठादिकालक्रमम् ।
रत्नालंकृतिचित्रवस्त्रललितं कामेश्वरीपूर्वकं
नित्याषोडशकं नमामि लसितं चक्रात्मनोरन्तरे ।। ६५ ।।

{भावार्थ}

भगवान् चन्द्रदेव अपनी सुन्दर चालसे अपनी कलाओंमें प्रवेश कर वेदोक्त विधिसे गमन करते हैं, इसीसे त्रिलोकीमें तिथियाँ प्रवर्त्तित होती हैं एवं कला–काष्ठादि काल–क्रम बनता है । वे सभी षोडश कलाएँ जो रत्नालंकारों से एवं विचित्र रंगोंके ललित वस्त्रोंमें सजी हैं एवं भगवती कामेश्वरीके सहित हैं, उन नित्या षोडश चक्रात्मक कलाओंको मैं अपने हृदयमें नमन करता हूँ ।

{श्री गुरु वन्दना}

हृदि भावितदैवतं प्रयत्नाभ्युपदेशानुगृहीतभक्तसंगम् ।
स्वगुरुक्रमसंज्ञचक्रराजस्थितमोघत्रयमानतोऽस्मि मूर्ध्ना ।।६६ ।।

{भावार्थ}

जिन्होंने अपने हृदयमें देवताको प्रयत्नपूर्वक भावित कर लिया है तथा जो अपने संगी भक्तोंको उपदेशसे अनुगृहीत करते रहते हैं उन स्वगुरु क्रमसे, गुरु, परम गुरु एवं परमेष्ठी गुरुरूप त्रय समूहको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ ।

दिव्यौघ एवं मानवौघों का शास्त्रक्रमानुसार वर्णन दिया जा रहा है ––

ये दिव्यौघ हैं – परप्रकाशानन्दनाथ, परमेशानन्दनाथ, परशिवानन्दनाथ, कामेश्वर्यम्बानन्द, मोक्षानन्द, कामानन्द, अमृतानन्दनाथ ।

ये सिद्धौघ हैं – ईशानन्दनाथ, तत्पुरुषानन्दनाथ, अघोरानन्दनाथ, वामदेवानन्दनाथ, सद्योजातानन्दनाथ ।

ये मानवौघ हैं – पञ्चोत्तरानन्दनाथ, परमानन्द, सर्वज्ञानन्द, सर्वानन्द, सिद्धानन्दनाथ, गोविन्दानन्दनाथ, शंकरानन्दनाथ ।

{षडंग वन्दना}

हृदयमथशिरःशिखाखिलाद्ये कवचमथो नयनत्रयञ्च देवि ।
मुनिजनपरिचिन्तितं तथास्त्रं स्फुरतु सदा हृदयं षडंगमेतत् ।।६७ ।।

{भावार्थ}

जिन छः अंगोंमें भगवतीका क्रमशः मंत्रन्यास किया जाता है, वे हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र त्रय एवं अस्त्र जिन्हें मुनिजन भली प्रकारसे चिन्तन करते हैं – ये मेरे हृदयमें सदा विकसित हों ।

{अणिमादि सिद्धियों का नमन}

त्रैलोक्यमोहनमिति प्रथिते तु चक्रे
चञ्चद्विभूषणगणत्रिपुराधिवासे ।
रेखात्रये स्थितवतीरणिमादिसिद्धी–
र्मुद्रा नमामि सततं प्रकटाभिधास्ताः ।।६८।।

{भावार्थ} {प्रथम आवरण में}

त्रैलोक्यमोहन नामसे कहे जाने वाले चक्रमें, भगवती त्रिपुराके निकट जो विभूषणोंसे भूषित रहती हैं एवं तीन रेखाओंमें जिनका वास है उन अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशत्व, वशित्व, प्राकाम्य, मुक्ति, इच्छा, प्राप्ति एवं सर्वकाम नामक सिद्धियों, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी नामक मातृ शक्तियों एवं सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि एवं सर्व त्रिखण्डा मुद्राशक्तियोंको जो अपने–अपने नामसे प्रकट हैं, मैं सतत वन्दना करता हूँ ।

{कामाकर्षिणी योगिनियों की वन्दना}
{द्वितीय आवरण में}

सर्वाशापरिपूरके वसुदलद्वन्द्वेन विभ्राजिते
विस्फूर्जत्त्रिपुरेश्वरीनिवसतौ चक्रे स्थिता नित्यशः ।
कामाकर्षिणिकादयो मणिगणभ्राजिष्णुदिव्याम्बरा
योगिन्यः प्रदिशन्तु कांक्षितफलं विख्यातगुप्ताभिधाः ।।६९।।

{भावार्थ}

सर्वाशापरिपूरक नामसे शोभामय व सुदल द्वन्द्वके रूपमें जो विस्फूर्जित हैं एवं भगवती त्रिपुरेश्वरीके साथ श्रीचक्रमें नित्यशः स्थित हुई निवास करती है, उन मणिमय आभावाली दिव्याम्बरा कामाकर्षिणि, बुद्ध्याकर्षिणि, अहंकाराकर्षिणि, शब्दाकर्षिणि, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृति, नाम, बीज, आत्मा, अमृत एवं शरीराकर्षिणि नित्याकलादेवियों योगिनियोंको जिनका

नाम गुप्त रूपमें विख्यात है, कांक्षित फल प्रदान करनेके लिये प्रणाम करता हूँ ।

{तृतीय आवरण में अनंगकुसुमादि देवियोंका पूजन}

महेशि ! वसुभिर्दलैर्लसति सर्वसंक्षोभणे
विभूषणगणस्फुरत्त्रिपुरसुन्दरीसदमनि ।
अनंगकुसुमादयो विविधभूषणोद्भासिता
दिशन्तु मम कांक्षितं तनुतराश्च गुप्ताभिधाः ।।७०।।

{भावार्थ}

हे महेशि ! वसुदलोंमें सर्व संक्षोभणमें शोभायमान विभूषण गुणोंसे विकसित भगवती त्रिपुरसुन्दरीके प्रासादमें विविध भूषणोंसे उद्भासित, अनंगकुसुमादेवी, अनंगमेखलादेवी, अनंगमदनादेवी, अनंगमदनातुरा, अनंगरेखा, अनंगवेगिनी, अनंगांकुशादेवी एवं अनंगमालिनीदेवी हैं, वे मेरी इच्छा {कांक्षित पद} को पूर्ण करें, जिनका स्वरूप परम गुप्त है ।

{तुरीयावरण}

{सर्वसंक्षोभिणी आदि शक्तियोंकी वन्दना}

लसद्युगदशारके स्फुरतिसर्वसौभाग्यदे
सुभाभरणभूषितत्रिपुरवासिनीमन्दिरे ।
स्थिता दधतु मंगलं सुभगसर्वसंक्षोभिणी
मुखास्सकलसिद्धयो विदितसंप्रदायाभिधाः ।।७१।।

{भावार्थ}

शुभाभरण भूषित भगवती त्रिपुरवासिनीके मन्दिरमें जो दशारक युगल है जिसमें सर्व सौभाग्यदायक चक्र है उसमें स्थित सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणि, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तंभिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसंपत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ये चौदह शक्तियाँ हैं, सम्प्रदाय योगिनियाँ नामसे जानी जाने वाली ये सकल सिद्धियाँ मेरा परम मंगल करें।

{पंचमावरण}

{सर्वार्थ साधक चक्रस्थित कुलोत्तीर्ण योगिनियों की वन्दना}

बहिर्दशारे सर्वार्थसाधिके त्रिपुराश्रयाः ।
कुलकौलाभिधाः पान्तु सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।।७२।।

{भावार्थ}

बहिर्दशार चक्रमें भगवती त्रिपुराके आश्रयमें सर्वार्थ साधकचक्रमें सर्वसिद्धिप्रदादेवी, सर्वसंपत्प्रदादेवी, सर्वप्रियंकारीदेवी, सर्वमंगलकारिणीदेवी, सर्वकामप्रदादेवी, सर्वदुःखविमोचिनीदेवी, सर्वमृत्युप्रशमिनीदेवी, सर्वविघ्ननिवारिणीदेवी, सर्वांगसुन्दरीदेवी, सर्वसौभाग्यदायिनीदेवी आदि कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ जो सर्व सिद्धि प्रदायिका हैं, वे मेरी रक्षा करें ।

{षष्ठावरण}

{अन्तर्दशारमें स्थित सर्वरक्षाकर चक्रमें सर्वज्ञादि देवियोंका नमन}

अन्तःशोभिदशारकेऽतिललिते सर्वादिरक्षाकरे
मालिन्या त्रिपुराद्ययाविरचितावासे स्थितं नित्यशः ।
नानारत्नविभूषणं मणिगणभ्राजिष्णु दिव्याम्बरं
सर्वज्ञादिकशक्तिवृन्दमनिशं वन्दे निगर्भाभिधम् ।।७३।।

{भावार्थ}

अन्तर्दशारमें स्थित सर्वरक्षाकर चक्रमें त्रिपुरमालिनी आदिके निर्मित अति ललित महलमें जो नित्यशः स्थित हैं, नाना प्रकारके रत्नोंके आभूषणोंसे मणिगण खचित दिव्याम्बरोंसे शोभायमान हैं, वे सर्वज्ञादेवी, सर्वशक्तिदेवी, सर्वैश्वर्यप्रदादेवी, सर्वज्ञानमयीदेवी, सर्वव्याधिविनाशिनीदेवी, सर्वाधारस्वरूपादेवी, सर्वपापहरादेवी, सर्वानन्दमयीदेवी, सर्वरक्षास्वरूपिणीदेवी, सर्वेप्सितफलप्रदादेवी आदि शक्तिवृन्द जिन्हें निगर्भयोगिनी नामसे जाना जाता है – इन सबकी मैं दिवानिशि निरन्तर वन्दना करता हूँ ।

{सप्तावरण}

{सर्वरोगहरचक्रस्थित वशिनी वाग्देवता देवियोंकी वन्दना}

सर्वरोगहरेऽष्टारे त्रिपुरासिद्धचान्विते
रहस्ययोगिनीर्नित्यंवशिन्याद्या नमाम्यहम् ।।७४।।

{भावार्थ}

सर्वरोगहर अष्टार चक्रमें त्रिपुरासिद्धाके निकट रहनेवाली वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी आदि रहस्य योगिनियोंकी मैं नित्य वन्दना करता हूँ ।

{आयुध वन्दना} {अष्टमावरण}

चूताशोकविकासिकेतकरजः प्रोद्भासिनीलाम्बुज–
प्रस्फूर्जन्नवमल्लिकासमुदितैः पुष्पैः शरन्निर्मितान् ।

रम्यं पुष्पशरासनं सुललितं पाशं तथा चांकुशं
वन्दे तावकमायुधं परशिवें चक्रान्तराले स्थितम् ।।७५।।

{भावार्थ}

आम्र, अशोक, विकसित केतकी, दैदीप्यमान नीलाम्बुज एवं विकसित नवमल्लिका पुष्पोंके निर्माण किये बाण, अति रमणीय धनुष, सुललित पाश तथा अंकुशादि जो चक्रके अन्तरालमें स्थित हैं, आपके आयुधोंकी हे परशिवे ! मैं वन्दना करता हूँ ।

{वनेश्वरी एवं भगमालिनी देवीकी वन्दना}

त्रिकोण उदितप्रभे जगति सर्वसिद्धिप्रदे
युते त्रिपुरयाम्बया स्थितवती च कामेश्वरी ।
तनोतु मम मंगलं सकलशर्म वज्रेश्वरी
करोतु भगमालिनी स्फुरतु मामके चेतसि ।।७६।।

{भावार्थ}

जिनकी प्रभा उदय होते सूर्यके समान है, ऐसे त्रिकोणमें जो संसारमें सर्वसिद्धिप्रद विख्यात है, जो भगवती त्रिपुराम्बा एवं कामेश्वरीके साथ संयुक्त रहती हैं, जो सकल आनन्दमयी हैं, वे वज्रेश्वरी एवं भगमालिनीदेवी मेरा परम मंगल करने वाली मेरे चित्तमें सदा उदित हों ।

{परापरातिरहस्य योगिनी वन्दना}

{नवमावरण}

सर्वानन्दमये समस्तजगतामाकांक्षिते वैन्दवे
भैरव्या त्रिपुराद्यया विरचितावासे स्थिता सुन्दरी ।
आनन्दोल्लसितेक्षणा मणिगणभ्राजिष्णु भूषाम्बरा
विस्फूर्जद्वदना परापररहः सा पातु मां योगिनी ।।७७।।

{भावार्थ}

सर्वानन्दमय चक्रमें जो स्थित हैं, सम्पूर्ण जगतमें जिनके लिये आकांक्षा {कामना}की जाती है, जो बिन्दुमें स्थित हैं एवं त्रिपुरभैरवी आदिके द्वारा आवासमें जो रहती हैं, जिनके नेत्र आनन्दसे उल्लसित रहते हैं, विजड़ित मणिगणोंकी शोभासे युक्त अम्बरकी जो भूषा धारण किये हैं, वे विस्फूर्जितवदना भगवती परापररहस्य योगिनी मेरी रक्षा करें ।

{चम्पक पुष्पार्पण} {केतकी–पुष्पार्पण}

उल्लसत्कनककान्तिभासुरं सौरभस्फुरणवासिताम्बरम् ।
दूरतः परिहृतं मधुव्रतैरर्पयामि लव देवि चम्पकम् ।।७८।।
वैरमुद्धतमपास्य शंभुना मस्तके विनिहितं कलाच्छलात्
गन्धलुब्धमधुपाश्रितं सदा केतकीकुसुममर्पयामि ते ।।७९।।

{भावार्थ}

उल्लसित कनककी कान्तिसे दीप्यमान अपनी सौरभ के विकाससे आकाशको सुवासित कर देने वाला दूरसे ही भ्रमरोंको निवारण करके, हे देवि ! मैं तुझे यह चम्पापुष्प अर्पण कर रहा हूँ ।

भगवान् शंकर से उग्र वैरको त्यागकर उनके मस्तकमें चन्द्रकलाके छलसे बढ़ जाने वाले, अपनी गन्धसे लुब्ध मधुपोंके आश्रयमें ही रहनेवाले केतकी कुसुमको, हे देवि ! मैं तुझे अर्पण कर रहा हूँ ।

{बकुलमाला समर्पण}

अगरुबहुलधूपाजस्रसौरभ्यरम्यां
मरकतमणिराजीराजिहारिस्रगाभां ।
दिशि दिदिशि विसर्पद्गन्धलुब्धालिमालां
बकुलकुसुममालां कण्ठपीठेऽर्पयामि ।।८०।।

{भावार्थ}

हे माते ! जो अगुरु बहुल धूपकी अजस्र सुरभिसे अधिक रम्य गन्ध वाली है, मरकण मणियोंके समूह से भी जिस मालाकी आभा उत्कृष्ट है, जो देश–विदेशोंकी भ्रमर पंक्तियोंको अपनी गन्धसे आकृष्ट एवं लुब्ध कर रही हैं, ऐसी बकुल कुसुममाला आपके कंठपीठमें समर्पित करना चाहता हूँ ।

{धूप–दीप–नैवेद्य समर्पण}

धूपं तेऽगरुसंभवं भगवति ! प्रोल्लासिगन्धोद्धुरं
दीपं चैव निवेदयामि महसा हार्दान्धकारच्छिदम् ।
रत्नस्वर्णविनिर्मितेषु परितः पात्रेषु संस्थापितं
नैवेद्यं विनिवेदयामि परमानन्दात्मिके सुन्दरि ।।८१।।

{भावार्थ}

अगुरुसे निर्माणकी हुई धूप जिसकी गन्ध अत्यधिक तीव्र है और जो तुझे उल्लसित करने वाली है, साथ ही दीप जो हृदयगत अन्धकारका मूलोच्छेदन करने वाला है, मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ । हे परमानन्दात्मिके

सुन्दरी ! मैं आपको स्वर्णनिर्मित एवं रत्नजड़ित चौड़े पात्रोंमें स्थापित करके नैवेद्य निवेदन करता हूँ ।

{नैवेद्य का वर्णन}

जातीकोरकतुल्यमोदनमिदं सौवर्णपात्रे स्थितं
शुद्धान्नं शुचि मुद्गमाषचणकोद्भूतास्तथा सूपकाः ।
प्राज्यं माहिषमाज्यमुत्तममिदं हैयंगवीनं पृथक्
पात्रेषु प्रतिपादितं परशिवे तत्सर्वमंगीकुरु ।। ८२।।

{भावार्थ}

मानो जाती पुष्पकी छोटी कलियाँ हों, इस प्रकार सुन्दर चावलोंको निर्माणकर सुवर्णके पात्र में रखे हैं एवं सूप {दाल} मूँग, मसूर, चनेकी निर्मित हैं, महिषीके घीमें सब पकाया गया है और पृथक्से नवनीतको भी पात्रोंमें प्रतिपादित किया है, हे परशिवे ! इस सबको अंगीकार करें ।

{शाकादिका वर्णन}

शिम्बीसूरणशाकबिम्बवृहतीकूष्माण्डकोशातकी
वृन्ताकानि पटोलकानि मृदुना संसाधितान्यग्निना ।
सम्पन्नानि च वेसवारविसरैर्दिव्यानि भक्त्याकृता–
न्यग्रे ते विनिवेदयामि गिरिजे सौवर्णपात्रव्रजे ।।८३।।

{भावार्थ}

सेमफली, जमीकन्द, पालक, बथुआदि, कुंदरू, अतिवृहत्, कूष्माण्ड {कद्दू}, कटहल, बैंगन, परवल इन सभी शालकोंको अग्निमें पकाकर, बेसवार आदि डालकर दिव्य भक्तिपूर्वक आपके आगे, हे गिरिजे ! अनेक स्वर्ण पात्रोंमें निवेदित किया जा रहा है ।

{अचारों का वर्णन}

निम्बूकार्द्रकचूतकन्दकदली कोशातकीकर्कटी
धात्रीबिल्वकरीरकैर्विरचितान्यानन्दचिद्विग्रहे ।
राजीभिः कटुतैलसैन्धवहरिद्राभिःस्थितान्पातये
सन्धानानि निवेदयामि गिरिजे भूरि प्रकाराणि ते ।।८४।।

{भावार्थ}

नींबू, अदरक, आम, कन्द, कदली, कटहल, ककड़ी, आँवला, बिल्व, करीर, कैर आदि के अनेक प्रकारके कडुवे तैल, नमक, हल्दी आदि डालकर

अचार निर्माण किये गये हैं, हे गिरिजे ! आनन्द चिद्विग्रहे ! इन्हें मैं आपको निवेदन कर रहा हूँ ।

{लड्डू–पूरी–पूवे का समर्पण}

सितयाज्यितलड्डुकव्रजान्मृदुपूपान्मृदुलाश्च पूरिकाः ।
परमान्नमिदं च पार्वति ! प्रणयेन प्रतिपादयामि ते ।।८५।।

{भावार्थ}

शर्करासे पागकर लड्डू, मीठे पूए एवं कोमल पूड़ियाँ आदि हे पार्वति ! इस परम सुस्वादु अन्नको, मैं आपके लिये प्रतिपादित कर रहा हूँ ।

{दूध दधि–शिखरिणी अर्पण}

दुग्धमेतदनले सुसाधितं चन्द्रमण्डलनिभं तथा दधि ।।
फाणितं शिखरिणीं सितासितां सर्वमम्ब विनिवेदयामि ते ।।८६।।

{भावार्थ}

यह दूध अग्निमें गरम किया हुआ है, चन्द्र मण्डल की तरह सुन्दर दही भी तैयार है, इनको मिलाकर {फेंटकर} चीनी मिलाकर शिखरिणी तैयार है, मैं हे माँ ! यह सब तुझे निवेदन कर रहा हूँ ।

{अन्य शक्तियोंको नैवेद्यार्पण}

अग्रे ते विनिवेद्य सर्वमिदं नैवेद्यमंगीकृतं
ज्ञात्वा तत्वचतुष्टयं प्रथमतो मन्ये सुतृप्तां ततः ।
देवी त्वां परिशिष्टमम्ब कनकामत्रेषु संस्थापितं
शक्तिभ्यः समुपाहरामि सकलं देवेशि शंभुप्रिये ।।८७।।

{भावार्थ}

यह सब नैवेद्य सम्पूर्ण रूपसे आपके आगे निवेदन करके जब आप इसे अंगीकार कर लेती हैं, उस समय आपके ही रूपमें आपके चतुष्टय तत्वको जानती हुई {गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी, क्षेत्राधिनाथ} तथा प्रथमतः इन्हें सुतृप्त हुआ मानकर, हे देवी ! आपसे जो भी बचा हुआ प्रसाद है वह कनक पात्रों में संस्थापित कर, हे देवेशि ! शंभुप्रिये, माँ ! मैं सभी शक्तियोंको इसे सम्यक् प्रकारसे वितरित कर दूँगा ।

{भगवती अन्नपूर्णाकी वन्दना}

वामेन स्वर्णपात्रीमनुपमपरमान्नेन पूर्णा दधाना–
मन्येन स्वर्णदर्वीं निजजनहृदयाभीष्टदां धारयन्तीम् ।

सिन्दूरारक्तवस्त्रां विविधमणिलसद्भूषणां मेचकांगीम्
तिष्ठन्तीमग्रतस्ते मधुमदमुदितामन्नपूर्णां नमामि ।।८८।।

{भावार्थ}

वाम हस्तमें स्वर्णपात्र जिसमें पूर्णरूपसे अन्न भरा है, लिये हैं, दूसरे हाथमें परोसनेकी कलुछी धारण किये हैं, जिससे अपने भक्तजनों को अभीष्ट दान देती रहती हैं, जिनके सिन्दूरवर्णी रक्तवस्त्र हैं, विविध मणिजटित भूषण जो धारण किये हैं एवं श्यामवर्णकी हैं, वे मधुमदमुदिता अन्नपूर्णा माताके आगे बैठा हुआ, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ।

{पार्षदों की पूजा}

पंक्त्योपविष्टान्परितस्तु चक्रे शक्त्यास्वयालिंगितवामभागान् ।
सर्वोपचारैः परिपूज्य भक्त्या तवाम्बिके पारिषदान्नमामि ।।८९।।

{भावार्थ}

श्री चक्रराजमें पंक्तिमें बैठी हुई अपनी शक्तियों से – जो आपके वाम भागमें आलिंगित रहती हैं–घिरी हुई हैं, आपको मैं सर्वोपचारसे पूजित कर, हे अम्बिके ! मैं आपकी पार्षदोंको प्रणाम करता हूँ ।

{ज्योति–स्वरूपा भगवती का नमन}

परमामृतमत्तसुन्दरीगणमध्यस्थितमर्कभासुरम् ।
परमामृतघूर्णितेक्षणं किमपि ज्योतिरुपास्महे परम् ।।९०।।

{भावार्थ}

परमामृत पानकर मत्त हुई सुन्दरी गणोंके मध्य सूर्यके समान तेजस्वी परम अमृतपानसे लाल घूमते हुए नेत्रोंवाली भगवती परम ज्योति स्वरूपाका मैं स्मरण करता हूँ ।

{भगवतीके दर्शनसे प्राप्त स्थिति}

दृश्यते तव मुखाम्बुजं शिवे श्रूयते स्पुटमनाहतध्वनिः ।
अर्चने तव गिरामगोचरे न प्रयाति विषयान्तरं मनः ।।९१।।
त्वन्मुखाम्बुजविलोकनोल्लसत्प्रेमनिश्चलविलोचनद्वयीम् ।
उन्मनीमुपगतां सभामिमां भावयमि परमेशि तावकीम् ।।९२।।
चक्षुः पश्यतु नेह किञ्चन परं घ्राणं न वा जिघ्रतु ।
श्रोत्रं हन्त शृणोतु न त्वगपि न स्पर्शं समालम्बताम् ।
जिह्वा वेत्तु न वा रसं मम परं युष्मत्स्वरूपामृते ।
नित्यानन्दविधूर्णमाननयने नित्यं मनो मज्जतु ।।९३।।
यस्त्वां पश्यति पार्वति प्रतिदिनं ध्यानेन तेजोमयीं ।
मन्ये सुन्दरि तत्वमेतदखिलं वेदेषु निष्ठां गतम् ।

यस्तस्मिन्समये तवार्चनविधावानन्दसान्द्राशयो ।
यातोऽहं तदभिन्नतां परशिवे सोऽयं प्रसादस्तव ।। ९४।।

{भावार्थ}

हे अनिर्वचनीया माँ ! तेरे मुख कमलके जबसे मुझे दर्शन हुए हैं एवं जबसे तेरी अत्यन्त गम्भीर अनाहत ध्वनि {शब्दावली} सुननेको मिली है, उसके उपरान्तसे तेरे अर्चनके अतिरिक्त मेरा मन विषयान्तरको सर्वथा प्राप्त होता ही नहीं है ।

तेरे मुखकमलको देखनेके फलस्वरूप उल्लसित हुए मेरे दोनों नेत्र प्रेममें निश्चल हो जाते हैं । यह सारी सभा ही आपके आगमन मात्रसे उन्मनी भावको प्राप्त हो जाती है, हे परमेशि ! ऐसी आपकी महिमाकी मैं भावना करता हूँ ।

आँखें कुछ भी नहीं देखें, त्वचा किसी भी अन्य स्पर्शका आश्रय नहीं ले, प्राणेन्द्रिय भी अन्य गन्धको न ग्रहण करे । हाय ! कान कुछ भी नहीं सुने, त्वचा किसीभी स्पर्शको नहीं ग्रहण करे । आपके स्वरूपामृतमें मत्त हुई मेरी वाणी मेरे–तेरेका कोईभी रस नहीं ग्रहण करे, मेरे नयन नित्य अखण्ड आनन्दमें विघूर्णित रहें एवं मेरा मन उसीमें नहाया रहे । हे माँ पार्वती ! जब मैं आपको ध्यानमें तेजोमयी रूपमें प्रतिदिन देखता हूँ तभी मेरी वेदोंमें वास्तविक निष्ठा उत्पन्न होती है एवं उनमें वर्णित इस अखिल तत्वको मैं मानने लगता हूँ, उस समय तुम्हारा अर्चन करते हुए जो मुझे घनीभूत आनन्द होता है, उससे, मैं हे पराशिवे ! तेरे प्रसाद {कृपा} से तुझसे पूर्ण अभिन्नताका अनुभव करता हूँ ।

{गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्राधिनाथ
रूपमें तत्त्व चतुष्टय की पूजा}

गणाधिनाथं बटुकञ्च योगिनी क्षेत्राधिनाथञ्च विविक्तचतुष्टये ।
सर्वोपचारैः परिपूज्य भक्तितो निवेदयामो बलिमुक्तयुक्तिभिः ।।९५।।

{भावार्थ}

भगवान् गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्राधिनाथ रूपमें तत्व चतुष्टयको सर्वोपचारोंसे भक्तिपूर्वक परिपूजन करके मैं उक्त प्रकारकी बलि निवेदित करता हूँ ।

{आचमन समर्पण}

वीणामुपान्ते खलुवादयन्त्यै निवेद्य शेषं खलु शेषिकायै ।
सौवर्णभृंगारविनिर्गतेन जलेन शुद्धाचमनं विधेहि ।।९६।।

{भावार्थ}

हे माते ! कभी आपके सम्मुख वीणा वादन करते हुए फिर जो कुछ शेष नैवेद्य बचा है वह अन्य बचे हुए भक्तोंमें वितरित करती हुई, मैं आपके स्वर्ण निर्मित भोजन शालाके बाहर आने पर आपको शुद्ध जलसे आचमन निवेदित कर रही हूँ ।

{ताम्बूल–समर्पण एवं आरती निवेदन}

ताम्बूलं विनिवेदयामि विलसत्कर्पूरकस्तूरिका
जातीपूगलवंगचूर्णखदिरैर्भक्त्या समुल्लासितम् ।
स्फूर्जद्रत्नसमुद्गकप्रणिहितं सौवर्णपात्रे स्थितै–
र्दीपैरुज्ज्वलमन्नचूर्णरचितैरारार्तिकं गृह्यताम् ॥९७॥

{भावार्थ}

हे माँ ! मैं आपको कपूर, कस्तूरी, सुपारी, जाती, कत्था एवं चूना तथा लवंग चूर्ण डाला हुआ अति भक्ति सहित उल्लसित हुई ताम्बूल निवेदन कर रही हूँ । रत्नोंकी ज्योतिसे चमकते हुए स्वर्ण–पात्रमें उज्ज्वल अन्न चूर्णकी आरतीमें दीपक जलाकर मैं आपकी आरती करती हूँ, कृपया स्वीकार करें ।

{उल्लसित मुख दर्शन}

क्वचिद्गायति किन्नरी कलपदं वाद्यं दधानोर्वशी
रम्भा नृत्यति केलिमञ्जुलपदं मातः पुरस्तात्तव
कृत्यं प्रोज्झ्य सुरस्त्रियो मधुमदव्याधूर्णमानेक्षणं
नित्यानन्दसुधाम्बुधिं तव मुखं पश्यन्ति हृष्यन्ति च ॥९८॥
ताम्बूलोद्भासिवक्त्रैस्त्वदमलवदनालोकनोल्लासिनेत्रै–
श्चक्रस्थैः शक्तिसंघैः परिहृतविषयासंगमाकर्ण्यमानं ।
गीतज्ञाभिः प्रकामं मधुरसमधुरं वादितं किन्नरीभि–
र्वीणाझंकारनादं कलय परशिवानन्दसंधानहेतोः ॥९९॥

{भावार्थ}

कहीं तो किन्नरीगण सुन्दर गीतोंके मंजुलपद गायन कर रही हैं, उर्वशी वाद्य धारण किये है, रम्भा केलिके मन्जुल पदों पर, हे माँ तेरे सम्मुख नृत्य कर रही हैं, इन देवांगनाओंके इन कृत्योंको अपने सम्मुख करते देखती हुई, साथ ही मदपानसे घूर्णित नेत्रोंवाली आपके नित्यानन्द सुधासमुद्र मुखको देख–देखकर मैं प्रसन्न होती हूँ ।

आपका मुख ताम्बूल से लाल हो रहा है, ऐसे परम निराविल मुखको देखनेसे उल्लसित मेरे नेत्र हैं, श्रीचक्रस्थित अनेक शक्तियोंके संगमें आप

अनेक विषयों पर विचार कर रही हैं, उसे सुनती हुई मधुरस मधुर संगीत ज्ञानसे परितृप्त होती हुईं, किन्नरियों द्वारा वीणाकी झंकार नादको सुनती हुई भी आपके भीतर जो परशिवानुभव स्वरूप आनन्द है, उसका हेतु अनुसंधानित नहीं हो पाता ।

{प्रदक्षिणोपरान्त पंचोपचार पूजन}

अर्चाविधौ ज्ञानलवोऽपि दूरे दूरे तदापादकवस्तुजातम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य ततोऽर्चनं ते पञ्चोपचारात्मकमर्पयामि ।।१००।।

{भावार्थ}

अर्चाविधिका मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं है, अर्चनके उपयोगी पदार्थोंका भी मुझे दूरका भी अनुभव नहीं है, तब भी तेरे अर्चनके पश्चात् प्रदक्षिणा करके मैं पंचोपचारात्मक पूजा निवेदन कर रहा हूँ ।

{साष्टांग प्रणाम}

यथेप्सितमनोगतप्रकटितोपचारार्चितां
निजावरणदेवतागणवृतां सुरेशस्थिताम् ।
कृताञ्जलिपुटो मुहुः कलितभूमिरष्टांगकै
र्नमामि भगवत्यहं त्रिपुरसुन्दरि त्राहि माम् ।।१०१

{भावार्थ}

मैंने हे माँ त्रिपुरसुन्दरि ! तेरी आवरण देवगणोंसे युक्त इन्द्रादि देवोंके साथ यथा–मनोरथ मनमें उत्पन्न हुए भावजनित उपचारोंसे अर्चनाकी है, अब मैं कृताञ्जलि {हाथ जोड़े} पुनः भूमिमें साष्टांग निपतित हुआ, हे भगवति ! तेरी वन्दना कर रहा हूँ । माँ त्राहि माम्, त्राहि माम् ।

{प्रार्थना}

विज्ञप्तीरवधेहि मे सुमहता यत्नेन ते सन्निधिम् ।
प्राप्तं मामिह कान्दिशीकमधुना मातर्न दूरीकुरु ।
चित्तं त्वत्पदभावने व्यभिचरेद् दृग्वाक्चमे जातुचेत् ।
तत्सौम्ये स्वगुणैर्बधान न यथा भूयो विनिर्गच्छति ।।
क्वाऽहं मन्दमतिः क्वचेदमखिलैरेकान्तभक्तैःस्तुतं ।
ध्यातं देवि तथापि ते स्वमनसा श्रीपादुकापूजनम् ।।
कादाचित्कमदीयचिन्तनविधौ सन्तुष्टया शर्मदं ।
स्तोत्रं देवतया तया प्रकटितं मन्ये मदीयानने

नित्यार्चनमिदं चित्तो भाव्यमानं सदा मया
निबद्धं विविधैः पद्यैरनुगृह्णातु सुन्दरी ।।

{भावार्थ}

हे माता ! यह मेरी विज्ञप्ति आप विचारकर ध्यानसे सुनें, मैंने अति यत्नपूर्वक आपकी सन्निधिमें निवेदित की है । मधुके कन्दमें सिक्त हुएके समान तुझे प्राप्त को हे माँ ! अपनेसे दूर मत करो । यदि मेरा चित्त तेरी चरणचिन्तनासे व्यभिचारी हुआ दूर भागता है एवं मेरे नेत्र एवं वाणी तेरे विपरीत चलती है तो हे सौम्ये ! अपने गुणोंसे मुझे बाँधलो, जिससे मैं पुनः इधर–उधर नहीं हो सकूँ ।

कहाँ तो मैं मन्द–बुद्धि, कहाँ यह एकान्त भक्ति युक्त स्तुति और ध्यान, साथ ही मेरे मन द्वारा श्रीपादुका पूजन, ऐसा लगता है कि कदाचित् मेरी चिन्तन विधिसे संतुष्ट हुई, आपने मेरे स्तोत्रको आदर देनेके लिये मेरे शरीरमें अपने देवत्वको प्रकट कर दिया है ।

यह नित्यार्चन जो मेरे द्वारा चित्तमें सदा भावना किया गया है, इसे विविध पद्योंमें निबद्ध कर दिया गया है, हे सुन्दरी ! इसे गृहण करें ।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्द भगवत् पूज्यपाद शिष्यस्य श्रीमच्छंकर भगवतः कृतौ श्रीत्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्रं समाप्तं।।

यह श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादके शिष्य श्रीमत् शंकर भगवत्पाद द्वारा विरचित श्रीत्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्र समाप्त है ।

अध्याय सात

(श्रीपुर–मणिद्वीप–वर्णन)

गोरखपुर पत्तनकी गीतावाटिकाके उपवनके पिछवाड़े पू. गुरुदेव बिल्ववृक्षके नीचे बैठे थे । सन् १९५१ ई. की सर्दियोंकी बात है । आधी धूप एवं आधी छायामें ही पू. गुरुदेव आसन लगाये थे । विल्ववृक्षके नीचेकी भूमि गोबरसे लीपी गयी थी । काली मोटी कम्बलें जो बिछानेके काम आती थीं, उन पर ही पू. गुरुदेवका आसन लगा था । मैं उस दिवस अवकाशमें था, अतः उनके पास जाकर बैठ गया था ।

कुछ काल तो हम दोनों ही शान्त बैठे रहे, उसके पश्चात् पू. गुरुदेवने स्लेट पट्टीपर लिखकर मुझसे पूछा – "भैया ! कैसे आना हुआ ?"

वे उनदिनों मौनव्रती थे ।

उन दिनों मुझे भगवत्सेवाका जोश चढ़ा था । अपने हाथसे ही भोजन बनाकर भगवान्‌को भोग लगाकर तब भोजन पाता था । भगवान्‌की वल्लभ–सम्प्रदायानुसार सेवा–पद्धतिसे सूक्ष्म–सेवाका क्रम बना रक्खा था । मैं पू. गुरुदेवसे अपने मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको यह कहलवाना चाहता था कि वे मेरे भगवान्‌के लिये सिंहासननुमा एक काष्ठका छोटा मन्दिर बनवा दें, जिसमें सेवाके समय भगवान् गद्दा, तकिया लगाकर विराजित हो जावें और विश्रामके समय उसमें फाटक भी लग जाये । ऐसे निर्माणमें थोड़े अर्थ–व्ययकी संभावना थी, अतः मैं गुरुदेवसे ही अपने मामाजीको कहलवाना चाहता था । मेरी बात बहुत मनोयोगपूर्वक सुनकर पू. गुरुदेव शान्त हो गये। जब मैंने पुनः अपनी इच्छा निवेदन की और उससे होने वाली भगवत्सेवाजन्य सुविधाओंका वर्णन भी किया तो वे कहने लगे – "भैया ! मैं भी तेरी ही तरह अपनी इष्टदेवीकी सब पूजा–अर्चना करता हूँ, तेरे ठाकुरकी तरह मेरी माँ भी राजराजेश्वरी हैं, परन्तु मैं पोद्दार महाराजको (भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दारको) कहाँ कहता हूँ कि मेरी राजराजेश्वरी इष्टदेवीके लिये मन्दिर अथवा स्वर्ण सिंहासन बनवा दें ।

यद्यपि मेरे कहने पर वे निश्चय ही ऐसा कर देंगे, परन्तु मुझ सन्यासीके लिये क्या ऐसा कहना उचित होगा ? देख ! मैं तुझे मेरी पूजा–

पद्धति बता देता हूँ, तू भी मेरी पूजाकी पद्धतिका अनुकरण करता हुआ इसी प्रकार अपनी पूजा कर ।''

उन्होंने कहा – ''देख ! ऐं'' बीज वाग्भव कूट है – यह महासरस्वतीका स्वरूप है । सम्पूर्ण सृष्टिका उद्भव इसी एक परावाक्से होता है । ये ही सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञानकी महाशक्ति हैं । अपनी स्वच्छन्द विमर्श शक्तिसे ये ही इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्तिमें परिणत हो जाती हैं । इनकी इच्छाशक्ति का ''श्रीं'' बीज है और क्रियाशक्तिका ''ह्रीं'' बीज है । ये मन्त्रात्मक ''ऐं'', ''ह्रीं'' व ''श्रीं'' रूपा शक्तियाँ सम्पूर्ण विश्व प्रपंचका सृजन, परिपालन एवं विलय कर रही हैं । अब इन तीन सर्वसमर्था, सर्वकारणभूता, सर्वप्रपंचकी व्यवस्थापिका शक्तियों ''ऐं'', ''ह्रीं'' व ''श्रीं'' से तू जो भी माँगना हो, माँग ले । इस त्र्यक्षरी बीजके जप मात्रसे वे जो भी तेरी पारमार्थिक उन्नतिके लिये परमावश्यक होगा, अपने आप बिना किसीसे भी कहे–सुने तुझे प्रदान कर देंगी।'' मैं मूक स्तब्ध उनकी वार्त्ता सुन रहा था और वे लिखकर कहते जा रहे थे – ''देख! बचुआ !! जैसे ही मैं कहता हूँ – ''ऐं'', ''ह्रीं'' ''श्रीं'' अमृताम्भोनिधये नमः'' – बस, यह कहते ही मेरे सम्मुख भगवती श्रीसुन्दरीके परम चिन्मय लोकका अमृत–समुद्र प्रकट हो जाता है । मैं इस चिन्मय परम कारण–कारण सृष्टिके परमाद्य बीज सुधा–सिन्धुकी स्तुति–पूजा वन्दना सभी करता हूँ । अब देख! ज्योंही मैंने उच्चारण किया – ''ऐं'', ''ह्रीं'' व ''श्रीं'' रत्न द्वीपाय नमः देख, मेरे सम्मुख परम दिव्य चिन्मय श्रीद्वीप प्रकट हो जाता है ।''

वे मुझे समझाने लगे – ''भैया ! ऊपरसे देखनेवाला कोई भी प्राणी यह समझेगा कि यह बाबा ऐसे ही प्रमादमें समय व्यतीत करता है, भजन तो करता नहीं है, परन्तु मैं क्या भजन करूँ ? जो दिव्य श्रीलोक देवशिल्पी भगवान् विश्वकर्माके सम्मुख भी प्रकट नहीं हुआ – जो वृन्दावन, अयोध्या, मथुरा, काशी आदि सभी दिव्य सप्तपुरियोंके रचनाकर्त्ता हैं – वह लोक माँ मेरे सम्मुख मात्र इस त्र्यक्षरी प्रणवकी कृपासे मूर्त्तिमान प्रकट कर देती हैं ।'' इस प्रकार वे मन्त्र बोलते जाते थे और भगवतीके अलौकिक चिन्मय राज्यमें प्रविष्ट हुए– से उसका प्रत्यक्ष वर्णन भी करते जा रहे थे । उनकी विलक्षण दशा यह थी कि वे सहज स्वाभाविक जाग्रत् दशामें थे, बिना देह ज्ञान लुप्त हुए मुझसे व्यवहार दशामें वार्त्ता भी कर रहे थे, साथ ही अप्राकृत राज्यका आँखों देखेकी तरह सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन भी करते जा रहे थे । यह उनकी विलक्षण योगस्थ स्थिति थी ।

उनका यह मन्दिर–प्रवेश प्रतिदिन ही होता था । वे अपने काष्ठके तखत पर आसीन रहते एवं भगवतीके चिन्मय मन्दिरके सभी अंग उनके सम्मुख व्यक्त होते रहते थे ।

यहाँ उनके द्वारा वर्णन किया गया सम्पूर्ण ''श्रीपुर'' धामका वर्णन दिया जा रहा है ।

(प्रथम मंत्र)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अमृताम्भोनिधये नमः ।।१।।

(वर्णन)

भैया ! यह परमपद श्रीधाम कोई इदमित्थं देश (लोक) नहीं है, न ही यह कोई अमृत समुद्र, कोई प्राकृत समुद्र की तरह ही है । जब चित्तवृत्ति सम्पूर्ण लोक–लोकान्तरोंका अतिक्रमणकर उनके समग्र लौकिक भोगोंको तुच्छ काकविष्ठावत् मलिन हेय मानकर उनसे पूर्णतया विरत हो जाती है, तो जिस चिन्मय भूमिमें वह बिहरती है, वह भूमि साधककी उच्च भावनानुसार एक विलक्षण अप्राकृत धामके रूपमें परिणत होकर उसके सम्मुख प्रकट होती है । सगुण–साकारोपासक साधकका इष्ट क्योंकि अप्राकृत चिन्मय किन्तु परिछिन्न नाम–रूपात्मक होता है, अतः वह उस सिद्ध भूमिमें भी अपने इष्टके महल, वन, तड़ाग, नदी–पर्वत, झरने, वृक्ष–लताएँ, सूर्य–चन्द्र, पृथ्वी, जल सब कुछ लोकवत् ही देखता है । वह लोक जो साधकके सम्मुख उस चिन्मय अवस्थामें प्रकट होता है, वह यद्यपि साधककी इष्ट मूर्तिकी तरह ही सच्चिदानन्दमय होता है, वह लोक परमसत्य, एकमेव, अखण्ड, नित्य, भूमा ही होता है, परन्तु फिर भी भिन्न–भिन्न साधकोंकी रुचि, प्रकृति एवं अधिकारके कारण सभी महात्माओं द्वारा उसका वर्णन भिन्न–भिन्न रूपमें ही किया जाता है । परन्तु ये सभी भेद इतनी उच्च अभेद–भूमिमें परिलक्षित होते हैं कि वास्तवमें वे भेद रहते नहीं । एक अप्राकृत परिपूर्ण सच्चिदानन्द रस वहाँ असमोर्ध्व रूपमें सब भेदोंको अभेद बनाता वर्तमान रहता है ।

पू. गुरुदेव बता रहे थे कि उनकी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका परमधाम मणिद्वीप भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका धामकी तरह चतुर्दिक् समुद्रसे आवृत घिराहुआ है । यहाँ द्वारका लीला तो मृत्यु लोकमें आजके पाँच हजार वर्ष पूर्व अवतार रूपमें हुई थी, अतः यहाँ तो प्राकृत अथाह समुद्र से घेरे था, परन्तु इस मणिद्वीप को आवृत किये चिन्मय–सुधा–सिन्धु प्राकृत समुद्रवत् सर्वथा नहीं है । अमृत यहाँ जन्म–मृत्यु–हीन अवस्थाका परिचायक है यह सुधा–सिन्धु कोई पानीय द्रव्यसे भरा सर्वथा नहीं है परन्तु फिर भी प्राकृत

विश्वमें जितनी सुमिष्ट पानीय पदार्थकी कल्पना की जा सकती है, वे सभी इस अमृत समुद्रकी छायाकी छायाके अंशमात्र ही हैं । जैसे छायाको देखकर कोई उसके बिम्बकी कल्पना करना चाहे तो उसका उपहासास्पद मिथ्या प्रयास ही होगा, इसी प्रकार किसी प्राकृत समुद्रको देखकर कोई उससे इस मणिद्वीपको आवृत करने वाले (अमृत) सुधा–सिन्धुकी कल्पना करना चाहे तो वह उसका आकलन सर्वथा मिथ्या ही होगा । शब्द इस सुधासिन्धुका परिचय दे ही नहीं सकते ।

किसीको निर्विकल्प समाधिमें जैसे अपार चेतन समुद्रका अनुभव हो तो वह यही कहेगा – ''अखण्ड, अपार, आनन्द सिन्धु'' ''असीम–आनन्द–सिन्धु'', ''घन–बोध–सिन्धु'', परन्तु क्योंकि उस समयकी उसकी अनुभूतिमें वह आनन्दका उमड़ता–उफनता प्रवाह, इस प्राकृत समुद्रकी तरह सर्वथा नहीं है, इसी तरह अथर्वण महर्षि जब अमृत–सिन्धुका कथन करते हैं तो उनकी चिद्भूमिमें अवतरित यह सुधा–सिन्धु इस प्राकृत समुद्रकी तरह सर्वथा सर्वांशमें ही नहीं है । चिन्मयता अमृत ही है, परन्तु वह पानीय–जल पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार इस अमृत समुद्रको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

पू. गुरुदेव बारबार इसी बात पर जोर दे रहे थे कि अचिंत्य भावोंको जैसे शब्द देना मूलवस्तुको विकृत करना ही है, उसी प्रकार तर्कोंको सर्वथा तिलांजलि देकर श्रद्धापूत चित्तसे कोई भगवतीकी आराधना करे तो उनकी कृपा–वारिकी कणिका मात्रके संबलसे वे हेतुरहित करुणामयी किसी परम भाग्यवान्के मानसमें सत्यको व्यक्त कर दें – तभी वह इस अमृत सुधा–सिन्धुका परिचय पाकर कृतार्थ हो सकता है । वाणी तो इतना ही कह सकती है कि इस द्वीपको घेरे अनन्तानन्त संख्या वाले सुधा–समुद्र सुमेरुके शिखरोंके समान आवर्त्त उत्पन्न करते, लहरा रहे हैं ।

(दूसरा मंत्र)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्नद्वीपाय नमः ।।२।।

पू. गुरुदेव मुझे समझा रहे थे कि शास्त्रमें ऐसी भाषा है कि ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना जाता है, वही मणिद्वीप श्रीपुर है । परन्तु यह ब्रह्मलोक भी कोई प्राकृत जगत् नहीं है । चित्तकी शुद्ध सत्वावस्थामें ही ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ एवं कैलाशादिका प्रकाश होता है । परन्तु जब चित्तभूमि विशुद्ध सत्वावस्थाका उल्लंघन कर जाती है और परमोच्च चिन्मय भूमिमें प्रवेश कर जाती है, तब यह श्रीसुन्दरी–लोक मणिद्वीप प्रकट होता है । इसीलिये इसके समान कोई सुन्दर धाम त्रिलोकीमें संभव ही नहीं है ।

पू. गुरुदेवका कथन था कि यही ''श्रीधाम'' अपनी सम्पूर्ण अलौकिताओंको लेकर श्रीकृष्णभक्त वैष्णवोंके लिये चिन्मय गोलोक वृन्दावन धामके रूपमें प्रकट होता है । लीलामहाशक्ति इस निर्मलतम चित्तभूमिकी भूतिको जहाँ मणिद्वीप श्रीधाम महाऐश्वर्यलोकके रूपमें व्यक्त करती है, वहीं यही चित्तभूमिकी भूति लीलामहाशक्तिके द्वारा परम रसमय साज–सज्जासे वृन्दावन धामके रूपमें सजी है । यद्यपि वृन्दावन धाममें भी ऐश्वर्य है, परन्तु वह रसकी सेवार्थ है, उसी प्रकार मणिद्वीप श्रीधाममें भी रस है परन्तु वह ऐश्वर्यकी सेवार्थ है ।

इस मणिद्वीपका दर्शन प्रयत्न–साध्य नहीं है, मात्र कृपा–साध्य है। श्रीत्रिपुरा रहस्य (माहात्म्य खण्ड) में वर्णन आता है कि जब भगवान् देवशिल्पी त्वष्टा (विश्वकर्मा) प्रयत्न करते–करते सर्वथा निराश हो गये और उनके ध्यान–पथमें यह लोक आया ही नहीं, तब वे श्रीब्रह्माजीसे बोले – प्रभो ! भगवतीके श्रीपुरका निर्माण सुमेरु पर्वतपर आपकी आज्ञानुसार मेरे द्वारा नहीं हो सकता । यह महालीला– धाम मेरे ध्यान पथमें ही नहीं आ रहा है ।

जबतक भगवती श्रीसुन्दरी अपनी हेतुरहित कृपासे मेरे चित्तपटल पर इसे प्रकाशित नहीं करेंगी, वह कार्य मेरे द्वारा होना असंभव है । भगवतीका धाम भगवतीका ही स्वरूप है, अतः उनकी कृपाके बिना उनकी मायाके आवरणको चीरना संभव नहीं है एवं जो वस्तु मेरी कल्पनामें ही नहीं आ रही, उसे प्राकृत अथवा दिव्य पटल पर उतारना मेरे द्वारा कैसे संभव है ?

यह सत्य ही था । देवशिल्पी तो बिचारे प्राकृत देवलोकके ही तो शिल्पी हैं । भगवतीकी अशेष शुभ विधायिनी कृपा–दृष्टि ही उनकी वृत्तियोंको जड़ताके आवरणसे मुक्तकर परमोच्च चिन्मय–भूमिमें प्रवेश करा सकती है । देवशिल्पी ध्यान करते हैं, परन्तु एक घोर अवरोधमय आवरण उन्हें घेर लेता है। इस सतहका भेदनकर ऊपर उठना अनुग्रह शक्तिके विशिष्ट प्रभावके बिना सर्वथा असंभव ही था । शास्त्रमें यह अवस्था रोधिनीनामसे प्रसिद्ध है । इस आवरणका भेदन करनेके पश्चात् ही साक्षात् चित्शक्तिका आविर्भाव होता है । इसी चित् शक्तिसे ही समस्त भुवन विधृत हो रहे हैं ।

देवशिल्पीको तो अभी बहुत स्तर लाँधने हैं । वे पहले विशुद्ध चित्शक्तिकी भूमिमें पहुँचें तब उनका त्रिकोणस्वरूपा व्यापिका बिन्दुमें प्रवेश हो, यह बिन्दु वह स्थान है जो त्रिकोणकी तीन रेखायें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश – तीन प्रकारके शिवांशोंकी किंवा इनकी ही वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, इन तीन शक्तियोंकी प्रतिनिधि है । इसके पश्चात् सर्वकारणभूता समना शक्ति पर आरूढ़ परम शिवके दर्शन होते हैं जो सृजन, पालन, संहार अनुग्रह एवं

विग्रह पंच कृत्यकारी हैं । यहाँ मनोराज्यका अन्त हो जाता है । इसके आगे मन, काल, देशतत्व, देवता तथा कार्य–कारण भाव सब तिरोहित हो जाते हैं । तब निर्विकल्पक निवृति भावका उदय होता है । इसके उपरान्त भगवतीकी जिस पर कृपा होती है, उसके सम्मुख यह अप्राकृत जगत्का भी छत्रस्वरूप मणिद्वीप धाम प्रकाशित होता है । जितनी भी जहाँ–जहाँ सृष्टि है सभी इसीकी छत्रछायामें हैं । अतः असहाय देवशिल्पी अपनी पहुँच वहाँ न पाकर शान्त मौन हो गये थे ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि देवशिल्पीके इस प्रकार निराश हो जाने पर श्रीब्रह्माजी भगवतीसे प्रार्थना करते हैं कि यदि वे देवशिल्पीको अधिकारी नहीं समझती हैं तो वे उनके स्वयंके अनाविल हृदयमें अपने परम चिन्मय लोकको प्रकाशित कर दें और सामर्थ्य दें कि वे उस अनन्तानन्त वैभवकी एक कणिकाकी झाँकीका भगवती सरस्वतीके सहयोगसे देवशिल्पीके सम्मुख बखान कर सकें और तदनुसार देवशिल्पीका निर्माण–कार्य संभव हो सके ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे–मेरे सम्मुख तो भगवतीके त्र्यक्षरी प्रणवकी कृपासे वह परमाद्य विशुद्ध लोक प्रत्यक्षवत् व्यक्त हो रहा है ।

(३) ऐं ह्रीं श्रीं नानावृक्षमहोद्यानाय नमः
(४) ऐं ह्रीं श्रीं कल्पवाटिकायै नमः
(५) ऐं ह्रीं श्रीं सन्तानवृक्षवाटिकायै नमः
(६) ऐं ह्रीं श्रीं हरिचन्दन वाटिकायै नमः
(७) ऐं ह्रीं श्रीं मन्दार वाटिकायै नमः
(८) ऐं ह्रीं श्रीं पारिजात वाटिकायै नमः
(९) ऐं ह्रीं श्रीं कदम्ब वाटिकायै नमः
(१०) ऐं ह्रीं श्रीं पुष्पराग रत्न प्राकारायै नमः
(११) ऐं ह्रीं श्रीं पद्मराग रत्न प्राकारायै नमः
(१२) ऐं ह्रीं श्रीं गोमेधक रत्न प्राकारायै नमः
(१३) ऐं ह्रीं श्रीं वज्ररत्न प्राकारायै नमः
(१४) ऐं ह्रीं श्रीं वैदूर्यरत्न प्राकारायै नमः
(१५) ऐं ह्रीं श्रीं इन्द्रनीलरत्न प्राकारायै नमः
(१६) ऐं ह्रीं श्रीं मुक्तारत्न प्राकारायै नमः
(१७) ऐं ह्रीं श्रीं मरकतरत्न प्राकारायै नमः
(१८) ऐं ह्रीं श्रीं विद्रुमरत्न प्राकारायै नमः

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि यह मणिपुर श्रीधाम अप्राकृत अनिर्वचनीय सृष्टि है । यह अघटना–घटना–पटीयसी योगमायाका पूर्ण स्वतन्त्र आत्मविलास है । भगवतीकी वृन्दावन–लीलाकी तरह कोई रसमयी लीला तो थी नहीं, उन्होंने तो भण्डासुरसे युद्ध किया था, अतः "श्रीपुर" का वर्णन शास्त्रोंने द्वारकाकी तरह एक किलेके रूपमें किया है । जैसे द्वारका चतुर्दिक् समुद्रसे घिरी थी, इसी प्रकार मणिपुर श्रीधाम भी चतुर्दिक् चिन्मय सुधा समुद्रसे घिरा है । श्रीब्रह्माजी एवं सभी ऋषियोंको इसके इसी प्रकार दर्शन मिले हैं ।

इन अनन्त सिन्धुओंके मध्य अपनी विशुद्ध चिज्जोतिसे सतत उद्भासित, समग्र तम एवं अज्ञानका मूलोच्छेदन करनेमें समर्थ अप्राकृत मणिद्वीप लोक अपनी महिमामें ही नित्य विराजित है । चतुर्दश भुवनोंमें जितना भी जो कुछ है – स्थल, जल अग्नि, वायु, आकाश, प्राण, मन, इन्द्रियाँ, अण्डज, उद्भिज, जरायुज एवं स्वेदज सृष्टि, वन, उपवन, नदियाँ, निर्झर, तालाब, वाटिकाएँ, पुष्प, फल, वनस्पतियाँ, वृक्ष, लताएँ, वाटिकाएँ, भवन, महल, स्वर्ण, रजत, सर्वधातुएँ, सर्व अनमोल रत्न, मुक्ता, माणिक्य, नीलम, पुखराज – सब कुछ इस ज्योतिर्मान द्वीपकी माया–दर्पणमें छाया मात्र है । यहाँ सब कुछ परम सत्य है । प्राकृत विश्वकी सम्पूर्ण रत्न–राशिका सौन्दर्य इस द्वीपकी रजकणके सौन्दर्यकी छायाकी छायाका परिणाम मात्र है ।

जैसे द्वीपमें वनस्पतियाँ होती ही हैं , इसी प्रकार इस द्वीपमें वृक्षोंसे चिन्मय कल्पलतायें कल्प–प्रसूनोंकी असीम शोभा लिये लिपटी हैं । ये सभी अतुलनीय हैं । इन्हें मात्र नाम ही कल्पवाटिका दिया गया है, वैसे इनकी फलदानमें, सौन्दर्यमें, स्वर्गस्थ नन्दनकाननके कल्पवृक्षोंसे तुलना हो ही नहीं सकती । जहाँ स्वर्गस्थ कल्पवृक्ष एक प्राकृत सत्व–प्रधान जड़ वृक्ष है, यहाँका सब सृजन सच्चिदानन्दमय है । कहाँ त्रिगुणात्मक स्वर्ग और कहाँ त्रिगुणातीत विशुद्ध भागवती लोक मणिद्वीप । इस चिन्मयधामका एक रजकण भी भगवतीके पूर्ण तत्वका प्रज्ञाता है, साक्षात् भगवतीका स्वरूप–विलास है एवं दुर्वासादि भगवतीके सर्व महासिद्ध भक्तोंका भी परम वन्द्य है । इन कल्पवृक्षावलियोंके एक पत्तेमें इतनी सामर्थ्य है कि भगवतीका साक्षात्कार करा सके। इन सभीकी अतुलनीय अचिन्त्य श्री है । एक ही वृक्षकी एक ही डालमें आम्र, नारिकेल, नारंग, बदरी, खर्जूर, कदली, दाड़िम सभी फल यहाँ पूर्ण सुमिष्ट उपलब्ध हैं । मालती, मल्लिका, कुन्द, केतकी, दूधी, माधवी सभी लताएँ सभी प्रकारके सौरभपूर्ण पुष्पोंसे लदी अपना सुवास चतुर्दिक् महका रही हैं । पू. गुरुदेव बारबार यही स्मरण दिलाते रहते थे कि यदि

कहीं किसी भी वनस्पतिकी सत्ता है तो उसकी स्थिति उद्भव एवं लय, इनकी छायाके कणसे ही है ।

यहाँ कल्पवृक्ष, सन्तानवृक्ष, हरिचन्दन, मन्दार, पारिजात एवं कदम्बकी असंख्य वाटिकाएँ हैं । ये सभी वाटिकाएँ मणिद्वीपके रत्नमय वालुकासे भरे समुद्र–तटकी शोभा सहस्रगुनी कर रही हैं । अमृतसमुद्रमें अति सुन्दर छोटी मछलियाँ भरी हैं, साथ ही बड़े–बड़े विशाल मत्स्य हैं। परन्तु ये सभी एक दूसरेके हिंसक सर्वथा नहीं है । यहाँ सभी भगवतीकी भक्त हैं और उनमें पूर्ण आनन्द भरा है । यहाँ समुद्रमें असंख्य रत्नमय शंख तैरते रहते हैं । तरंगोंसे सौम्य किन्तु उत्तुंग बड़ी–बड़ी लहरें चतुर्दिक् इन वाटिकाओं पर परम सुवासित अमृतजलके कण बिखेरती रहती हैं, इन जलकणोंसे ही ये सभी वाटिकाएँ सिंचित होती हैं ।

अनेक प्रकारकी रत्नमयी नौकाएँ विलक्षण ध्वजाओंसे युक्त इस सुधा सागरकी शोभा बढ़ाती हैं । इन नौकाओंमें आरूढ़ भगवतीके पार्षद एवं भक्त इस अमृत समुद्रकी नित्य नूतन प्रतिपल अभिवर्धनशील शोभा निरखते रहते हैं ।

इस सम्पूर्ण द्वीपको एक पुष्पराग रत्नकी चारदीवारीसे घेरा गया है । इसके पश्चात् क्रमशः आठ और प्राकार हैं । ये प्राकार क्रमशः पद्मराग रत्न, गोमेद रत्न, वज्र रत्न (हीरा), वैदूर्य, इन्द्रनील, मुक्ता, मरकत एवं विद्रुमके रत्नोंके हैं । इन महान् परकोटों का भगवतीकी कृपाके बिना कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता । इनके चारों ओर अति दुर्लध्य खाई है । इन सभी परकोटोंके चार–चार विशाल द्वार हैं। इन परकोटोंमें अनेक प्रकार के अस्त्रों, शस्त्रोंसे युक्त, युद्ध–सम्बन्धी अनेक विद्याओंमें पारंगत असंख्य भगवतीके गण निवास करते है । यहाँ सर्वत्र आनन्दका ही साम्राज्य रहता है । भगवती जगदम्बाका दर्शन करने आनेवाले असंख्य देवगणोंके निवासके लिये यहाँ स्थान बने हैं । उनके वाहन एवं विमान यहाँ रहते हैं । विमानोंकी संचालन ध्वनिसे यहाँका कोना–कोना भरा रहता है । यहाँ स्थान–स्थान पर मीठे जलसे भरे असंख्य सरोवर हैं ।

पू. गुरुदेवका इस लोकका वर्णन करते समय बराबर यह जोर रहता था कि महान् ऐश्वर्यमय होते हुए भी यहाँकी शोभा सच्चिदानन्दमयी है । यहाँ मणि, मुक्ता, रत्न, साथ ही लोह, काँस्य, ताम्र, रजत, स्वर्ण, शीशा, पीतल आदि धातुएँ, जहाँ कठोरता अपेक्षित है, वज्रसे भी अधिक कठोर है, परन्तु माताके भक्तोंके लिये ये सभी परम सुकोमल परमानन्ददायक हैं किसी भी

वस्तुका कोई इत्थंभूत रूप नहीं है । इतना है, ऐसा है, ऐसा नहीं है, इस प्रकारकी विधि–निषेध जन्य वर्जना इस चिन्मय द्वीपके किसी भी पदार्थ एवं वस्तुमें नहीं है । ये सब सभी प्रकारसे स्वातंत्र्य युक्त स्वभावके हैं । यहाँकी प्रत्येक वस्तुका अणु–अणु अनन्त वात्सल्यमयी जगज्जनीकी स्वरूप परिणति ही है । ये सभी चाहे वृक्ष, वल्लरी, भूमि, गृह जो भी हों सभी कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्तुम् सामर्थ्य युक्त हैं । यहाँके कीट–पतंग, भृंग, पशु–पक्षी, इनके रूप, रंग, आकार, स्थिति, गुण, चेष्टा, भावकी इयत्ता नहीं है । ये सभी भगवती परमाद्या पराभट्टारिका भगवतीके भृकुटि–संकेत, उनके रुचि–संकल्प पर थिरकते हैं । भगवतीकी जैसी लीलाका जब जहाँ प्रकाश होता है, उसके लिये जो जैसा रूप–स्वभाव बनाना होता है, ये सभी स्वयं उसके अनुसार स्वतः ही ढ़ल जाते हैं । यथालीला जो भी कठोरता, उग्रता, दुर्धर्षता अथवा कोमलता, सरसता इनमें व्यक्त होनी चाहिये, सब स्वतः ही संघटित हो जाती है । वज्रसम कठोर, पदार्थोंमें भी भगवतीके भक्तोंके लिये अपार वात्सल्य यहाँ फूट पड़ता है और सुकोमलतम पुष्प पंखुडी भी यहाँ आवश्यकता पड़ने पर वज्रकी कठोर उग्रता भी ग्रहण कर लेती है । यह विलक्षण धाम अपना विस्तार एवं संकोच भी जहाँ जब जैसी आवश्यकता होती है, कर लेता है । जहाँ अभी कोई विस्तार चार लाख योजन है, वह आवश्यकता होने पर अनन्त कोटि योजन हो जाता है और पुनः सिकुड़कर चार योजन ही रह जाता है । जहाँ पुष्पराग मणिके प्राचीर हैं, वहाँ दुर्धर्ष लोह–सारके बन जाते हैं और जहाँ लोह–सारके दुर्ग हैं वे तत्क्षण ही कुसुमोंके कुञ्ज हो जाते हैं ।

यह सम्पूर्ण लोक ही एक क्षणमें अदर्शित हो जा सकता है और भगवतीका संकल्प हो तो कहीं भी व्यक्त हो जाता है । यह सर्व–भवन–समर्थ है । यह सम्पूर्ण लोक एक पुष्पमें भी परिणत हो सकता है और सारे ब्रह्माण्डोंको अपनेमें आवृत कर सकता है । जैसे भगवती त्रिपुराका स्वरूप अवाङ्मनस् अगोचर है, वैसे ही उनके धामका तत्व भी मन, बुद्धिसे परेका है। वैसे यदि सत्य कहा जाये तो अरूप ही इसका महामहिमामय रूप है और सर्वरूपता ही इसकी अरूपता है, साथ ही यह रूप, अरूप दोनोंसे ही पूर्णतया अतीत, निरपेक्ष, अनिर्वचनीय विलक्षण है ।

पू. गुरुदेव कहते थे कि इस मणिद्वीपमें प्रवृत्ति समूहका आत्यन्तिक उच्छेद होने पर ही प्रवेश प्राप्त होता है । जीव–कोटि ईश्वर–कोटिमें जब तक प्रविष्ट नहीं होता, मणिद्वीप तो दूर रहा, ब्रह्माण्डोंमें भटकना ही स्थगित नहीं होता । अतः जब परम सौभाग्यवान् कृपापात्र जीव सभी प्राकृत सृष्टिको

अतिक्रमणकर अमृत समुद्रको भी पार कर जाता है, तभी दिक् कालातीत चिन्मय भूमिमें प्रवेश पाता है ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि कल्पवृक्ष वाटिकाओंको घेरे काँसे एवं ताँबे के अरुणवर्णके प्राचीर हैं एवं इनके चारों ओर विशाल बावड़ियाँ हैं और सुन्दर द्वार–युक्त रत्नोंके महल हैं । इनमें वसन्त ऋतु अपनी मधु एवं माधवी शक्तियों सहित निवास करती है । कल्पवृक्ष–उद्यान एवं वाटिकाएँ हैं । इन अपने स्व–परिजनों सहित पराम्बिकाकी सेवा करता यहाँ वसन्त परम शोभा को प्राप्त करता है । सुन्दर बावड़ियोंमें विशाल पद्मिनी खिली रहती हैं । इनकी विशेषताएँ शास्त्रोंमें जैसा वर्णन है उससे अधिक ही हैं, उनसे न्यून सर्वथा नहीं है । शास्त्रोंमें लिखी बातोंको कभी अतिशयोक्ति नहीं माननी चाहिये । ऋषियोंने सत्य अनुभव करके सब लिखा है ।

(सन्तान–पारिजात वाटिकाएँ)

सन्तान वाटिकाओं एवं पारिजात वाटिकाओंके रूप एवं शोभामें थोड़ा ही अन्तर है । ये सन्तान वाटिकाएँ शीशेके प्राकारोंसे घिरी हैं । यहाँ ग्रीष्मऋतु अपनी शुक्र एवं शुचि (ज्येष्ठ तथा आषाढ़) नामक शक्तियों सहित रहती है । अमृतके समान मीठे रसोंसे भरे फलोंकी यहाँ प्रचुरता है । फलोंमें अति सुमिष्ट आम्र एवं जामुन बहुतायतसे होते हैं । संताप–तप्त प्राणियोंको यहाँ वृक्षोंकी छायामें बहुत ही सुख–शान्ति प्राप्त होती है । सिद्धों एवं देवताओंसे सन्तान वाटिकाका कोना–कोना भरा रहता है ।

(हरिचन्दनकी वाटिकाएँ)

पीतलके परकोटेसे आवृत हरिचन्दनकी वाटिकाएँ हैं । यह मलय चन्दनसे विकसित मलय पर्वत है । यहाँ वर्षा–ऋतु रत्नखचित स्वर्ण–महलोंमें रहती है । वर्षा ऋतुकी श्रावण एवं भाद्रपद (नभः श्री अथवा नभस्य श्री) नामक दो प्रमुख शक्तियाँ हैं । यहाँ मलय–चन्दन वृक्षोंकी शोभा दर्शनीय है। वर्षा ऋतुके नेत्र पिंगलवर्णी हैं और वह मेघरूपी कवचको धारण किये रहती है । धाराकी तरह बरसती वर्षाकी बूँदें इसके बाण हैं । अपने गणोंको लेकर जलधारा बरसाना इसका कार्य है । इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतुकी दस और शक्तियाँ यहाँ निवास करती है । इन शक्तियोंके नाम क्रमशः निम्न हैं – स्वरस्या, रस्यमालिन, अम्बादुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्तती, चिबुणिका, वारिधारा एवं सम्मता । वापी, कूपादि बनवाकर जो लोग पुण्यलाभ करते हैं, वे देवीभक्त यहाँ आनन्दपूर्वक निवास करते हैं ।

(मन्दार वाटिका)

इसके पश्चात् पंच लोहमय परकोटेसे घिरी मन्दार वाटिका है । यह ताम्र, पीतल, रांगा, शीशा एवं लोहेके मिश्रणसे बना विचित्र परकोटा है । शरद ऋतु अपनी इव (आश्विन) एवं ऊर्जे (कार्त्तिक) इन दो शक्तियों सहित यहाँ विराजमान रहती हैं ।

(पारिजात वाटिका)

चाँदीके परकोटोंसे घिरी पारिजात वाटिका है, यहाँ हेमन्त ऋतु अपनी मार्गशीर्ष (सहश्री) एवं कार्त्तिक (सहस्यश्री) शक्तियों सहित सुशोभित है । देवी भागवतानुसार भगवतीके भक्त जो कृच्छ्र एवं चान्द्रायण आदि व्रत करते हैं, यहाँ निवास करते हैं ।

(कदम्ब वन–वाटिका)

चाँदीके परकोटेके पश्चात् सुवर्ण निर्मित प्राचीर है । इसके मध्य कदम्ब–वन हैं । कदम्बके फलोंसे रसमयी हाला टपकती रहती है, जिसकी सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त रहती है । यहाँ भ्रमरोंका सुमधुर संगीत गुंजारित रहता है। आनन्दपूर्ण गातोंके मधुर लास्यसे यह समृद्ध है । पक्षियोंका चाटुकारितापूर्ण कलरव यहाँ सर्वत्र होता रहता है । यहाँ सर्वमोहनकारिणि मंत्रिणी देवी निवास करती हैं । इनका नाम संगीतमातृका मातंगीदेवीके नामसे भी विख्यात है । इन देवीके पार्श्वमें शुकी, आद्या, श्यामला (काली चिड़िया), सारिकाएँ एवं हसन्तिका नामक स्त्री जातिकी पक्षी चहकती रहती हैं । ये पक्षी वीणा एवं वेणुकी हूबहू नकल कर लेती हैं । मातेश्वरी मंत्रिणीदेवी को श्यामला राजपूर्वा भी कहते हैं । लघुपूर्विका श्यामला जो इनकी ही कोटिकी मातेश्वरी हैं, यहाँ मन्द मधुर स्वरमें गायन करती रहती हैं । इन मंत्रिणीदेवीको आठों दिशाओंसे श्रीमातृका एवं उनकी प्रिय–पात्री देवियाँ घेरे रहती हैं। ये सभी समान कोटिकी देवियाँ हैं ।

शिशिर ऋतु एवं इसके आदरणीय देवता यहाँ निवास करते हैं । ''तपश्री'' एवं ''तपस्यश्री'' इन दो भार्याओं सहित ये परम प्रसन्न रहते हैं । जो गो एवं भूमिदान करते हैं उन भगवतीके उपासक सिद्ध पुरुषोंको यह लोक प्राप्त होता है ।

(पुष्पराग रत्नप्राकार)

इस पुष्पराग रत्नप्राकारके अन्दर भगवान् सिद्धेश अपने सिद्धों सहित भगवती परादेवीका ध्यान करते रहते हैं । यहाँकी भूमि एवं वन–उपवन सभी पुखराजकी शोभा वाले प्रतीत होते हैं । यहाँकी बालुका पुष्पराग रत्नमय है।

जिस रत्नका प्राचीर है, उसी रत्नके यहाँ वृक्ष, पृथ्वी, जल, मण्डप, खम्भे, सरोवर आदि हैं । यहाँ सभी वस्तुएँ पुष्पराग मणि निर्मित हैं । इन सभी परकोटोंकी शोभा, एक दूसरेसे लाखगुनी अधिक शोभामयी है । प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहने वाले इन्द्रादि दिक्पाल अपना–अपना समाज बनाकर हाथोंमें उत्तम आयुध लिये यहाँ निवास करते हैं ।

(पद्मराग मणि प्राकार)

पुष्पराग मणिके प्राकारके आगे कुंकुमके समान अरुण–विग्रहवाला पद्मरागमणिका एक परकोटा है । इसके मध्यकी भूमि भी इसी पद्मरागमणि के वर्णकी है । अग्नि शिखाके समान तेजोमयी ज्योति इससे झलमल–झलमल निकलती रहती है । यहाँ चारणगण अपनी पत्नियों सहित निवास करते हैं और बहुत सी भाषाओंमें भगवतीकी अनवरत स्तुति करते रहते हैं ।

कुछ शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन आता है कि रत्नमय भूषणोंसे भूषित भगवतीकी कलाएँ चौसठ रूपोंमें यहाँ निवास करती हैं । इन कलाओंके नाम हैं – पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युताप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, माता, संध्या, परमसाध्वी, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुर विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंग, अनंगमथना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, वागीशी और उदारा ।

(गोमेद–रत्न प्राकार)

यहाँ संकर्षिणीदेवी अपने बटुकोंसे घिरी रहती हैं । इन बटुकोंके असंख्य भैरव नायक हैं । इनका ही नाम कराला भी है । ये काले मेघकी सी कान्तिवाली हैं एवं करवाल आयुध धारण किये हैं । ये आठ कोटि भैरवों, बतीस कोटि बटुकों एवं अष्ट सुभैरवोंकी स्वामिनी हैं । ये महाराज्ञी त्रिपुराका ध्यान करती विराजमान रहती हैं ।

(वज्ररत्न प्राकार)

इसके आगे हीरेका बना प्राकार है । इसके अनेक गोपुर एवं द्वार हैं। इसके मध्यकी भूमि वज्रमयी है । बड़े–बड़े महल, गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वृक्ष, लतायें, पक्षी, सभी वज्रमणिकी आभा लिये यहाँ चमकते रहते हैं । यहाँ

भगवतीकी परिचारिकाएँ रहती हैं । एक–एक परिचारिकाकी सेवामें नाना सामग्रियों से युक्त लाखों दासियाँ रहती हैं। ये देवीकी दूतिका कहलाती हैं। ये नित्य अक्षुण्णयौवना हैं और अति सुन्दर वस्त्र पहनती हैं । इनके अंग विद्युत्के समान द्युतिमान हैं ।

ये सभी कलाओंमें कुशल हैं । इस वज्रमणि रचित चार–दीवारीकी आठों दिशाओंमें भाँति–भाँतिके वाहनोंसे सम्पन्न दूतियोंके निवास हैं ।

यहाँ वज्रा नदी हीरोंसे भरी बहती है । यह इस प्राकारकी परिक्रमा करती सुधा–समुद्रमें मिल जाती है । यहाँ वज्रेश्वरीदेवी निवास करती हैं । ये वज्रमणिके भूषणोंसे भूषित हैं । इन्द्रप्रमुख वज्रधारी देवगणोंसे ये सुपूजित हैं । ये अपने उपासकों को वज्रस्थिति का दान करती हैं । इनके साधक साधनामें अडिग, अचल, स्थाणु एवं स्थिर रहते हैं । जब चित्त निष्काम हुआ निस्पन्द हो जाता है, तभी वज्रदान मानना चाहिये ।

(वैदूर्य रत्न प्राकार)

इसके पश्चात् वैदूर्य रत्नका प्राकार है । गोपुर एवं विशाल द्वारोंसे युक्त इसके ऊँचे शिखर हैं । यहाँ कद्रूके पुत्र नागगण पराम्बाके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं । यहाँ ब्राह्मी आदि सप्त–मातृकाओंका भी निवास है । इनके नाम हैं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा । ये सप्त मातृकाओंके नामसे विख्यात हैं । आठवीं मातृका महालक्ष्मी हैं । इनके आकार प्रकार ब्रह्मा, रुद्र, कुमार (भगवान कार्त्तिकेय) विष्णु, वाराह, इन्द्र और दुर्गाके समान हैं । इनके वाहन भी हंस, वृषभ, मयूर, गरुड़ादि हैं ।

(इन्द्रनीलमणि प्राकार)

श्रीदेवीभागवतानुसार इस इन्द्रनीलमणि प्राकारमें अनेक योजन विस्तृत कमल हैं । यह परम प्रकाशमान है, मानो सोलह अरोंवाला सुदर्शन चक्र ही हो। इन सोलह दलोंमें परम प्रकाशमान सोलह देवियाँ निवास करती हैं । इनके नाम हैं – कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति एवं आर्या ।

ये सोलहों शक्तियाँ नीले मेघके समान श्यामवर्णा हैं । ये भगवती जगदम्बा श्रीदेवीकी सेना नायिकाएँ हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी समग्र शक्तियोंकी ये स्वामिनी हैं । सहस्र मुखवाले शेष भगवान् भी इनके पराक्रमका बखान नहीं कर सकते ।

(मुक्तामणि प्राकार)

इसके पश्चात् मुक्ता मणियोंका प्राकार है । इसमें दसों दिशाओंके

दिक्पाल निवास करते हैं । यहाँ स्वर्णताल वृक्षोंका वन है । यहाँ के तालवृक्ष स्वर्णिम शोभा लिये हैं । इनमेंसे माध्वीक झरती रहती है । इस माध्वीककी महकसे सम्पूर्ण वन महक रहा है । यहाँ श्रीदण्डिनीदेवी (यमशक्ति) दण्ड विधान करती विराजित रहती हैं । इनके नेत्र तालमधुके सेवनसे सदा ऊन्मिषित रहते हैं । इनका मन आनन्द–सिन्धुकी ऊर्मियोंमें लहराता मस्त रहता है । ये सदा स्वप्न देखती रहती हैं स्वप्न यहाँ सूक्ष्मदशाका ही प्रतीक है । दण्ड– विधान मृत्युके उपरान्त सूक्ष्म शरीर पर ही होता है ।

(मरकतमणि प्राकार)

यहाँ भगवती भुवनेश्वरीका षट्कोण वाला यंत्र है । इस यंत्रके पूर्व कोणमें चतुर्मुख ब्रह्माजी अपनी शक्ति गायत्रीके साथ निवास करते हैं । ये कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभय मुद्रा, दण्ड एवं श्रेष्ठ आयुध धारण किये रहते हैं। भगवती गायत्रीके भी इनके समान ही आयुध है । वेद एवं सभी शास्त्र यहाँ मूर्त्तिमान विराजते हैं । सम्पूर्ण स्मृतियाँ और पुराण भी यहाँ जीवन्त स्थित हैं। इनके अतिरिक्त सम्पूर्ण व्याहृतियाँ भी यहाँ मूर्त्त रूपसे उपस्थित रहती हैं ।

इस यंत्रके नैऋत्य कोणमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करने वाली भगवती सावित्री निवास करती हैं । उनके साथ भगवान् विष्णु भी निवास करते हैं । मत्स्य, कूर्म आदि जो महा विष्णुके अवतार हैं वे सभी अपने–अपने निश्चित स्थानोंमें यहाँ निवास करते हैं।

वायव्य कोणमें भगवान् रुद्रका निवास है । वे फरसा, अक्षमाला, अभय एवं वर मुद्रा धारण किये निवास करते हैं । इनके साथ भगवती सरस्वती इसी वेषमें विराजती हैं । दक्षिणामूर्त्ति भेदसे जितने भी रुद्र हैं एवं गौरी आदि भेदसे जितनी पार्वती हैं – सभी यहाँ निवास करती हैं । चौसठ प्रकारके आगम शास्त्र एवं अन्य शास्त्र सभी मूर्त्तिमान होकर यहाँ निवास करते हैं ।

अग्निकोणमें धनके स्वामी कुबेर अपने दोनों हाथोंसे रत्नमय कलश एवं मणि करण्ड लिये रहते हैं । ये अनेक प्रकारकी महालक्ष्मियोंसे संयुक्त हैं । अपने गणों सहित ये कुबेर भगवती जगदम्बाके कोषकी रक्षा करते हैं ।

वरुण कोणमें (पश्चिम) रतिके साथ कामदेव विराजित हैं । ये अपने हाथमें पाश, अंकुश, धनुष एवं पंचबाण रखते हैं । श्रृंगार मूर्त्तिमान हुआ यहाँ निवास करता है ।

ईशान कोणमें विघ्नों पर शासन करने वाले गणेशजी भगवती पुष्टिदेवीके

सहित निवास करते हैं श्रीगणेशजीकी जितनी भी विभूतियाँ हैं, सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न यहाँ सुशोभित हैं । यहाँ जो ब्रह्मादि देवता हैं उनकी छायासे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा सत्ता पाते हैं । इसी प्रकार सभी देवताओंकी सत्ता समझनी चाहिये । इन सभीके द्वारा भगवती जगदीश्वरीकी सेवा होती रहती है।

(विद्रुम प्राकार)

इसके पश्चात् विद्रुमका प्राचीर है । इस प्रवालके प्राकारका विशुद्ध कुंकुम वर्ण है । इसके मध्य भागमें पंचभूतोंके आकाशाभिमानी, वायु अभिमानी, तेजाभिमानी, जल एवं धराके अभिमानी देवता निवास करते हैं । इनकी पाँच शक्तियाँ हैं – आकाश की गगना शक्ति है, वायुकी करालिका शक्ति है, तेजकी महोच्छुष्मा शक्ति है एवं जलकी रक्ता तथा पृथ्वीकी हृल्लेखा शक्ति है । ये सभी शक्तियाँ पाश, अंकुश, वर एवं अभय मुद्रा धारण करने वाली चतुर्भुजा हैं। ये आभूषणोंसे सदा अलंकृत रहती हैं । इनमें नूतन तारुण्यका गर्व भरा रहता है। वेषभूषामें ये भगवती जगदम्बाके समान हैं ।

श्रीमणिद्वीप धामको प्रकट करनेके पूज्य गुरुदेवके आगेके मन्त्र निम्न थे ––

(१९) ऐं ह्रीं श्रीं माणिक्य मण्डपाय नमः
(२०) ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रस्तंभ मण्डपाय नमः
(२१) ऐं ह्रीं श्रीं अमृतवापिकायैः नमः
(२२) ऐं ह्रीं श्रीं आनन्द वापिकायै नमः
(२३) ऐं ह्रीं श्रीं विमर्श वापिकायै नमः
(२४) ऐं ह्रीं श्रीं बालातपोद्वाराय नमः
(२५) ऐं ह्रीं श्रीं चन्द्रिको द्वाराय नमः
(२६) ऐं ह्रीं श्रीं महा श्रृंगार परिधायै नमः
(२७) ऐं ह्रीं श्रीं महापद्माटव्यै नमः
(२८) ऐं ह्रीं श्रीं चिन्तामणि गृहराजाय नमः
(२९) ऐं ह्रीं श्रीं पूर्वाम्नाय मय पूर्व द्वाराय नमः
(३०) ऐं ह्रीं श्रीं दक्षिणाम्नाय मय दक्षिण द्वाराय नमः
(३१) ऐं ह्रीं श्रीं पश्चिमाम्नाय मय पश्चिम द्वाराय नमः
(३२) ऐं ह्रीं श्रीं उत्तराम्नायमय उत्तर द्वाराय नमः
(३३) ऐं ह्रीं श्रीं रत्नप्रदीप वलयाय नमः
(३४) ऐं ह्रीं श्रीं मणिमय सिंहासनाय नमः
(३५) ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्ममयैक मञ्चपादाय नमः

(३६) ऐं ह्रीं श्रीं विष्णुमयैक मञ्चपादाय नमः
(३७) ऐं ह्रीं श्रीं रुद्रमयैक मञ्चपादाय नमः
(३८) ऐं ह्रीं श्रीं ईश्वरमयैक मञ्चपादाय नमः
(३९) ऐं ह्रीं श्रीं सदाशिवमयैक मञ्चपादाय नमः
(४०) ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका तल्पाय नमः
(४१) ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महोपधानाय नमः
(४२) ऐं ह्रीं श्रीं कौसुम्भास्तरणाय नमः
(४३) ऐं ह्रीं श्रीं महा वितानकाय नमः
(४४) ऐं ह्रीं श्रीं महा माया यवनिकायै नमः

(माणिक्य मण्डप)

विद्रुमके आकारके अन्तर्गत ही माणिक्य मंडप है । यह माणिक्य मंडपकी छत ऐसी ज्योतिर्मान है कि इनको देखकर ऊपर निकलने वाले भगवान् सूर्यदेवके घोड़े संध्याकाल हो गया, मानकर मध्याकाशमें ही अपनी गति धीमी कर देते हैं।

(सहस्रस्तंभ मण्डप)

श्रीदेवीभागवतानुसार विद्रुम प्राकारमें ही भगवतीके हजार–हजार स्तंभोंसे युक्त चार मण्डप हैं । पहला श्रृंगार मण्डप है, दूसरा मुक्ति मण्डप है, तीसरा ज्ञान मण्डप और चौथा एकान्त मण्डप है । इन मण्डपोंमें अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़ी चाँदनियाँ तनी हैं । भाँति–भाँतिके सुन्दर धूपसे ये मण्डप नित्य सुवासित रहते हैं । ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योके समान प्रकाशमान हैं । इन मण्डपोंके चतुर्दिक् केसर, मल्लिका एवं कुन्दकी वाटिकाएँ हैं । इन वाटिकाओंमें पुष्कल गन्धवाले, परिपूर्ण मदस्रावी असंख्य दिव्य भृंग विराजमान हैं । चारों मण्डपोंके सभी ओर महा पद्माटवी है ।

पहला श्रृंगार मण्डप है, उसके मध्य भागमें एक दिव्य सिंहासनपर देवी विराजमान हैं । वहाँ सभासदके रूपमें रहने वाले प्रधान देवता, देवांगनाएँ तथा अप्सराएँ विविध स्वरोंमें भगवती जगदम्बाके सामने गान करती हैं । दूसरा मुक्तिमण्डप है । इसके मध्यभागमें कल्याणमयी भगवती शिवा प्रत्येक ब्रह्माण्ड–निवासी भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती हैं । तीसरे मण्डपका नाम ज्ञान–मण्डप है । भगवती वहाँ विराजमान होकर ज्ञानका उपदेश करती हैं। एकान्त संज्ञक चौथे मण्डपमें भगवती जगदम्बा अनंगकुसुमा आदि सचिवा शक्तियोंके साथ बैठकर जगत्की रक्षाके विषयमें सदा परामर्श करती हैं ।

(अमृत वापिका)

श्रीत्रिपुरा रहस्य नामक ग्रन्थके माहात्म्य खण्डके अनुसार अरुणारुण वर्णका मनोमय शिखर है । सम्पूर्ण विश्व सृष्टिमें जहाँ कहीं भी मनकी सत्ता है इस मनोमय शिखरसे ही है । यहाँ इसके बीचोबीच खाईकी आकृतिकी एक अमृतसे भरी बावड़ी है । इसके तीन अंशमें जलमें पद्म प्रफुल्लित हैं और एक स्थानमें पृथ्वी है । यहाँ हंस कारण्डव, सारस और कोकपक्षी विराजित हैं । इस सुन्दर शोभायुक्त हृदमें नवरत्नोंसे विजड़ित नौकामें भगवती तारादेवी पद्मासनमें विराजित रहती हैं । ये भक्तोंको मोक्ष–प्रदायिनी हैं । इनकी नौकाके चतुर्दिक् असंख्य रत्नमयी नौकाएँ हैं । इन नौकाओंमें भगवती तारादेवीकी असंख्य शक्तियाँ सुविराजित रहती हैं । ये सभी शक्तियाँ तभी क्रियाशील होती हैं जब इन्हें जीवको तारनेकी दण्डिनी शक्ति द्वारा अनुमति प्राप्त हो जाती है । श्रीदण्डिनीशक्तिकी अनुमतिके बिना तो जीव इन तक पहुँच ही नहीं पाता ।

(आनन्द वापिका)

इस मनोमय शिखरके पश्चात् बुद्धिमय शिखर है । देव, दनुज, मानव, ऋषि, मुनि, सिद्ध कहीं भी किसी भी प्राणी में जो बुद्धिकी सत्ता है, सबका मूल उद्गम–स्थल स्रोत ये ही शिखर हैं । यह शिखर चन्द्र बिम्बके समान विशद शोभाशली है । यहाँ सम्पूर्ण मनोहारी दृश्यावलियोंसे सुशोभित आनन्दकी स्रोतस्विनी, ''आनन्दवापी'' है । यहाँ अमृतेशी देवी नौका स्थित निज स्वरूपभूता शक्तियोंसे घिरी रहती हैं । इस आनन्दवापिकामें आमोदसे परिपूर्ण सुरानन्दमयी देवी भी निवास करती हैं । अमृतेशानीदेवीकी कृपाके बिना दिव्य चिन्मयी ज्ञान–सुराका कोई भी पान नहीं कर सकता । अमृतेशानी देवी द्वारा अभिरक्षित इस आनन्दवापीको पार करना असंभव सा ही है ।

(विमर्श नाम्नी अन्तर्वापिका)

इसके आगे कृष्ण वर्ण वाला नील मेघके समान प्रकृष्ट शोभाशाली अहंकारमय प्राचीर है । विश्व–सृष्टिमें समस्त जीवोंमें जो ''अहंकार'' है, उसका उद्गम इसी प्राचीरसे है । इसके भीतर ज्ञान रूपी रससे निरन्तर भरी प्रवहमान अत्यन्त एवं शीतल विमर्श नाम्नी अन्तर्वापिका है। यहाँ इस विमर्श वापिकामें नौकामें .स्थित माहेश्वरी कुरुकुल्लादेवी विराजित हैं । उनकी आज्ञाके बिना इस रसका कियदंश भी कोई नहीं पा सकता । इस विमर्श रूपी रसका लेश मात्र भी कोई पान कर ले तो उस व्यक्तिके समस्त अज्ञान–जन्य

ताप सदा–सदाके लिये मिट जाते हैं । वह कृपापात्र जगत्तत्वका रहस्य अनावृत देखता है ।

(बाला–तपोद्वार)

इसके पश्चात् सूर्यात्मक प्राचीर है । यहाँ कमलासन पर बारह रूपधारी मूर्त्तिमान मार्तण्ड भैरव अपने गण सूर्यो सहित विराजित हैं । इनके दुर्धर्ष प्रकाश–पुञ्जोंसे यह नित्य द्योतित है । ये अनन्त सूर्योंके समान परम तेजस्वी मार्तण्ड भैरव भगवतीकी उपासना करते हुए यहाँ तप करते हैं ।

(चन्द्रिका द्वार)

यहाँ चन्द्रमाके आवरणमें ही एक श्रृंगार प्रासाद है, जो अनन्त अलौकिक विचित्रताओंको लिये है । यह प्रासाद कौस्तुभ मणियोंसे विजड़ित है । इसके मध्य मूर्त्तिमान श्रृंगार रससे परिपूर्ण एक खाई है । इसमें कौस्तुभ मणियोंसे जटित एक बड़ी नौकामें–जिसका नाम ही श्रृंगार है – भगवान् (कामदेव) कन्दर्प परम प्रेमपूर्वक भगवती रतिसे आलिंगित विराजमान हैं । ये दोनों रति–कन्दर्प भगवती त्रिपुराके अग्रगण्य भक्त हैं । ये अपने गणोंसे सेवित और सदा आनन्दित रहते हैं ।

(पद्माटवी)

इन सभी प्राचीरोंको घेरे हुए महासौरभसे पूर्ण महापद्मोंसे भरा पद्मवन है । इस पद्मवनमें जो कमल खिले हैं– उनके नाल, दण्ड, पत्र, केसर एवं कर्णिकाएँ अत्यंत ही दीर्घाकार हैं ।

(चिन्तामणि गृहराज)

इस पद्मवनमें भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीदेवीका अत्यन्त प्रकाशमान उज्ज्वल प्रभायुक्त गृह है । यह चिन्तामणियोंसे निर्मित है । यह अलौकिक विचित्रताओंसे भरा है । इसके चार द्वार हैं । इन दरवाजोंके परम पुष्ट दिव्य आधार हैं। इस गृहकी आधार भगवतीकी कला अग्नि है जो यहाँ मूर्तिमती हैं । यह चिन्तामणि गृहराज गोलाकार है और यहाँ बारह कलाओंसे युक्त सूर्य रूप पात्र रखे हैं । यहाँ एक हजार योजन विस्तार वाला षोडश कलाओंसे युक्त चन्द्रमा है । इस चन्द्रमामें पूर्ण सुस्वादु अमृतासव भरा है । अति मनोहर सुगन्ध इसमें महक रही है । इन आसवामृत तरंगोंसे क्रीड़ा करता चन्द्रमा जलयानमें आसीन भगवतीके गुण–गान गाता है ।

मूल–प्रकृति भगवती श्रीसुन्दरीके इस शक्ति तत्व किंवा उनकी दस महाविद्याएँ सोपान रूपसे यहाँ उपस्थित हैं । इनसे युक्त भगवतीका परमोच्च मंच महान् शोभा पाता है ।

इसके चार द्वार हैं । पूर्व द्वारमें पूर्वाम्नाय संज्ञक आगम प्रसिद्ध देवताओंके भव्य भवन हैं ।

(पूर्वाम्नायमय पूर्वद्वार)

यहाँ समस्त देवगण मुक्ता–पैत्र छायामें बैठे हैं एवं पद्मरागारुण वस्त्र धारण किये हैं, मुक्ताके आभरण धारण किये हैं, मालाएँ और चन्दनादि लेपन किये हैं–पाश, अंकुश, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हैं, रत्नमुकुट उनके सिर पर जगमगा रहे हैं और उस पर चन्द्रलेखा विराजित है ।

पूर्वाग्नायमय पूर्व द्वारमें गुरु, परमगुरु एवं परमेष्ठिगुरुका स्थान है । फिर महागणपति देवका निवास है । पूर्व द्वारमें कामगिरिपीठ ब्रह्मात्मशक्ति, पूर्णगिरिपीठ विष्णुरूप आत्मशक्ति एवं जालन्धरपीठमें रुद्रात्मशक्तिका निवास है ।

यहाँ शुद्ध विद्याम्बा, बाला भगवती, द्वादशार्घाम्बा, मातंगिनी देवी, हसन्ती श्यामला देवी अम्बा, श्रीशुक श्यामलाम्बा, श्रीसारिका श्यामलाम्बा, श्रीवीणा श्यालाम्बा, श्रीवेणु श्यामलाम्बा, श्रीलघु श्यामलाम्बा, गायत्र्यम्बा, क्षिप्र गणपति, सिद्ध गणपति, नवनीत गणपति, शक्ति गणपति, उच्छिष्ट गणपति, एकाक्षरी गणपति, भगवान् कार्तिकेय, सुब्रह्मण्य, स्कन्द, मृत्युञ्जय मनु, नीलकण्ठ मनु, त्र्यम्बक मनु, जातवेदो मनु, प्रत्यंगिरा मनु, ब्राह्मी प्रत्यंगिरा, नारायणी प्रत्यंगिरा, रौद्री प्रत्यंगिरा, उग्रकृत्या प्रत्यंगिरा, अथर्वण भद्रकाली प्रत्यंगिरा, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, विद्येश्वरी उन्मोदिनी देव्यम्बा आदि देवता निवास करते हैं । इन सभी देवताओंके भव्य भवन चिन्तामणियोंसे ही बने हैं । यहाँ तड़ाग पोखरे सब चिन्तामणि निर्मित हैं । इन सबके करोड़ों मंत्र यहाँ मूर्त्त हुए निवास करते है।

(दक्षिणाग्नायमय दक्षिणद्वार)

यहाँ दक्षिणद्वार गुरुमण्डल, अष्टभैरव–(महामन्थान भैरव, खचक्र भैरव, फट्कार भैरव, एकात्मानन्द भैरव, रविभक्षण भैरव, चण्ड भैरव, नभोनिर्मल भैरव, डमर भास्कर भैरव) सिद्धौघ–(महादुर्मनाम्बा सिद्ध, सुन्दर्यम्बा सिद्ध, विश्वदलनाम्बा सिद्ध, कपालिकाम्बा सिद्ध, बड़वाम्बा सिद्ध, भीमाम्बा सिद्ध, कराल्यम्बा सिद्ध, खराननाम्बा सिद्ध, शालिनाम्बा सिद्ध) बटुक त्रय–(स्कन्द वटुक, चित्रवटुक विरञ्चिबटुक) पदयुग (प्रकाश एवं विमर्श) सौभाग्य विद्याम्बा, बगलामुखी देवी, वाराही मनु, वटुक मनु, तिरस्करिणी मनु, महामाया, अघोर मनु, शरभ मनु, भेताल मनु, खड्गरावण मनु, वीरभद्र मनु, रौद्रमनु, शास्तृ मनु, पाशुपतास्त्र मनु, ब्रह्मास्त्र मनु, वायव्यास्त्र मनु, भैरव (उग्र भैरव, अंग भैरव,

अघोर भैरव, भीम भैरव, विजय भैरव, रक्त भैरव, स्वर्णाकर्षण भैरव) दक्षिणामूर्ति (मेधा दक्षिणामूर्ति, लक्ष्मी दक्षिणामूर्त्ति, कीर्त्ति दक्षिणामूर्त्ति, ज्ञान दक्षिणामूर्त्ति, साम्ब दक्षिणामूर्त्ति, वीर दक्षिणामूर्त्ति, संहार दक्षिणामूर्त्ति, अपस्मारनिवर्तक दक्षिणामूर्त्ति, विष्णु, दक्षिणाम्नाय समय विद्येश्वरी भोगिनी देव्यम्बा, आदि देवता एवं इनके सभीके मंत्र मूर्त्तिमान हुए दक्षिण द्वारमें निवास करते हैं ।

(पश्चिमाम्नाय द्वार)

पश्चिमाम्नाय के निम्न अधिदेवता हैं– गुरुमण्डल (योनि–अम्बा–दूती, योनिसिद्धनाथाम्बादूती, महायोनि अम्बादूती, महायोनि सिद्ध नाथाम्बा दूती, दिव्ययोनि अम्बादूती, दिव्ययोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, शंखयोनि अम्बादूती, शंखयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, पद्मयोनि अम्बादूती, पद्मयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती) मण्डल (वह्निमंडल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल) वीर द्वि अष्टक (सृष्टिवीरभैरव, स्थितिवीरभैरव, संहारवीरभैरव, रक्तवीरभैरव, यमवीरभैरव, मृत्युवीर भैरव, भद्रवीरभैरव, परमार्कवीरभैरव, मार्तण्डवीरभैरव, कालाग्निवीरभैरव) चौसठ सिद्ध–मंगलानाथ, चाण्डिकानाथ, ज्येष्ठानाथ, कन्तुकिनाथ, पटहानाथ, कूर्मानाथ, धनदा, गन्धा, गगना, मतंगा, चम्पका, कैवर्ता, मातंगगमना, सूर्यभक्षा, नभोभक्षा, सौतिका, रूपिका, दंष्ट्रा, धूम्राक्षा, ज्वाला, गान्धारा, गगनेश्वरा, माया, महामाया, नित्या, शान्ता विश्वा, कामा, उमा, श्रिया, सुभगा, विद्या, महाविद्या, अमृता, चन्द्रानाथ, अन्तरिक्षानाथ, सिद्धा, श्रद्धा, अनन्ता, शम्बरा, उल्का, त्रैलोक्या, भीमा, राक्षसी, मलिनानाथ, प्रचण्डानाथ, अनंगा, त्रिविधा, अनभिहिता, नन्दि, महामना, सुन्दरा, विश्वेश्वरा, काला, महाकाला, अभया, विकारा, महाविकारा, सर्वगा, सृगाला, पूतना, शर्वरी, व्योमा, पूर्णानाथ । लोपामुद्रामनु, भुवनेश्वरीमनु, अन्नपूर्णामनु, कामकलामनु, सुदर्शनमनु, गरुड़मनु, कार्त्तवीर्यमनु, नृसिंह मनु, नामत्रय मनु, (अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द) राममनु, सीतामनु, गोपालमनु, सौरमनु, धन्वन्तरिमनु, इन्द्रजालिमनु, इन्द्र, अग्नि, यम, चित्रगुप्त, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र मनु, इन्द्राक्षीमनु, दत्तात्रेय, वासुदेव, नारायण, रुद्र, विद्येश्वरी कुञ्चिकादेवी अम्बा–ये सभी देवगण अपने–अपने मंत्रों सहित पश्चिमाम्नाय रूप पश्चिम द्वार में स्थित हैं ।

(उत्तराम्नाय रूप उत्तर द्वार)

नवमुद्रा, (सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरीमुद्रा, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि) वीरावली पंचकमनु (ब्रह्म वीरावली, विष्णुवीरावली, रूद्रवीरावली, ईश्वरवीरावली, सदाशिववीरावली) तुरीयमनु, महार्घामनु, अश्वारूढ़मनु, विश्राम्बामनु, वाग्वादिनीमनु, दुर्गामनु (वन

दुर्गाम्बा, शूलिनी दुर्गाम्बा, जातवेदो दुर्गाम्बा, शान्तिदुर्गाम्बा, शबरि दुर्गाम्बा, ज्वल दुर्गाम्बा, लवण दुर्गाम्बा, दीप दुर्गाम्बा, असुर दुर्गाम्बा) कालीमनु, चण्डीमनु, नकुलीमनु, पुलिन्दिनीमनु, रेणुकामनु लक्ष्मीमनु, बागीशामनु, मातृकामनु, स्वयंवरामनु आदि देवता अपने मंत्रों सहित उत्तराम्नायमें विराजित हैं ।

यहाँ यह ध्यान करनेका विषय है कि पञ्च दशाक्षरी मंत्रोपासकोंके लिये मात्र चतुराम्नायपूजाका विधान है, किन्तु जो साधक परम्परासे षोड़शाक्षरीमंत्र–प्राप्त हैं, उन्हें षड़ाम्नाय पूजाका विधान है । पू. गुरुदेव षोड़शाक्षरी मंत्रोपासक थे, अतः उन्होंने षड़ाम्नाय देवताओंका भी वर्णन किया था, जो यहाँ दिया जा रहा है ।

(ऊर्ध्वाम्नाय रूप ऊर्ध्व द्वार)

अमृतार्णवमध्योद्यत्स्वर्णदीपे मनोरमे,
कल्पवृक्षवनान्तस्थे नवमाणिक्यमंडपे ।।
नवरत्नमय श्रीमत्सिंहासनगताम्बुजे,
त्रिकोणान्त समासीनं चन्द्रसूर्यायुतप्रभम् ।।
अर्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्त विभूषणं,
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम् ।।
मन्दस्मित मुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरं,
दिव्याम्बर सगालेपं दिव्याभरणभूषितम् ।।
पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशुलं पुस्तकं करैः,
विद्यासंसदि विभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणं ।।
महाषोढोदिता शेष देवता गण सेवितं,
एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्धनारीश्वरं शिवम् ।।
पुरुषं वा स्मरेद्देवि स्त्री रूपं वा विचिन्तयेत्
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम् ।।
सर्वतेजोमयं ध्यायेत् सचराचरविग्रहम् ।।

भगवान् अमृतसमुद्रके मध्य परम मनोरम स्वर्णद्वीपमें विराजते हैं । कल्पवृक्षोंके वनमें नवमाणिक्य मंडपमें, नवरत्नमय श्रीमत्सिंहासनमें अम्बुजके ऊपर त्रिकोणान्तमें करोड़ों चन्द्र–सूर्यकी प्रभाको फीकी करने वाली तेजस्वितासे युक्त हैं । वे अपने आधे अंगमें भगवती पराम्बा माँको विराजित किये हैं, उनके आभूषण आधे–आधे अंगों के भिन्न–भिन्न हैं, वे कोटि कन्दर्पोके समान लावण्यशाली हैं एवं सदा सोलहवर्षके ही रहते हैं ।

वे दिव्य अम्बर (वस्त्र) धारण किये हैं एवं कुंकुम–केसरका घोल लेप किये हैं । उनके आभूषण भी परमदिव्य हैं । उनके आयुधरूपमें चारों हाथोंमें पान–पात्र, चिन्मुद्रा (ज्ञानमुद्रा), त्रिशूल एवं पुस्तक हैं । सम्पूर्ण विद्याओंकी सभामें वे सुशोभित हैं और सदानन्द उनके मुख एवं नेत्रोंमें छलक रहा है । वे महा षोढासे उत्पन्न अशेष देवतागणों द्वारा सेवित हैं । इस प्रकार अपने हृदयकमलमें अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये । भगवान्‌को पुरुषमें एवं भगवतीको स्त्री रूपमें ही चिन्तन करें अथवा दोनोंको ही निष्कल, सच्चिदानन्द लक्षणोंसे युक्त सर्वतेजोमय चर–अचर सम्पूर्ण विश्वमूर्तिके रूपमें ध्यान करें ।

इस ऊर्ध्वाम्नायमें मालिनी गुरुमण्डल, मन्त्रराज पराषोडशी, पराभट्टारिका मनु, पराशांभवमनू, पराशांभवी देवी, प्रासाद पराम्बा, पराप्रासाद पराम्बा, दहरविद्याम्बा, हंसः महावाक्य, (प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म) पंचाक्षरी (ॐ नमः शिवाय), शक्ति पंचाक्षरी (ॐ ह्रीं नमः शिवाय) तारक मंत्र, (ॐ ह्रीं) अनुग्रहकर्त्ता सदाशिव (ईशानः सर्व विद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोऽम् आदि देवता निवास करते हैं । इनके सभीके मूल मंत्र भी यहाँ निवास करते हैं ।

(अनुत्तराम्नाय)

इसके उपरान्त अनुत्तराम्नाय रूप अनुतर द्वार है । यहाँ महापादुका (श्रीविद्यानन्दनाथात्मक चर्यानन्दनाथ पादुका) सम्प्रदायपादुका (अमृतवर्षिणी पादुका परमेश्वरी), कादि विद्या गुरु परम्परा (परप्रकाशानन्दनाथ, परशिवानन्दनाथ, पराशक्त्यम्बा, कौलेश्वरानन्दनाथ, शुक्लदेव्यम्बा, कुलेश्वरानन्दनाथ, कामेश्वरी अम्बा, भोगानन्दनाथ, क्लिन्नानदनाथ, सहजानन्दनाथ, गगनानन्दनाथ, विश्वानन्दनाथ, विमलानन्दनाथ, मदनानन्दनाथ, भुवनानन्दनाथ, लीलाम्बा, स्वात्मानन्दनाथ, प्रियानन्दनाथ) कामराज चरण (महाप्रकाशपरिपूर्णानन्दनाथ पादुका, रक्तचरण श्रीपादुका, रक्तचरणाम्बा, शुक्लचरण, शुक्लचरणाम्बा, मिश्रचरण, मिश्र चरणाम्बा, निर्वाणचरण,, निर्वाणचरणाम्बा), पंचाम्बा (आदिनाथ, व्योमातीताम्बा, आदिनाथ, व्योमेश्वरी अम्बा, अनामयानन्दनाथ व्योमगाम्बा, अनन्तानन्दनाथ व्योमचारिणी अम्बा, चिदाभास व्योमस्थाम्बा) मूलविद्यायें, (ह्रीं मूलविद्याम्बा, प्रासाद परामूल विद्याम्बा, अतिरहस्य योगिनी मूल विद्याम्बा, शाम्भवी मूल विद्याम्बा, ह्रल्लेखामूल विद्याम्बा, समय विमला मुल विद्याम्बा, परबोधिनी मूल विद्याम्बा, कौल पञ्चाक्षरी मूल विद्याम्बा, चैतन्य मूल विद्याम्बा, शांभवानन्द नाथानुत्तरकौलिनी मूल विद्याम्बा,

गुरूत्तम विमर्शिनी मूल विद्याम्बा, अनामाख्य मूल विद्याम्बा, संकेतसार मूल विद्याम्बा, अनुत्तर वाग्वादिनी मूल विद्याम्बा), पञ्चदशाक्षरी, महाषोड़शी, पूर्तिविद्या, षड़ाधार विद्यामनु, प्रकाशचरण एवं विमर्श चरण, अनुत्तर शांकरी अम्बा, आदि देवगण एवं इनके मंत्र मूर्तिमान निवास करते हैं ।

ऐसा विलक्षण परम शक्तिसम्पन्न पू. गुरुदेवका मातृमन्दिर था, जो प्रतिदिन पूजा के समय उनके सम्मुख "ऐं ह्रीं श्रीं" त्र्यक्षरी प्रणव मन्त्रसे प्रकट होता था, उनकी पूजाकाल तक स्थित रहता था, एवं तब वह अपने साथ प्रकट हुए सभी सृष्टिकी देव–शक्तियों, मंत्रशक्तियों के सहित अपनी महिमामें विलीन हो जाता था ।

आम्नायों का वर्णन करने के पश्चात् पू. गुरुदेव मंत्र बोलने लगे–

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्न प्रदीप वलयाय नमः
२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिमय सिंहासनाय नमः
३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्ममयैक मञ्चपादाय नमः
४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विष्णुमयैक मञ्चपादाय नमः
५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रुद्रमयैक मञ्चपादाय नमः
६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईश्वरमयैक मञ्चपादाय नमः
७. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सदाशिवमयैक मञ्चपादाय नमः
८. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका तल्पाय नमः
९. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महोपधानाय नमः
१०. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका कौसुम्भास्तरणाय नमः
११. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महावितानकाय नमः
१२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महामायायवनिकायै नमः

श्रृंगार मण्डपके मध्यभागमें एक परम दिव्य मणिमय सिंहासनमें भगवती विराजमान हैं । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर ये चारों देवता उस ब्रह्ममयैक मंच के चार पाये हैं । भगवान् सदाशिवको उस मञ्चका पटरा कहा जाता है । उस मञ्चके ऊपर महान् देवता परम आदरणीय भगवान् कामेश्वर विराजित हैं । सृष्टिके आदि में अपनी लीला करनेके लिये स्वयं भगवती ही दो रूपोंमें विराजित हुईं । उस समय दाहिने भागमें भगवान् कामेश्वर एवं बायें भागमें शबल ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती कामेश्वरी प्रकट हुईं । भगवतीके अर्धांग स्वरूप वे ही ये महान् ईश्वर हैं । कामदेवके मदका मर्दन करनेमें परम कुशल ये महेश्वर करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर हैं । सर्वोपरि उन महान् देवेश्वरकी आयु सदा सोलह वर्षकी ही रहती है । वे करोड़ों सूर्योंके समान

प्रकाशमान हैं । शीतल ऐसे हैं मानो करोड़ों चन्द्रमा । विशुद्ध स्फटिक मणिके समान दैदीप्यमान हैं । उनके श्रीविग्रहसे शीतल प्रकाश फैलता है । उनके वामांगमें भगवती विराजमान हैं ।

इस मणिमय सिंहासन पर भगवान् सदाशिवरूप पटरेपर हंस के सुकोमल सुन्दर पंखों का बिस्तर (तल्प) है, और 'अहं सः' यह ज्ञान ही वहाँ पर उपधान (तकिये हैं) । इसके ऊपर कुसुम्भी रंगका आस्तरण बिछा है । इस सिंहासन पर अनन्ततागुणयुक्त चन्दौवा, बितान तना है एवं महामायाकी यवनिका पड़ी हुई है । महामायारूप यवनिकाके हटनेके बिना भगवतीके दर्शन असंभव हैं ।

इसके पश्चात् पूज्य गुरुदेव भगवतीके श्रृंगारका वर्णन करने लगे । नवरत्नोंसे निर्मित करधनी भगवतीके कटिभागमें सुशोभित है । संतप्त सुवर्ण और वैदूर्य मणिसे सम्पन्न बाजूबन्द देवीकी भुजाओंको सुशोभित किये हैं । जिनकी आकृति श्रीचक्र जैसी है, ऐसे छतरीवाले कर्णफूल उनके कानोंमें विधृत हैं । इनकी दमकसे भगवती का मुखकमल दैदीप्यमान है । अर्धचन्द्रमा उनके मस्तक पर सुशोभित है परन्तु भगवतीके ललाटकी शोभा उसके स्वरूपको तुच्छ बनादेरही है । बिम्बफलको तिरस्कृत करनेवाले उनके लाल–लाल ओठ हैं और विशुद्ध ज्ञानकी ज्योति भगवतीकी दंत–पंक्तिसे छिटक रही है । कुंकुम एवं कस्तूरीका लेप उनके सर्वांगोमें है । इसीका तिलक भी वे अपने ललाट पर लगाये हैं । उनके परम सुन्दर त्रिनेत्र हैं । चन्द्रमा एवं सूर्यकी आकृति वाली दिव्य चूडामणि मस्तक पर धारण किये हैं । शुक्र नक्षत्रके समान परम स्वच्छ नासिका भूषण है, उनका कण्ठदेश, अनमोल मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित है । उनके मुखकमल पर अलकावली छायी है । चन्दन–पंक, कर्पूर, कुंकुम एवं कस्तूरीकी सममात्राके लेपको वे अपने वक्षोजों पर लेप किये हैं । उनकी ग्रीवा शंखकी आकृतिकी परम सुन्दर है ।

भगवतीके मुख पर छितराती उनकी अलकावलिसे ऐसी निर्मल सुगन्ध फैलरही है, जिससे भ्रमर चतुर्दिक् मँडराते गुञ्जार कर रहे हैं । मस्तक अमूल्य रत्नोंका मुकुट है । कलंककी कालिमासे रहित चन्द्रमाकी भाँति स्वच्छ उनका मुखमण्डल है । गंगाकी जल तरंगोंकी तरह सुन्दर नाभि है । मण्यिोंसे जटित मुद्रिका वे धारण किये हैं । कमलकी शोभाको हेय बनाने वाले तीन नेत्र हैं, जो उनकी मनोहरता को सहस्र गुणी कर रहे हैं । पद्मराग मणिके समान उनकी उज्वल कान्ति है । रत्ननिर्मित किंकिणी और

कंकणसे वे विचित्र शोभा शालिनी हो रही हैं । मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें जो शोभा है वह सब शोभा उनके चरण–नखोंकी ज्योतिके सम्मुख तुच्छ है । उनकी कंचुकीमें असंख्य अनमोल रत्न प्रकाश फैला रहे हैं । धम्मिल मल्लिका पुष्पोंसे गुँथी है, और उसमें अनमोल रत्न समूह विजड़ित हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं और उनमें पाश, अंकुश, इक्षुधनु और पुष्पबाण सुशोभित हैं । उनका मधुर स्वर इतना सुमधुर है कि अनन्त वीणाओंसे निस्सृत राग उस मधुरताके सम्मुख तुच्छ हो जाते हैं । इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तियोंको वे आत्मसात् किये हैं । लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्त्ति, क्रान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि एवं मेधा–ये मूर्त्तिमती होकर भगवतीके चँवर डुलाती हैं । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दौग्धी, अघोरा, अमंगला, ये नौ पीठ–शक्तियाँ भगवती पराम्बाकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं । शंखनिधि, एवं पद्मनिधि–ये निधियाँ भगवतीके पार्श्वमें विद्यमान हैं । नवरत्नवहा, काञ्चनस्रवा एवं सप्तधातुवहा, संज्ञक नदियाँ सुधासिन्धुमें मिल रही हैं । इन्ही भगवतीके संयोगसे भगवान् कामेश्वरको सर्वेश्वर होनेका सौभाग्य मिला है ।

अथ महायागक्रमः

{भावनोपनिषद् प्रयोगविधि समेत}

अधिकांशतः सन्यासी परिव्राजक श्रीविद्योपासक श्रीक्रमानुसार बाह्य क्रियात्मक पूजा सम्पादित करनेमें असमर्थ रहते हैं, वे न्यासपद्धतिसे महायागक्रमानुसार भावना पूजा किया करते हैं । पू. गुरुदेव भी अपने काष्ठमौन कालमें जब उन्होंने सम्पूर्ण क्रिया त्याग कर दी थी, भावनोपनिषद्के महायाग क्रमानुसार ही पूजा सम्पादित करते थे । पहले यह पूजा प्रतिदिन ही सम्पादित होती थी, तत्पश्चात् जब पू. गुरुदेव अपने भावराज्यमें सर्वथा ही डूब गये और उन्हें बाह्य संसारका होश ही नहीं रहता था, उस समय प्रति शुक्रवारके दिन वे यह महायाग क्रम पूजन सम्पादित कर लेते थे । पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस भावनोपनिषद्के तत्वमें पूर्ण सिद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे और निरन्तर अखण्ड महात्रिपुरसुन्दरी भावमें ही रहते थे ।

यह बात साधकोंके सम्मुख और स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि पू. गुरुदेवकी विलक्षण अद्वैतसिद्ध दृष्टि थी । उनके लिये भगवती श्रीराधा ही सर्वांशतः भगवती त्रिपुरसुन्दरी थीं । गौड़ीय आचार्योंने जैसे रुक्मिणीजीको चन्द्रावली एवं श्रीमती सत्यभामाजीको भगवती राधारूपमें मान्यता दी है, पू. गुरुदेवकी ठीक मान्यता थी– श्रीराधा ही ऐश्वर रूपमें भगवती आद्याशक्ति त्रिपुरसुन्दरी हैं । अतः उनके लिये "मैं राधा हूँ" यह कहना और "मैं ही महालक्ष्मी कमला" अथवा "मैं ही महात्रिपुरसुन्दरी हूँ" यह कहना कोई भेदमूलक उक्ति नहीं थी ।

मुझे तो अनेकों बार पू. गुरुदेवने यही कहा है – "अरे ! तू क्यों भगवतीकी उपासनाके लिये लालायित है, मेरा यह देह ही मणिद्वीपधाम अथवा श्रीचक्रराज है और मैं ही भगवती त्रिपुरसुन्दरी हूँ। कर ले मेरी आराधना ।" – वे यह कहते हुए अपने वाम चरण बढा देते थे । वे कहते – "मेरा वामचरण भगवती कामेश्वरी है और दक्षिण चरण भगवान् कामेश्वर है ।" कभी यदि भूलसे प्रमादवश मैं उनके एक ही चरणमें प्रणाम कर लेता, तो वे दूसरा चरण बढ़ाकर कहते – "मूर्ख ! इस चरणको प्रणाम नहीं किया ? अरे ! शिवस्वरूप मेरे इस चरणको प्रणाम कर ।"

वैसे तो प्रत्येक श्रीसुन्दरी विद्योपासक ऐसी ही भावना करता है, परन्तु साधकोंकी भावना मात्र वाचिक अथवा भावुक कल्पना भर होती है । एक भूखा प्राणी मात्र कल्पना करे कि मैं षट्रस भोजन कर रहा हूँ, इससे जैसे उसकी क्षुधा निवृत्त नहीं होती, ठीक इसी प्रकार मात्र शेखचिल्लीकी कहानीकी तरह उड़ान भरने वाले और सत्य वस्तुको प्राप्त किये प्राणीमें जितना अन्तर है, वैसी ही बात पू. गुरुदेवकी सिद्ध स्थिति तथा नये उपासककी भावनामें अन्तर मान लेना

चाहिये। पू. गुरुदेव जब "मैं ही आद्याशक्ति त्रिपुरा हूँ" – यह कहते थे तो वहाँ वे भगवतीके पूर्ण स्वातंत्र्यमूलक अनन्त विमर्श शक्तियोंका अपनेमें पूर्ण प्रकाश अनुभव करते थे । उनकी भावना मात्र थोथी काल्पनिक उडान नहीं थी। जब वे ऐसा बोलते थे, उनमें उस समय भगवती आद्याशक्तिकी सम्पूर्ण शक्तियाँ अनुगत होती थीं और वे सृष्टितंत्रका अनन्त मंगल करनेकी अपनेमें सामर्थ्य सँजोये रहते थे । उस काल में वे एक शरीरधारी कीड़े नहीं होते थे । विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्रादि ईश्वरोंके पूज्य पद पर प्रतिष्ठित बैठे होते थे ।

यहाँ यह बात सदा ध्यानमें रखनेकी है कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा पराम्बा भगवतीके साक्षात्कारप्राप्त पूर्ण सिद्ध महापुरुष थे ।

यह भावनोपनिषद् भगवती पराम्बाके पूर्ण कृपापात्र महर्षि अथर्वण पर भगवतीकी कृपासे प्रकाशित हुआ था । इसलिये इस उपनिषद् के महर्षि अथर्वण ही ऋषि हैं । श्रीदेव्यथर्वशीर्ष नाम श्रीदेव्युपनिषद्के भी ये ही अथर्वण महर्षि प्रणेता हैं । श्रीविद्योपासकोंकी दृष्टिमें भावनोपनिषद् इतना ही महत्वपूर्ण है, जितना श्रीदुर्गासप्तशतीके उपासकोंके लिये देव्यथर्वशीर्ष है ।

पू. गुरुदेव कादि विद्योपासक थे, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने जब साक्षात् प्रकट होकर उन्हें श्रीविद्योपासनाका आदेश दिया था, उस समय पू. गुरुदेवने भगवान् कामदेवको प्राप्त 'श्रीसौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावली' से ही उपासना प्रारम्भकी थी । यह स्तोत्र भी श्रीपोद्दार महाराजने ही पू. गुरुदेवके पास भेजा था। पू. गुरुदेव तो चिन्तामग्न थे कि भगवान् श्रीकृष्णके आदेशानुसार वे इस उपासनाको कैसे प्रारंभ करें । उसी दिन श्रीपोद्दार महाराजने मद्राससे प्रकाशित एक पुस्तक उनके पास यह कहकर भेजी थी कि संभव है, यह पुस्तक उनके कोई कामकी हो । पू. गुरुदेवने ज्योंही पुस्तक खोली, उन्हें यह उपरोक्त स्तोत्र दृष्टिगोचर हुआ । पू. गुरुदेव इस स्तोत्रको पढ़ रहे थे, तभी पू. गुरुदेवकी हृदयस्थ श्रीकृष्ण मूर्त्ति मुसका उठी । पू. गुरुदेवने उनकी सम्मति मानकर सौभाग्य–अष्टोत्तरशत–नामावलि–स्तोत्रके हजारों पाठ किये थे । बादमें लगभग सात वर्ष तक पू. गुरुदेवने चतुःप्रहर भगवती श्रीललिताकी स्वरचित सहस्र नामावलिसे अर्चनाकी थी । पू. गुरुदेवकी स्वयं रचित सहस्रनामावलि पुस्तकाकार रूपमें गीता–वाटिकामें है । यह श्रीपोद्दार महाराजके घरमें उनके नित्य पूजित ठाकुरोंके साथ पूजित होती है । कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि पू. गुरुदेव ऋषि थे और मंत्रार्चनमें अपने ही रचित मंत्र प्रयोग करते थे ।

कादि विद्याके श्रीभास्कर भट्ट प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं । श्रीअन्नपूर्णा मन्दिर, काशीमें उनके द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीचक्रराज यंत्र हैं जो भगवान नर्मदेश्वरके शिरोदेशमें अंकित हैं । इस यंत्रको सच्चे साधक साक्षात् देवता तुल्य महत्व देते

हैं । पू. गुरुदेव जब श्रीपोद्दार महाराजके साथ गीताप्रेस, गोरखपुरसे निकली दूसरी तीर्थयात्रा ट्रेनमें काशी पहुँचे थे तो श्रीअन्नपूर्णा मन्दिरमें उन्हें भगवती अन्नपूर्णाके दर्शन हुए थे । इसी यात्रामें पू. गुरुदेवने लेखकके पूर्वाश्रमके पू. मामाजी श्रीचिम्ननलालजी गोस्वामी द्वारा इस महासिद्ध श्रीयंत्रराजका पूजन कराया था । इसी पूजनके क्रममें यह उपनिषद् एवं ये प्रयोग विधिके मंत्र पू. गुरुदेवने मेरे मामाजीको बताये थे । पू. मामाजीसे पूर्ण श्रीक्रमकी क्रिया न कराकर भावनोपनिषद् द्वारा ही उन्होंने पूजा सम्पादित करायी थी । जब यह तीर्थयात्रा मद्रास पहुँची तो वहाँ भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूजन इसी भावनोपनिषद्की इसी प्रयोग पद्धतिसे हुआ था । इसी पूजा प्रसंगमें ही पू. गुरुदेव ने यह रहस्य भी मेरे मामाजीके सम्मुख प्रकट किया था कि क्रिया पूजाके अभावमें वे इसी प्रयोग पद्धतिसे जो उन्हें कण्ठस्थ है, पूजा करते हैं । मेरे मामाजीने सन् १९५८ ई. में जब पू. गुरुदेव काण्ठमौन की गंभीर स्थितिमें थे एवं श्रीपोद्दार महाराजके साथ रतनगढ़ चले गये थे, तो यह पूजा पद्धति मुझे दिखायी थी और मैंने उसे अपनी कापीमें नोट कर ली थी ।

इसीलिये लेखकको ज्ञान था कि सब पूजाएँ विसर्जित करनेके उपरान्त पू. गुरुदेव इस महायाग पद्धतिसे ही श्रीविद्या–उपासना करते थे । इस भावनोपनिषद्के कुल छत्तीस सूत्र हैं, जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है ।

।। अथ श्री भावनोपनिषद् ।।

सूत्र {१}

श्रीगुरुस्सर्वकारणभूता शक्तिः

{श्रीगुरु ही सर्वकारणभूता शक्ति हैं}

{प्रयोग विधि}

मूलसे प्राणायाम करके ऋष्यादि न्यास करें, इसके उपरान्त विवेक–वृत्ति अवच्छिन्न चिच्छक्ति स्वरूप सुषुम्ना रूप भगवान् दक्षिणामूर्त्ति गुरुको नमस्कार करें।

सूत्र {२}

तेन नवरन्ध्ररूपो देहः ।।

भगवान् गुरुदेवसे ही यह नवरंध्रों युक्त देह है ।

ब्रह्मरंध्रको स्पर्श करके यह भावना करें, शरीरमें नौ ही नाड़ियाँ हैं एवं नौ रंध्र हैं वे ही कादि सम्प्रदायके नौ गुरु हैं । ये नौ गुरु हैं ––प्रकाश, विमर्श, अनन्तत्व, ज्ञान, सत्य, पूर्णत्व, स्वभाव, प्रतिभा एवं सहजता ।

मंत्र {१}

दक्षश्रोत्ररूपपयस्विन्यात्मने प्रकाशानन्दनाथाय नमः

{दक्षिण श्रोत्र रूप रंध्र {छेद} पयस्विनी नाड़ी सहित प्रकाशानन्दनाथ रूप गुरु हैं, उन्हें नमस्कार है ।}

{२} वामश्रोत्ररूपशंखिन्यात्मने विमर्शानन्दनाथाय नमः ।

{३} जिह्वा {रंध्र} रूप सरस्वत्यात्मने अनन्तानन्दनाथाय नमः ।

{४} दक्षनेत्र {रंध्र} रूप पूषात्मने श्रीज्ञानानन्दनाथाय नमः ।

{५} वामनेत्र {रंध्र} रूपगान्धार्यात्मने श्रीसत्यानन्दनाथाय नमः ।

{६} छत्ररूप {रंध्र} कुह्वात्मने श्रीपूर्णानन्दनाथाय नमः

{७} दक्षनासा रूप {रंध्र} पिंगलात्मने {नाड़ी} स्वभावानन्दनाथाय नमः ।

{८} वामनासारूप इडात्मने प्रतिभानन्दनाथाय नमः

{९} पायुरूपालम्बुसात्मने सहजानन्दनाथाय नमः ।

{इति तत्तत् स्थानानि संस्पर्श्य}

{इस प्रकार इन–इन स्थानोंको संस्पर्श करें}

{सूत्र ३ एवं ४}

{३} नवचक्ररूपं श्रीचक्रम् ।

{४} वाराहीपितृरूपा, कुरुकुल्ला वलिदेवता माता

{नवचक्र रूप देह ही श्रीचक्रराज है, वाराही पिता स्वरूप हैं एवं वलिदेवता कुरुकुल्लादेवी माता स्वरूपा हैं}

{प्रयोग}

नवचक्ररूपश्रीचक्रात्मने देहाय नमः

{नवचक्ररूप श्रीचक्र स्वरूप इस देहको नमस्कार है ।}

पितृरूप मांसाद्यवयवात्मने वाराह्यै नमः

{पितृ रूप मांसादि अवयव स्वरूप भगवती वाराहीको नमस्कार है}

मातृरूप अस्थ्याद्यवयवात्मने बलिदेवतायै कुरुकुल्लायै नमः ।

{मातृ रूप अस्थि आदि अवयवोंकी स्वरूपभूता भगवती बलिदेवता कुरुकुल्लादेवीको नमस्कार है ।}

{इति त्रिर्व्यापकं कृत्वा}

{इसी प्रकार तीन बार सम्पूर्ण शरीरमें व्यापक रूपसे ऐसी भावना करें}

सूत्र {५}

पुरुषार्थास्सागरा :

{चारों पुरुषार्थ ही मणिद्वीप धामको घेरे चार सागर हैं }

{प्रयोग}

{१} *देहपश्चाद्भागरूपधर्मात्मने इक्षुसागराय नमः ।*

{देहकी पीठाादि पीछेका भाग धर्मस्वरूप इक्षुसागर है, उसे नमस्कार है}

{२} *देहदक्षिणभागरूपार्थात्मने सुरासागराय नमः ।*

{देहका दाहिना भाग अर्थस्वरूप सुरासागर है, उसे नमस्कार है}

{३} *देहप्राग्भागरूपकामात्मने घृतसागराय नमः*

{देहका आगेका भाग कामस्वरूप घृतसागर है, उसे नमस्कार है }

{४} *देहोदग्भागरूपमोक्षात्मने क्षीरसागराय नमः*

{देहका ऊपरका भाग मोक्षस्वरूप क्षीरसागर है, उसे नमस्कार है}

सूत्र {६}

देहात्मने नवरत्नद्वीपाय नमः

{देह रूप नवरत्नद्वीप {मणिद्वीप}श्रीधामको नमन ।

इति त्रिर्व्यापकं कृत्वा

{इस प्रकार तीन बार सम्पूर्ण शरीरमें इस भावनाको व्याप्त करें }

{प्रयोग विधि}

१} *मांसात्मने पुष्परागरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मांस रूप पुष्पराग रत्नद्वीप को नमस्कार}

२} *रोमात्मने नीलरत्नद्वीपाय नमः ।*

{रोम रूप नीलरत्न द्वीपको नमस्कार}

३} *त्वगात्मने वैवूर्यरत्नद्वीपाय नमः ।*

{त्वचारूप वैदूर्यरत्न द्वीपको नमस्कार}

४} *रुधिरात्मने विद्रुमरत्नद्वीपाय नमः ।*

{रुधिर रूप विद्रुम रत्न द्वीपको नमन}

५} *शुक्रात्मने मौक्तिकरत्नद्वीपाय नमः ।*

{शुक्ररूप मौक्तिक रत्न द्वीपको नमन}

६} *मज्जात्मने मरकतरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मज्जारूप मरकत रत्न द्वीपको नमन}

७} *अस्थ्यात्मने वज्ररत्नद्वीपाय नमः ।*

{अस्थिरूप हीरा रत्न द्वीपको नमस्कार}

८} *मेद आत्मने गोमेदकरत्नद्वीपाय नमः ।*

{मेदरूप गोमेदकरत्नद्वीप को नमन}

९} *ओजात्मने पद्मरागरत्नद्वीपाय नमः ।*

{ओज स्वरूप पद्मराग रत्नद्वीपको नमन}

सूत्र {७}

त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्त :

{त्वचादि सातों धातुएँ रोम सहित चक्रेश्वरी अधिदेवता रूप हैं}

{प्रयोग}

१} *मांसाधिदेवतायै कालचक्रेश्वर्यै नमः*

{मांसकी अधिदेवता कालचक्रेश्वरीको नमस्कार}

२} *रोमाधिदेवतायै रुद्रचक्रेश्वर्यै नमः*

{रोमकी अधिदेवता रुद्र चक्रेश्वरीको नमस्कार}

३} *त्वगधिदेवतायै मातृचक्रेश्वर्यै नमः*

{त्वचाकी अधिदेवता मातृचक्रेश्वरीको नमस्कार}

४} *रुधिराधिदेवतायै रत्नचक्रेश्वर्यै नमः*

{रुधिरकी अधिदेवता रत्नचक्रेश्वरीको नमस्कार}

५} *शुक्राधिदेवतायै दशाचक्रेश्वर्यै नमः*

{शुक्रकी अधिदेवता दशाचक्रेश्वरीको नमस्कार}

६} *मज्जाधिदेवतायै गुरुश्चक्रेश्वर्यै नमः*

{मज्जाकी अधिदवेता गुरुचक्रेश्वरीको नमस्कार}

७} *अस्थ्यधिदेवतायै तत्वचक्रेश्वर्यै नमः*

{अस्थिकी अधिदेवता तत्वचक्रेश्वरीको नमन}

८} *मेदोऽधिदेवताये ग्रहचक्रेश्वर्यै नमः*

मेदकी अधिदेवता ग्रहचक्रेश्वरी को नमन}

९} *ओजोऽधिदेवतायै मूर्त्तिचक्रेश्वर्यै नमः*

{ओजकी अधिदेवता मूर्त्ति चक्रेश्वरीको नमस्कार}

{मतान्तरमें इन चक्रेश्वरियोंके निम्न नाम भी हैं }

त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरासिद्धा, त्रिपुराम्बा एवं महात्रिपुरसुन्दरी ।

सूत्र {८}

संकल्पाः कल्पतरवः तेजः कल्पकोद्यानम्

{अपने संकल्प ही कल्पतरु वृक्ष है और अपना तेज कल्पतरु वाटिका है}

{प्रयोग}

संकल्पात्मभ्यः कल्पतरुभ्यो नमः तेज आत्मने कल्पकोद्यानाय नमः

{अपने संकल्पोंको कल्पतरु वृक्ष मानकर नमन करें, अपने तेज–समूहको कल्पतरु वाटिका मानकर नमस्कार करें}

सूत्र {९}

रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाः ।

{रसनासे अनुभव होने वाले मधुर, अम्ल, तिक्त, कटु, कषाय, लवण इन छः रसोंको ही छः ऋतु जाने}

{प्रयोग}

१} *मधुररसात्मने वसन्तर्तवे नमः*

{मधुर रस रूप वसन्त ऋतुको नमस्कार है}

२} *अम्लरसात्मने ग्रीष्मर्तवे नमः*

{अम्ल रस रूप ग्रीष्म ऋतुको नमस्कार है}

3} *तिक्तरसात्मने वर्षर्तवे नमः*

{तिक्त रस रूप वर्षा ऋतुको नमस्कार है}

४} *कटुरसात्मने शरदृतवे नमः*

{कटु रस रूप शरद ऋतुको नमस्कार है}

५} *कषायरसात्मने हेमन्तर्तवे नमः*

{कषाय रस रूप हेमन्त ऋतुको नमस्कार है}

६} *लवणरसात्मने शिशिरर्तवे नमः*

{लवण रस रूप शिशिर ऋतुको नमस्कार है}

सूत्र {९}{अ}

इन्द्रियात्मभ्योऽश्वेभ्यो नमः ।

इन्द्रियार्थात्मभ्यो गजेभ्यो नमः ।।

करुणात्मिकायैतोयपरिखायै नमः ।

ओजःपुंजात्मने माणिक्यमंडपाय नमः ।।

{इन्द्रियाँ ही भगवतीके रथके अश्व हैं एवं इन्द्रियोंके अर्थ विषय भगवतीके हाथी हैं। अपने भीतर जो करुणा उत्पन्न होती हैं, वह जलसे भरी खाई {परिखा} है और जो ओजसमूह है वह माणिक्यमंडप है}

सूत्र {१०}

ज्ञानमर्घ्यम् ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानां

अभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् ।

{ज्ञान अर्घ्य है, ज्ञेय हवि है, ज्ञाता होता है तथा ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेयमें जो अभेद भावना करना है, वही श्रीचक्रराज पूजन है}

{प्रयोग}

ज्ञानात्मने विशेषार्घ्याय नमः

{अपने ज्ञानको ही विशेष अर्घ्य समझें}

ज्ञेयात्मने हविषे नमः

{ज्ञेयको हविष्य सामग्री माने}

ज्ञात्रात्मने होत्रे नमः

{ज्ञाताको होम करने, वाला होता समझे}

चिदात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः

{चिदात्मा रूपमें भगवती महात्रिपुरीसुन्दरीको ही जाने}

इस प्रकार अनुसन्धानपूर्वक अपने नाम रूपकी विलुप्तताका अनुभव करे एवं चिन्मात्र रूपताका अनुभव करता हुआ एक क्षण शान्त विश्राम करे तत्पश्चात् पञ्चदश नित्याओं का यजन करे ।

हृदि हस्तं निधाय {अपने हाथको हृदयमें रखें}

चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने प्रतिपत्तिथिरूप कामेश्वरीनित्यायै नमः

{चौदहसौ चालीस श्वासरूप प्रतिपदा तिथि स्वरूप भगवती कामेश्वरी नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने द्वितीयातिथिरूप भगमालिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासरूप द्वितीया तिथि स्वरूप भगमालिनी नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने तृतीयातिथिरूप नित्यक्लिन्नानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप तृतीया तिथि रूप नित्यक्लिन्ना नित्याको प्रणाम}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेचतुर्थीतिथिरूप भेरुण्डानित्यायै नमः

{इसके बादकी चौदहसौ चालीस श्वास रूप चतुर्थी तिथि रूप भेरुण्डा नित्याको नमस्कार}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने पंचमीतिथिरूप बन्हिवासिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप पंचमी तिथि रूप बन्हिवासिनी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मने षष्ठीतिथिरूप महावज्रेश्वरीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप षष्ठी तिथि रूप महावज्रेश्वरी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेसप्तमीतिथिरूप शिवदूतीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात की चौदहसौ चालीस श्वास रूप सप्तमी तिथि रूप शिवदूती नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेअष्टमीतिथिरूप त्वरितानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप अष्टमी तिथि रूप त्वरिता नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेनवमीतिथिरूप कुलसुन्दरीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप नवमी तिथि रूप कुलसुन्दरी नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेदशमीतिथिरूप नित्यानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप दशमी तिथि रूप नित्या नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेएकादशीतिथिरूप नीलपताका नित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वास रूप एकादशी तिथि रूप नीलपताका नित्याको नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेद्वादशीतिथिरूप विजयानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक द्वादशी तिथि रूप विजया नित्याको नमस्कार}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेत्रयोदशीतिथिरूप सर्वमंगलानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक त्रयोदशी तिथि रूप सर्व मंगला नित्याको नमस्कार}

तदुत्तर चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेचतुर्दशीतिथिरूप ज्वालामालिनीनित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक चतुर्दशी तिथि रूप ज्वालामालिनी नित्याको मेरा नमन}

तदुत्तरचत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासात्मनेपौर्णमासीतिथिरूप चित्रानित्यायै नमः

{इसके पश्चात्की चौदहसौ चालीस श्वासात्मक पौर्णमासी तिथि रूप चित्रा नित्याको मेरा नमन}

सूत्र {११}

नियतिश्रृंगारादयो रसा अणिमादिसिद्धयः कामक्रोधलोभमोहमद —मात्सर्यपुण्यपापमय्यो ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः

{प्रकृतिमें श्रृंगार आदि जो रस हैं, वे अणिमादि सिद्धियाँ हैं एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पाप, पुण्यमयी ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हैं ।

{प्रयोग}

चतुरस्राद्यरेखायै नमः इति वक्ष्यमाणस्थानेषु व्यापकं न्यस्य ।

{चतुरस्रकी आद्यरेखाको नमस्कार, इस प्रकार कहे गये स्थानोंमें व्यापक रूपमें न्यास करें ।

दक्षांसपृष्ठरूपशान्तरसात्मने अणिमासिद्धयै नमः ।

{दाहिने कंधेके पृष्ठदेश रूप शान्त रसात्मक अणिमा सिद्धिको नमस्कार}

दक्षपाण्यंगुल्यग्ररूपादभुतरसात्मने लघिमा सिद्धयै नमः ।

{दक्षिण हाथकी अँगुलियोंके अग्रभाग रूप अद्भुतरसात्मक लघिमा सिद्धिको मेरा नमस्कार}

दक्षस्फिग्रूपकरुणरसात्मने महिमासिद्धयै नमः ।

{दक्षिण स्फिग रूप करुणरसात्मक महिमासिद्धिको नमस्कार}

दक्ष पादांगुल्यग्ररूपवीररसात्मने ईशित्वसिद्धयै नमः ।

{दक्षिण पैरोंकी अंगुलिके आगेके भाग रूप वीर रसात्मक ईशित्व सिद्धिको मेरा नमस्कार}

वामपादांगुल्यग्ररूपहास्यरसात्मने वशित्वसिद्धयै नमः ।

{वाम पैरकी अँगुलियोंके आगेके भाग रूप हास्य रसात्मक वशित्व सिद्धिको नमन}

वामस्फिग्रूपवीभत्सरसात्मने प्राकाम्यसिद्धयै नमः ।

{वाम स्फिग् रूप वीभत्स रसात्मक प्राकाम्य सिद्धिको मेरा नमस्कार है }

वामपाण्यंगुल्यग्ररूपरौद्ररसात्मने भुक्तिसिद्धयै नमः ।

{बायें हाथकी अँगुलियोंके अग्रभाग रूप रौद्ररसात्मक भुक्ति सिद्धिको नमन}

वामांसपृष्ठरूपभयानकरसात्मने इच्छासिद्धयै नमः ।।

{बायें कंधेके पीछेके भाग रूप भयानक रसात्मक इच्छा सिद्धिको मेरा नमस्कार है}

चूलीमूलरूपश्रृंगाररसात्मने प्राप्तिसिद्धयै नमः ।

{शिखा मूल रूप श्रृंगार रसात्मक प्राप्ति सिद्धिको मेरा नमस्कार है}

चूलीपृष्ठरूपनियत्यात्मने सर्वकामसिद्ध्यै नमः ।

{शिखाके पृष्ठ रूप {नियति} प्रकृत्यात्मक सर्वकाम सिद्धिको मेरा नमन}

चतुरस्र मध्यरेखायै नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य

{चतुरस्रकी मध्य रेखाको नमस्कार, इस प्रकार अपने भीतर उसे व्यापक अनुभव करते हुए न्यास करें} –

पादांगुष्ठद्वयरूपकामात्मने ब्राह्म्यै नमः

{दोनों पैरोंके दोनों अँगूठोंके रूपमें कामात्मक ब्राह्मी शक्तिको नमस्कार}

दक्षपार्श्वरूपक्रोधात्मने माहेश्वर्यै नमः

{दाहिने भागके रूपमें क्रोधात्मक माहेश्वरी शक्तिको नमन}

मूर्धभागरूपलोभात्मने कौमार्यै नमः

{मूर्ध भाग रूप लोभात्मक कुमारी शक्तिको मेरा नमन}

वामपार्श्वरूपमोहात्मने वैष्णव्यै नमः

{बायें भाग रूप मोहात्मा वैष्णवी शक्तिको मेरा नमस्कार}

वामजानुरूपमदात्मने बाराह्यै नमः

{बायीं जंधा रूप मदात्मक वाराही शक्तिको नमस्कार}

दक्षजानुरूपमात्सर्यात्मने इन्द्राण्यै नमः ।

{दक्षजानु रूप {दाहिनी जंघा रूप}मात्सर्यात्मक इन्द्राणीशक्तिको नमन}

दक्षबहिरंसरूपपुण्यात्मने चामुण्डायै नमः ।

{दाहिनी बाहरी भाग रूप पुण्यात्मक चामुण्डादेवीको नमस्कार}

वामबहिरंसरूपपापात्मने महालक्ष्म्यै नमः ।

{बायें बाहिरी स्कंध रूप पापात्मक महालक्ष्मीदेवीको नमस्कार}

सूत्र {१२}

आधार नवकं मुद्रांशक्तयः

{मूलाधार चक्रादि नौ चक्र, नौ मुद्रा शक्तियाँ हैं}

चतुरस्रान्त्यरेखायै नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य

{चतुरस्रकी अन्तिम रेखाको नमस्कार । इस प्रकार अपने भीतर उसे व्यापक मानते हुए न्यास करे}

पादांगुष्ठद्वयरूपाधस्सहस्रदलकमलात्मने सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नमः ।

{पैरोंके दोनों अँगूठोंके रूपमें अधः, सहस्र दल कमलात्मक सर्वसंक्षोभिणी मुद्राको मेरा नमस्कार है}

दक्षपार्श्वरूपमूलाधारात्मने सर्वविद्राविणीमुद्राशक्त्यै नमः ।

{दाहिने पक्ष रूप मूलाधारात्मक सर्वविद्राविणी मुद्राशक्तिको नमस्कार}

मूर्धरूपस्वाधिष्ठानात्मने सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्त्यै नमः ।
{मूर्धरूपमें स्वाधिष्ठानात्मक सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}
वामपार्श्वरूपमणिपूरात्मके सर्ववशंकरीमुद्राशक्त्यै नमः ।
{बायें भाग रूप मणिपूरात्मने सर्ववशंकरी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}
वामजानुरूपानाहतात्मने सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्त्यै नमः
{वाम जंधा एवं पिण्डलीके मध्य भाग रूप अनाहतात्मक सर्वोन्मादिनी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}
दक्षजानुरूपविशुद्ध्यात्मने सर्वमहांकुशामुद्राशक्त्यै नमः।
{दाहिनी जानुरूप विशुद्ध्यात्मक सर्वमहांकुशा मुद्राशक्तिको नमन}
दक्षोरुरूपइन्द्रयोन्यात्मने सर्वखेचरीमुद्राशक्त्यै नमः ।
{दाहिनी जंघा रूप इन्द्रयोन्यात्मक सर्वखेचरी मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार है}
वामोरुरूपआज्ञात्मने सर्वबीजमुद्राशक्त्यै नमः
{वामजंघारूप आज्ञाचक्रात्मक सर्वबीज मुद्राशक्तिको मेरा नमस्कार}
द्वादशान्तरूपोर्ध्वसहस्रदलकमलात्मने सर्वयोनिमुद्राशक्त्यै नमः ।
{द्वादशान्त रूप ऊर्ध्व सहस्रदल कमलात्मक सर्वयोनि मुद्राशक्तिको नमस्कार}
पादांगुष्ठरूपाधारनवकात्मने सर्वत्रिखण्डामुद्रायै नमः ।
{पादांगुष्ठ रूप आधार नवकात्मक सर्वत्रिखण्डा मुद्राको मेरा नमस्कार}
हृद्रूप त्रैलोक्यमोहनचक्रेश्वर्यै त्रिपुरायै नमः ।
{हृदय रूप त्रैलोक्यमोहन चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुराको मेरा नमस्कार}
इति तत्तत्स्थानानि स्पृष्ट्वा एतास्सर्वास्वात्माभिन्नत्वेन विभाव्य आत्मनः अपरिच्छिन्नत्वं भावयेत् ।
{इस प्रकार उन–उन स्थानोंको स्पर्श करते हुए इन सभीको अपनी आत्मासे अभिन्न मानते हुए अपनेको अपरिच्छिन्न अनुभव करें ।}
प्रकटयोगिनीरूपस्वात्मने अणिमासिद्ध्यै नमः ।
{अपनी आत्माके रूपमें प्रकट योगिनी रूप अणिमा सिद्धिको नमस्कार}
अपरिच्छिन्नस्वात्मात्मने सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायै नमः
इति प्रयोगपूर्वकं वा विभावयेत् ।
{अपनी आत्माके अपरिच्छिन्नरूप सर्वसंक्षोभिणी मुद्राको नमस्कार । इस प्रकार प्रयोगपूर्वक भावना करें}

सूत्र {१३}

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थानि मनोविकारः कामाकर्षिणि आदि षोड़शशक्तयः ।।

{पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, एवं वाक्, हाथ, पैर, पायु, उपस्थादि, मनोविकार, कामाकर्षिणी आदि सोलह शक्तियाँ हैं}

{प्रयोग विधि}

षोड़शदलपद्माय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य ।

{इस प्रकार षोड़शदल पद्मोंको नमस्कार करता हुआ अपने भीतर उसे व्यापक समझे एवं न्यास करे}

दक्षश्रोत्रपृष्ठपृथिव्यात्मने कामाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिने कानके पीछेके हिस्सेके रूपमें पृथ्वी स्वरूप कामाकर्षिणी नित्याकलाको नमन}

दक्षांसरूप वार्यात्मनै बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{दाहिने स्कन्धरूप जलात्मक बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

दक्षकूर्परूपतेजात्मने अहंकाराकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिने कूर्पर रूप तेजात्मक अहंकाराकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

दक्षकरपृष्ठरूपवाय्वात्मने शब्दाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।

{दाहिने कर पृष्ठ रूप वायुस्वरूप शब्दाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार}

दक्षोरुरूपाकाशात्मने स्पर्शाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिनी जाँध रूप आकाशात्मक स्पर्शाकर्षिणी नित्या कलाको नमन}

दक्षजानुरूपश्रोत्रात्मने रूपाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दाहिनी जाँघरूप श्रोत्रात्मक रूपाकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार है }

दक्षगुल्फरूपत्वगात्मने रसाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।

{दाहिनी ऐंडीके ऊपरकी गाँठरूप त्वगात्मक रसाकर्षिणी नित्याकलाको नमन}

दक्षपादतलरूपचक्षुरात्मने गंधाकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{दक्षिण पादतल {पगथली} रूप चक्षुआत्मक गन्धाकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

वामपादतलरूपजिह्वात्मने चित्ताकर्षिणीनित्याकलायै नमः

{बायीं पगथली रूप जिह्वात्मक चित्ताकर्षिणी नित्याकलाको नमस्कार}

वामगुल्फरूपघ्राणात्मने धैर्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{वाम ऐंडीके ऊपरकी गाँठ रूप घ्राणात्मक धैर्याकर्षिणी नित्या कलाको नमन}

वामजानुरूपवागात्मने स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।

{वाम पिंडलीके ऊपर एवं जाँघके नीचेके भागरूप वाक् स्वरूप स्मृत्याकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार}

वामोरुरूपपाण्यात्मने नामाकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।
{वाम जंघारूप हस्तात्मक नामाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
वामकरपृष्ठरूपपादात्मने बीजाकर्षिणी नित्याकलायै नमः ।
{बायें हाथके पीछेके भाग रूप पादात्मक बीजाकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
वामकूर्परूपपाय्वात्मने आत्माकर्षिणीनित्याकलायै नमः ।
{बायें कूर्पर रूप पायु इन्द्रियात्मक आत्माकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमन}
वामांसरूपोपस्थात्मने अमृताकर्षिणीनित्याकलायै नमः
{वाम स्कन्धरूप उपस्थात्मक अमृताकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमन}
वाम श्रोत्रपृष्ठरूपविकृतमन आत्मने शरीराकर्षिणीनित्याकलायै नमः।
{वाम–श्रोत्रके पीछेके भागके रूपमें विकृत मन स्वरूप शरीराकर्षिणी नित्याकलाको मेरा नमस्कार है}
हृद्रूपसर्वाशापरिपूरकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरेश्वर्यै नमः ।
{हृदय रूप सर्वाशापरिपूरक चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुरेशीको मेरा नमस्कार है}
गुप्तयोगिनीरूपस्वात्मने लघिमासिद्धयै नमः ।
{गुप्तयोगिनीरूप अपनी आत्मास्वरूप लघिमा सिद्धिको मेरा नमस्कार है}
अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वविद्राविणीमुद्रायै नमः ।
{अपनी स्वात्मा ही अपरिच्छिन्नस्वरूप सर्वविद्राविणी मुद्राशक्तिको नमस्कार है}

सूत्र {१४}

क्वनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षारूपबुद्धयो अनंगकुसुमाद्यष्टौ ।।

{वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हान, उपादान, उपेक्षा रूप बुद्धियाँ अनंग कुसुमादि आठ शक्तियाँ हैं}

{प्रयोग विधि}

अष्टदलपद्माय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{आठ दलके पद्मको नमस्कार, इस प्रकार उसे अन्तर्में व्यापक देखते हुए न्यास करें }
दक्षशंख {कपालास्थि} रूप वचनात्मने अनंगकुसुमायै नमः
{दक्षिण कपालास्थि वचनात्मक अनंगकुसुमा शक्तिको नमस्कार}
दक्षजत्रुरूप {स्कंध संधि} आदानात्मने अनंगमेखलायै नमः ।
{दक्षिण कंधेकी संधि रूप आदानात्मक अनंगमेखलादेवीको नमस्कार}
दक्षोरुरूपगमनात्मने अनंगमदनायै नमः ।
{दक्षिण जंधा रूप गमनात्मक अनंगमदनादेवीको मेरा नमस्कार है}

दक्षगुल्फरूपविसर्गात्मने अनंगमदनातुरायै नमः ।
(दक्षिण गुल्फरूप विसर्गात्मक अनंगमदनातुरा देवीको नमस्कार)
वामगुल्फरूपआनन्दात्मने अनंगरेखायै नमः ।
{वाम गुल्फ {ऐडीकी ऊपरकी गाँठ} रूप आनन्दात्मक अनंगरेखा शक्तिको नमस्कार}
वामोरुरूपहानाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगवेगायै नमः ।
{वाम जंघा रूप हानाख्या बुद्धयात्मक अनंगवेगादेवीको मेरा नमस्कार}
वामजत्रुरूपोपादानाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगांकुशायै नमः ।
{वाम हँसुली रूप उपादानाख्य बुद्ध्यात्मक अनंगांकुशादेवीको नमस्कार}
वामशंखरूपोपेक्षाख्यबुद्ध्यात्मने अनंगमालिन्यै नमः ।
{वाम शंख रूप उपेक्षाबुद्धि आत्मक अनंगमालिनीदेवीको मेरा नमन}
हृद्रूपसंक्षोभिणीचक्रेश्वर्यै त्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।
{हृदय रूप संक्षोभिणी चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरीको मेरा नमस्कार}
गुप्ततरयोगिनीरूपस्वात्मात्मने महिमासिद्धयै नमः ।
{गुप्ततर योगिनी रूप अपनी आत्मा ही महिमासिद्धि स्वरूप है, उसे नमस्कार}
अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वाकर्षिणीमुद्रायै नमः ।
{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्ति है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१५}

अलम्बुषाकुहूर्विश्वोदरावारुणी हस्तिजिह्वायशोवतीपयस्विनीगान्धारी पूषाशंखिनीसरस्वतीइड़ापिंगलासुषुम्नाचेति
चतुर्दश नाड़यः सर्वसंक्षोभिणी आदि चतुर्दश शक्तयः ।।
{अलंबुसा, कूहू, विश्वोदरा, वारुणी, हस्तिजिह्वा, यशोवती, पयस्विनी, गान्धारी, पूषा, शंखिनी, सरस्वती, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना – ये चौदह नाड़ियाँ सर्वसंक्षोभिणी आदि चौदह शक्तियाँ हैं । }
चतुर्दशार चक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{चतुर्दशार चक्रको नमस्कार । इस प्रकार उसे अपने अन्तरमें व्यापक समझता हुआ न्यास करे ।}
ललाटमध्यभागरूपअलम्बुसात्मने सर्वसंक्षोभिणीशक्त्यै नमः
{ललाटके मध्य भाग रूप अलम्बुसात्मक सर्वसंक्षोभिणी शक्तिको मेरा नमन}
ललाटदक्षभागरूपकुह्वात्मने सर्वविद्राविणीशक्त्यै नमः ।
{ललाटके दक्षिण भाग रूप कुहू नाड़ी स्वरूप सर्वविद्राविणी शक्तिको नमस्कार}
दक्षगण्डरूपविश्वोदरात्मने सर्वाकर्षिणीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने गाल {गण्ड} रूप विश्वोदरा नाडी स्वरूप सर्वाकर्षिणी शक्तिको मेरा नमस्कार है}

दक्षांसरूपवारुण्यात्मने सर्वाह्लादिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने स्कन्धरूप वारुणी स्वरूपा सर्वाह्लादिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

दक्षपार्श्वरूपहस्तिजिह्वात्मने सर्वसंमोहिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिने बगलके रूपमें हस्तिजिह्वास्वरूपिणी सर्वसंमोहिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

दक्षोरुरूपयशोवत्यात्मने सर्वस्तंभिनीशक्त्यै नमः ।

{दाहिनी ऊरु रूप यशोवती नाड़ी स्वरूपिणी सर्वस्तम्भिनी शक्तिको मेरा नमन}

दक्षजंघारूपपयस्विन्यात्मने सर्वजृम्भिणीशक्त्यै नमः ।

{दाहिनी जंघारूप पयस्विनी नाड़ीरूप सर्वजृम्भिणी शक्तिको मेरा नमन}

वामजंघारूपगान्धार्यात्मने सर्ववशंकरीशक्त्यै नमः ।

{वाम जंघारूप गान्धारी नाड़ी स्वरूपा सर्ववशंकरी शक्तिको नमन}

वामोरुरूपपूषात्मने सर्वरञ्जिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम ऊरुरूपा पूषास्वरूपा सर्वरञ्जिनी शक्तिको नमन}

वामपार्श्वरूपशंखिन्यात्मने सर्वोन्मादिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम पार्श्वरूप शंखिनी स्वरूपा सर्वोन्मादिनी शक्तिको मेरा नमस्कार है }

वामांसरूपसरस्वत्यात्मने सर्वार्थसाधिनीशक्त्यै नमः ।

{वाम भाग रूप सरस्वती नाड़ी स्वरूपा सर्वार्थसाधिनी शक्तिको मेरा नमस्कार}

वामगंडरूपेड़ात्मने सर्वसंपत्तिपूरणीशक्त्यै नमः ।

{बायें गाल रूप इड़ा नाड़ी स्वरूपा सर्वसंपत्तिपूरिणी शक्तिको मेरा नमस्कार है}

ललाटवामभागरूपपिंगलात्मने सर्वमंत्रमयीशक्त्यै नमः

{ललाटके बायें भाग रूप पिंगला नाड़ी रूपा सर्व मंत्रमयी शक्तिको नमन}

ललाटपृष्ठभागरूपसुषुम्नात्मने सर्वद्वन्द्वक्षयंकरीशक्त्यै नमः ।

{ललाटके पीछेके भाग रूप सुषुम्ना नाड़ी स्वरूपा सर्वद्वन्द्वक्षयकारी शक्तिको नमन}

हृद्रूपसर्वसौभाग्यदायकचक्रेश्वर्यै त्रिपुरवासिन्यै नमः ।

{हृदय रूप सर्वसौभाग्यदायक चक्रेश्वरी त्रिपुरवासिनीदेवीको नमन}

सम्प्रदाययोगिनीरूपस्वात्मात्मने ईशित्वसिद्ध्यै नमः ।

{सम्प्रदाय योगिनी रूप अपनी आत्मा ही ईशित्व सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्ववशंकरीविद्यायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न रूप अपनी आत्मा ही सर्ववशंकरी विद्या है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१६}

प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जयादि दशवायवः सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः ।।

{प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त धनञ्जय आदि दस प्रकारके प्राण ही सर्वसिद्धिप्रद बहिर्दशार देवता हैं }

बहिर्दशार चक्राय नमः इति व्यापकं न्यस्य

{बहिर्दशार चक्रको नमस्कार । इस प्रकार उसे सर्वव्यापक समझकर न्यास करें।

दक्षाक्षिरूपप्राणात्मने सर्वसिद्धिप्रदादेव्यै नमः ।

{दाहिनी आँखरूप प्राणात्मक सर्वसिद्धिप्रदादेवीको नमस्कार}

नासामूलरूपापानात्मने सर्वसंपत्प्रदादेव्यै नमः ।

{नासिकाके मूलभाग रूप अपानप्राण स्वरूपा सर्वसंपत्प्रदा देवीको नमन।}

वामनेत्ररूपव्यानात्मने सर्वप्रियंकरीदेव्यै नमः ।

{वाम नेत्र रूप व्यानप्राण स्वरूपा सर्वप्रियंकरी देवीको नमस्कार}

कुक्षीशकोणरूपोदानात्मने सर्वमंगलकारिणीदेव्यै नमः ।

{कुक्षीके ईशानकोण रूप उदान प्राणात्मक सर्व मंगलकारिणी देवीको नमस्कार}

कुक्षिवायुकोणरूपसमानात्मने सर्वकामप्रदादेव्यै नमः ।

{कुक्षिके वायुकोण रूप समान प्राणात्मक सर्वकामप्रदादेवीको नमन}

वामजानुरूपनागात्मने सर्वदुःखविमोचिनीदेव्यै नमः ।

{वाम जानु रूप नाग प्राणस्वरूपा सर्वदुःखविमोचिनीदेवीको मेरा नमन}

गुदरूपकूर्मात्मने सर्वमृत्युप्रशमिनीदेव्यै नमः ।

{गुदा रूप कूर्मप्राणस्वरूपा सर्वमृत्युप्रशमिनी देवीको मेरा नमस्कार}

दक्षजानुरूपकृकरात्मने सर्वविघ्नविनाशिनीदेव्यै नमः ।

{दाहिनी जानुरूप कृकरप्राण स्वरूपा सर्वविघ्नविनाशिनी देवीको नमन}

कुक्षिनिर्ऋतिकोणरूपदेवदत्तात्मने सर्वांगसुन्दरीदेव्यै नमः ।

{कुक्षिके नैर्ऋत्यकोण रूप देवदत्त प्राणस्वरूपा सर्वांग सुन्दरी देवीको नमन}

कुक्षिवह्निकोणरूपधनंजयात्मने सर्वसौभाग्यदायिनीदेव्यै नमः ।

{कुक्षिके अग्निकोण रूप धनंजय स्वरूपा सर्वसौभाग्यदायिनी देवीको नमन}

हृद्रूपसर्वार्थसाधकचक्रेश्वर्यै त्रिपुराश्रियै नमः ।

{हृदय रूप सर्वार्थ साधक चक्रेश्वरी त्रिपुराश्रीको नमस्कार}

कुलकौलयोगिनीरूपस्वात्मात्मने वशित्वसिद्धयै नमः ।

{कुल कौलिनी योगिनी रूपा अपनी आत्मा ही वशित्वसिद्धि है, उसे नमस्कार}

अपरिच्छिन्नस्वात्मात्मने सर्वोन्मादिनीमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न अपनी आत्मा ही सर्वोन्मादिनी मुद्रा है, उसे नमस्कार}

सूत्र {१७–१८–१९}

एतद्वायुसंसर्गकोपादिभेदेन रेचकःपाचकश्शोषकोदाहकःप्लावक इति प्राण मुख्यत्वेन पंचधा जठराग्निर्भवति ।।१७।। क्षारकः उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहकः इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगाः भक्ष्य भोज्य चोष्यलेह्यपेयात्मकपञ्चविधमन्नं पाचयन्ति ।।१८।। एता दशवह्निकलास्सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः ।।१९।।

{अर्थ}

{ये वायु संसर्ग एवं प्रकोपको प्राप्त करनेके भेदसे रेचक, पाचक, शोषक,दाहक एवं प्लावक इस प्रकार प्राणोंकी प्रमुखतासे पाँच जठराग्नि बन जाते हैं ।।१७।। मनुष्योंके देहमें जाने पर क्षारक, उद्गारक, क्षोभक, जृंभक एवं मोहक इस प्रकारकी प्रधानतापूर्वक ये भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य एवं पेयात्मक पाँच प्रकारके अन्नोंको पचाते हैं ।।१८।। ये दस वह्नि कलायें सर्वज्ञा आदि दस अन्तर्दशार चक्रके दस देवता हैं ।।१९।।

{प्रयोग विधि}

अन्तर्दशारचक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य

{अन्तर्दशार चक्रको नमस्कार – इस प्रकार उसे अपने भीतर व्यापक जानते हुए न्यास करें }

दक्षनासारूपरेचकाग्न्यात्मने सर्वज्ञादेव्यै नमः ।

{दक्ष नासारूप रेचक अग्नि स्वरूपा सर्वज्ञा देवीको नमस्कार}

दक्षसृक्कि {ओष्ठ प्रान्ते} रूपपाचकाग्न्यात्मने सर्वशक्तिदेव्यै नमः ।

{दक्षिण ओठ प्रान्तमें पाचक अग्नि स्वरूपा सर्वशक्तिदेवीको नमस्कार}

दक्षस्तनरूपशोषकाग्न्यात्मने सर्वैश्वर्यप्रदादेव्यै नमः ।

{दक्ष स्तन भागमें शोषक अग्निस्वरूपा सर्वैश्वर्यप्रदा देवीको नमस्कार}

दक्षवृषणरूपदाहकाग्न्यात्मने सर्वज्ञानमयीदेव्यै नमः ।

{दक्षिण वृषण रूप दाहकाग्नि स्वरूपा सर्वज्ञानमयीदेवीको नमस्कार}

सीविनीरूपप्लवकाग्न्यात्मने सर्वव्याधिविनाशिनीदेव्यै नमः ।

{सीदिनी रूप प्लावकाग्नि स्वरूपा सर्वव्याधिविनाशिनी देवीको नमस्कार}

बामवृषणरूपक्षारकाग्न्यात्मने सर्वाधारस्वरूपादेव्यै नमः ।

{बाम वृषणरूप क्षारक अग्निस्वरूपा सर्वाधारस्वरूपादेवीको नमन}

वामस्तनरूपोद्गारकाग्न्यात्मने सर्वपापहरादेव्यै नमः ।

{वामस्तनरूप उद्गारक अग्नि स्वरूपा सर्वपापहरा देवीको नमस्कार}

बामसृक्किरूप {ओष्ठ प्रान्त} क्षोभकाग्न्यात्मने सर्वानन्दमयीदेव्यै नमः ।
{वाम ओष्ठ प्रान्त रूप क्षोभक अग्निस्वरूपा सर्वानन्दमयी देवीको नमस्कार}
वामनासारूपजृम्भकाग्न्यात्मने सर्वरक्षास्वरूपिणीदेव्यै नमः ।
{वाम नासारूप जृम्भक अग्नि स्वरूपा सर्वरक्षास्वरूपिणी देवीको नमस्कार}
नासाग्ररूपमोहकाग्न्यात्मने सर्वेप्सितफलप्रदादेव्यै नमः ।
{नासिकाके अग्रभाग रूप मोहक अग्निस्वरूपा सर्वेप्सितफलप्रदा देवीको नमस्कार}
हृद्रूपसर्वरक्षाकरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरमालिन्यै नमः ।
{हृदय रूप सर्वरक्षाकर चक्रेश्वरी त्रिपुरमालिनी देवीको नमस्कार}
निगर्भयोगिनीरूपस्वात्मात्मने प्राकाम्यसिद्ध्यै नमः ।
{निगर्भ योगिनी रूप स्वात्मास्वरूपा प्राकाम्य सिद्धिको नमस्कार}
अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वमहांकुशामुद्रायै नमः ।
{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वमहांकुशा मुद्राशक्ति है, इन्हें नमस्कार}

सूत्र {२०–२१–२२–२३–२४}

शीतोष्णसुखदुःखेच्छास्सत्वरजस्तमोगुणाः वशिन्यादिशक्त्योऽष्टौ ।।।२०।। शब्दादितन्मात्राः पंचपुष्पबाणाः ।।२१।। मन इक्षुधनुः ।।।२२।। रागः पाशः ।।२३।। द्वेषोंऽकुशः ।।२४।।

{शीत, उष्ण, सुख, दुख, इच्छा, सत्व, रज, तम आदि गुण, वशिन्यादि आठ शक्तियाँ हैं ।।२०।। शब्दादि तन्मात्रा पंच पुष्पबाण हैं ।।२१।। मन इक्षुधनुष है ।।२२।। राग ही पाश आयुध है ।।२३।। द्वेष अंकुश आयुध है।।२४।।}

{प्रयोग विधि}

अष्टकोणचक्राय नमः इति तदन्तर्व्यापकं न्यस्य
{अष्टकोण चक्रको नमस्कार करके उसे अपने भीतर व्यापक अनुभव करता हुआ न्यास करे }
चिबुकदक्षभागरूपशीतात्मने वशिनीवाग्देवतायै नमः
{चिबुकके दक्षिण भाग रूप शीत स्वरूपा वशिनी वाग्देवताको मेरा नमस्कार है}
कण्ठदक्षभागरूपउष्णात्मने कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः
{कण्ठके दक्षिण भागरूप उष्ण स्वरूपा कामेश्वरी वाग्देवताको नमन}
हृदयदक्षभागरूप सुखात्मने मोदिनीवाग्देवतायै नमः
{हृदयके दक्षिण भागरूपसुखस्वरूपा मोदिनी वाग्देवताको नमन}

नाभिदक्षभागरूपदुःखात्मने विमलावाग्देवतायै नमः

{नाभि देशके दाहिने भागरूप दुखस्वरूपा विमला वाग्देवताको नमन}

नाभिवामभागरूपइच्छात्मने अरुणावाग्देवतायै नमः

{नाभि देशके वाम भागरूपमें स्थित इच्छास्वरूपा अरुणा वाग्देवताको नमन}

हृदयवामभागरूपसत्वगुणात्मने जयिनीवाग्देवतायै नमः

{हृदयके वाम भागरूपमें स्थित सत्वगुणस्वरूपा जयिनी वाग्देवताको नमन}

कण्ठवामभागरूपरजोगुणात्मने सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः

{कण्ठके वाम भाग रूप रजोगुणस्वरूपा सर्वेश्वरी वाग्देवताको नमन}

चिबुकवामभागरूपतमोगुणात्मने कौलिनीवाग्देवतायै नमः

{चिबुकके वाम भाग रूप तमोगुणस्वरूपा कौलिनी वाग्देवताको नमन}

हृद्रूपसर्वरोगहरचक्रेश्वर्यै त्रिपुरासिद्धायै नमः

{हृदय रूप सर्व रोगहर चक्रेश्वरी स्वरूपा त्रिपुरा सिद्धा भगवतीको नमन}

रहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने भुक्तिसिद्धचै नमः

{रहस्य योगिनी रूपा अपनी स्वात्मा ही भुक्ति सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वखेचरीमुद्रायै नमः

{अपरिच्छिन्न रूपमें अपनी आत्मा ही सर्वखेचरी मुद्राशक्ति है, उसे नमस्कार}

हृदयत्रिकोणाधोभागरूप पंचतन्मात्रात्मकेभ्यः सर्वजंभनवाणेभ्यो नमः ।

तद्दक्षभागरूपमनआत्मकाभ्यां सर्वमोहनधनुर्भ्याम् नमः ।

तदूर्ध्वभागरूपरागात्मकाभ्यां सर्ववशंकरपाशाभ्यां नमः ।

तद्वामभागरूपद्वेषात्मकाभ्यां सर्वस्तंभकरांकुशाभ्यां नमः ।

{हृदय त्रिकोणके अधोभागरूप पंचतन्मात्राओंके रूपमें सर्वजंभन बाणोंको नमस्कार}

उसी हृदयके दाहिने भाग रूप मनस्वरूप सर्वमोहन धनुषको नमन}

{उसी हृदयके ऊपरके भागरूप, रागस्वरूप सर्ववशंकर पाशको नमस्कार}

{उसीके वाम भागरूप द्वेषस्वरूप सर्वस्तम्भकर अंकुशको नमन}

सूत्र {२५}

अव्यक्तमहदहंकाराःकामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिन्योः अन्त

स्त्रिकोणगा देवताः ।

{अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार, कामेश्वरी, बज्रेश्वरी, भगमालिनी आदि अन्तः त्रिकोणान्तर्गत देवता हैं }

{प्रयोग विधि}

त्रिकोणचक्राय नमः इति व्यापकं न्यस्य

{त्रिकोण चक्रराजको नमस्कार, इस प्रकार इसे व्यापक मानकर न्यास करें}

हृदयत्रिकोणाग्रभागरूपमहत्तत्वात्मने कामेश्वर्यैदेव्यै नमः ।

{हृदय त्रिकोणके अग्रभाग रूप महत्तत्व स्वरूपा कामेश्वरी देवीको नमन}

तद्दक्षकोणरूपाहंकारात्मने बज्रेश्वर्यैदेव्यै नमः ।

{उसके दाहिने कोण रूप अहंकारस्वरूपा बज्रेश्वरी देवीको नमस्कार}

तद्वामकोणरूपाव्यक्तात्मने भगमालिनीदेव्यै नमः ।

{हृद्रूप वाम कोणरूप अव्यक्त प्रकृतिस्वरूपा भगमालिनी देवीको नमन}

हृद्रूपसर्वसिद्धिप्रदचक्रेश्वर्यै त्रिपुराम्बायै नमः

{हृद्रूप सर्वसिद्धिप्रद चक्रेश्वरी भगवती त्रिपुराम्बाको नमस्कार}

अतिरहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने इच्छासिद्धयै नमः ।

{अति रहस्य योगिनी रूप अपनी आत्मा ही इच्छा सिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरूपस्वात्मात्मने सर्वबीजमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्न रूप अपनी स्वात्मा ही सर्वबीज मुद्रा है, उसे नमस्कार}

सूत्र {२६–२७–२८–२९–३०}

निरुपाधिकीसंविदेव कामेश्वरः ।।२६।। सदानन्दपूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता ।।२७।। लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः ।।२८।। अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः ।।२९।। भावनायाः क्रिया उपचाराः ।।३०।।

{अर्थ}

निरुपाधिकी संविद ही भगवान् कामेश्वर हैं ।।२६।। सदानन्द पूर्ण अपनी आत्मा ही भगवती परदेवता ललिता है ।।२७।। इनकी सर्वांग लालिमा ही सर्वविमर्श है ।।२८।। अनन्य चित्स्वरूप तत्वसे ही सिद्धिलाभ है ।।२९।। भावनामूलक क्रिया ही सिद्धिको प्राप्त करनेका उपाय है ।।३०।।

{प्रयोग विधि}

हृन्मध्यरूपनिरुपाधिकसंविन्मात्ररूपकामेश्वरांकनिलयायै सच्चिदानन्दैक–ब्रह्मात्मिकायै परदेवतायै ललितायै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।।

{हृदयके मध्य रूप निरुपाधिक संविन्मात्र रूप कामेश्वर भगवान्के अंकमें विराजित सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूपा परदेवता ललिता महात्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार}

निरुपाधिकचैतन्यमेव सच्चिदानन्दात्मकमन्तःकरणप्रतिबिंबितं सत्तदहमेव इति अनुसंधानं ललितायालौहित्यमिति विभाव्य ।।

{निरुपाधिक चैतन्य ही सच्चिदानन्दात्मक अन्तःकरणमें प्रतिबिंबित होकर जो सत्ता एवं "मैं" है इस प्रकार अनुसंधान होना ही भगवती ललिताका लौहित्य है, ऐसा विचार कर

अभेदसम्बन्धेन सत्वचित्वादिविशिष्टसंविद : केवलसंविदश्च तादात्म्य सम्बन्धरूपं कामेश्वरांकयंत्रणं विशेषणं विभाव्य ।।

{अभेद सम्बन्धसे सत्व, चित्त्व, आनन्दत्वादि विशिष्ट संविद और केवल संविद दोनोंमें तादात्म्य सम्बन्धरूप कामेश्वर भगवान्के अंक रूपी यंत्रमें विशेषणोंको देखें }

उपाध्यभावरूपशुक्लत्वोपलक्षिता सती शुद्धसंविदेव शुक्लचरणः ।

{उपाधियोंका सर्वथा अभाव होना ही शुक्लत्व समझें एवं शुद्ध संविद ही भगवतीके शुक्ल चरण हैं।}

चित्वविशिष्टसंवित्प्राथमिकपराहन्तात्मकमृत्युरूपेणरागेणउपलक्षिता सतीरक्तचरणः ।।

{चित्व विशिष्ट संवित् एवं प्राथमिक पर अहंता स्वरूपता मृत्युरूप रागसे उपलक्षित हुई ही रक्तचरण हैं}

अहमाकारवृत्तिनिरूपिता विषयता चरणयोर्मिथो विशेष्यविशेषणभावरूपैव तदुभयसामरस्यमिति विभाव्य ।।

{अहमाकार वृत्तिमें विषयता निरूपित करना ही चरणोंमें उर्मियाँ हैं, विशेष्य विशेषण भावरूप इन दोनोंके सामरस्यको विचारें ।}

हृद्रूपसर्वानन्दमयचक्रेश्वर्यै महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

{हृदय रूप सर्वानन्दमय चक्रेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार है}

परापररहस्ययोगिनीरूपस्वात्मात्मने प्राप्तिसिद्धयै नमः ।

{पर, अपर रहस्य योगिनी रूप अपनी आत्मा ही प्राप्तिसिद्धि है, उसे नमन}

अपरिच्छिन्नरुपस्वात्मात्मने सर्वयोनिमुद्रायै नमः ।

{अपरिच्छिन्नरूपा अपनी आत्मा ही सर्वयोनिमुद्रा है, उसे नमन}

भावनायाः क्रिया उपचाराः ।।३०।।

{भावनारूप क्रिया करना इसका साधन उपचार है}

इति तत्तत्स्थान स्पर्शपूर्वकं सम्यक् अनुसंधायोपचारान् समर्पयेत् ।।

{इन स्थानोंको स्पर्श करते हुए सम्यक् अन्वेषण करते हुए उपचार समर्पित करें}

तद्यथा एवम् अपरिच्छिन्नतया भावितायाः ललितायाः ।
स्वमहिम्न्येव प्रतिष्ठितिमासनमनुसन्दधामि ।

{इसी प्रकार अपरिच्छिन्नताकी भावना करते हुए भगवती ललिताकी निज महिमामें प्रतिष्ठित रहना ही उनके आसनका अनुसंधान करना है ।}

वियदादिस्थूलप्रपंचरूपपादगतनामरूपात्मकमलस्य सच्चिदानन्दैक–रूपत्वभावनाजलेन क्षालनं पाद्यं भावयामि।।

{वियदादि स्थूल प्रपंच रूप चरणोंके नामरूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक रूपता भावना रूपी जलसे स्वच्छ करना, धोना ही पाद्यकी भावना है}

सूक्ष्मप्रपंचरूपहस्तगतस्य तस्य क्षालनं अर्घ्यं चिन्तयामि ।

{सूक्ष्म प्रपंच रूप हाथोंको सच्चिदानन्दैकरूपता भावना रूपी जलसे स्वच्छ करना, धोना ही अर्घ्य का चिन्तन करें}

भावनारूपाणामपामपि कवलीकाररूपमाचमनं भावयामि ।

{सच्चिदानन्दैकरूपता भावना रूपी जलका कवलीकार रूप आचमन समझें}

सत्वचित्वानन्दत्वाद्यखिलावयवावच्छेदेन भावनाजलसम्पर्करूपं स्नानमनु–चिन्तयामि ।।

{सत्व, चित्व एवं आनन्दत्वादि अखिल अवयव अवच्छेदोंसे सच्चिदानन्दैक भावनाजल का सम्पर्क करना ही स्नानका अनुचिन्तन करें}

तेषु एवावयवेषु प्रसक्ताया भावनात्मकवृत्तिविशेष्यतायाः प्रोञ्छनं वृत्यविषयत्वभावनेन वस्त्रं कल्पयामि ।।

{इन अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्ति विशेष्यताको वृत्ति अविषयत्व भावनासे पौंछना ही वस्त्रोंकी कल्पना करना है}

निर्विषयत्वनिरञ्जनत्वाशोकत्वामृतत्वाद्यनेकधर्मरूपाख्याभरणानि धर्म्यभेदभावनेन समर्पयामि ।।

{निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अशोकत्व, अमृतत्व आदि धर्म रूप कहे जाने वाले आभरण0ोंको धर्मीसे अभेद भावनापूर्वक समर्पण करना आभरण समर्पण करना है।}

स्वशरीरघटकपार्थिवभागानांजड़तापनयेन चिन्मात्रतावशेषरूपं भावनेन गन्धं प्रयच्छामि।

{अपने शरीर घटकके पार्थिव भागोंकी जड़ता नष्ट कर शेष बची चिन्मात्रता रूपको माँको समर्पित करना ही गन्ध समर्पित करना है}

स्वशरीरघटकआकाशभागानांजड़तापनयेन चिन्मात्रतावशेषरूपं भावनेन पुष्पाणि समर्पयामि ।

{हे भगवती मैं अपने शरीरके आकाश भागकी जड़ता दूर करता हुआ बची हुई चिन्मात्रताके भाव–पुष्प आपको समर्पित करता हूँ }

वायव्यभागानां तथाभावनया धूपयामि ।

{वायव्य भागोंकी तथैव भावना रूप धूप समर्पित करता हूँ}

तैजसभागानां तथाकरणेनोद्दीपयामि ।

{तैजस भागोंकी तथैव भावना रूप दीपक दर्शन कराता हूँ}

अमृतभागांस्तथा विभाव्य नैवेद्यं निवेदयामि ।

{अमृत भागोंको इसी प्रकार देखते हुए उनको नैवेद्य रूपमें समर्पित करता हूँ}

षोड़शान्तेन्दुमण्डलस्य तथा भावनेन ताम्बूलकल्पमाचरामि ।

{षोड़श कलाओं युक्त इन्दुमण्डलकी इसी प्रकार भावना द्वारा ताम्बूल कल्पित कर उसे समर्पित करता हूँ}

परापश्यन्त्यादिनिखिलशब्दानां नादद्वारा ब्रह्मण्युपसंहारचिंतनेन स्तवीमि ।

{परापश्यन्ती आदि निखिल शब्दोंके नाद द्वारा ब्रह्म भावमें उपसंहार करना ही स्तुति करना है । ऐसी मैं स्तुति करता हूँ ।}

विषयेषु धावमानानां चित्तवृत्तीनां विषयजड़तानिरासेन ब्रह्मणि प्रविलापनेन प्रदक्षिणी करोमि ।

{विषयोंमें दौड़ती हुई चित्तवृत्तियोंकी विषयजड़ता हटाकर ब्रह्मचिन्तनमें उनका प्रविलापन ही प्रदक्षिणा समर्पण है, मैं इस प्रकार प्रदक्षिणा करता हूँ}

तासां विषयेभ्यः परावर्त्तनेन ब्रह्मैकप्रवणतया प्रणमामि ।

{उनका {चित्तवृत्तियोंका} विषयोंसे परावर्त्तन एवं ब्रह्मप्रवणता ही प्रणाम करना है, मैं इस प्रकार प्रणाम निवेदन करता हूँ}

{इति उपचर्य जुहुयात्}

{इसी प्रकार उपचारोंसे {पूजन} करके तत्पश्चात् होम करें}

सूत्र {३१–३२–३३}

अहं त्वमस्ति नास्ति कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमुपासितव्यमित्यादि विकल्पानां आत्मनि विलपनं होमः ।।३१।।

{मैं, तू, है, नहीं है, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, उपासना करनी चाहिये आदि विकल्पोंका अपनी आत्मामें विलोप हो जाना ही होम है ।}

भावनाविषयाणामभेदभावनंतर्पणम् ।। ३२ ।।

{विषयोंमें एवं ब्रह्मरूप भावनामें अभेदत्व विचार करना ही तर्पण है}

पंचदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदश नित्याः ।।३३।।

{पंचदश तिथियोंके रूपसे कालकी परिणामताका अवलोकन पन्द्रह नित्या हैं}

सूत्र {३४}

एवं मुहूर्त्तत्रितयं, मुहूर्त्त द्वितयं, मुहूर्त्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स एव शिवयोगीति गद्यते ।।

{इस प्रकार उसकी नित्य भावना करता हुआ ही एक मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त, तीन मुहूर्त्त, निरन्तर इसी भावनामें रम जाय । वह जीवन्मुक्त हो जाता है, वही शिवयोगी कहलाता है}

सूत्र {३५}

कादिमतेनअन्तःश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः ।

{कादि मतसे अन्तः चक्र भावना प्रतिपादितकी गयी है ।}

सूत्र {३६}

यः एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते । इति भावनोपनिषद् ।

{जो इस प्रकार जानता है, वह अथर्वशिर विद्याका पंडित है ।
यह भावनोपनिषद् है ।}

{प्रयोग विधि}

विहितावि‍हितविषयावृत्तयः उत्पन्नाः अहं त्वं गुरुर्देवतेत्यादयः
तास्सर्वाश्चक्रराजस्थानन्तशक्तिकदम्बरूपास्तत्तत्सूक्ष्मरूपा
ये ये संस्काराः तत्सर्व चिन्मात्रमेवेति विभावनया निर्व्युत्थानं स्वात्मनि
जुहोमि ।।३१।।

{यह विहित है, यह अविहित {निषिद्ध} है, इन विषयोंमें जो वृत्ति उत्पन्न होती है, उनसे उत्पन्न मैं, तू, गुरु, देवता आदि जो संस्कार {अवधारणायें} हैं वे सभी श्रीचक्रराजस्थ अनन्त कदम्ब रूप हैं, उनके जो सूक्ष्म संस्कार हैं, उन सबको चिन्मात्र समझते हुए सब भावनाओंसे अपनेको विरहित करना एवं निर्व्युत्थान दशा प्राप्त करना ही अपने आपको होम करना है ।}

प्रकृतभावनासु ये गुरुचरणादिशक्तिकदम्बान्ताविषयास्ते सर्वेऽपि
चिन्मात्ररूपा न परस्परं भिद्यन्ते इति भावनया तर्पयामि ।।३२।।

{प्रकृत भावनामें जो गुरुचरणादि शक्तियाँ हैं, वे कदम्ब वृक्षोंके नीचे प्राप्त होने वाले विषय हैं, वे सभी चिन्मात्र रूप हैं, इनमें परस्पर कोई भी भेद नहीं है, इस प्रकारकी भावना ही तर्पण करना है और मैं इस भावनासे ही तर्पण करता हूँ}

तिथिचक्रमुक्तरूपं कालचक्रं देशचक्रं च सर्वमस्ति भाति प्रियं
च न तु नामरूपवदेतस्सर्व ब्रह्मैवेति विभावयामि ।।३३।।

{तिथि चक्रका जो उक्त रूप है, प्रतिपदा, द्वितीया आदि तथा कालचक्र, वर्ष, मास, संवत्सरादि, देशचक्र तथा सबकुछ जो भी है, अनुभवमें आ रहा है अथवा प्रिय लग रहा है, यह सब नामरूपात्मक न होकर केवल ब्रह्म ही है – इस प्रकार विचार करता हूँ।}

{अथवा}

{पूर्व जैसा लिखा गया है, उसकी नित्य भावना करता हुआ ही श्वास–प्रश्वास लेता रहे, इस प्रकार मनको श्वास–प्रश्वासके साथ एकीकृत अनुभव करता हुआ तीन मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त अथवा एक मुहूर्त्त निरन्तर इसी

भावनामें रम जाये एवं व्यापक हो जाये । इस प्रकार करनेवालेकी देवतार आत्मैक्यसिद्धि हो जाती है और वह जो भी कार्योंका चिन्तन करता है, वे सभी स्वतःसिद्ध हो जाते हैं।}

इस प्रकार नीचे उतरकर मूलमंत्रसे पुनः तीन बार प्राणायाम करें, ऋष्यादिन्यास तीन बार करें, तब गुरुदेवकी स्तुति करें ।

सर्व शिवम् ।

अथर्वशिरसि प्रोक्तभावनानां सतां मुदे ।

{सन्तोंकी प्रसन्नताके लिये यह अथर्वशीर्षमें कही गयी भावनाका वर्णन हुआ है ।

भगवतीकी स्तुति

श्यामे संगीतमातः परशिवनिलये मुख्यसाचिव्यभारो–
द्वाहे दक्षे दयापूरित निज हृदये मामकीं दैन्यवृत्तिम्।
श्रीमत्सिंहासनेश्यां भववनपतितान्दावदग्धान्नमस्ते
त्रातुं पीयूषवर्षैः कथय परिकरं बद्धवत्यां विविक्ते ।।

{भावार्थ}

हे माते ! श्यामा संगीत मातृका देवी !! आप परशिव भगवान् कामेश्वरके चिन्तामणि मन्दिरमें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सचिव हैं, उन्हें मंत्रणा देती हैं, आप सचिव पदको निर्वाह करनेमें परम कुशल हैं । आप कृपा कर अपने दयापूरित हृदयमें मेरी दीन अवस्था पर विचार करें । हे अनन्त लक्ष्मियोंसे युक्त श्रीमान् सिंहासनासीने ! आप इस संसार रूपी वनमें पड़े, त्रितापकी ज्वालामें जलते हुए मुझ पर मेरा त्राण करनेके लिये अपनी कृपादृष्टिकी पीयूषवर्षा करें एवं अपने परिकरोंको आदेश दें कि वे मुझ बँधे हुएको छोड़ दें, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसाधकपुंगवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।।

{भावार्थ}

जहाँ भोग हैं, वहाँ मोक्ष नहीं है एवं जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं हैं । श्रीसुन्दरीके जो श्रेष्ठ साधक हैं, उनके लिये भोग एवं मोक्ष दोनों करतल गत हैं।

पातय वा पाताले स्थापय वा सकल लोकसाम्राज्ये ।
मातस्तवांघ्रियुगलं नाहं मुञ्चामि नैव मुञ्चामि ।।
यश्शिवो नामरूपाभ्यां या देवी सर्वमंगला ।
तयोः संस्मरणात् पुंसां सर्वतो जय मंगलम् ।।

{भावार्थ}

हे माता ! आप चाहे मुझे पातालमें गिरा दें, चाहे सम्पूर्ण लोकोंका साम्राज्य प्रदान करें, मैं आपके चरणकमलोंको न तो छोड़ूँगा न ही कभी भी छोड़ पाऊँगा । जहाँ भी शिव नाम एवं रूप है एवं जहाँ भगवती सर्वमंगला देवी हैं, इनके स्मरण मात्रसे मनुष्यका सदा मंगल ही मंगल है ।

———

{पुष्पांजलि मंत्र}

{पूजनके पश्चात् पुष्पाञ्जलि देनेका तो नियम है ही । ये पुष्पांजलिके मंत्र भी पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके द्वारा ही मेरे पूर्वाश्रमके पू. मामाजी श्री चिम्मनलाल गोस्वामीको बताये गये थे । अतः उनकी उपासनाके क्रमके ही हैं । ये सभी विधियाँ मुझे लगभग ई0 सन् १९५८ में प्राप्त हुई थीं । पू. गुरुदेव काष्ठमौनके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजके साथ ही रतनगढ़ चले गये थे । मैं गोरखपुर ही रह गया था । पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी बातें मैं पू. मामाजीसे मध्याह्नमें किया करता था । उन्हीं प्रसंगोंमें पू. मामाजी श्रीचिम्मनलालजी द्वारा ये सब विधियाँ मुझे मिली थीं ।

संस्कृतके सभी श्लोकोंका अनुवाद मैंने मेरी अल्प बुद्धि द्वारा किया है, अतः भूल हो तो मेरी संस्कृतकी अज्ञानता समझकर क्षमा करेंगे ।}

{१}

शिवे शिवसुशीतलामृततरंगगन्धोल्लसन्नवावरणदेवते
नवनवामृतस्यन्दिनी
गुरुक्रमपुरस्कृतेगुणशरीरनित्योज्ज्वले षड़ंगपरिवारिते
कलित एष पुष्पांजलिः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! हे भगवान् सदाशिवको सुशीतल कर देने वाली अमृत तरंग!! हे निजांगगन्धोल्लाससे उल्लसित नौ आवरणों वाली भगवती !!! हे नव–नवामृतस्यंदिनी !!!! हे नित्योज्ज्वले !!!!! हे त्रिगुणात्मक शरीर धृते !!!!!! हे षड़ंग परिवार वाली, हे स्वामिनी !!!!!!! मेरी इस पुष्पाञ्जलिको स्वीकार करें।

{२}

समस्तमुनियक्षकिम्पुरुषसिद्धविद्याधर–
गुहासुरसुराप्सरोगणमुखैर्गणैर्सेविते ।
निवृत्तितिलकाम्बरप्रकृतिशान्तिविद्याकला–
कलापमधुराकृते कलित एष पुष्पांजलि।।

{भावार्थ}

हे मुनि, यक्ष, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर, गुह, असुर, सुर, अप्सराओंके प्रमुख गणाधिपतियों द्वारा सेव्यमाने ! हे निवृत्तिका तिलक एवं प्रवृत्तिका अम्बर धारण करने वाली !! हे शान्ति एवं विद्या कलाओंकी कलाप, परम मधुर आकृति वाली माँ, मेरी इस पुष्पांजलिको स्वीकार करें ।

{३}

त्रिवेदकृतविग्रहे त्रिविधकृत्यसन्धायिनि
त्रिरूपसमवायिनि त्रिपुरमार्ग– संचारिणि ।
त्रिलोचनकुटुम्बिनि त्रिगुणसंविदुद्यत्पदे
त्रयि त्रिपुरसुन्दरि त्रिजगदीशि पुष्पाञ्जलिः ।।

{भावार्थ}

हे ऋक्, यजुः एवं साम–तीनों वेदोंमें ही अपनी मूर्त्ति स्थापित करने वाली, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय–तीनों प्रकारके कर्म करने वाली, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिरूपोंकी समवायिनी, त्रिपुर {श्रीपुर} निज श्रीलोकमें संचरण करने वाली, भगवान् त्रिलोचन शंकरजीकी कुटुम्बिनी, त्रिगुण रूप संविद्को अपनी चरणप्रभासे उत्पन्न करने वाली {सत्वको चरणनखचन्द्रिकासे, रजको चरण तलकी मनोहर लालिमासे एवं तमको चरणोंकी पगथलीकी कठोरतासे} हे त्रयि ! त्रिपुरसुन्दरी, माँ ! हे स्वर्ग, धरा एवं पाताल तीनों लोकोंकी ईश्वरी!!! तेरे लिये यह पुष्पाञ्जलि अर्पित है ।

{४}

पुरन्दरजलाधिपान्तककुबेररक्षोहर
प्रभञ्जनधनञ्जय प्रभृति वन्दनानन्दिते ।
प्रवालपदपीठिकानिकटनित्यवर्त्तिस्वभू–
विरञ्चिविहितस्तुते विहित एष पुष्पांजलिः ।।

{भावार्थ}

इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, राक्षसोंका नाश करने वाले भगवान् राम अर्जुन प्रभृतिके द्वाराकी हुई वन्दनासे आनन्दित होने वाली, अपनी प्रवाल रत्नखचित चरण–पीठिकाके निकट बैठे स्वयंभू ब्रह्माजी द्वारा जो स्तुत्य हैं, वे पराम्बा मेरी यह पुष्पाञ्जलि स्वीकार करें ।

{५}

तरंगयति सम्पदं तदनु संहरत्यापदं
सुखं वितरति श्रियं परिधिनोति हन्ति द्विषः ।
क्षिणोति दुरितानि यत्प्रणतिरम्ब तस्यै सदा,
शिवंकरि शिवे परे शिवपुरन्धि तुभ्यं नमः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! जो भी तुझे प्रणाम करता है, उसके तू दुरित क्षीण करती है, हे शिवंकरि !! उसकी तू श्री समृद्धि बढ़ाती है, हे शिवपुरन्धि !!! उससे द्वेष करने वालोंका नाश भी तू ही करती है, हे परे !!!! तू उसे निरन्तर सुख

वितरित करती है एवं उसकी आपदाओंको समूल नष्ट करती है, तेरी अनुकूलता से सर्व शुभ सम्पदाएँ उसके ऊपर उमड़–उमड़कर लहराकर पड़ती हैं, हे माँ! मैं तुझे प्रणाम करता हूँ ।

{६}

त्वमेव जननी पिता त्वमथ बान्धवस्त्वं सखा
त्वमायुरपरं त्वमाभरणमात्मनस्त्वं कला ।
त्वमेव वपुषः स्थितिस्त्वमखिलायतिस्त्वं गुरु
प्रसीद परमेश्वरि प्रणतपात्रि तुभ्यं नमः ।।

{भावार्थ}

हे माते ! तू ही मेरी माता–पिता है, तू ही बन्धु–बान्धव एवं सखा है, तू ही मेरा जीवन {आयु} है और तू ही मृत्यु है, तू ही मेरे आभरण है और तू ही मेरी आत्मा है, तू ही कला है और तू ही मेरा शरीर {तन} है, तू मेरी अस्तित्व {स्थिति} है, तू ही यह अखिल विश्व है और तू ही उत्तम बुद्धि रूप गुरु है । हे देवि !! तू ही मेरे लिये प्रणामकी पात्री है, हे परमेश्वरी !!! आप मुझ पर प्रसन्न हों ।

{७}

कञ्जासनादिसुरवृन्दलसत्किरीट कोटिप्रघर्षणसमुज्ज्वलदंघ्रिपीठे ।
त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं दीनं विलोकय दयार्द्र विलोचनेन ।।

{भावार्थ}

हे माते ! तेरी चरणपीठ {जिस पर तू चरण रखती है} करोड़ों ब्रह्मादि सुरवृन्दोंके मस्तक पर विराजित मुकुटोंके–तुझे नमन किये जानेसे हुए घर्षणसे घिस–घिसकर समुज्ज्वल हो गयी है । मैं अन्यभाव त्याग अनन्यरूपसे तेरी शरण ग्रहण करता हूँ, तू दयार्द्र नेत्रोंसे मुझ दीनकी ओर देख ।

———

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी तंत्र साधनाके मुख्य स्तोत्र

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाकी तंत्र–साधनाका प्रारम्भ ही श्रीपोद्दार महाराज द्वारा उन्हें प्रेषित मद्राससे छपी "श्रीसौभाग्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रम्" नामक पुस्तकसे हुआ था । उस पुस्तकमें मुद्रणगत अनेक अशुद्धियाँ थीं, अतः उस पुस्तकका शोधन पू. गुरुदेवके सान्निध्यमें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एवं श्रीरामनारायणदत्त शास्त्रीने किया था । यह बात संभवतः १९४५ ई० के आसपासकी है । उन्हीं दिनों मद्राससे पू. गुरुदेवने श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम् पुस्तक भी मँगायी थी और इन सब पुस्तकोंमें–जिनमें श्रीललिताअष्टोत्तरशतनामावलि तथा श्रीललितात्रिशतीस्तोत्ररत्नावली भी थी – बहुत अशुद्धियाँ पाकर पू. गुरुदेवने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ बैठकर चतुर्थ्यन्त पदसे इन सभी स्तोत्रोंकी नामावलियाँ तैयार करायी थीं । श्रीललिताअष्टोत्तरशतनामावली तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा संशोधित करके कल्याणके शक्ति अंकमें प्रकाशित भी करा चुके थे ।

आजकल भी वे नामावलियाँ वाराणसीके अनेक मुद्रक एवं प्रकाशक प्रकाशित करते हैं परन्तु इनमें अशुद्धियोंकी भरमार रहती है, अतः पू. गुरुदेव द्वारा इन परमोच्चसाधनाके सोपान रूपमें प्रयुक्त नामावलियोंका पूर्ण शुद्ध संस्करण प्रकाशित करनेका प्रयास किया जा रहा है । उनकी जीवनीके इस प्रसंगमें ये नामावलियाँ शुद्ध रूपमें पाकर पाठक प्रसन्न ही होंगे ।

इन नामावलि–स्तोत्रोंमेंसे "श्रीसौभाग्यअष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्" तो गीताप्रेस, गोरखपुरसे श्रीपोद्दार महाराजने पू. गुरुदेवके अनुमोदन पर प्रकाशित करवा दिया था । उसका उस समय मूल्य मात्र पाँच पैसे था ।

इन सबके अतिरिक्त इस उपासनामें पू. गुरुदेव "श्रीसूक्त" के अनगिनत पाठ कर चुके थे, अतः वह स्तोत्र भी यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ।

पू. गुरुदेव यह कथा बताया करते थे कि भगवती आद्याशक्ति त्रिपुराने भगवती लक्ष्मीजीकी तपस्या साधनासे प्रसन्न होकर उन्हें सम्पूर्ण रूपसे अपना बना लिया था । तभीसे उनका "श्री" नाम भगवती त्रिपुराने अपना "नाम" घोषित कर दिया । तभीसे भगवतीकी उपासना "श्रीविद्योपासना" कही जाने लगी । भगवती त्रिपुराके धामका नाम भी "श्रीधाम" और उनके यंत्रराजको "श्रीयंत्रराज" कहा जाता है । इसी प्रकार भगवती लक्ष्मीजीके श्रीसूक्तको भी

उन्होंने अपना सूक्त घोषित कर दिया । पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी साधनामें "श्रीसूक्त" का भी विशेष स्थान था । अतः यहाँ "श्रीसूक्त" भी प्रथमतः दिया जा रहा है । शेष सभी स्तोत्र क्रमशः हैं ।

श्रीसूक्तमूलपाठः

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।।२।।
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम् ।।३।।
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलंतीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।४।।
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीं ॐ शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मी र्मे नश्यतां त्वां वृणे ।।५।।
आदित्यवर्णे तपसोधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथबिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः ।।६।।
उपैतु मां देवसखः कीर्त्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्त्तिमृद्धिं ददातु मे ।।७।।
क्षुत्पिपासा मलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ।।८।।
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वया श्रियम् ।।९।।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।१०।।
कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दमः ।
श्रियं वासय मे कुले मातर पद्ममालिनीम् ।।११।।
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिकलीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।१२।।
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्म मालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१३।।

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ।।१४।।
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीं ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ।।१५।।
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पञ्चदशर्चञ्च श्रीकामः सततं जपेत् ।।१६।।
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ।।१७।।
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्योधनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विनौ ।।१८।।
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ।।१९।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ।।२०।।
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसंभवे ।
तन्मे भजति पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ।।२१।।
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियां ।
विष्णुप्रिय सखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।।२२।।
महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।।२३।।
पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे, पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले, त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व ।।२४।।
आनन्दः कर्दमः श्रीदः चिल्कीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीर्देवी देवता ।।२५।।
ऋण रोगादि दारिद्रय पापक्षुदयमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ।।२६।।
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शत संवत्सरं दीर्घमायुः ।।२७।।

इति फलश्रुतिसहितं श्रीसूक्तं समाप्तं

श्रीहरिः

अथ सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

निशम्यैतज्जामदग्न्यो माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम् ।
स्तोत्रस्य भूयः पप्रच्छ दत्तात्रेयं गुरूत्तमम् ।।१।।
भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजनिर्गमद्वाक्सुधारसम् ।
पिबतः श्रोत्रमुखतो वर्धतेऽनुक्षणं तृषा ।।२।।
अष्टोत्तरशतं नाम्नां श्रीदेव्या यत्प्रसादतः ।
कामः सम्प्राप्तवाँल्लोके सौभाग्यं सर्वमोहनम् ।।३।।
सौभाग्यविद्यावर्णानामुद्धारो यत्र संस्थितः ।
तत्समाचक्ष्व भगवन् कृपया मयि सेवके ।।४।।
निशम्यैवं भार्गवोक्तिं दत्तात्रेयो दयानिधिः ।
प्रोवाच भार्गवं रामं मधुराक्षरपूर्वकम् ।।५।।
शृणु भार्गव यत्पृष्टं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
श्रीविद्यावर्णरत्नानां निधानमिव संस्थितम् ।।६।।
श्रीदेव्या बहुधा सन्ति नामानि शृणु भार्गव ।
सहस्रशतसंख्यानि पुराणेष्वागमेषु च ।।७।।
तेषु सारतरं ह्येतत् सौभाग्याष्टोत्तरात्मकम् ।
यदुवाच शिवः पूर्वं भवान्यै बहुधार्थितः ।।८।।
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य भार्गव ।
ऋषिरुक्तः शिवश्छन्दो ऽनुष्टुप् श्रीललिताम्बिका ।।९।।
देवता विन्यसेत् कूटत्रयेणावर्त्य सर्वतः ।
ध्यात्वा सम्पूज्य मनसा स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ।।१०।।

अथ नाममन्त्राः

ॐ कामेश्वरी कामशक्तिः कामसौभाग्यदायिनी ।
कामरूपा कामकला कामिनी कमलासना ।।११।।
कमला कल्पनाहीना कमनीयकलावती ।
कमलाभारतीसेव्या कल्पिताशेषसंस्कृतिः ।।१२।।
अनुत्तरानघानन्ताद्भुतरूपानलोद्भवा ।
अतिलोकचरित्रातिसुन्दर्यतिशुभप्रदा ।।१३।।
अघहन्त्र्यतिविस्तारार्चनतुष्टामितप्रभा ।
एकरूपैकवीरैकनाथैकान्तार्चनप्रिया ।।१४।।

एकैकभावतुष्टैकरसैकान्तजनप्रिया ।
एधमानप्रभावैधद्भक्तपातकनाशिनी ।।१५।।
एलामोदमुखैनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः ।
ईहाशून्येप्सितेशादिसेव्येशानवरांगना ।।१६।।
ईश्वराज्ञापिकेकारभाव्येप्सितफलप्रदा ।
ईशानेतिहरेक्षेषदरुणाक्षीश्वरेश्वरी ।।१७।।
ललिता ललनारूपा लयहीना लसत्तनुः ।
लयसर्वा लयक्षोणिर्लयकर्त्री लयात्मिका ।।१८।।
लघिमा लघुमध्याढ्या ललमाना लघुद्रुता ।
हयारूढा हतामित्रा हरकान्ता हरिस्तुता ।।१९।।
हयग्रीवेष्टदा हालाप्रिया हर्षसमुद्धता ।
हर्षणा हल्लकाभांगी हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी ।।२०।।
हलहस्तार्चितपदा हविर्दानप्रसादिनी ।
रामा रामार्चिता राज्ञी रम्या रवमयी रतिः ।।२१।।
रक्षिणी रमणी राका रमणीमण्डलप्रिया ।
रक्षिताखिललोकेशा रक्षोगणनिषूदिनी ।।२२।।
अम्बान्तकारिण्यम्भोजप्रियान्तकभयंकरी ।
अम्बुरूपाम्बुजकराम्बुजजातवरप्रदा ।।२३।।
अन्तःपूजाप्रियान्तःस्थरूपिण्यन्तर्वचोमयी ।
अन्तकारातिवामांकस्थितान्तस्सुखरूपिणी ।।२४।।
सर्वज्ञा सर्वगा सारा समा समसुखा सती ।
संततिः संतता सोमा सर्वा सांख्या सनातनीॐ ।।२५।।

फलश्रुतिः

एतत् ते कथितं राम नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
अतिगोप्यमिदं नाम्नः सर्वतः सारमुद्धृतम् ।।२६।।
एतस्य सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यमभक्तानां पुरतो देवताद्विषाम् ।।२७।।
एतत् सदाशिवो नित्यं पठन्त्यन्ये हरादयः ।
एतत्प्रभावात् कन्दर्पस्त्रैलोक्यं जयति क्षणात् ।।२८।।
सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं मनोहरम् ।
यस्त्रिसंध्यं पठेन्नित्यं न तस्य भुवि दुर्लभम् ।।२९।।
श्रीविद्योपासनवतामेतदावश्यकं मतम् ।
सकृदेतत् प्रपठतां नान्यत् कर्म विलुप्यते ।।३०।।

अपठित्वा स्तोत्रमिदं नित्यं नैमित्तिकं कृतम् ।
व्यर्थीभवति नग्नेन कृतं कर्म यथा तथा ।।३१।।
सहस्रनामपाठादावशक्तस्त्वेतदीरयेत् ।
सहस्रनामपाठस्य फलं शतगुणं भवेत् ।।३२।।
सहस्रधा पठित्वा तु वीक्षणान्नाशयेद्रिपून् ।
करवीररक्तपुष्पैर्हुत्वा लोकान् वशं नयेत् ।।३३।।
स्तम्भयेत् पीतकुसुमैर्नीलैरुच्चाटयेद् रिपून् ।
मरिचैर्विद्वेषणाय लवंगैर्व्याधिनाशने ।।३४।।
सुवासिनीर्ब्राह्मणान् वा भोजयेद् यस्तु नामभिः ।
यश्च पुष्पैः फलैर्वापि पूजयेत् प्रतिनामभिः ।।३५।।
चक्रराजेऽथवान्यत्र स वसेच्छ्रीपुरे चिरम् ।
यः सदाऽऽवर्तयन्नास्ते नामाष्टशतमुत्तमम् ।।३६।।
तस्य श्रीललिता राज्ञी प्रसन्ना वाञ्छितप्रदा ।
एतत्ते कथितं राम शृणु त्वं प्रकृतं ब्रुवे ।।३७।।

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये श्रीसौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

श्रीललिताष्टोत्तरशतनामावलिः

अथ ध्यानम्

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामतिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीम्
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं

श्लोकोऽनुष्टुप्

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रजताचलशृंगाग्रमध्यस्थायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हिमाचलमहावंशपावनायै नमोनमः ।।१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शंकरार्द्धांगसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लसन्मरकतस्वच्छविग्रहायै नमो नमः ।।२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महातिशयसौन्दर्यलावण्यायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शशांकशेखरप्राणवल्लभायै नमो नमः ।।३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सदा पञ्चदशात्मैक्यस्वरूपायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रमाणिक्यकटककिरीटायै नमो नमः ।।४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कस्तूरीतिलकीभूतनिटिलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भस्मरेखांकितलसन्मस्तकायै नमो नमः ।।५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विकचाम्भोरुहदललोचनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शरच्चाम्पेयपुष्पामनासिकायै नमो नमः ।।६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लसत्काञ्चनताटंकयुगलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिदर्पणसंकाशकपोलायै नमो नमः ।।७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ताम्बूलपूरितस्मेरवदनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुपक्वदाडिमीबीजरदनायै नमो नमः ।।८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कम्बुपूगसमच्छायकन्धरायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्थूलमुक्ताफलोदारसुहारायै नमो नमः ।।९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गिरीशबद्धमांगल्यमंगलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पद्मपाशांकुशलसत्कराब्जायै नमो नमः ।।१०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पद्मकैरवमन्दारसुमालिन्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुवर्णकुम्भयुग्माभसुकुचायै नमो नमः ।।११।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रमणीयचतुर्बाहुसंयुक्तायै नमो नमः ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कनकांगदकेयूरभूषितायै नमो नमः ।।१२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहत्सौवर्णसौन्दर्यवसनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं बृहन्नितम्बविलसज्जघनायै नमो नमः ।।१३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सौभाग्यजातशृंगारमध्यमायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दिव्यभूषणसन्दोहराजितायै नमो नमः ।।१४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पारिजातगुणाधिक्यपदाब्जायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुपद्मरागसंकाशचरणायै नमो नमः ।।१५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कामकोटिमहापद्मपीठस्थायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीकण्ठनेत्रकुमुदचन्द्रिकायै नमो नमः ।।१६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सचामररमावाणीवीजितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भक्तरक्षणदाक्षिण्यकटाक्षायै नमो नमः ।।१७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भूतेशालिंगनोद्भूतपुलकांग्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनंगजनकापांगवीक्षणायै नमो नमः ।।१८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मोपेन्द्रशिरोरत्नरञ्जितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शचीमुखामरवधूसेवितायै नमो नमः ।।१९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लीलाकल्पितब्रह्माण्डमण्डितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमो नमः ।।२०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं एकातपत्रसाम्राज्यदायिकायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनकादिसमाराध्यपादुकायै नमो नमः ।।२१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं देवर्षिभिःस्तूयमानवैभवायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कलशोद्भवदुर्बासःपूजितायै नमो नमः ।।२२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मत्तेभवक्त्रषड्वक्त्रवत्सलायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चक्रराजमहायंत्रमध्यवर्त्यै नमो नमः ।।२३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चिदग्निकुण्डसंभूतसुदेहायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शशांकखण्डसंयुक्तमुकुटायै नमो नमः ।।२४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मत्तहंसवधूमन्दगमनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वन्दारुजनसन्दोहवन्दितायै नमो नमः ।।२५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अन्तर्मुखजनानन्दफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पतिव्रतांगनाभीष्टफलदायै नमो नमः ।।२६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अव्याजकरुणापूरपूरितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नितान्तसच्चिदानन्दसंयुक्तायै नमो नमः ।।२७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रसूर्यसंयुक्तप्रकाशायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्नचिन्तामणिगृहमध्यस्थायै नमो नमः ।।२८।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हानिवृद्धिगुणाधिक्यरहितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महापद्माटवीमध्यभागस्थायै नमो नमः ।।२९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनांसाक्षिभूत्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महातापौघपापानांविनाशिन्यै नमो नमः ।।३०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दुष्टभीतिमहाभीतिभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं समस्तदेवदनुजप्रेरकायै नमो नमः ।।३१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं समस्तहृदयाम्भोजनिलयायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाहतमहापद्ममन्दिरायै नमो नमः ।।३२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रारसरोजातवासितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं पुनरावृत्तिरहितपुरस्थायै नमो नमः ।।३३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वाणीगायत्रिसावित्रीसंन्नुतायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रमाभूमिसुताराध्यपदाब्जायै नमो नमः ।।३४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लोपामुद्रार्चितश्रीमच्चरणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्ररतिसौन्दर्यशरीरायै नमो नमः ।।३५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भावनामृतसंतुष्टहृदयायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सत्यसम्पूर्णविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ।।३६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिलोचनकृतोल्लासफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीसुधाब्धिमणिद्वीपमध्यगायै नमो नमः ।।३७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दक्षाध्वरविनिर्भेदसाधनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीनाथसोदरीभूतशोभितायै नमो नमः ।।३८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चन्द्रशेखरभक्तार्त्तिभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वोपाधिविनिर्मुक्तचैतन्यायै नमो नमः ।।३९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नामपारायणाभीष्टफलदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सृष्टिस्थितितिरोधानसंकल्पायै नमो नमः ।।४०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीषोडशाक्षरीमंत्रमध्यगायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाद्यन्तस्वयंभूतदिव्यमूर्त्यै नमो नमः ।।४१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भक्तहंसपरीमुख्यवियोगायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मातृमंडलसंयुक्तललितायै नमो नमः ।।४२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भण्डदैत्यमहासत्वनाशनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रूरभण्डशिरच्छेदनिपुणायै नमो नमः ।।४३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं धात्रच्युतसुराधीशसुखदायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चण्डमुण्डनिशुम्भादिखण्डनायै नमो नमः ।।४४।।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रक्ताक्षरक्तजिह्वादिशिक्षणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महिषासुरदौर्वीर्यनिग्रहायै नमो नमः ।।४५।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अभ्रकेशमहोत्साहकरणायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महेशयुक्तनटनतत्परायै नमो नमः ।।४६।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं निजभर्तृमुखाम्भोजचिन्तनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वृषभध्वजविज्ञानभावनायै नमो नमः ।।४७।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं जन्ममृत्युजरारोगभञ्जनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विदेहमुक्तिविज्ञानसिद्धिदायै नमो नमः ।।४८।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कामकोधादिषड्वर्गनाशनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं राजराजार्चितपदसरोजायै नमो नमः ।।४९।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्ववेदान्तसंसिद्धसुतत्वायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीवीरभक्तविज्ञानविन्दनायै नमो नमः ।।५०।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अशेषदुष्टदनुजसूदनायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं साक्षाच्छ्रीदक्षिणामूर्तिमनोज्ञायै नमो नमः ।।५१।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महामेघाग्रसम्पूज्यमहिमायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दक्षप्रजापतिसुतावेषाढ्यायै नमो नमः ।।५२।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुमबाणेक्षुकोदण्डमण्डितायै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नित्ययौवनमांगल्यमंगलायै नमो नमः ।।५३।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महादेवसमायुक्तमहादेव्यै नमो नमः ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चतुर्विंशतितत्त्वैकस्वरूपायै नमो नमः।।५४।।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं (पाठभेद)–महादेवरतौत्सुक्यमहादेव्यै नमो नमः ।

(श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।)

श्रीललितासहस्रनामावलिः
(चतुर्थ्यन्त)

अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामंत्रस्य वशिन्यादिभ्यो वाग्देवताभ्य ऋषिभ्यो नमः शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे । श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै हृदये । 'क' ५ बीजाय गुह्ये (षोडशाक्षरी साधकानांतु 'क' ६) । स० ४ शक्तये पादयोः । 'ह' ६ कीलकाय नाभौ । चतुर्विध पुरुषार्थ–सिद्ध्यर्थे जपे (श्रीललिताम्बाप्रीत्यर्थे) पूजने, अर्चने विनियोगाय सर्वांगे । कूटत्रयं द्विरावृत्य बाला वा षडंगद्वयम् ।

ध्यानश्लोकः

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहां ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामंबिकाम् ।

मानसैः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य,

ॐ – ऐं – ह्रीं – श्रीं

ॐ श्रीमात्रे नमः
ॐ श्रीमहाराज्ञ्यै नमः
ॐ श्रीमत्सिंहासनेश्वर्यै नमः
ॐ चिदग्निकुण्डसंभूतायै नमः
ॐ देवकार्यसमुद्यतायै नमः
ॐ उद्यद्भानुसहस्राभायै नमः
ॐ चतुर्बाहुसमन्वितायै नमः
ॐ रागस्वरूपपाशाढ्यायै नमः
ॐ क्रोधाकारांकुशोज्ज्वलायै नमः
ॐ मनोरूपेक्षुकोदण्डायै नमः ।१०।
ॐ पंचतन्मात्रसायकायै नमः
ॐ निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डलायै नमः
ॐ चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचायै नमः
ॐ कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डितायै नमः
ॐ अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभितायै नमः ।।१५।।
ॐ मुखचन्द्रकलंकाममृगनाभिविशेषकायै नमः
ॐ वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिकायै नमः
ॐ वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचनायै नमः
ॐ नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजितायै नमः
ॐ ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरायै नमः ।।२०।।

ॐ कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरायै नमः ।
ॐ ताटंकयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै नमः ।
ॐ पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुवे नमः ।
ॐ नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिदशनच्छदायै नमः ।
ॐ शुद्धविद्यांकुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्वलायै नमः ।।२५।।
ॐ कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरायै नमः ।
ॐ निजसंल्लापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छप्यै नमः ।
ॐ मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसायै नमः ।
ॐ अनाकलितसादृष्यचिबुकश्रीविराजितायै नमः ।
ॐ कामेशबद्धमांगल्यसूत्रशोभितकन्धरायै नमः ।।३०।।
ॐ कनकांगदकेयूरकमनीयभुजान्वितायै नमः ।
ॐ रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्वितायै नमः ।
ॐ कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तन्यै नमः ।
ॐ नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वय्यै नमः ।
ॐ लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमायै नमः ।
ॐ स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रयायै नमः ।
ॐ अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतट्यै नमः ।
ॐ रत्नकिंकिणिकारम्यरशनादामभूषितायै नमः ।
ॐ कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्वितायै नमः ।
ॐ माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजितायै नमः ।
ॐ इन्द्रगोपपरीक्षिप्तस्मरतूणाभजंघिकायै नमः ।
ॐ गूढगुल्फायै नमः ।
ॐ कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्वितायै नमः ।
ॐ नखदीधितिसञ्छन्ननमज्जनतमोगुणायै नमः ।
ॐ पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहायै नमः ।।४५।।
ॐ शिञ्जानमणिमंजीरमण्डितश्रीपदाम्बुजायै नमः
ॐ मरालीमन्दगमनायै नमः
ॐ महालावण्यशेवधये नमः
ॐ सर्वारुणायै नमः
ॐ अनवद्यांग्यै नमः
ॐ सर्वाभरणभूषितायै नमः
ॐ शिवकामेश्वरांकस्थायै नमः
ॐ शिवायै नमः

ॐ स्वाधीनवल्लभायै नमः
ॐ सुमेरुमध्यशृंगस्थायै नमः ।।५५।।
ॐ श्रीमन्नगरनायिकायै नमः
ॐ चिन्तामणिगृहान्तस्थायै नमः
ॐ पञ्चब्रह्मासनस्थितायै नमः
ॐ महापद्माटवीसंस्थायै नमः
ॐ कदम्बवनवासिन्यै नमः
ॐ सुधासागरमध्यस्थायै नमः
ॐ कामाक्ष्यै नमः
ॐ कामदायिन्यै नमः
ॐ देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवायै नमः ।
ॐ भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्वितायै नमः ।।६५।।
ॐ सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेवितायै नमः ।
ॐ अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृतायै नमः ।
ॐ चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृतायै नमः ।
ॐ गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेवितायै नमः ।
ॐ किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृतायै नमः ।।७०।।
ॐ ज्वालामालिनिकाक्षिप्तबह्निप्राकारमध्यगायै नमः ।
ॐ भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षितायै नमः ।
ॐ नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुकायै नमः ।
ॐ भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दितायै नमः ।
ॐ मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषंगवधतोषितायै नमः ।
ॐ विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दितायै नमः ।
ॐ कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरायै नमः ।
ॐ महागणशनिर्भिन्नविघ्नयंत्रप्रहर्षितायै नमः ।
ॐ भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिण्यै नमः ।
ॐ करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृत्यै नमः ।।८०।।
ॐ महापाशुपतास्त्राग्निर्निदग्धापुरसैनिकायै नमः ।
ॐ कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यकायै नमः ।
ॐ ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवायै नमः ।
ॐ हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषध्यै नमः ।
ॐ श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजायै नमः ।
ॐ कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै नमः ।

ॐ शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिण्यै नमः ।

ॐ मूलमंत्रात्मिकायै नमः
ॐ मूलकूटत्रयकलेवरायै नमः
ॐ कुलामृतैकरसिकायै नमः ।।९०।।
ॐ कुलसंकेतपालिन्यै नमः
ॐ कुलांगनायै नमः
ॐ कुलान्तस्थायै नमः
ॐ कौलिन्यै नमः
ॐ कुलयोगिन्यै नमः
ॐ अकुलायै नमः
ॐ समयान्तस्थायै नमः
ॐ समयाचारतत्परायै नमः
ॐ मूलाधारैकनिलयायै नमः
ॐ ब्रह्मग्रन्थिविभेदिन्यै नमः ।।१००।।
ॐ मणिपूरान्तरुदितायै नमः
ॐ विष्णुग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ॐ आज्ञाचक्रान्तरालस्थायै नमः
ॐ रुद्रग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ॐ सहस्राराम्बुजारूढायै नमः
ॐ सुधासाराभिवर्षिण्यै नमः
ॐ तडिल्लतासमरुच्यै नमः
ॐ षट्चक्रोपरिसंस्थितायै नमः
ॐ महाशक्त्यै नमः
ॐ कुण्डलिन्यै नमः ।।११०।।
ॐ विसतन्तुतनीयस्यै नमः
ॐ भवान्यै नमः
ॐ भावनागम्यायै नमः
ॐ भवारण्यकुठारिकायै नमः
ॐ भद्रप्रियायै नमः
ॐ भद्रमूर्त्तय नमः
ॐ भक्तसौभाग्यदायिन्यै नमः
ॐ भक्तिप्रियायै नमः
ॐ भक्तिगम्यायै नमः
ॐ भक्तिवश्यायै नमः ।।१२०।।
ॐ भयापहायै नमः
ॐ शाम्भव्यै नमः
ॐ शारदाराध्यायै नमः
ॐ शर्वाण्यै नमः
ॐ शर्मदायिन्यै नमः
ॐ शांकर्यै नमः
ॐ श्रीकर्यै नमः
ॐ साध्व्यै नमः
ॐ शरच्चन्द्रनिभाननायै नमः
ॐ शातोदर्यै नमः ।।१३०।।
ॐ शान्तिमत्यै नमः
ॐ निराधारायै नमः
ॐ निरञ्जनायै नमः
ॐ निर्लेपायै नमः
ॐ निर्मलायै नमः
ॐ नित्यायै नमः
ॐ निराकारायै नमः
ॐ निराकुलायै नमः
ॐ निर्गुणायै नमः
ॐ निष्कलायै नमः ।।१४०।।
ॐ शान्तायै नमः
ॐ निष्कामायै नमः
ॐ निरुपप्लवायै नमः
ॐ नित्यमुक्तायै नमः
ॐ निर्विकारायै नमः
ॐ निष्प्रपञ्चायै नमः
ॐ निराश्रयायै नमः
ॐ नित्यशुद्धायै नमः
ॐ नित्यबुद्धायै नमः
ॐ निरवद्यायै नमः ।।१५०।।

ॐ निरन्तरायै नमः
ॐ निष्कारणायै नमः
ॐ निष्कलंकायै नमः
ॐ निरुपाधये नमः
ॐ निरीश्वरायै नमः
ॐ नीरागायै नमः
ॐ रागमथन्यै नमः
ॐ निर्मदायै नमः
ॐ मदनाशिन्यै नमः
ॐ निश्चिंतायै नमः
ॐ निरहंकारायै नमः
ॐ निर्मोहायै नमः
ॐ मोहनाशिन्यै नमः
ॐ निर्ममायै नमः
ॐ ममताहन्त्र्यै नमः
ॐ निष्पापायै नमः
ॐ पापनाशिन्यै नमः
ॐ निष्क्रोधायै नमः
ॐ क्रोधशमन्यै नमः
ॐ निर्लोभायै नमः ।।१७०।।
ॐ लोभनाशिन्यै नमः
ॐ निःसंशयायै नमः
ॐ संशयघ्न्यै नमः
ॐ निर्भवायै नमः
ॐ भवनाशिन्यै नमः
ॐ निर्विकल्पायै नमः
ॐ निराबाधायै नमः
ॐ निर्भेदायै नमः
ॐ भेदनाशिन्यै नमः
ॐ निर्नाशायै नमः ।।१८०।।
ॐ मृत्युमथन्यै नमः
ॐ निष्क्रियायै नमः
ॐ निष्परिग्रहायै नमः
ॐ निस्तुलायै नमः
ॐ नीलचिकुरायै नमः
ॐ निरपायायै नमः
ॐ निरत्ययायै नमः
ॐ दुर्लभायै नमः
ॐ दुर्गमायै नमः
ॐ दुर्गायै नमः ।।१९०।।
ॐ दुःखहन्त्र्यै नमः
ॐ सुखप्रदायै नमः
ॐ दुष्टदूरायै नमः
ॐ दुराचारशमन्यै नमः
ॐ दोषवर्जितायै नमः
ॐ सर्वज्ञायै नमः
ॐ सान्द्रकरुणायै नमः
ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः
ॐ सर्वशक्तिमय्यै नमः
ॐ सर्वमंगलायै नमः ।।२००।।
ॐ सद्गतिप्रदायै नमः
ॐ सर्वेश्वर्यै नमः
ॐ सर्वमय्यै नमः
ॐ सर्वमंत्रस्वरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वयंत्रात्मिकायै नमः
ॐ सर्वतन्त्ररूपायै नमः
ॐ मनोन्मन्यै नमः
ॐ माहेश्वर्यै नमः
ॐ महादेव्यै नमः
ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।।२१०।।
ॐ मृडप्रियायै नमः
ॐ महारूपायै नमः
ॐ महापूज्यायै नमः
ॐ महापातकनाशिन्यै नमः
ॐ महामायायै नमः
ॐ महाशक्त्यै नमः
ॐ महासत्त्वायै नमः

ॐ महारत्यै नमः
ॐ महाभोगायै नमः
ॐ महैश्वर्यायै नमः ।।२२०।।
ॐ महावीर्यायै नमः
ॐ महाबलायै नमः
ॐ महाबुद्ध्यै नमः
ॐ महासिद्ध्यै नमः
ॐ महायोगीश्वरेश्वर्यै नमः
ॐ महातन्त्रायै नमः
ॐ महामन्त्रायै नमः
ॐ महायन्त्रायै नमः
ॐ महासनायै नमः
ॐ महायागक्रमाराध्यायै नमः ।।२३०।।
ॐ महाभैरवपूजितायै नमः
ॐ महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डव–
साक्षिण्यै नमः
ॐ महाकामेशमहिष्यै नमः
ॐ महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ॐ चतुःषष्ट्युपचाराढ्यायै नमः
ॐ चतुःषष्टिकलामय्यै नमः
ॐ महाचतुःषष्टिकोटियोगिनी–
गणसेवितायै नमः
ॐ मनुविद्यायै नमः
ॐ चन्द्रविद्यायै नमः
ॐ चन्द्रमण्डलमध्यगायैनमः ।।२४०।।
ॐ चारुरूपायै नमः
ॐ चारुहासायै नमः
ॐ चारुचन्द्रकलाधरायै नमः
ॐ चराचरजगन्नाथायै नमः
ॐ चक्रराजनिकेतनायै नमः
ॐ पार्वत्यै नमः
ॐ पद्मनयनायै नमः
ॐ पद्मरागसमप्रभायै नमः
ॐ पञ्चप्रेतासनासीनायै नमः
ॐ पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यैनमः ।।२५०।।
ॐ चिन्मय्यै नमः
ॐ परमानन्दायै नमः
ॐ विज्ञानघनरूपिण्यै नमः
ॐ ध्यानध्यातृध्येयरूपायै नमः
ॐ धर्माधर्मविवर्जितायै नमः
ॐ विश्वरूपायै नमः
ॐ जागरिण्यै नमः
ॐ स्वपन्त्यै नमः
ॐ तैजसात्मिकायै नमः
ॐ सुप्तायै नमः ।।२६०।।
ॐ प्राज्ञात्मिकायै नमः
ॐ तुर्यायै नमः
ॐ सर्वावस्थाविवर्जितायै नमः
ॐ सृष्टिकर्त्र्यै नमः
ॐ ब्रह्मरूपायै नमः
ॐ गोप्त्र्यै नमः
ॐ गोविन्दरूपिण्यै नमः
ॐ संहारिण्यै नमः
ॐ रुद्ररूपायै नमः
ॐ तिरोधानकर्यै नमः ।।२७०।।
ॐ ईश्वर्यै नमः
ॐ सदाशिवायै नमः
ॐ अनुग्रहदायै नमः
ॐ पञ्चकृत्यपरायणायै नमः
ॐ भानुमण्डलमध्यस्थायै नमः
ॐ भैरव्यै नमः
ॐ भगमालिन्यै नमः
ॐ पद्मासनायै नमः

ॐ भगवत्यै नमः
ॐ पद्मनाभसहोदर्यै नमः ।।२८०।।
ॐ उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्न–
भुवनावल्यै नमः
ॐ सहस्रशीर्षवदनायै नमः
ॐ सहस्राक्ष्यै नमः
ॐ सहस्रपदे नमः
ॐ आब्रह्मकीटजनन्यै नमः
ॐ वर्णाश्रमविधायिन्यै नमः
ॐ निजाज्ञारूपनिगमायै नमः
ॐ पुण्यापुण्यफलप्रदायै नमः
ॐ श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृत–
पादाब्जधूलिकायै नमः
ॐ सकलागमसंदोहशुक्ति–
संपुटमौक्तिकायै नमः ।।२९०।।
ॐ पुरुषार्थप्रदायै नमः
ॐ पूर्णायै नमः
ॐ भोगिन्यै नमः
ॐ भुवनेश्वर्यै नमः
ॐ अम्बिकायै नमः
ॐ अनादिनिधनायै नमः
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ॐ नारायण्यै नमः
ॐ नादरूपायै नमः
ॐ नामरूपविवर्जितायै नमः
ॐ ह्रींकार्यै नमः
ॐ ह्रीमत्यै नमः
ॐ ह्रद्यायै नमः
ॐ हेयोपादेयवर्जितायै नमः
ॐ राजराजार्चितायै नमः
ॐ राज्ञ्यै नमः
ॐ रम्यायै नमः
ॐ राजीवलोचनायै नमः
ॐ रञ्जन्यै नमः
ॐ रमण्यै नमः ।।३१०।।
ॐ रस्यायै नमः
ॐ रणत्किंकिणिमेखलायै नमः
ॐ रमायै नमः
ॐ राकेन्दुवदनायै नमः
ॐ रतिरूपायै नमः
ॐ रतिप्रियायै नमः
ॐ रक्षाकर्यै नमः
ॐ राक्षसघ्न्यै नमः
ॐ रामायै नमः
ॐ रमणलम्पटायै नमः ।।३२०।।
ॐ काम्यायै नमः
ॐ कामकलारूपायै नमः
ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
ॐ कल्याण्यै नमः
ॐ जगतीकन्दायै नमः
ॐ करुणारससागरायै नमः
ॐ कलावत्यै नमः
ॐ कलालापायै नमः
ॐ कान्तायै नमः
ॐ कादम्बरीप्रियायै नमः
ॐ वरदायै नमः
ॐ वामनयनायै नमः
ॐ वारुणीमदविह्वलायै नमः
ॐ विश्वाधिकायै नमः
ॐ वेदवेद्यायै नमः
ॐ विन्ध्याचलनिवासिन्यै नमः
ॐ विधात्र्यै नमः
ॐ वेदजनन्यै नमः
ॐ विष्णुमायायै नमः
ॐ विलासिन्यै नमः ।।३४०।।

ॐ क्षेत्रस्वरूपायै नमः
ॐ क्षेत्रेशयै नमः
ॐ क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिन्यै नमः
ॐ क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ क्षेत्रपालसमर्चितायै नमः
ॐ विजयायै नमः
ॐ विमलायै नमः
ॐ वन्द्यायै नमः
ॐ वन्दारुजनवत्सलायै नमः
ॐ वाग्वादिन्यै नमः ॥३५०॥
ॐ वामकेश्यै नमः
ॐ वह्निमण्डलवासिन्यै नमः
ॐ भक्तिमत्कल्पलतिकायै नमः
ॐ पशुपाशविमोचिन्यै नमः
ॐ संहृताशेषपाखण्डायै नमः
ॐ सदाचारप्रवर्तिकायै नमः
ॐ तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लादन–
चन्द्रिकायै नमः
ॐ तरुण्यै नमः
ॐ तापसाराध्यायै नमः
ॐ तनुमध्यायै नमः ॥३६०॥
ॐ तमोपहायै नमः
ॐ चित्यै नमः
ॐ तत्पदलक्षार्थायै नमः
ॐ चिदेकरसरूपिण्यै नमः
ॐ स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्या–
नन्दसंतत्यै नमः
ॐ परायै नमः
ॐ प्रत्यक्चितिरूपायै नमः
ॐ पश्यन्त्यै नमः
ॐ परदेवतायै नमः
ॐ मध्यमायै नमः ॥३७०॥
ॐ वेखरीरूपायै नमः
ॐ भक्तमानसहंसिकायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः
ॐ कृतज्ञायै नमः
ॐ कामपूजितायै नमः
ॐ श्रृंगाररससम्पूर्णायै नमः
ॐ जयायै नमः
ॐ जालन्धरस्थितायै नमः
ॐ ओड्याणपीठनिलयायै नमः
ॐ बिन्दुमण्डलवासिन्यै नमः ॥३८०॥
ॐ रहोयागक्रमाराध्यायै नमः
ॐ रहस्तर्पणतर्पितायै नमः
ॐ सद्यःप्रसादिन्यै नमः
ॐ विश्वसाक्षिण्यै नमः
ॐ साक्षिवर्जितायै नमः
ॐ षडंगदेवतायुक्तायै नमः
ॐ षाड्गुण्यपरिपूरितायै नमः
ॐ नित्यक्लिन्नायै नमः
ॐ निरुपमायै नमः
ॐ निर्वाणसुखदायिन्यै नमः ॥३९०॥
ॐ नित्याषोडशिकारूपायै नमः
ॐ श्रीकण्ठार्धशरीरिण्यै नमः
ॐ प्रभावत्यै नमः
ॐ प्रभारूपायै नमः
ॐ प्रसिद्धायै नमः
ॐ परमेश्वर्यै नमः
ॐ मूलप्रकृत्यै नमः
ॐ अव्यक्तायै नमः
ॐ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिण्यै नमः
ॐ व्यापिन्यै नमः ॥४००॥
ॐ विविधिकारायै नमः
ॐ विद्याविद्यास्वरूपिण्यै नमः
ॐ महाकामेशनयनकुमुदाह्लाद–
कौमुद्यै नमः

ॐ भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानु-
संतत्यै नमः
ॐ शिवदूत्यै नमः
ॐ शिवाराध्यायै नमः
ॐ शिवमूर्त्यै नमः
ॐ शिवंकर्यै नमः
ॐ शिवप्रियायै नमः
ॐ शिवपरायै नमः ।।४१०।।
ॐ शिष्टेष्टायै नमः
ॐ शिष्टपूजितायै नमः
ॐ अप्रमेयायै नमः
ॐ स्वप्रकाशायै नमः
ॐ मनोवाचामगोचरायै नमः
ॐ चिच्छक्त्यै नमः
ॐ चेतनारूपायै नमः
ॐ जडशक्त्यै नमः
ॐ जड़ात्मिकायै नमः
ॐ गायत्र्यै नमः।।४२०।।
ॐ व्याहृत्यै नमः
ॐ संध्यायै नमः
ॐ द्विजवृन्दनिषेवितायै नमः
ॐ तत्वासनायै नमः
ॐ तस्मै नमः
ॐ तुभ्यं नमः
ॐ अय्यै नमः
ॐ पञ्चकोशान्तरस्थितायै नमः
ॐ निस्सीममहिम्ने नमः
ॐ नित्ययौवनायै नमः ।।४३०।।
ॐ मदशालिन्यै नमः
ॐ मदघूर्णितरक्ताक्ष्यै नमः
ॐ मदपाटलगण्डभुवे नमः
ॐ चन्दनद्रवदिग्धांग्यै नमः
ॐ चाम्पेयकुसुम प्रियायै नमः
ॐ कुशलायै नमः
ॐ कोमलाकारायै नमः
ॐ कुरुकुल्लायै नमः
ॐ कुलेश्वर्यै नमः
ॐ कुलकुण्डालयायै नमः ।।४४०।।
ॐ कौलमार्गतत्परसेवितायै नमः
ॐ कुमारगणनाथाम्बायै नमः
ॐ तुष्ट्यै नमः
ॐ पुष्ट्यै नमः
ॐ मत्यै नमः
ॐ धृत्यै नमः
ॐ शान्त्यै नमः
ॐ स्वस्तिमत्यै नमः
ॐ कान्त्यै नमः
ॐ नन्दिन्यै नमः ।।४५०।।
ॐ विघ्ननाशिन्यै नमः
ॐ तेजोवत्यै नमः
ॐ त्रिनयनायै नमः
ॐ लोलाक्षीकामरूपिण्यै नमः
ॐ मालिन्यै नमः
ॐ हंसिन्यै नमः
ॐ मात्रे नमः
ॐ मलयाचलवासिन्यै नमः
ॐ सुमुख्यै नमः
ॐ नलिन्यै नमः ।।४६०।।
ॐ सुभ्रुवे नमः
ॐ शोभनायै नमः
ॐ सुरनायिकायै नमः
ॐ कालकण्ठ्यै नमः
ॐ कान्तिमत्यै नमः
ॐ क्षोभिण्यै नमः
ॐ सूक्ष्मरूपिण्यै नमः
ॐ बज्रेश्वर्यै नमः

ॐ वामदेव्यै नमः
ॐ वयोवस्थाविवर्जितायै नमः ।।४७०।।
ॐ सिद्धेश्वर्यै नमः
ॐ सिद्धविद्यायै नमः
ॐ सिद्धमात्रे नमः
ॐ यशस्विन्यै नमः
ॐ विशुद्धचक्रनिलयायै नमः
ॐ आरक्तवर्णायै नमः
ॐ त्रिलोचनायै नमः
ॐ खट्वांगादिप्रहरणायै नमः
ॐ वदनैकसमन्वितायै नमः
ॐ पायसान्नप्रियायै नमः ।।४८०।।
ॐ त्वक्स्थायै नमः
ॐ पशुलोकभयंकर्यै नमः
ॐ अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमः
ॐ डाकिनीश्वर्यै नमः
ॐ अनाहताब्जनिलयायै नमः
ॐ श्यामाभायै नमः
ॐ वदनद्वयायै नमः
ॐ दंष्ट्रोज्ज्वलायै नमः
ॐ अक्षमालादिधरायै नमः
ॐ रुधिरसंस्थितायै नमः ।।४९०।।
ॐ कालरात्र्यादिशक्त्योघवृतायै नमः
ॐ स्निग्धौदनप्रियायै नमः
ॐ महावीरेन्द्रवरदायै नमः
ॐ राकिण्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ मणिपूराब्जनिलयायै नमः
ॐ वदनत्रयसंयुतायै नमः
ॐ वज्रादिकायुधोपेतायै नमः
ॐ डामर्यादिभिरावृतायै नमः
ॐ रक्तवर्णायै नमः
ॐ मांसनिष्ठायै नमः ।।५००।।
ॐ गुडान्नप्रीतिमानसायै नमः
ॐ समस्तभक्तसुखदायै नमः
ॐ लाकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ स्वाधिष्ठानाम्बुजगतायै नमः
ॐ चतुर्वक्त्रमनोहरायै नमः
ॐ शूलाद्यायुधसम्पन्नायै नमः
ॐ पीतवर्णायै नमः
ॐ अतिगर्वितायै नमः
ॐ मेदोनिष्ठायै नमः
ॐ मधुप्रीतायै नमः ।।५१०।।
ॐ वन्दिन्यादिसमन्वितायै नमः
ॐ दध्यन्नासक्तहृदयायै नमः
ॐ काकिनीरूपधारिण्यै नमः
ॐ मूलाधाराम्बुजारूढायै नमः
ॐ पंचवक्त्रायै नमः
ॐ अस्थिसंस्थितायै नमः
ॐ अंकुशादिप्रहरणायै नमः
ॐ वरदादिनिषेवितायै नमः
ॐ मुद्गौदनासक्तचित्तायै नमः
ॐ साकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः ।।५२०।।
ॐ आज्ञाचक्राब्जनिलयायै नमः
ॐ शुक्लवर्णायै नमः
ॐ षडाननायै नमः
ॐ मज्जासंस्थायै नमः
ॐ हंसवतीमुख्यशक्ति-समन्वितायै नमः
ॐ हरिद्रान्नैकरसिकायै नमः
ॐ हाकिनीरूपधारिण्यै नमः
ॐ सहस्रदलपद्मस्थायै नमः
ॐ सर्ववर्णोपशोभितायै नमः
ॐ सर्वायुधधरायै नमः ।। ५३०।।
ॐ शुक्रसंस्थितायै नमः

ॐ सर्वतोमुख्यै नमः
ॐ सर्वौदनप्रीतिचित्तायै नमः
ॐ याकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ॐ स्वाहा नमः
ॐ स्वधा नमः
ॐ अमत्यै नमः
ॐ मेधायै नमः
ॐ श्रुत्यै नमः
ॐ स्मृत्यै नमः ।।५४०।।
ॐ अनुत्तमायै नमः
ॐ पुण्यकीर्त्यै नमः
ॐ पुण्यलभ्यायै नमः
ॐ पुण्यश्रवणकीर्तनायै नमः
ॐ पुलोमजार्चितायै नमः
ॐ बन्धमोचन्यै नमः
ॐ बर्बरालकायै नमः
ॐ विमर्शरूपिण्यै नमः
ॐ विद्यायै नमः
ॐ वियदादिजगत्प्रसुवे नमः ।।५५०।।
ॐ सर्वव्याधिप्रशमन्यै नमः
ॐ सर्वमृत्युनिवारिण्यै नमः
ॐ अग्रगण्यायै नमः
ॐ अचिन्त्यरूपायै नमः
ॐ कलिकल्मषनाशिन्यै नमः
ॐ कात्यायन्यै नमः
ॐ कालहन्त्र्यै नमः
ॐ कमलाक्षनिषेवितायै नमः
ॐ ताम्बूलपूरितमुख्यै नमः
ॐ दाडिमीकुसुमप्रभायैनमः ।।५६०।।
ॐ मृगाक्ष्यै नमः
ॐ मोहिन्यै नमः
ॐ मुख्यायै नमः
ॐ मृडान्यै नमः
ॐ मित्ररूपिण्यै नमः
ॐ नित्यतृप्तायै नमः
ॐ भक्तनिधये नमः
ॐ नियंत्र्यै नमः
ॐ निखिलेश्वर्यै नमः
ॐ मैत्र्यादिवासनालभ्यायै नमः ।।५७०।।
ॐ महाप्रलयसाक्षिण्ये नमः
ॐ परस्यैशक्त्यै नमः
ॐ परायैनिष्ठायै नमः
ॐ प्रज्ञानघनरूपिण्यै नमः
ॐ माध्वीपानालसायै नमः
ॐ मत्तायै नमः
ॐ मातृकावर्णरूपिण्यै नमः
ॐ महाकैलासनिलयायै नमः
ॐ मृणालमृदुदोर्लतायै नमः
ॐ महनीयायै नमः ।।५८०।।
ॐ दयामूर्त्यै नमः
ॐ महासाम्राज्यशालिन्यै नमः
ॐ आत्मविद्यायै नमः
ॐ महाविद्यायै नमः
ॐ श्रीविद्यायै नमः
ॐ कामसेवितायै नमः
ॐ श्रीषोड़शाक्षरीविद्यायै नमः
ॐ त्रिकूटायै नमः
ॐ कामकोटिकायै नमः
ॐ कटाक्षकिंकरीभूतकमला-कोटिसेवितायै नमः।।५९०।।
ॐ शिरः स्थितायै नमः ।
ॐ चन्द्रनिभायै नमः
ॐ भालस्थायै नमः
ॐ इन्द्रधनुप्रभायै नमः
ॐ हृदयस्थायै नमः

ॐ रविप्रख्यायै नमः
ॐ त्रिकोणान्तरदीपिकायै नमः
ॐ दाक्षायण्यै नमः
ॐ दैत्यहन्त्र्यै नमः
ॐ दक्षयज्ञविनाशिन्यै नमः ।।६००।।
ॐ दरान्दोलितदीर्घाक्ष्यै नमः
ॐ दरहासोज्वलन्मुख्यै नमः
ॐ गुरुमूर्त्तये नमः
ॐ गुणनिधये नमः
ॐ गोमात्रे नमः
ॐ गुहजन्मभुवे नमः
ॐ देवेश्यै नमः
ॐ दण्डनीतिस्थायै नमः
ॐ दहराकाशरूपिण्यै नमः
ॐ प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथि–
मंडलपूजितायै नमः ।।६१०।।
ॐ कलात्मिकायै नमः
ॐ कलानाथायै नमः
ॐ काव्यालापविनोदिन्यै नमः
ॐ सचामररमावाणीसव्य–
दक्षिणसेवितायै नमः
ॐ आदिशक्त्यै नमः
ॐ अमेयायै नमः
ॐ आत्मने नमः
ॐ परमायै नमः
ॐ पावनाकृतये नमः
ॐ अनेककोटिब्रह्माण्ड–
जनन्यै नमः
ॐ दिव्यविग्रहायै नमः
ॐ क्लींकार्यै नमः
ॐ केवलायै नमः
ॐ गुह्यायै नमः
ॐ कैवल्यपददायिन्यै नमः
ॐ त्रिपुरायै नमः
ॐ त्रिजगद्वन्द्यायै नमः
ॐ त्रिमूर्त्तये नमः
ॐ त्रिदशेश्वर्यै नमः
ॐ त्र्यक्षर्यै नमः ।।६३०।।
ॐ दिव्यगन्धाढ्यायै नमः
ॐ सिन्दूरतिलकाञ्चितायै नमः
ॐ उमायै नमः
ॐ शैलेन्द्रतनयायै नमः
ॐ गौर्यै नमः
ॐ गन्धर्वसेवितायै नमः
ॐ विश्वगर्भायै नमः
ॐ स्वर्णगर्भायै नमः
ॐ अवरदायै नमः
ॐ वागधीश्वर्यै नमः ।।६४०।।
ॐ ध्यानगम्यायै नमः
ॐ अपरिच्छेद्यायै नमः
ॐ ज्ञानदायै नमः
ॐ ज्ञानविग्रहायै नमः
ॐ सर्ववेदान्तसंवेद्यायै नमः
ॐ सत्यानन्दस्वरूपिण्यै नमः
ॐ लोपामुद्रार्चितायै नमः
ॐ लीलाक्लृप्तब्रह्मांड–
मंडलायै नमः
ॐ अदृश्यायै नमः
ॐ दृष्यरहितायै नमः ।।६५०।।
ॐ विज्ञात्र्यै नमः
ॐ वेद्यवर्जितायै नमः
ॐ योगिन्यै नमः
ॐ योगदायै नमः
ॐ योग्यायै नमः
ॐ योगानन्दायै नमः
ॐ युगन्धरायै नमः

ॐ इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्ति–
स्वरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वाधारायै नमः
ॐ सुप्रतिष्ठायै नमः ।।६६०।।
ॐ सदसद्रूपधारिण्यै नमः
ॐ अष्टमूर्त्यै नमः
ॐ अजाजेत्र्यै नमः
ॐ लोकयात्राविधायिन्यै नमः
ॐ एकाकिन्यै नमः
ॐ भूमरूपायै नमः
ॐ निर्द्वैतायै नमः
ॐ द्वैतवर्जितायै नमः
ॐ अन्नदायै नमः
ॐ वसुदायै नमः ।।६७०।।
ॐ वृद्धायै नमः
ॐ ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिण्यै नमः
ॐ बृहत्यै नमः
ॐ ब्राह्मण्यै नमः
ॐ ब्राह्म्यै नमः
ॐ ब्रह्मानन्दायै नमः
ॐ बलिप्रियायै नमः
ॐ भाषारूपायै नमः
ॐ वृहत्सेनायै नमः
ॐ भावाभावविवर्जितायै नमः ।।६८०।।
ॐ सुखाराध्यायै नमः
ॐ शुभकर्यै नमः
ॐ शोभनायैसुलभायैगत्यै नमः
ॐ राजराजेश्वर्यै नमः
ॐ राज्यदायिन्यै नमः
ॐ राजवल्लभायै नमः
ॐ राजत्कृपायै नमः
ॐ राजपीठनिवेशितनिजाश्रितायै नमः
ॐ राज्यलक्ष्म्यै नमः
ॐ कोशनाथायै नमः ।।६९०।।
ॐ चतुरंगबलेश्वर्यै नमः
ॐ साम्राज्यदायिन्यै नमः
ॐ सत्यसन्धायै नमः
ॐ सागरमेखलायै नमः
ॐ दीक्षितायै नमः
ॐ दैत्यशमन्यै नमः
ॐ सर्वलोकवशंकर्यै नमः
ॐ सर्वार्थदात्र्यै नमः
ॐ सावित्र्यै नमः
ॐ सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः।।७००।।
ॐ देशकालापरिच्छिन्नायै नमः
ॐ सर्वगायै नमः
ॐ सर्वमोहिन्यै नमः
ॐ सरस्वत्यै नमः
ॐ शास्त्रमय्यै नमः
ॐ गुहाम्बायै नमः
ॐ गुह्यरूपिण्यै नमः
ॐ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ सदाशिवपतिव्रतायै नमः
ॐ सम्प्रदायेश्वर्यै नमः ।।७१०
ॐ साधुने नमः
ॐ यै नमः
ॐ गुरुमण्डलरूपिण्यै नमः
ॐ कुलोत्तीर्णायैः नमः
ॐ भगाराध्यायै नमः
ॐ मायायै नमः
ॐ मधुमत्यै नमः
ॐ मह्यै नमः
ॐ गणाम्बायै नमः
ॐ गुह्यकाराध्यायै नमः ।।७२०।।
ॐ कोमलांग्यै नमः

ॐ गुरुप्रियायै नमः
ॐ स्वतंत्रायै नमः
ॐ सर्वतन्त्रेश्यै नमः
ॐ दक्षिणामूर्त्तिरूपिण्यै नमः
ॐ सनकादिसमाराध्यायै नमः
ॐ शिवज्ञानप्रदायिन्यै नमः
ॐ चित्कलायै नमः
ॐ आनन्दकलिकायै नमः
ॐ प्रेमरूपायै नमः ।।७३०।।
ॐ प्रियंकर्यै नमः
ॐ नामपारायणप्रीतायै नमः
ॐ नन्दिविद्यायै नमः
ॐ नटेश्वर्यै नमः
ॐ मिथ्याजगदधिष्ठानायै नमः
ॐ मुक्तिदायै नमः
ॐ मुक्तिरूपिण्यै नमः
ॐ लास्यप्रियायै नमः
ॐ लयकर्यै नमः
ॐ लज्जायै नमः ।।७४०।।
ॐ रम्भादिवन्दितायै नमः
ॐ भवदावसुधावृष्ट्यै नमः
ॐ पापारण्यदवानलायै नमः
ॐ दौर्भाग्यतूलवातूलायै नमः
ॐ ज्वराध्वान्तरविप्रभायै नमः
ॐ भाग्याब्धिचन्द्रिकायै नमः
ॐ भक्तचित्तकेकीघनाघनायै नमः
ॐ रोगपर्वतदम्भोलये नमः
ॐ मृत्युदारुकुठारिकायै नमः
ॐ महेश्वर्यै नमः ।।७५०।।
ॐ महाकाल्यै नमः
ॐ महाग्रासायै नमः
ॐ महाशनायै नमः
ॐ अपर्णायै नमः
ॐ चण्डिकायै नमः
ॐ चण्डमुण्डासुरनिषूदिन्यै नमः
ॐ क्षराक्षरात्मिकायै नमः
ॐ सर्वलोकेश्यै नमः
ॐ विश्वधारिण्यै नमः
ॐ त्रिवर्गदात्र्यै नमः ।।७६०।।
ॐ सुभगायै नमः
ॐ त्र्यंबकायै नमः
ॐ त्रिगुणात्मिकायै नमः
ॐ स्वर्गापवर्गदायै नमः
ॐ शुद्धायै नमः
ॐ जपापुष्पनिभाकृतये नमः
ॐ ओजोवत्यै नमः
ॐ द्युतिधरायै नमः
ॐ यज्ञरूपायै नमः
ॐ प्रियव्रतायै नमः ।।७७०।।
ॐ दुराराध्यायै नमः
ॐ दुराधर्षायै नमः
ॐ पाटलीकुसुमप्रियायै नमः
ॐ महत्यै नमः
ॐ मेरुनिलयायै नमः
ॐ मन्दारकुसुमप्रियायै नमः
ॐ वीराराध्यायै नमः
ॐ विराड्रूपायै नमः
ॐ विरजसे नमः
ॐ विश्वतोमुख्यै नमः ।।७८०।।
ॐ प्रत्यक्रूपायै नमः
ॐ पराकाशायै नमः
ॐ प्राणदायै नमः
ॐ प्राणरूपिण्यै नमः
ॐ मार्तण्डभैरवाराध्यायै नमः
ॐ मन्त्रिणीन्यस्तधुरे नमः
ॐ त्रिपुरेश्यै नमः

ॐ जयत्सेनायै नमः
ॐ निस्त्रैगुण्यायै नमः
ॐ परापरायै नमः ।।७९०।।
ॐ सत्यज्ञानानन्दरूपायै नमः
ॐ सामरस्यपरायणायै नमः
ॐ कपर्दिन्यै नमः
ॐ कलामालायैः नमः
ॐ कामदुहे नमः
ॐ कामरूपिण्यै नमः
ॐ कलानिधये नमः
ॐ काव्यकलायै नमः
ॐ रसज्ञायै नमः
ॐ रसशेवधये नमः ।।८००।।
ॐ पुष्टायै नमः
ॐ पुरातनायै नमः
ॐ पूज्यायै नमः
ॐ पुष्करायै नमः
ॐ पुष्करेक्षणायै नमः
ॐ परस्मैज्योतिषे नम
ॐ परस्मैधाम्ने नमः
ॐ परमाणवे नमः
ॐ परात्परायै नमः
ॐ पाशहस्तायै नमः ।।८१०।।
ॐ पाशहन्त्र्यै नमः
ॐ परमंत्रविभेदिन्यै नमः
ॐ मूर्त्तायै नमः
ॐ अमूर्त्तायै नमः
ॐ अनित्यतृप्तायै नमः
ॐ मुनिमानसहंसिकायै नमः
ॐ सत्यव्रतायै नमः
ॐ सत्यरूपायै नमः
ॐ सर्वान्तर्यामिन्यै नमः
ॐ सत्यै नमः ।।८२०।।
ॐ ब्रह्माण्यै नमः
ॐ ब्रह्मणे नमः
ॐ जनन्यै नमः
ॐ बहुरूपायै नमः
ॐ बुधार्चितायै नमः
ॐ प्रसवित्र्यै नमः
ॐ प्रचण्डायै नम
ॐ आज्ञायै नमः
ॐ प्रतिष्ठायै नमः
ॐ प्रकटाकृतये नमः ।।८३०।।
ॐ प्राणेश्वर्यै नमः
ॐ प्राणदात्र्यै नमः
ॐ पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै नमः
ॐ विश्रृंखलायै नमः
ॐ विविक्तस्थायै नमः
ॐ वीरमात्रे नमः
ॐ वियत्प्रसुवे नमः
ॐ मुकुन्दायै नमः
ॐ मुक्तिनिलयायै नमः
ॐ मूलविग्रहरूपिण्यै नमः ।।८४०।।
ॐ भावज्ञायै नमः
ॐ भवरोगघ्न्यै नमः
ॐ भवचक्रप्रवर्त्तिन्यै नमः
ॐ छन्दसारायै नमः
ॐ शास्त्रसारायै नमः
ॐ मन्त्र सारायै नमः
ॐ तलोदर्यै नमः
ॐ उदारकीर्त्तये नमः
ॐ उद्दामवैभवायै नमः
ॐ वर्णरूपिण्यै नमः ।।८५०।।
ॐ जन्ममृत्युजरातप्तजन–
विश्रान्तिदायिन्यै नमः
ॐ सर्वोपनिषदुद्घुष्टायै नमः

ॐ शान्त्यतीतकलात्मिकायै नमः
ॐ गंभीरायै नमः
ॐ गगनान्तस्थायै नमः
ॐ गर्वितायै नमः
ॐ गानलोलुपायै नमः
ॐ कल्पनारहितायै नमः
ॐ काष्ठायै नमः
ॐ अकान्तायै नमः ॥८६०॥
ॐ कान्तार्धविग्रहायै नमः
ॐ कार्यकारणनिर्मुक्तायै नमः
ॐ कामकेलितरंगितायै नमः
ॐ कनत्कनकताटंकायै नमः
ॐ लीलाविग्रहधारिण्यै नमः
ॐ अजायै नमः
ॐ क्षयविनिर्मुक्तायै नमः
ॐ मुग्धायै नमः
ॐ क्षिप्रप्रसादिन्यै नमः
ॐ अन्तर्मुखसमाराध्यायै नमः ॥८७०॥
ॐ बहिर्मुखसुदुर्लभायै नमः
ॐ त्रय्यै नमः
ॐ त्रिवर्गनिलयायै नमः
ॐ त्रिस्थायै नमः
ॐ त्रिपुरमालिन्यै नमः
ॐ निरामयायै नमः
ॐ निरालम्बायै नमः
ॐ स्वात्मारामायै नमः
ॐ सुधासृत्यै नमः
ॐ संसारपंकनिर्मग्नसमुद्धरण–
पंडितायै नमः ॥८८०॥
ॐ यज्ञप्रियायै नमः
ॐ यज्ञकर्त्र्यै नमः
ॐ यजमानस्वरूपिण्यै नमः
ॐ धर्माधारायै नमः
ॐ धनाध्यक्षायै नमः
ॐ धनधान्यविवर्धिन्यै नमः
ॐ विप्रप्रियायै नमः
ॐ विप्ररूपायै नमः
ॐ विश्वभ्रमणकारिण्यै नमः
ॐ विश्वग्रासायै नमः ॥८९०॥
ॐ विद्रुमाभायै नमः
ॐ वैष्णव्यै नमः
ॐ विष्णुरूपिण्यै नमः
ॐ अयोन्यै नमः
ॐ योनिनिलयायै नमः
ॐ कूटस्थायै नमः
ॐ कुलरूपिण्यै नमः
ॐ वीरगोष्ठीप्रियायै नमः
ॐ वीरायै नमः
ॐ नैष्कर्म्यायैनमः ॥९००॥
ॐ नादरूपिण्यै नमः
ॐ विज्ञानकलनायै नमः
ॐ कल्यायै नमः
ॐ विदग्धायै नमः
ॐ वैन्दवासनायै नमः
ॐ तत्त्वाधिकायै नमः
ॐ तत्वमय्यै नमः
ॐ तत्त्वमर्थस्वरूपिण्यै नमः
ॐ सामगानप्रियायै नमः
ॐ सौम्यायै नमः ॥९१०॥
ॐ सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
ॐ सव्यापसव्यमार्गस्थायै नमः
ॐ सर्वापद्विनिवारिण्यै नमः
ॐ स्वस्थायै नमः
ॐ स्वभावमधुरायै नमः
ॐ धीरायै नमः
ॐ धीरसमर्चितायै नमः

ॐ चैतन्यार्घ्यसमाराध्यायै नमः
ॐ चैतन्यकुसुमप्रियायै नमः
ॐ सदोदितायै नमः ॥९२०॥
ॐ सदातुष्टायै नमः
ॐ तरुणादित्यपाटलायै नम
ॐ दक्षिणादक्षिणाराध्यायै नमः
ॐ दरस्मेरमुखाम्बुजायै नमः
ॐ कौलिनीकेवलायै नमः
ॐ अनर्घ्यकैवल्यपददायिन्यै नमः
ॐ स्तोत्रप्रियायै नमः
ॐ स्तुतिमत्यै नमः
ॐ श्रुतिसंस्तुतवैभवायै नमः
ॐ मनस्विन्यै नमः ॥९३०॥
ॐ मानवत्यै नमः
ॐ महेश्यै नमः
ॐ मंगलाकृतये नमः
ॐ विश्वमात्रे नमः
ॐ जगद्धात्र्यै नमः
ॐ विशालाक्ष्यै नमः
ॐ विरागिण्यै नमः
ॐ प्रगल्भायै नमः
ॐ परमोदारायै नमः
ॐ परमोदायै नमः ॥९४०॥
ॐ मनोमय्यै नमः
ॐ व्योमकेश्यै नमः
ॐ विमानस्थायै नमः
ॐ वज्रिण्यै नमः
ॐ वामकेश्वर्यै नमः
ॐ पञ्चयज्ञप्रियायै नमः
ॐ पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिन्यै नमः
ॐ पंचम्यै नमः
ॐ पंचभूतेश्यै नमः
ॐ पंचसंख्योपचारिण्यै नमः ॥९५०॥
ॐ शाश्वत्यै नमः
ॐ शाश्वतैश्वर्यायै नमः
ॐ शर्मदायै नमः
ॐ शम्भुमोहिन्यै नमः
ॐ धरायै नमः
ॐ धरसुतायै नमः
ॐ धन्यायै नमः
ॐ धर्मिण्यै नमः
ॐ धर्मवर्धिन्यै नमः
ॐ लोकातीतायै नमः ॥९६०॥
ॐ गुणातीतायै नमः
ॐ सर्वातीतायै नमः
ॐ शमात्मिकायै नमः
ॐ बन्धूककुसुमप्रख्यायै नमः
ॐ बालायै नमः
ॐ लीलाविनोदिन्यै नमः
ॐ सुमंगल्यै नमः
ॐ सुखकर्यै नमः
ॐ सुवेषाढ्यायै नमः
ॐ सुवासिन्यै नमः ॥९७०॥
ॐ सुवासिन्यर्चनप्रीतायै नमः
ॐ आशोभनायै नमः
ॐ शुद्धमानसायै नमः
ॐ बिन्दुतर्पणसंतुष्टायै नमः
ॐ पूर्वजायै नमः
ॐ त्रिपुराम्बिकायै नमः
ॐ दशमुद्रासमाराध्यायै नमः
ॐ त्रिपुराश्रीवशंकर्यै नमः
ॐ ज्ञानमुद्रायै नमः
ॐ ज्ञानगम्यायै नमः ॥९८०॥
ॐ ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्यै नमः
ॐ योनिमुद्रायै नमः
ॐ त्रिखण्डेश्यै नमः

ॐ त्रिगुणायै नमः
ॐ अम्बायै नमः
ॐ त्रिकोणगायै नमः
ॐ अनघायै नमः
ॐ अद्भुतचारित्र्यै नमः
ॐ वाञ्छितार्थप्रदायिन्यै नमः
ॐ अभ्यासातिशयज्ञातायै नमः ।।९९०।।
ॐ षडध्वातीतरूपिण्यै नमः
ॐ अव्याजकरुणामूर्त्तये नमः
ॐ अज्ञानध्वान्तदीपिकायै नमः
ॐ आबालगोपविदितायै नमः
ॐ सर्वानुल्लंघ्यशासनायै नमः
ॐ श्रीचक्रराजनिलयायै नमः
ॐ श्रीमत्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ॐ श्रीशिवायै नमः
ॐ शिवशक्त्यैक्यरूपिण्यै नमः
ॐ श्रीललिताम्बिकायै नमः ।।१०००।।

इति श्रीललितासहस्रनामावलिः सम्पूर्णा

श्रीललितात्रिशतीस्तोत्रनामावलिः

अस्य श्रीललितात्रिशतीस्तोत्रमंत्रस्य हयग्रीवऋषये नमः शिरसि १। अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे २। श्रीललिताम्बादेवतायै नमः हृदये । षोड़शाक्षरी साधकानान्तु क ६ बीजाय गुह्ये । स ४ शक्तये पादयोः ह ६ कीलकाय नाभौ । श्रीललिताम्बाप्रसादसिद्धये जपे {पूजने, अर्चने} विनियोगाय सर्वांगे।।

कूटत्रयं द्विरावृत्य बालया वा षडंगद्वयम् ।।

अथ ध्यानम्

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितमोदबाणसौभाग्याम् ।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे ।।१।।

लमितिपंचोपचारैः सम्पूज्य

ऐं ह्रीं श्रीं

ॐ ककाररूपायै नमः
ॐ कल्याण्यै नमः
ॐ कल्याणगुणशालिन्यै नमः
ॐ कल्याणशैलनिलयायै नमः
ॐ कमनीयायै नमः
ॐ कलावत्यै नमः
ॐ कमलाक्ष्यै नमः
ॐ कल्मषघ्न्यै नमः
ॐ करुणामृतसागरायै नमः
ॐ कदम्बकाननावासायै नमः।।१०।।
ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः
ॐ कंदर्पविद्यायै नमः
ॐ कंदर्पजनकापांगवीक्षणायै नमः
ॐ कर्पूरवीटीसौरभ्यकल्लोलितककुप्तटायै नमः
ॐ कलिदोषहरायै नमः
ॐ कञ्जलोचनायै नमः

ॐ कम्रविग्रहायै नमः
ॐ कर्मादिसाक्षिण्यै नमः
ॐ कारयित्र्यै नमः
ॐ कर्मफलप्रदायै नमः ।।२०।।
ॐ एकाररूपायै नमः
ॐ एकाक्षर्यै नमः
ॐ एकानेकाक्षराकृत्यै नमः
ॐ एतत्तदित्यनिर्देश्यायै नमः
ॐ एकानन्दचिदाकृत्यै नमः
ॐ एवमित्यागमाबोध्यायै नमः
ॐ एकभक्तिमदर्चितायै नमः
ॐ एकाग्रचित्तनिर्ध्यातायै नमः
ॐ एषणारहितादृतायै नमः
ॐ एलासुगन्धिचिकुरायै नमः ।।३०।।
ॐ एनःकूटविनाशिन्यै नमः
ॐ एकभोगायै नमः
ॐ एकरसायै नमः
ॐ एकैश्वर्यप्रदायिन्यै नमः
ॐ एकातपत्रसाम्राज्यप्रदायै नमः
ॐ एकान्तपूजितायै नमः
ॐ एधमानप्रभायै नमः
ॐ एजदनेकजगदीश्वर्यै नमः
ॐ एकवीरादिसंसेव्यायै नमः
ॐ एकप्राभवशालिन्यै नमः ॥४०।।
ॐ ईकाररूपायै नमः
ॐ ईशित्र्यै नमः
ॐ ईप्सितार्थप्रदायिन्यै नमः
ॐ ईदृगित्यविनिर्देश्यायै नमः
ॐ ईश्वरत्वविधायिन्यै नमः
ॐ ईशानादिब्रह्ममय्यै नमः
ॐ ईशित्वाद्यष्टसिद्धिदायै नमः
ॐ ईक्षित्र्यै नमः
ॐ ईक्षणसृष्टाण्डकोट्यै नमः
ॐ ईश्वरवल्लभायै नमः।।५०।।
ॐ ईडितायै नमः
ॐ ईश्वरार्धांगशरीरायै नमः
ॐ ईशाधिदेवतायै नमः
ॐ ईश्वरप्रेरणकर्यै नमः
ॐ ईशताण्डवसाक्षिण्यै नमः
ॐ ईश्वरोत्संगनिलयायै नमः
ॐ ईतिबाधाविनाशिन्यै नमः
ॐ ईहाविरहितायै नमः
ॐ ईशशक्त्यै नमः
ॐ ईषत्स्मिताननायै नमः।।६०।।
ॐ लकाररूपायै नमः
ॐ ललितायै नमः
ॐ लक्ष्मीवाणीनिषेवितायै नमः
ॐ लाकिन्यै नमः
ॐ ललनारूपायै नमः
ॐ लसद्दाड़िमपाटलायै नमः
ॐ ललन्तिकालसत्फालायै नमः
ॐ ललाटनयनार्चितायै नमः
ॐ लक्षणोज्ज्वलदिव्यांग्यै नमः
ॐ लक्षकोट्यण्डनायिकायै नमः।।७०।।
ॐ लक्षार्थायैः नमः
ॐ लक्षणागम्यायै नमः
ॐ लब्धकामायै नमः
ॐ लतातनवे नमः
ॐ ललामराजदलिकायै नमः
ॐ लम्बिमुक्तालताञ्चितायै नमः
ॐ लम्बोदरप्रसुवे नमः
ॐ लभ्यायै नमः
ॐ लज्जाढ्यायै नमः
ॐ लयवर्जितायै नमः ॥८०।।
ॐ ह्रींकाररूपायै नमः

ॐ ह्रींपदप्रियायै नमः
ॐ ह्रींकारबीजायै नमः
ॐ ह्रींकारमंत्रायै नमः
ॐ ह्रींकारलक्षणायै नमः
ॐ ह्रींकारजपसुप्रीतायै नमः
ॐ ह्रींमत्यै नमः
ॐ ह्रींविभूषणायै नमः
ॐ ह्रींशीलायै नमः ॥९०॥
ॐ ह्रींपदाराध्यायै नमः
ॐ ह्रींगर्भायै नमः
ॐ ह्रींपदाभिधायै नमः
ॐ ह्रींकारवाच्यायै नमः
ॐ ह्रींकारपूज्यायै नमः
ॐ ह्रींकारपीठिकायै नमः
ॐ ह्रींकारवेद्यायै नमः
ॐ ह्रींकारचिन्त्यायै नमः
ॐ ह्रीं नमः
ॐ ह्रींशरीरिण्यै नमः ॥१००॥
ॐ हकाररूपायै नमः
ॐ हलधृत्पूजितायै नमः
ॐ हरिणेक्षणायै नमः
ॐ हरिप्रियायै नमः
ॐ हराराध्यायै नमः
ॐ हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ॐ हयारूढासेवितांघ्र्यै नमः
ॐ हयमेधसमर्चितायै नमः
ॐ हर्यक्षवाहनायै नमः
ॐ हंसवाहनायै नमः ॥११०॥
ॐ हतदानवायै नमः
ॐ हत्यादिपापशमन्यै नमः
ॐ हरिदश्वादिसेवितायै नमः
ॐ हस्तिकुम्भोत्तुंगकुचायै नमः
ॐ हस्तिकृत्तिप्रियांगनायै नमः
ॐ हरिद्राकुंकुमादिग्धायै नमः
ॐ हर्यश्वाद्यमरार्चितायै नमः
ॐ हरिकेशसख्यै नमः
ॐ हादिविद्यायै नमः
ॐ हालामदालसायै नमः ॥१२०॥
ॐ सकाररूपायै नमः
ॐ सर्वज्ञायै नमः
ॐ सर्वेश्यै नमः
ॐ सर्वमंगलायै नमः
ॐ सर्वकर्त्र्यै नमः
ॐ सर्वभर्त्र्यै नमः
ॐ सर्वहर्त्र्यै नमः
ॐ सनातन्यै नमः
ॐ सर्वानवद्यायै नमः
ॐ सर्वांगसुन्दर्यै नमः ॥१३०॥
ॐ सर्वसाक्षिण्यै नमः
ॐ सर्वात्मिकायै नमः
ॐ सर्वसौख्यदात्र्यै नमः
ॐ सर्वविमोहिन्यै नमः
ॐ सर्वाधारायै नमः
ॐ सर्वगतायै नमः
ॐ सर्वावगुणवर्जितायै नमः
ॐ सर्वारुणायै नमः
ॐ सर्वमात्रे नमः
ॐ सर्वभूषणभूषितायै नमः ॥१४०॥
ॐ ककारार्थायै नमः
ॐ कालहन्त्र्यै नमः
ॐ कामेश्यै नमः
ॐ कामितार्थदायै नमः
ॐ कामसञ्जीविन्यै नमः
ॐ कल्यायै नमः
ॐ कठिनस्तनमण्डलायै नमः

ॐ करभोरवे नमः
ॐ कलानाथमुख्यै नमः
ॐ कचजिताम्बुदायै नमः ॥१५०॥
ॐ कटाक्षस्यन्दिकरुणायै नमः
ॐ कपालिप्राणनायिकायै नमः
ॐ कारुण्यविग्रहायै नमः
ॐ कान्तायै नमः
ॐ कान्तिधूतजपावल्यै नमः
ॐ कलालापायै नमः
ॐ कम्बुकण्ठ्यै नमः
ॐ करनिर्जितपल्लवायै नमः
ॐ कल्पवल्लीसमभुजायै नमः
ॐ कस्तूरीतिलकाञ्चितायै नमः ॥१६०॥
ॐ हकारार्थायै नमः
ॐ हंसगत्यै नमः
ॐ हाटकाभरणोज्ज्वलायै नमः
ॐ हारहारिकुचाभोगायै नमः
ॐ हाकिन्यै नमः
ॐ हल्यवर्जितायै नमः
ॐ हरित्पतिसमाराध्यायै नमः
ॐ हठात्कारहतासुरायै नमः
ॐ हर्षप्रदायै नमः
ॐ हविर्भोक्त्र्यै नमः ॥१७०॥
ॐ हार्दसन्तमसापहायै नमः
ॐ हल्लीसलास्यसन्तुष्टायै नमः
ॐ हंसमंत्रार्थरूपिण्यै नमः
ॐ हानोपादाननिर्मुक्तायै नमः
ॐ हर्षिण्यै नमः
ॐ हरिसोदर्यै नमः
ॐ हाहाहूहूमुखस्तुत्यायै नमः
ॐ हानिवृद्धिविवर्जितायै नमः
ॐ हय्यंगवीनहृदयायै नमः
ॐ हरिगोपारुणांशुकायै नमः ॥१८०॥
ॐ लकाराख्यायै नमः
ॐ लतापूज्यायै नमः
ॐ लयस्थित्युद्भवेश्वर्यै नमः
ॐ लास्यदर्शनसंतुष्टायै नमः
ॐ लाघ्येभालाभविवर्जितायै नमः
ॐ लंघ्येतराज्ञायै नमः
ॐ लावण्यशालिन्यै नमः
ॐ लघुसिद्धिदायै नमः
ॐ लाक्षारससवर्णाभायै नमः
ॐ लक्ष्मणाग्रजपूजितायै नमः॥१९०॥
ॐ लभ्येतरायै नमः
ॐ लब्धभक्तिसुलभायै नमः
ॐ लांगलायुधायै नमः
ॐ लग्नचामरहस्तश्रीशारदा–
परिवीजितायै नमः
ॐ लज्जापदसमाराध्यायै नमः
ॐ लम्पटायै नमः
ॐ लकुलेश्वर्यै नमः
ॐ लब्धमानायै नमः
ॐ लब्धरसायै नमः
ॐ लब्धसम्पत्समुन्नत्यै नमः ॥२००॥
ॐ ह्रींकारिण्यै नमः
ॐ ह्रींकाराद्यायै नमः
ॐ ह्रींमध्यायै नमः
ॐ ह्रींशिखामण्ये नमः
ॐ ह्रींकारकुण्डाग्निशिखायै नमः
ॐ ह्रींकारशशिचन्द्रिकायै नमः
ॐ ह्रींकारभास्कररुच्यै नमः
ॐ ह्रींकाराम्भोदचंचलायै नमः
ॐ ह्रींकारकन्दांकुरिकायै नमः
ॐ ह्रींकारैकपरायणायै नमः ॥२१०॥
ॐ ह्रींकारदीर्घिकाहंस्यै नमः

ॐ ह्रींकारोद्यानकेकिन्यै नमः
ॐ ह्रींकारारण्यहरिण्यै नमः
ॐ ह्रींकारावालवल्लर्यै नमः
ॐ ह्रींकारपंजरशुक्यै नमः
ॐ ह्रींकारांगणदीपिकायै नमः
ॐ ह्रींकारकन्दरासिंह्यै नमः
ॐ ह्रींकाराम्भोजभृंगिकायै नमः
ॐ ह्रींकारसुमनोमाध्व्यै नमः
ॐ ह्रींकारतरुमञ्जर्यै नमः ॥२२०॥
ॐ सकाराख्यायै नमः
ॐ समरसायै नमः
ॐ सकलागमसंस्तुतायै नमः
ॐ सर्ववेदान्ततात्पर्यभूम्यै नमः
ॐ सदसदाश्रयायै नमः
ॐ सकलायै नमः
ॐ सच्चिदानन्दायै नमः
ॐ साध्व्यै नमः
ॐ सद्गतिदायिन्यै नमः
ॐ सनकादिमुनिध्येयायै नमः ॥२३०॥
ॐ सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
ॐ सकलाधिष्ठानरूपायै नमः
ॐ सत्यरूपायै नमः
ॐ समाकृत्यै नमः
ॐ सर्वप्रपंचनिर्मात्र्यै नमः
ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः
ॐ सर्वोत्तुंगायै नमः
ॐ संगहीनायै नमः
ॐ सगुणायै नमः
ॐ सकलेष्टदायै नमः ॥२४०॥
ॐ ककारिण्यै नमः
ॐ काव्यलोलायै नमः
ॐ कामेश्वरमनोहरायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः
ॐ कामेशोत्संगवासिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरालिंगितांग्यै नमः
ॐ कामेश्वरसुखप्रदायै नमः
ॐ कामेश्वरप्रणयिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरविलासिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरतपस्सिद्ध्यै नमः ॥२५०॥
ॐ कामेश्वरमनःप्रियायै नमः
ॐ कामेश्वरप्राणनाथायै नमः
ॐ कामेश्वरविमोहिन्यै नमः
ॐ कामेश्वरब्रह्मविद्यायै नमः
ॐ कामेश्वरगृहेश्वर्यै नमः
ॐ कामेश्वराह्लादकर्यै नमः
ॐ कामेश्वरमहेश्वर्यै नमः
ॐ कामेश्वर्यै नमः
ॐ कामकोटिनिलयायै नमः
ॐ कांक्षितार्थदायै नमः ॥२६०॥
ॐ लकारिण्यै नमः
ॐ लब्धरूपायै नमः
ॐ लब्धधियै नमः
ॐ लब्धवांछितायै नमः
ॐ लब्धपापमनोदूरायै नमः
ॐ लब्धाहंकारदुर्गमायै नमः
ॐ लब्धशक्त्यै नमः
ॐ लब्धदेहायै नमः
ॐ लब्धैश्वर्यसमुन्नत्यै नमः
ॐ लब्धवृद्ध्ये नमः ॥२७०॥
ॐ लब्धलीलायै नमः
ॐ लब्धयौवनशालिन्यै नमः
ॐ लब्धातिशयसर्वांगसौन्दर्यायै नमः
ॐ लब्धविभ्रमायै नमः

ॐ लब्धरागायै नमः
ॐ लब्धपत्यै नमः
ॐ लब्धानानागमस्थित्यै नमः
ॐ लब्धभोगायै नमः
ॐ लब्धसुखायै नमः
ॐ लब्धहर्षाभिपूरितायै नमः ॥२८०॥
ॐ ह्रींकारमूर्त्तये नमः
ॐ ह्रींकारसौधश्रृंगकपोतिकायै नमः
ॐ ह्रींकारदुग्धाब्धिसुधायै नमः
ॐ ह्रींकारकमलेन्दिरायै नमः
ॐ ह्रींकारमणिदीपार्चिषे नमः
ॐ ह्रींकारतरुशारिकायै नमः
ॐ ह्रींकारपेटकमणये नमः
ॐ ह्रींकारादर्शबिंबितायै नमः
ॐ ह्रींकारकोशासिलतायै नमः
ॐ ह्रींकारस्थाननर्तक्यै नमः ॥२९०॥
ॐ ह्रींकारशुक्तिकामुक्तामणये नमः
ॐ ह्रींकारबोधितायै नमः
ॐ ह्रींकारमणिसौवर्णस्तंभविद्रुमपुत्रिकायै नमः
ॐ ह्रींकारवेदोपनिषदे नमः
ॐ ह्रींकाराध्वरदक्षिणायै नमः
ॐ ह्रींकारनन्दनारामनवकल्पकवल्लर्यै नमः
ॐ ह्रींकारहिमवद्गंगायै नमः
ॐ ह्रींकारार्णवकौस्तुभायै नमः
ॐ ह्रींकारमंत्रसर्वस्वायै नमः
ॐ ह्रींकारपरसौख्यदायै नमः ॥३००॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमद्वराजराजेश्वर्यै नमः

समाप्तम्

——

{इस भगवती ललिताके त्रिशती–स्तोत्रका पू. गुरुदेव इतना अधिक आदर करते थे कि उन्होंने श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीसे इसकी भगवत्पाद आदिशंकराचार्य कृत टीकाका हिन्दी अनुवाद कराके उसे राधामाधव सेवा संस्थान, गोरखपुरसे प्रकाशित कराया था}

दुर्वासा ऋषिका दर्शन

बात लगभग १९५१ ई. की है । दुपहरीमें, दिनमें, जब पू. गुरुदेव अपनी द्वितीय प्रहरकी पूजाके क्रमसे निवृत्त होते, हम लोग उनके पास चले जाते । कभी–कभी तो वे किसीसे बात करते होते एवं कभी अकेले ही होते। जब वे अकेले मिल जाते, उस दिन वे मुझे अपनी विलक्षण अनुभूतियाँ बताया करते ।

पू. गुरुदेव जब मातृसाधनामें होते तो उसमें पूर्णतया इतने तल्लीन हो जाते थे कि उस समय उनकी निमग्नता चरम सीमा बिन्दुको ही छूती रहती थी। उनकी श्रीक्रमकी पूजा तो प्रत्येक प्रहर लगभग सवा घण्टे अथवा डेढ़ घंटेकी होती थी । वह पूजा ज्योंही समाप्त होती, वे फिर अपनी मधुरभाव साधनामें तल्लीन हो जाते थे । मुझको अथवा राधेश्याम पालड़ीवालको वे अपनी मधुर अनुभूत लीलायें सुनाया करते । उनसे लीला सुनते समय हमें भी बाह्य जगत अथवा अपने किसी प्रापंचिक परिवेशकी स्मृति ही नहीं होती थी । गोपियाँ, नन्दभवन, यशोदाजी, वृषभानुपुर, कीर्तिदा मैया, वन, कुंजों, महलों, सभीके चित्र वे अपनी पट्टी पर लिख–लिखकर इस तरह जीवन्त वर्णन करते थे, मानो वे वहीं बैठे–बैठे सब प्रत्यक्ष नेत्रोंसे देख रहे हों और कह रहे हों । इस प्रकार घण्टों बीत जाते । बीचमें कभी किसी आगत व्यक्तिका व्यवधान होता तो उसे टाल दिया जाता । सांयकाल होने पर भिक्षाके लिये जब बुलावा आता तो वह क्रम भिक्षाके पश्चात् पुनः प्रारम्भ हो जाता था । जब लीला–कथायें चलती होतीं तो उन्हें पहचानना मुश्किल होता कि वे अभी डेढ़ घण्टे तक तन्त्र साधना करके उठे हैं ।

पू. गुरुदेवके सम्मुख गोपियाँ, उनकी बोली, हाव–भाव, चेष्टाएँ, उनकी संवेदनाएँ, दुख–सुख, ग्लानि, मान–अपमानके भाव, सब जीवन्त स्पष्ट होते थे। उस समय पू. गुरुदेव पूर्णतया भाव–देह गोपी ही होते थे । बात यह है– यथार्थ प्रेम–साधनाके लिये भाव–देह आवश्यक होती है । इस भाव–देहमें शास्त्रका कोई भी विधि–निषेध लागू ही नहीं होता । इस भाव–देहकी मायिक देहसे कोई तुलना ही नहीं होती । जब तक मायिक देहमें अभिमान रहता है, तब तक भाव–देह अथवा प्रेम–साधनाकी कल्पना ही करना नितान्त मूर्खता ही है ।

अतः पू. गुरुदेव जब भाव–देहमें होते थे, वे मायिक–आवरण अर्थात्

पांचभौतिक देहसे सर्वथा मुक्त, हटे हुए होते थे ।

पू. गुरुदेव इस पांचभौतिक आवरणसे सर्वथा मुक्त कैसे हुए ? यह प्रश्न मैंने उनसे किया था । उन्होंने इसका उत्तर यही दिया था कि इसमें भगवन्नाम–जप ही प्रधान साधना है । नाम–साधनासे ही {उच्चत्तम कोटिके संत} अथवा सद्गुरुकी प्राप्ति अथवा उनसे सम्बन्ध होता है । सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना अन्तरात्मामें प्रवेश होता ही नहीं । निरन्तर नाम–जप ही उच्चत्तम श्रेणीके संत या सद्गुरुकी कृपामें हेतु होता है । उच्चत्तम कोटिके सिद्ध सन्तकी प्राप्तिके पश्चात् मंत्रादि अथवा किसी भी क्रमसे दीक्षा होती है। दीक्षाके अनन्तर किसी न किसी प्रकारकी उपासनाका कार्य चलता है। इस उपासनासे भौतिक देहकी शुद्धि होती है । चित्त शुद्ध होने पर मायाका आवरण हट जाता है । इस आवरणके कारण ही प्रत्येक जीवका जो अपना भाव है, वह ढँका रहता है । आवरण हटते ही जीवका निज भाव खुल जाता है । आवरण हटने पर जो भाव–देह प्राप्त होती है, उसका स्वरूप कैसा होता है, इसका पता शास्त्रोंसे, उपदेशसे, दृष्टान्तोंसे समझाया नहीं जा सकता । यह भाव देह प्रत्येक आत्माकी पृथक्–पृथक् होती है । "क" की जो भाव–देह है वह "ख" की हो ही नहीं सकती ।

भावकी भी दो कोटियाँ हैं । भाव आश्रय एवं विषयका आलम्बन लेकर ही स्फुरित होता है । भावका जो आश्रय है, वही गोपी है, भक्त है। यह गोपी अथवा भक्त देहधारी है, परन्तु इसका देह मायिक नहीं है । यह अनिर्वचनीय विलक्षण देह है । न यह शास्त्रोंमें वर्णित स्थूल देह है, न ही सूक्ष्म देह है और न ही इसे कारण कहा जा सकता है । जैसे आत्माका स्थूल देहमें पूरा अभिमान होता है, उसी प्रकार भाव जागरणके अनन्तर उस आत्माका भाव–देहमें भी अभिमान रहता है । पू. गुरुदेवकी भी भावदेह थी, उसका स्वभाव था, उसमें उनका पूरा अभिमान था । उसका रूप था, रंग था, उसमें कैशोर वय थी, अंगोंमें कैशोर वय के सभी लक्षण प्रकट थे । परन्तु उनके इस भावदेहमें उनका जागतिक स्थूल देह तनिक भी विक्षेप नहीं करता था ।

पू. गुरुदेव उन दिनों मंजुश्यामा भावमें थे । ये सभी बातें सन् १९५१ की हैं । पू. गुरुदेवकी उस समय स्थूलदेहसे वय मात्र ३६ वर्षके युवककी थी। परन्तु वे अपने भावदेहसे कभी उन दिनों मात्र पाँच वर्षकी बालिका होते थे, कभी किशोरी । आश्रय भावसे जब वे मंजुश्यामा थे, तो उनके सम्मुख उनके माता–पिता, धाम, महल, वन, उपवन सभी इस प्रकार प्रकट थे, जैसे उनके स्थूलदेहके सम्मुख गोरखपुरकी वाटिका थी ।

यह भाव ही परिपक्व होकर पू. गुरुदेवके चित्तमें "प्रेम" के रूपमें परिणत

हो गया था । इस प्रेमकी स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसी पुष्पमें सुवास या सुगन्धकी । भाव–गन्ध जब परिणत होकर प्रेम–रसका रूप धारण कर लेती है, भाव–मकरन्द प्रेम–मधुमें परिणत हो जाता है, तब वह प्रेम–पद वाच्य हो जाता है ।

पुष्पमें मधु अथवा रसका उद्‌गम होनेसे जैसे भृंगको आकर्षित करना नहीं पड़ता, वह आप ही आप स्वतः आता है, उसी प्रकार भावके प्रेम–रूपमें प्रकट होते ही उसका विषय भगवत्स्वरूप प्रियतम स्वतः आविर्भूत हो जाता है, उसे पुकारना नहीं पड़ता ।

पू. गुरुदेवकी यही स्थिति थी । पू. गुरुदेव उस दिवस जब लीला सुना रहे थे तब उनकी देह मात्र पाँच वर्षकी बालिकाकी थी । वे उस दिन भक्तराज दुर्वासा ऋषिके ब्रज आगमनका वर्णन कर रहे थे । वे कह रहे थे – "एक बार श्रीदुर्वासाजी विचरण करते कालिन्दी परिसरमें नन्द भवनके पीछे पहुँच जाते हैं । ध्याननिष्ठ, परम तपस्वी, क्रोध–भट्टारक, अनुसूया जैसी महासतीके पुत्र महर्षि दुर्वासा परमाद्या भगवती त्रिपुरसुन्दरीके सर्वोच्च बारह उपासकोंमें से एक हैं । उनकी सर्व लोकोंमें निर्बाध गति है । महर्षि दुर्वासाने सिद्ध लोकोंमें चर्चा सुनी कि उनकी परमाराध्या भगवती ही श्रीकृष्ण रूप धारण करके ब्रजमें नन्दरायके पुत्र रूपमें अवतीर्ण हुई हैं । अतः वे जिज्ञासावश दर्शनार्थ ब्रजमें चले आये थे । वे अपनी इष्टदेवीके अवतार रूपको इधर–उधर अन्वेषण कर रहे थे ।

यह वर्णन श्रीकृष्णलीलाचिन्तनमेंसे अविकल उद्धृत है, क्योंकि उसे पू. गुरुदेवके शब्दोंमें ही देने की प्रामाणिकताका मोह संवरित नहीं कर पा रहा हूँ । पाठकोंके सम्मुख यह रहस्य प्रकट कर देनेमें मुझे हर्ष है कि श्रीकृष्णलीलाचिन्तनमें पू. गुरुदेवने जो कुछ वर्णन किया है, वह सब उनका स्वयंका प्रथमतः अनुभूत है और अपनी अनुभूतिको ही उन्होंने लिपिबद्ध किया है ।

"श्रीदुर्वासा देखते हैं कि यमुना पुलिनके सैकत–तट पर पंजर–मुक्त विहंगम शावकोंकी तरह गोप बालक चपल बाल–क्रीड़ामें रत हैं । छोटे–छोटे अबोध शिशुओंका परस्पर धूलि–बिखेरकर खेलना परम स्वाभाविक ही है । उनकी दृष्टि कुछ परिचारिकाओं पर भी पड़ी जो इनकी रखवाली भी कर रही थीं । साथ ही इनकी मनोहर बाल–क्रीड़ा देखकर मुग्ध हो रही थीं ।

महर्षिको देखकर इन परिचारिकाओंने उन्हें प्रणाम किया और निश्चिन्त होकर पुनः इन बालकोंकी क्रीड़ा रसपानमें लग गयीं ।

महर्षिकी दृष्टि एक परम सुन्दर नव मेघ वर्ण बालक पर पड़ती है ।

वह अति चंचल बालक अंजलिमें बालू भरकर लाता है और अपने एक गौरवर्ण सखाके सिर पर वह बालू पीछेसे चुपचाप डाल देता है । बालूकी एक कणिका इस गौरवर्ण बालक श्रीदामकी आँखोंमें गिर जाती है । अतः वह अपनी आँख मलता हुआ श्रीकृष्णको पकड़ने चलता है । श्रीकृष्ण इस बालकको अपने पास आया जान अपनी आँख मूँद कर बैठ जाते हैं । अब वह बालक श्रीकृष्णके सिर एवं पीठ पर बहुतसी बालू डाल देता है । मुनिवर दुर्वासा श्रीकृष्णचन्द्रकी बाल–क्रीड़ा देखते हुए विचारने लगते हैं – "क्या ये ही मेरी परात्पर चिज्ज्योतिका पूर्णावतार है ? ओह ! यह तो धूलिमें लोट रहा है । अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंको अपने उन्मेष एवं निमेषमें उदय और अस्तमित करनेवाली महाशक्तिको एक साधारण गोप बालकके भयसे आँख मूँदकर बैठा पाकर दुर्वासाजी विस्मित हो जाते हैं ।

समस्त अंग धूलि धूसरित हो रहे हैं, केश टेढ़े–मेढ़े हैं, श्रीअंगोंमें कोई वस्त्र नहीं, सर्वथा नग्न दिगम्बर वेश है, बालकोंके साथ दौड़ रहे हैं, भला परात्पर महाकामेश्वरांक–निलया, पंचप्रेतासनासीना, महासरस्वती–महालक्ष्मी, महागौरी–संसेव्या भगवतीको इस रूपमें पाकर महर्षि अनिश्चयमें भर गये उनके तपःपूत मनमें एक सन्देहकी रेखा झाँक ही गयी । भगवतीकी ही सर्व भुवन–मोहिनी महामायाने अपने ही पुत्र पर अपने अंचलकी यवनिका डाल हीदी । मुनिवर शान्त होकर विचार निमग्न हो गये ।

स ईश्वरोऽयं भगवान् कथं बालैर्लुंठन भुवि ।
अयं तु नन्दपुत्रोऽस्ति न श्रीकृष्णः परात्परः ।।

यह मेरी परमाराध्या परमेश्वरी कदापि नहीं हो सकता । यदि यह परात्पर परमतत्व होता तो भूमि पर इस प्रकार पराजित हुआ क्यों लोटता ? एक साधारण गोप–बालकके भयसे नेत्र क्यों मूँद लेता ? यह बालक मात्र नन्दरायका पुत्र श्रीकृष्ण है, ईश्वर सर्वथा–सर्वथा नहीं है ।

इस प्रकार मुनिवर दुर्वासा संशयके झूलेमें झूलते हुए सत्यकी सीमाके उस पार अत्यन्त दूर जा गिरे ।

परन्तु धन्य भगवतीकी कृपा–वत्सलता ! अपने पुत्र को वे भ्रममें भी डालती हैं, परन्तु साथ ही उसका भ्रम निवारण भी वे ही करती हैं । अपने पुत्रको भला वे सत्य दर्शनसे कितने काल वंचित रखतीं ? सर्वज्ञता शक्ति श्रीकृष्णचन्द्रके नव–पल्लव जैसे परम सुकोमल कोनोंमें एक संकेत कर देती हैं, और लो, श्रीकृष्णचन्द्र दौड़ पड़ते हैं । महर्षिके पीछे और सखामण्डली भी श्रीकृष्णके पीछे उनका अनुगमन करती, वहीं पहुँच जाती है ।

एक विशाल कदम्बकी छायामें महर्षि शान्त खड़े हैं, उनकी अतिशय

गंभीर मुद्रा है । तपका तेज अंगोंसे झर रहा है । अतिशय गंभीर मुद्रा है। नेत्रोंमें एक विचित्र ज्योति है, किन्तु जैसे ही श्रीकृष्णचन्द्र समीप आते हैं, मुनिका सब कुछ बदल जाता है । शरीर काँपने लगता है । मुद्रा चञ्चल हो जाती है। अंगोंकी वह दीप्ति, नेत्रोंकी वह दिव्य ज्योति, विलीन हो जाती है । मुनि अनुभव करते हैं, मानो श्रीकृष्णचन्द्रके अंगोंकी महा–मरकत द्युतिमें उनका सर्वस्व घुल–मिल रहा है । महर्षि एक अनिर्वचनीय अवस्थामें समाहित होते जा रहे हैं ।

श्रीकृष्ण अत्यन्त निकट जाकर उनसे पूछते हैं – "साधुबाबा ! तुमने तो मेरा खेल देखा है, तुम्हीं बताओ, श्रीदाम मुझसे हार गया, न ?" श्रीकृष्णकी यह मधुर वाणी सुनकर तो महर्षिमें खड़े रहनेकी भी सामर्थ्य नहीं रहती । गिरते हुए से वे पुलिन रेणुकामें बैठ जाते हैं । अब तो श्रीकृष्ण अपनी नन्ही–नन्ही भुजाओंको उठाकर उनकी गोदमें चले जाते हैं । महर्षिकी श्वेत शुभ्र कूर्च देखकर उन्हें हँसी आ जाती है । वे खिल–खिलाकर हँसने लगते हैं । परन्तु यह क्या, इस मुसकानमें तो दुर्वासाको अघटन– घटना–पटीयसी परमाद्या महाशक्ति सर्वभवनसमर्था जगदम्बाके दर्शन हो जाते हैं । वे अनन्त ऐश्वर्य–निकेतना योगमाया मुनिराजको श्रीकृष्णतत्वका किंचित् प्रत्यक्ष कराने इस समय प्रकट होकर श्रीकृष्णके अधरोंकी मुसकानके रूपमें उन्हें दर्शन देती हैं । श्रीदुर्वासाको, श्रीकृष्णके अधरों पर विराजित वे महादेवी मात्र निज दर्शन ही नहीं देतीं, उन्हें अपने भीतर खींचकर अपने विलक्षण दिव्य धामका दर्शन भी कराती हैं । श्रीदुर्वासाजीके सम्मुख भगवती आद्याशक्ति का परमधाम श्रीपुर अपनी सम्पूर्ण विभुता लिये किंचित् परिवर्तनके साथ सर्व वैष्णवजनसेव्य गोलोक धामके रूपमें प्रकट हो जाता है। विस्तार भयसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया जा रहा है । वैष्णव पाठक इसे गर्गसंहिता एवं शाक्तजन इसीको त्रिपुरारहस्य {माहात्म्य खण्ड} में देख सकते हैं । इसका अतिसंक्षिप्त आंशिक विवरण पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा रचित श्रीकृष्णलीलाचिन्तन ग्रन्थमें जो गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित है, देखा जा सकता है ।

देखते–देखते ही श्रीदुर्वासा श्रीकृष्णके मुखविवरमें प्रवेश कर जाते हैं। भगवती पराम्बा पीछेकी ओर कपाट लगा देती हैं । आगेका द्वार उन्मुक्त हो जाता है । शाक्त आगम शास्त्रोंमें महामायाके इसी कपाटको रोधिनी शक्ति कहा गया है । इस रोधिनी शक्तिके निवृत्त हुए बिना सत्य परतत्व अथवा अप्राकृत चिन्मय राज्यमें प्रवेश मिल ही नहीं सकता । श्रीदुर्वासाजी अपनेको सर्व ब्रह्माण्डोंके शिरोदेशमें अवस्थित, चिन्मय अप्राकृत गोलोक धामको घेरे, अनन्त अमृत समुद्रमें प्रवाहित पाते हैं । इस अमृतसमुद्रमें बहते–बहते वे पुनः

समाधिस्थ हो जाते हैं । वे इस अमृत जलराशिमें सन्तरण करते कोटि–कोटि ब्रह्माण्डोंको देखते हैं। फिर उन्हें विरजा तरंगिणीके दर्शन होते हैं । वृन्दारण्यके दर्शन होते हैं । शतश्रंग समन्वित गिरिराज गोवर्धनको वे नमन करते हैं । पारिजात वन श्रेणीसे भरे वनोंका दर्शन करते–करते वे चकित हो उठते हें । विचरणशील कामधेनु समूहको वे प्रणाम करते हैं । फिर वे अम्बिकावन, बहुलावन, काम्यवन, भाण्डीरवन, मधुवन, तालवन आदि तीस श्रीकृष्ण–लीला–स्थलियोंमें विचरण करते हुए ब्रह्मपर्वत चले आते हैं । ब्रह्मपर्वत स्थित वृषभानुबाबाके राजप्रासादका दर्शन करते–करते तो वे परम कृत–कृत्य हो उठते हैं । पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके कथनानुसार श्रीदुर्वासा महर्षि वृषभानुपुरमें वृषभानुबाबाके अनेक दिवसों तक अतिथि रहे थे । उस समय वृषभानुबाबाने अपनी दोनों पुत्रियों–राधा एवं मञ्जुश्यामा पर ही उनकी सब सेवा संभालका भार दिया था। प्रथम बार ही ज्यों ही महर्षिकी दृष्टि इन दोनों राज–पुत्रियों पर पड़ती है, वे पूर्णतया चमत्कृत हो जाते हैं।

उन्हें स्पष्ट अनुभव होता है कि वे मात्र साधारण राज–पुत्री नहीं हैं, वे साक्षात् उनकी परदेवता पराम्बाका निजलीलांगीकृत ललित वपु हैं । श्रीदुर्वासाजी वृषभानुबाबासे संकेत करते हैं कि उन्हें इन दोनों बालिकाओं सहित कुछ काल एकान्तमें रहने दिया जाय । तत्पश्चात् परम एकान्त हो जाने पर दोनों बालिकाओंको अपने सम्मुख समासीन करके वे उनका परमाद्याशक्तिके रूपमें चतुषष्ट्युपचार पद्धतिसे पूजन करने लगते हैं । पू. गुरुदेवको यह दर्शन इतना प्रत्यक्ष हुआ था कि जब वे इसका वर्णन मेरे सम्मुख कर रहे थे तो श्रीदुर्वासा ऋषिके अंगोंकी सूक्ष्म आकृति तकका, उनके वस्त्रोंका, हावभाव तकका स्पष्ट चित्रण वे करते जा रहे थे । वे खुली आँखों चिन्मय, अप्राकृत आकृति दोनों बालिकाओंकी भी सभी भावदशा बतला रहे थे। उनमें एक बालिका मंजुश्यामा तो वे ही स्वयं अपने भावदेहसे थे, अतः उन्हें सब कुछ प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर हो रहा था ।

पू. गुरुदेवने आगे जाकर ५–६ वर्ष पश्चात् अपने स्वरचित "जय–जय प्रियतम" काव्यमें भी इस लीलाका वर्णन किया है । इसे यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जा रहा है ।

पाकर मुनिका संकेत नृपति, रानीको लिये हुए प्रियतम ।
बाहर उस सदन कक्षसे थे, आ गये हाथ जोड़े प्रियतम ।।
भीतर रह गयीं पुत्रियाँ दो, मुनिने आरंभ किया प्रियतम ।
अर्चन उनका विह्वल होकर वाणीके पुष्पोंसे प्रियतम ।।
गम्भीर हुई गोरी छोरी सुनती थी श्लोकोंको प्रियतम ।

उनकी भगिनी साँवरी किन्तु रहं–रह कर हँस देती प्रियतम ।।
दो दण्ड बीतने पर सहसा मुनिकी जब गिरा रुकी प्रियतम ।
श्यामा छोरी चपला उनसे बोली मीठे स्वरमें प्रियतम ।।

उस समय पूजा करते समय मुनि दुर्वासाने किन श्लोकोंसे पूजा की थी – ये मंत्र पू. गुरुदेवने अपने जय–जय प्रियतम काव्यमें उल्लेख नहीं किये हैं, परन्तु मेरे सम्मुख इस लीलाका वर्णन करते समय वे दुर्वासाजी द्वारा बोले गये श्लोकोंका भी उच्चारण कर रहे थे ।

मैंने उनसे प्रार्थना करके उन महर्षि दुर्वासा द्वारा की हुई भगवती पराम्बाकी पूजाके सब मंत्र लिख लिये थे । श्री दुर्वासाजी द्वारा जो पूजाक्रम {पद्धति} बोली गयी थी, उसका हिन्दी भावार्थ भी यहाँ दिया जा रहा है –

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे सर्वभूतहिते मातः ऐह्येहि परमेश्वरि ! श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिकां आवाहयामि नमः ।।

मंत्र – ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः

{ हे परम चिन्मय महापद्मवनमें निवास करने वाली ! हे कारणानन्द विग्रहा !! हे सर्वभूतोंका हित करनेमें निरन्तर निरत, माते !!! हे परमेश्वरि !!!! यहाँ उपस्थित होओ । मैं महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका भगवती ललिताका आवाहन करता हूँ । परम प्रणाम । }

इसके पश्चात् श्रीदुर्वासाजी श्रीलोक मणिद्वीपके अन्तःकरणमें विराजित श्रीकामेश्वर भगवान्का–जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरीके समान ही वेष, भूषण एवं आयुध धारण किये हैं, ध्यान करते हैं । श्रीचक्रराजका स्मरण करते हैं। वे अपनी गुरु परम्पराका स्मरण करते हैं और तब अपनी स्वामिनी स्वरूपा इन दोनों बालिकाओंके समीप खड़े हो जाते हैं ।

{यहाँ मूलविद्याका उल्लेख नहीं है । मूलविद्या मात्र गुरु–मुखसे दीक्षाके समय ही प्राप्त होती है । पू. गुरुदेवने भी मूल विद्याका प्रकाश नहीं किया था । श्रीदुर्वासा ऋषिने मन्त्रोच्चारण करते समय मूल विद्याका मानसी जप ही किया था । वैसे श्रीविद्याके द्वादश आचार्योंकी मूल विद्या भी भिन्न है। भारतवर्षमें भगवती लोपामुद्राकी हादि विद्या एवं भगवान् कामदेवकी कादि विद्याका ही सम्प्रदायोंमें प्रमुखतया प्रचलन है । आम्नाय मंत्रोंमें यद्यपि दुर्वासा विद्याका उल्लेख है, परन्तु वह मूल विद्या यहाँ दी नहीं जा रही है । यह सब भेद भी पू. गुरुदेवने ही प्रकट किया था । लेखक तो मात्र उनका ही चरणाश्रित रहा है ।}

शेष पूजा मंत्र ये हैं –

ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या आवाहिता भव !
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संस्थापिता भव !!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संन्निधापिता भव !!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या संन्निरुद्धा भव !!!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या सम्मुखी भव !!!!!
ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या अनवगुण्ठिता भव !!!!!!

{हिन्दी भावार्थ}

हे महासरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी स्वरूपा भगवती परमाद्या, पराम्बा, मूल विद्यामंत्रस्वरूपा यहाँ आवाहित, संस्थापित, संनिधापित, संन्निरुद्ध, सम्मुख एवं अवगुण्ठन रहित होकर प्रकट होओ ।

इसके पश्चात् श्रीदुर्वासाजीने भगवतीको छः मुद्राओंका प्रदर्शन करते हुए प्रणाम किया । इन सभी मुद्राओंके मंत्र भी थे ।

ये मुद्रा मंत्र भी गुरुमुखसे प्राप्त होते हैं, अतः गोपनीय होनेसे प्रकट नहीं किये जा रहे हैं ।

{पू. गुरुदेवने यह पूजा वर्णन करते हुए मुझसे यह भी कहा था कि भावसे प्रतिदिन ही यह पूजा करनी चाहिये । चौसठ उपचारोंमें वर्णित सामग्री यदि अर्थाभाववश व्यवस्थित नहीं हो पावे तो वर्षमें एक दिवस धन्या–त्रयोदशीके दिन तो अवश्य ही इन उपचारोंसे पूजन किया जाना चाहिये । अशक्तावश यह भी कोई नहीं कर पावे तो पुष्पोंको अथवा अक्षतोंको उपचारोंके रूपमें परिकल्पित करके मानसिक–पूजन अवश्य करें ।

१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पाद्यं कल्पयामि नमः

२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आभरणावरोपणं कल्पयामि नमः

३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सुगन्धितैलाभ्यंगं कल्पयामि नमः

४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मज्जनशाला – प्रवेशनं कल्पयामि नमः

५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मज्जन शालायाम् मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दिव्य स्नानीयोद्वर्त्तनं

कल्पयामि नमः

७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै उष्णोदक स्नानं कल्पयामि नमः

८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कनक कलशच्युत सकल तीर्थोदक स्नानं {अभिषेकं} कल्पयामि नमः

{इस अभिषेकको करते समय पू. गुरुदेवने श्रीसूक्तके पाठका विधान बतलाया था । श्रीदुर्वासाजीने दोनों वृषभानु राजकन्याओंका अभिषेक अपने कमण्डलु जलसे किया था एवं श्रीसूक्तका ही पाठ किया था}

९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै धौतवस्त्र परिमार्जनं कल्पयामि नमः

१०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अरुणदुकूल परिधानं कल्पयामि नमः

११} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अरुण कुचोत्तरीयं कल्पयामि नमः

१२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आलेपमण्डपे प्रवेशनं कल्पयामि नमः

१३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आलेपमण्डपे मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

१४} ऐं ह्रीं श्रींमूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दिव्यगंध संर्वांगीण विलेपनं कल्पयामि नमः

१५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै केशभारार्थम् कालागरु धूपं कल्पयामि नमः

१६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कुसुममालाः कल्पयामि नमः

१७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै भूषणमण्डपे प्रवेशनं कल्पयामि नमः

१८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै भूषणमण्डपे मणिपीठोपवेशनं कल्पयामि नमः

१९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै नवमणिमुकुटं कल्पयामि नमः

२०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै चन्द्रशकलं कल्पयामि नमः

२१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सीमन्ते सिन्दूरं

कल्पयामि नमः
२२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै तिलकरत्नम् कल्पयामि नमः
२३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै कालाञ्जनम् कल्पयामि नमः
२४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै बाली युगलम् कल्पयामि नमः
२५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै मणिकुण्डल युगलम् कल्पयामि नमः
२६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै नासाभरणम् कल्पयामि नमः
२७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै अधर–यावकं कल्पयामि नमः
२८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै प्रथमभूषणं {मांगल्य सूत्रं} कल्पयामि नमः
२९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै कनक चिन्ताकं कल्पयामि नमः
३०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै पदकं कल्पयामि नमः
३१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै महापदकं कल्पयामि नमः
३२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै मुक्तावलिं कल्पयामि नमः
३३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै एकावलिं कल्पयामि नमः
३४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै छत्रवीरम् कल्पयामि नमः
३५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै केयूर युगलं चतुष्टयम् कल्पयामि नमः
३६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै वलयावलिम् कल्पयामि नमः
३७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै उर्मिलावलिम् कल्पयामि नमः
३८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराभट्टारिकायै काञ्चीदामम् कल्पयामि

नमः

३९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कटिसूत्रम् कल्पयामि नमः

४०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै सौभाग्याभरणं कल्पयामि नमः

४१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पादकटकं कल्पयामि नमः

४२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै रत्ननूपुरं कल्पयामि नमः

४३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पादांगुलीयकं कल्पयामि नमः

४४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै एक करे पाशं कल्पयामि नमः

४५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अन्य करे अंकुशं कल्पयामि नमः

४६} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै इतर करे पुण्ड्रेक्षुचापं कल्पयामि नमः

४७} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अपर करे पुष्पबाणान् कल्पयामि नमः

४८} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै श्रीमन्माणिक्य पादुके कल्पयामि नमः

४९} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै स्वसमानवेषाभिः आवरणदेवताभिःसह महाचक्र अधिरोहणं कल्पयामि नमः

५०} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कामेश्वरांक पर्यंकापवेशनं कल्पयामि नमः

५१} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै अमृतासव चषकं कल्पयामि नमः

५२} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आचमनीयं कल्पयामि नमः

५३} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै कर्पूर वीटिकां कल्पयामि नमः

{एला लवंगकर्पूरकस्तूरीकेसरादिभिः जातीफलदलैः पूगैः लांगल्यूषण नागरैः चूर्णैः खदिरसारैश्च युक्ता कर्पूरवीटिका}

५४} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै आनन्दोल्लास विलासहासं कल्पयामि नमः

५५} ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्या श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै मंगल आरार्त्तिकम् कल्पयामि नमः

{कलधौतादिभाजने कुंकुम चन्दनादि लिखितस्य अष्टदल षट्दल वा चतुर्दलादि अन्यतमस्य कमलस्य चन्द्राकार चरु गोलकवत्यां चणक मुद्गुजुषि वा कर्णिकायां दलेषु च पयःशर्करा पिण्डीकृत यव गोधूम पिष्टो पादानकानि त्रिकोण शिर डमर्वाकृतीनि चतुरंगुलोत्सेधानि घृत पाचितानि नव सप्त पञ्च अन्यतम संख्यानि दीप पात्राणि निधाय तेषु गोघृतं कर्णप्रमितं आपूर्य कर्पूर गर्भितां वर्त्तिकां ह्रल्लेखया प्रज्ज्वाल्य–}

{हिन्दी भावार्थ}

श्रीदुर्वासाजी ने पहले स्वर्ण पात्रमें कुंकुम चन्दनादिसे अष्टदल, षट्दल अथवा चतुर्दलका कमल निर्माण किया, उसके चारों कोनोंमें चन्द्रमा, चरु, गोलक निर्माण किया तथा कमलके दलोंको एवं कर्णिकाको चना, मूँग, चावलसे भरा, जव एवं गेहूँके आटेमें दूध एवं चीनी मिलाकर उससे डमरूकी आकृतिके नौ, सात अथवा पाँच दीप पात्र निर्माण किये, उनको चार अंगुल घृतसे भरा फिर कर्पूर गर्भित बातीसे ह्रल्लेखासे जाज्वल्यमान किया – इसके पश्चात्

{रत्नेश्वरी मंत्र}

ऐं ह्रीं श्रीं श्रींह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं इस त्र्यक्षरी प्रणव सहित नवाक्षरी रत्नेश्वरी विद्यासे उस आरतीको अभिमंत्रित करके श्रीदुर्वासाजीने उस आरतीको चक्रमुद्रा प्रदर्शित करके मूलमंत्रसे उसकी अभ्यर्चना करते हुए तत्पश्चात् ऐं ह्रीं श्रीं जगध्वनि मंत्र मातः स्वाहा, इस मंत्रसे गन्धाक्षतादिसे घंटा {उपकरण} की पूजा करके उसको बजाते हुए उस आरती पात्रको सिरसे लगाकर इसके पश्चात् स्तुति करते हुए

समस्त चक्रेशीयुते देवि नवात्मिके
आरार्त्तिकमिदं तुभ्यं गृहाण मम सिद्धये

नौ बार दोनों बालिकाओंकी मस्तकसे लेकर चरणोंतक घुमाते हुए आरतीकी । तत्पश्चात् उस आरती पात्रको दोनों बालिकाओंके दक्षिण भागमें रख दिया ।

५६} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायैः छत्रं कल्पयामि नमः

५७} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायैः चामर युगलं कल्पयामि नमः

५८} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायैः दर्पणम् कल्पयामि नमः

५९} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै तालवृन्तं कल्पयामि नमः
६०} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै गन्धम् कल्पयामि नमः
६१} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै पुष्पं कल्पयामि नमः
६२} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै धूपं कल्पयामि नमः
६३} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै दीपं कल्पयामि नमः
६४} ऐं ह्रीं श्रीं श्रीललिता पराम्बायै पराभट्टारिकायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः

श्रीदुर्वासाजीने दोनों बालिकाओंके सम्मुख अपने दक्षिण हाथकी ओर चतुरस्र मण्डलका निर्माण किया, उसके ऊपर अपने योगबलसे उत्पन्न नैवेद्यको रत्नाधार पर रखकर उसे मूलमंत्रसे जलसे छिड़ककर 'वं' अमृत बीजसे धेनुमुद्रा दिखाकर अमृत बनाते हुए मूलमंत्रसे तीन बार अभिमंत्रित किया, फिर आपोवन देकर उपरोक्त मंत्रसे नैवेद्य अर्पित किया । इसके बाद पानीय एवं उत्तरापोषण एवं हस्त प्रक्षालन कराके आचमन कराया एवं तब ताम्बूलार्पण किया ।

वृषभानुबाबाकी कन्याओंके रूपमें श्रीदुर्वासाजी द्वारा इस प्रकार अपनी परमेष्ठी भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकी चौसठ उपचारोंसे मानस पूजाकी गयी थी । श्रीदुर्वासाजी एक–एक उपचारका ध्यान करते हुए उन बालिकाओंके मस्तक पर पुष्पार्चन कर रहे थे और बालिकाएँ खड़ी–खड़ी हँस रही थीं ।

इस प्रकार सम्पूर्ण वृन्दावनका दर्शन करके श्रीदुर्वासा पुनः भगवती लीलाशक्तिकी प्रेरणासे श्रीकृष्णके मुखविवरसे बाहर आते हैं । वे देखते हैं कि गोपराज नन्दरायका पुत्र वैसे ही विलक्षण हँसी हँस रहा है । अब तो श्रीदुर्वासाजी परम कृतकृत्य हुए मन ही मन भगवतीके इस विलक्षण निजलीलांगीकृत ललित बाल नर विग्रहको नमन करते गहन वनमें बिदा हो जाते हैं ।

———————————————

न्यासविद्याके परमाचार्य पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा

ये सभी बातें पैंतालीस वर्ष पूर्वकी हैं । उन दिनों सत्संगियोंमें सर्वत्र सुननेमें आता था कि श्रीसेठजी जयदयालजी गोयनका निष्काम कर्मयोगके सूर्य हैं । श्रीपोद्दार महाराजको लोग भक्तमुकुटमणि मानते थे, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी संकीर्त्तन सम्राट् कहलाते थे एवं श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती, श्रीमद्भागवतके मूर्धन्य पण्डित माने जाते थे । श्रीउडियाबाबा ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, माँ आनन्दमयी सिद्ध तान्त्रिक, स्वामी रामसुखदासजी गीताके मर्मज्ञ, श्रीशरणानन्दजी {प्रज्ञाचक्षु} तार्किक आस्तिक कहे जाते थे । एक दिवस मैंने अपने पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे प्रश्न किया –"मामाजी! अपने श्रीराधाबाबामें भी कोई न कोई ऐसी अद्वितीयता तो होगी, जिससे उपरोक्त अग्रगण्योंमें उन्हें भी कोई स्थान दिया जा सके ?"

मेरे {पूर्वाश्रमके} मामाजीने उत्तर दिया – "भैया, राधाबाबा न्यास–विद्याके असमोर्ध्व पण्डित हैं ।"

यह न्यासविद्या क्या होती है ? मेरी बात समझी हुई नहीं थी । वैसे ब्राह्मण होनेके नाते मुझे संध्या–गायत्रीकी शिक्षा देते समय अंगन्यास, करन्यास, हृदयन्यास सिखाया गया था, परन्तु उसमें असमोर्ध्वता सम्पादन कैसे संभव है, कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था ।

मैं पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पास पहुँचा और उनसे मैंने न्यास विद्याकी शिक्षा देनेकी प्रार्थनाकी ।

पू. गुरुदेव उन दिनों मौन रहते थे, वे मात्र दो ही शब्द "राधा" ही बोला करते थे। उन्हें जो कुछ भी कहना होता स्लेट–पट्टी पर लिखकर समझाया करते थे । लम्बी वार्त्ता होने पर पहले वे अनेक स्लेट–पट्टियों पर अपना वक्तव्य लिख लेते, फिर पढ़नेको देते थे । उन्होंने कहा – "भैया, श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने एक श्लोककी अर्धालीमें यह बात स्पष्ट रूपसे समझायी है । भगवान् कहते हैं –"**ज्ञानात् ध्यान विशिष्यते, ध्यानात् कर्मफलस्त्यागः, त्यागात् शान्तिरनन्तरम् ।**"

भगवान्का वक्तव्य यह है कि किसीको ज्ञान तो हो जाय, किन्तु ज्ञानका ध्यान न रहे, वह ज्ञानको विस्मृत कर दे और प्रवाहमें पतितकी तरह

मन–इन्द्रियोंके विषयोंमें ही रमता रहे तो उसका ज्ञान मात्र वाचिक ही रह जाता है और उसकी गति विषयीके समान ही दुःख–सुखसे भरी होती है, इसीसे भगवान् इस वक्तव्यमें ज्ञान होने पर भी निरन्तर ज्ञानका ध्यान रखने पर जोर दे रहे हैं । अब ज्ञानका ध्यान करता हुआ भी प्राणी यदि कर्मफल रूपमें प्राप्त इस देहके अध्यासका त्याग नहीं करता है, तो उसे परम शान्तिकी उपलब्धि नहीं होती । कर्मफल, सुख–दुख, रोग–शोक, हानि–लाभ, यश–अपयश उसे अशान्त बनाये ही रहते हैं, अतः इस कर्मफल अर्थात देहके अध्यासका त्याग परमावश्यक है । यह देहाध्यासका विस्मरण ही न्यास है । अपनेमें पूर्णशक्ति, पूर्ण विभुत्व, पूर्ण समृद्धि, पूर्ण एवं नित्य जीवनको न्यस्त करना और अशक्तता, परिच्छिन्नता, दारिद्र्य, अनित्यता {क्षणभंगुरता}का विस्मरण कर देना ही न्यास शिक्षाकी प्राथमिकी है ।

पू. श्रीगुरुदेवने श्रीशुकदेव–परीक्षित् संवादका संदर्भ देते हुए अपने वक्तव्यको अग्रसर किया । वे कहने लगे–जब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी सर्वथा अनाहूत ही मुमुक्षु परीक्षितके पास अवधूतवेशमें पहुँचे तो आश्चर्य एवं हर्षमें भरे श्रीपरीक्षितजी, श्रीशुकदेव महाराजसे गंगातट पर आसीन ऋषियोंके मध्य अति मार्मिक प्रश्न करते हैं –

"अतः प्रच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुं ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।
यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्त्तव्यं नृभिः प्रभो ।
स्मर्त्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ।।

हे प्रभो ! आप योगियों {भगवान्से युक्त प्राणियों} के भी परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम सिद्धिके स्वरूप और उसकी प्राप्तिके साधन–सम्बन्धमें यह प्रश्न {जिज्ञासा} कर रहा हूँ । प्रभो ! कृपाकर यह बतायें कि जो घुरुष मरणासन्न हैं, उनको क्या करना चाहिये ? वे किसका श्रवण, किसका जप करें। साथ ही मनुष्य मात्रके लिये क्या स्मरण करने योग्य एवं भजनीय है तथा उनका क्या कर्त्तव्य है, वे किन–किन अकर्त्तव्योंका त्याग करें ?"

इस समय श्रीपरीक्षितजी तक्षक नामक विषधर सरीसृप कीटसे भयभीत एवं मृत्यु मोहसे ग्रस्त थे । श्रीशुकदेवजी उन्हें अपनेमें भगवान्के विराट् स्वरूपका न्यास करनेका उपदेश करते हैं । पू. गुरुदेवका वक्तव्य था कि अपना वास्तविक जो स्वरूप भगवद्मायाजन्य अज्ञानसे विस्मृत हो चुका है, उसकी अपने भीतर अवधारणा करना ही न्यास है । यह न्यास अपने भीतर अपने ही परम सत्यको आवाहित करना ही है । प्रत्येक विराट् स्वतः जब अपने अल्पतममें निहित हेाता ही है तो अपनेको अल्प, मृत्युग्रस्त मानना घोर

अज्ञान ही है ।

अबः पू. गुरुदेव मुझे न्यासकी शिक्षा देने लगे । वे मुझे समझा रहे थे कि "तेरे शरीरका जलांश विराट् समुद्र–देवताका ही अंश है, अतः अपने जलांशको समुद्रमें न्यास करके अपने भीतर विराट् समुद्रको अनुभव कर । अपनेमें ठीक इसी प्रकार क्रमशः समग्र विराट् पंचभूतोंको एवं समग्र प्रकृतिको न्यस्त मान ले और इस सत्य अवधारणामें एक घड़ी, दो घड़ी स्थिर हो जा।" पू. गुरुदेव जब मुझे यह शिक्षा दे रहे थे, तब श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव भी वहाँ थे । पू. गुरुदेवने श्रीमाधवशरणजीसे श्रीशुकदेवोक्त श्लोकोंको शनैः शनैः मन्दगतिसे पढ़नेको कहा । पू. गुरुदेवने मुझसे एवं श्रीमाधवजी दोनोंसे कहा कि इस विराट् रूपमें स्थिर हुए हम श्रीशुकदेवजी महाराजकी अनुभूतिसे अपनी एकात्मता करें ।

श्रीमाधवशरणजी श्रीमद्भागवतके श्लोक उच्चारण कर रहे थे और हम दोनों ही अपने सर्वांगोंमें भगवान्‌के विराट् स्वरूपको न्यस्त देख रहे थे ।

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलं ।
महातलौ विश्वसृजोऽथ गुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जंघे ।।
द्वै जानुनी सुतलं विश्वमूर्त्तेरुरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते, नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ।।

हम दोनों गहन विचारमें डूबे थे और अनुभव कर रहे थे कि हमारे पैरोंमें विराट् पुरुषके तलवे, एडियाँ, एडीके ऊपरकी गाँठें {गुल्फ}, जंघाएँ, जानु, उरु, पेडू एवं नाभि आदि सभी अंग न्यस्त हो चुके हैं और विश्व ब्रह्माण्डके रसातल, सुतल, पाताल, महातल, तलातल, महीतल सभी लोक हमारे तत्तद् अंगोंमें न्यस्त हैं । अपनेमें सभी लोक लोकान्तरोंका न्यास करते हुए यद्यपि हम भावना ही कर रहे थे, परन्तु हमारी भावना परम सत्यका ही प्रकाश थी, अतः उसे सत्य कहनेमें संकोच ही क्या था ? असत्य तो हमारी क्षणभंगुर, परिच्छिन्न, अल्प देह कीटबुद्धि ही थी ।

तनिकसे गंभीर विचारके उत्थित होते ही यह बात तो स्पष्ट ही समझमें आ रही थी कि यह मानव नरदेहका परम कारण तो परमात्माका विराट् स्वरूप ही है । किरणके अल्पतम प्रकाशका उद्गम जैसे निश्चय ही सूर्य है, वैसे ही प्रत्येक अल्पतम आकृति रखने वाला कीट भी परमात्माकी ही अनन्त गति शक्तिसे गतिमान है । परमात्मामें निहित जीवशक्ति ही उसे जीवन्त कर रही है और परमात्मामें निहित कालशक्तिमें ही उसका अस्तित्व विलयको प्राप्त होता है ।

कोई भी अल्प किरण अपनेको प्रकाशकी स्रष्टा समझने लगे, यह तो

उसकी वज्रमूढ़ता ही है, किरण सूर्यमें है, सूर्यसे है और सूर्य रूप ही है । यह बात तो जरासा ध्यान देते ही हम दोनोंकी बुद्धिमें उजागर हो उठी थी।

श्रीमद्भागवतका आगेका श्लोक अब मैं पढ़ने लगा –

उरः स्थलं ज्योतिरनीकमस्य, ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपोरराटीं विदुरादि पुंसः सत्यंतु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ।।

{भावार्थ}

उन सहस्रशीर्ष्ण आदिपुरुष परमात्माके उरस्थल {वक्ष}में स्वर्गलोक, ग्रीवामें महर्लोक, आननमें जनलोक, ललाटमें तपोलोक एवं उनके मस्तकमें सत्यलोक स्थित है ।

पू. गुरुदेवकी कृपासे मेरी प्रज्ञा खुल गयी थी और मुझे ठीक अनुभव हो रहा था कि सर्वत्र विश्वमूर्त्ति परमात्मा ही परमात्मा हैं । जैसे गगनस्थ सूर्य, चन्द्रादिकी प्रकाशमान सत्ता, समुद्रादिकी असंख्य लहरोंमें असंख्य प्रकाशमान प्रतिबिंब निर्माण कर देती है और वे सभी प्रतिबिम्ब सूर्य, चन्द्रादिवत् प्रकाशित होते हैं, इसी प्रकार मायाकी लहरियोंमें व्यक्त अनन्त लोक और इनके अन्तर्गत अनन्तानन्त जीव सृष्टि एक परमात्मामें ही विधृत है, उनकी सत्तासे ही सत्तान्वित हो रही है, उनकी ही चिच्छक्तिसे चैतन्य एवं जीवन्त है और उनके ही आनन्दसे आह्लादित है । श्रीमद्भागवत्कारका यह सब कहनेका एकमात्र उद्देश्य यही था कि मुमुक्षु परीक्षित अपने भीतर प्रवाहित परमात्माकी अपरिच्छिन्न अखण्ड नित्य सत्ताको न्यस्त समझ लें और अपनी अज्ञानमयी देहजनित मोहदृष्टिको त्याग दें और पूर्ण भयमुक्त हो जाय । एक तक्षक क्या, तक्षक जैसे अनन्त कीड़े और उनका विष इस महाविराट् सत्ताका बाल बाँका भी करनेमें समर्थ नहीं है । परन्तु यह परम निर्भय दृष्टि परीक्षितकी तभी संभव है जब वह अपनेमें विराट् परमात्माको सत्य–सत्य न्यस्त समझ ले।

आगेके श्लोक थे –

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्यशब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः ।।

{भावार्थ}

भगवान्की भुजायें ही इन्द्रादि देवता हैं, उनके कान ही दिशायें हैं, उनके श्रोत्रोंके कारण ही अनन्त शब्द ध्वनियाँ अस्तित्व पा रही हैं । उनकी नासा ही सर्व गंधोंकी कारण है और घ्राणेन्द्रिय ही सर्वगन्धकी अनुभव कर्त्ता है । परमात्माके मुखसे ही धधकती अग्निकी सत्ता है ।

पू. गुरुदेव इतने मेधावी थे कि उन्हें श्रीमद्भागवत अधिकांशतः कण्ठस्थ थी । अतः वे श्रीमद्भागवतके भावानुसार सम्पूर्ण विराट् स्वरूपका न्यास कराते

जा रहे थे ।

मैं एवं श्रीमाधवशरणजी दोनों निस्संशय अनुभव कर रहे थे–भगवान्‌की भुजाओंका बल ही अधिदेवता इन्द्रको बलयुक्त कर रहा है और इन्द्रसे वही भगवान्‌का बल ही समग्र जीव समुदायका ओज बन रहा है । भगवान्‌की वाणीके शब्द ही वाणीकी अधिदेवी सरस्वतीकी सत्ता हैं और उस सत्तासे ही सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डके जीव समुदाय अपनी वाणी द्वारा निज निज भावोंकी अभिव्यंजना कर रहे हैं । भगवान् विराट् पुरुषकी कर्णेन्द्रियाँ ही दिशाओंके अधिदेवता दिक् देवताओंके रूपमें शब्दोंको प्रतिध्वनित कर रहे हैं और जीव समुदाय इन शब्दोंको श्रवण करनेकी सामर्थ्य पा रहा है । भगवान्‌का मुख ही सम्पूर्ण धधकती अग्निका निवास है और उसी अग्नि देवताकी कृपासे जीव समुदायकी जठराग्नि पाचन क्रिया कर रही है । भगवान्‌के नेत्रोंसे ही दृष्टिके अधिदेवता सूर्य अस्तित्व पा रहे हैं और समग्र जीव समुदाय दृष्टा, दृष्टि एवं दृष्यकी त्रिपुटीमें भ्रमित हो रहा है ।

पू. गुरुदेव कहते जा रहे थे–"भगवान् विराट् पुरुषकी पलकोंके उन्मेष एवं निमेषसे ब्रह्माकी जाग्रति और सुषुप्ति हो रही है एवं विश्व सृष्टिमें, सृष्टि एवं प्रलयका क्रम चल रहा है, साथ ही अनन्त जीव समुदाय उत्पन्न होते हैं, काल गालमें स्थिति अनुभव करते हैं एवं मृत्यु {विनाश}को प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् विराट्‌के भ्रूविलासमें ही ब्रह्मलोक, कैलाश एवं बैकुण्ठ लोक स्थित हैं । भगवान् विराट्‌के तालुसे जल की सत्ता है और सम्पूर्ण जीव समुदायको जो स्वाद एवं रस आता है, उसकी मूल स्थिति भगवान्‌की जिह्वा है । यह सम्पूर्ण चित्र विचित्र लोक विलास करनेवाली जो माया–नटी है, वह भगवान्‌की मुसकानमें नित्य निवास करती है । भगवान्‌के कटाक्ष निक्षेपसे ही यह चौदहों भुवनोंकी अनन्तानन्त सृष्टि है ।

विश्वमें जितनी, जहाँ भी लज्जा है, उसका कारण भगवान् विराट् पुरुषका ऊपरी ओष्ठ है और लोभका कारण उनका अधर है । धर्म भगवान्‌के स्तनमें निवास करता है और अधर्मका कारण उनकी पीठ है । भगवान्‌की मूत्रेन्द्रिय ही प्रजापतिकी कारण है और ये ही प्रजापति समग्र विश्वसत्तामें सृजन रूपमें व्यक्त हो रहे हैं । भगवान् विराट्‌की कोख ही समुद्र है, जो सम्पूर्ण जीव समुदायकी उत्पत्तिमें हेतु है । भगवान्‌की अस्थियोंसे समग्र विशाल पर्वतोंका सृजन हुआ है ।

पू. गुरुदेव समझा रहे थे और हम दोनों {श्रीमाधवजी एवं मैं} उनके पार्श्वमें स्थित उनकी व्याख्यासे चमत्कृत विमुग्ध उनकी ओर टकटकी लगाये दत्तचित्त थे । हमारी उस विराट् पुरुषसे निश्चय ही एकता है, वह हमारा

मात्र कारण है, अतः हममें पूर्णतया एकमेक, अनुस्यूत है, यह तथ्य हमारी दृष्टिमें स्पष्ट था ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे, नदियोंके रूपमें उस विराट्की नाड़ियाँ हैं, वृक्षोंके रूपमें उनके रोम हैं, परम प्रबल वायु उनकी श्वास है एवं काल उनकी चाल {गति} है । स्वप्न, सुषुप्ति एवं जागरण रूप चक्र चलाना ही उनका कर्म है, बादल उनके केश हैं, सन्ध्या एवं ऊषा उनके वस्त्र हैं । महात्माओंकी करुणामयी प्रकृति ही उनका हृदय है, चन्दमा उनका मन है, अखिल सृष्टिगत विज्ञान ही उनकी बुद्धि है, और भगवान रुद्र उनके अहंकार हैं । विशुद्ध सत्वजनित करुणाकी जो छाया जीव समुदायमें यत्किचित कहीं भी दृष्टिगोचर हो रही है, वह सब उनके हृदयका क्षीणतम ही सही, जीव हृदयमें प्रकाश है । उन विराट्का निवास मनुष्यका चित्त है, गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके सप्त स्वर हैं ।

पू. गुरुदेव हम लोगोंको सम्बोधित करते हुए कह रहे थे – "भैया ! यह विराट पुरुषके स्वरूपका न्यास है, इसी प्रकार जिस देवताकी भी पूजा की जाती है, पहले उसे अपने अंगोंमें न्यास किया जाता है, फिर ठीक उस देवतारूपमें अपनेको पूर्णतया विसर्जितकर देवता होकर ही देवार्चनका विधान है ।

मैंने प्रश्न किया – "बाबा ! फिर ध्यान एवं न्यासमें क्या अन्तर है ?

उन्होंने कहा – भैया ! ध्यानमें ध्याता रहता है, यह ध्येयसे अपनेको विलग अनुभव करता हुआ स्वयंको ध्यानकर्त्ता अनुभव करता रहता है । न्यासमें ध्याता ध्येयमें पूर्णतया न्यस्त हो जाता है । विराट् समुद्रमें जलकी बूँदका न्यस्त हो जाना समुद्र ही हो जाना होता है । न्यस्त साधक फिर कभी इष्टसे पृथक्ता अनुभव कर ही नहीं सकता । वह तो इष्ट हुआ ही इष्टमें पूजनरत रहता है । वह इष्टके समान वेष, रूप और आयुधों वाला इष्टका आवरण रूप ही होता है । न्यासका अर्थ ही है कि न्यस्त साधक ध्येयका आश्रयालम्बन हो जाय और ध्येय ही द्विधा हुआ उस आश्रयालंबनका विषय बना रहे ।

जैसे इष्टके स्वरूपका अपने स्वरूपमें न्यास होता है, उसी प्रकार इष्टके मंत्रका भी साधकके अंगोंमें, हृदयमें न्यास किया जाता है ।

तंत्र शास्त्रमें इष्ट, मंत्र एवं मंत्रद्रष्टा गुरु जो मंत्रमय होकर मंत्रदान करता है, तीनोंमें कोई भेद नहीं होता । वे तीनों एक ही होते हैं । जिसे मंत्रका ज्ञान होता है, उसमें मंत्र पूर्णतया न्यस्त है । जब मंत्र न्यस्त है तो गुरु मंत्रमय ही है । इष्ट तो पूर्णतया मंत्राधीन है ही । मंत्र एवं इष्ट भिन्न

होते ही नहीं । मंत्र ही इष्टका वाङ्मय स्वरूप ही है । जैसे ध्यान करते समय मन और इष्टका रूप एकत्व लाभ करता है, तभी ध्यान होता है अन्यथा ध्यान नहीं हो सकता, इसी प्रकार मंत्र जो इष्टका वाङ्मय स्वरूप है, वह साधकको मिलते ही इष्ट उसमें न्यस्त हो जाता है एवं जिसमें इष्ट न्यस्त है, वही गुरु है । जिसमें इष्ट न्यस्त नहीं है, वह तो मंत्र द्रष्टा भी नहीं है । इसीलिये मंत्र, मंत्रद्रष्टा एवं इष्ट एक रूप ही होते हैं । इसी प्रकार शिष्यको वरण करते ही शिष्य एवं गुरु भी एक ही हो जाते हैं, यह तंत्र शास्त्रकी अमोघ निष्ठा है । इसीलिये तंत्रशास्त्रमें प्रवेश गुरुके द्वारा ही सम्भव है ।

तंत्र शास्त्रमें मंत्रदीक्षाके पश्चात् मंत्रका साधक द्वारा पुरश्चरण किया जाता है । पुरश्चरणका अर्थ है कि उस मंत्रको लाखों बार देहमें न्यास किया जाय । जप विधान पूर्ण करते समय शिष्य लाखों बार ही अनुभव करे कि मेरे रोम–रोममें मंत्र न्यस्त है । इस प्रकार साधकका मंत्रमय हो जाना ही सही पुरश्चरण है । यही दीक्षा रहस्य है । जैसे ही दीक्षा दी जाती है, दीक्षा देते ही साधकका अहंकार संचित एवं प्रारब्ध कर्मराशि सहित नष्ट हो जाता है और वह मंत्रमय इष्टस्वरूप ही हो जाता है ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको सचमुच ही हम लोग जीवनकालमें नहीं पहचान पाये । वे पूर्णतया मंत्रमय थे । उनका रोम–रोम अपने इष्टमें पूर्णतया न्यस्त था । वे साक्षात् शिव स्वरूप थे, पराशक्ति स्वरूप थे और परम शिव एवं पराशक्तिके सामरस्यका परमाधार थे ।

एक बार मैंने श्रीमाधवजीके साथ ही उनसे प्रश्न पूछा था – बाबा ! आपका शरीर क्या है ? पू. गुरुदेव उस दिवस अनुग्रह भावसे भरे थे । मुझसे कहने लगे – "भैया ! सच्ची बात तो यह है कि अधिकांश काल तो मुझे इस शरीरका भाव ही नहीं रहता । मैं जिस भावजगतमें खोया रहता हूँ, उस भाव जगतका इस सृष्ट विश्वतंत्रकी न तो स्थूल अवस्थासे कोई सम्बन्ध है, न ही इसकी कोई सूक्ष्म अथवा कारणावस्थासे । उस मेरे भाव शरीरके संबंधमें यदि तेरी यह जिज्ञासा है तो उसका प्रकाश तो वाणी कर ही नहीं सकती ।

हाँ ! यदि तेरा इस सृष्टि तंत्रमें जन्मे मेरे इस शरीरको लेकर प्रश्न है, तो जो सत्य बात मैं वाणीके द्वारा कह पाऊँगा वह भी तू अभी तेरी वर्त्तमान बुद्धिसे समझ नहीं सकेगा । यहाँ, इस बगीचेमें अभी तो कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, {श्रीपोद्दार महाराजको छोड़कर} जो इस सत्यकी अवधारणा कर पावे।

मैंने पुनः कहा – बाबा ! आप मेरे कानोंमें बीजाक्षर तो डाल ही दीजिये। आज नहीं, कल जब कभी आपकी कृपा प्रतिफलित होगी और प्रज्ञाका विकास होगा, तभी सही, उस समय ये बीज पल्लवित होकर अपना

स्वरूप दिग्दर्शन तो करावेंगे ही ।

उस दिन पू. गुरुदेवने जो विलक्षण परम गूढ़ आगम शास्त्रीय शारीरिक विवेचन किया था, वह वास्तवमें ही विलक्षण था । इस सभी वक्तव्यको उस दिन मैं एवं माधवजी सुनकर चकित हो गये थे । सचमुच ही उस दिन तो हम दोनोंके ही, जो समझदारीका अभिमान लिये बैठे थे, कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा था । मैं श्रीमाधवजीकी ओर देख रहा था और वे मेरी ओर, परन्तु दोनों ही अपनी अपनी अल्पज्ञतासे चूर्ण–अभिमान थे ।

पू. गुरुदेवने वह सब वक्तव्य तीन–चार स्लेट पट्टियोंमें लिखा था । हम पू. गुरुदेवसे उनके वक्तव्यका अर्थ समझें, इसके पूर्व ही पू. गुरुदेवको भिक्षा का बुलावा आ गया । वे लिखी पट्टियाँ पू. गुरुदेवकी कुटियामें ज्यों–की–त्यों रख दी गयीं । जब पू. गुरुदेव भिक्षार्थ पू. पोद्दार महाराजके निवासकी ओर चले गये, उस समय मैंने वह वक्तव्य अपनी कापीमें उतार लिया था । आज मैं पैंसठ–सत्तर वर्षका वृद्ध सन्यासी हूँ । उन दिनों २०–२५ वर्षका युवक था । आज भी प्रज्ञा इतनी समर्थ नहीं है कि पू. गुरुदेव के वक्तव्यका साक्षात्कार कर सकूँ । भले ही शब्दोंका अर्थ लगा लूँ ।

जिन दिनों पू. गुरुदेवने यह वक्तव्य दिया था, उस दिवस तो इनका शब्दार्थ भी न मेरी समझमें आया था न ही हिन्दीके सुविज्ञ लेखक श्रीमाधवशरणजीके।

पू. गुरुदेवका वक्तव्य था – भैया ! जब यह पराशक्ति आत्मगर्भस्थ एवं अपने साथ एकीभूत विश्वको देखनेके लिये उन्मुख होती है, तब मात्रावच्छिन्न शक्ति और शिव साम्य भावापन्न होकर एक बिन्दु रूपमें परिणत होते हैं । इसीसे पारमार्थिक चैतन्य प्रतिफलित होता है । यह पारमार्थिक चैतन्य ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रकटित होता है । इस पारमार्थिक चैतन्यको ही शैव ज्योतिर्लिंग कहते हैं और शाक्त कामरूप पीठ । यही मेरा कारण है । इस कामरूप पीठमें अभिव्यक्त चैतन्य ही स्वयं भू ज्योतिर्लिंग है । इसमें एक मात्रा शक्तिअंश एवं एक मात्रा शिवांशकी समभावमें संघटना है । शक्ति एवं शिवके इस अंश द्वयको आगम आचार्य शान्ता शक्ति एवं अम्बिका शक्तिके नाम एवं रूपमें वर्णन करते हैं । ये पराम्बा हैं ।

इस कामरूप पीठमें महाशक्तिका आत्मप्रकाश परावाक् रूपमें प्रख्यात है । जिन्होंने तन्त्रानुमोदित योगसाधनाका यथाविधि अभ्यास किया है, वे मानते हैं कि यहींसे शब्द राज्यकी सूचना होती है । यंही प्रणवका परम रूप अथवा वेदका स्वरूप है ।

यह मेरी कारणावस्थाका संक्षिप्त परिचय है । वैसे सही अवस्थाका

आकलन तो मात्र समाधिकी उच्च अवस्थामें आगम महर्षियोंकी संविद्भूमि ही कर पायी है, परन्तु शास्त्रोंमें जो वर्णन है और जिसका मेरी अनुभूतिसे साम्य है, मैंने वर्णन कर दिया है ।

पू. गुरुदेव कहने लगे – "मेरी कारण भूमिमें अर्थात् कामरूप पीठमें पराशक्ति आत्मगर्भस्थ विश्वको नित्य वर्त्तमान रूपमें देखती है । यहाँ अतीत एवं अनागत रूप खण्डकालकी सत्ता नहीं है । यहाँ दूर और निकटका व्यवधान भी नहीं है । कौन कार्य है और कौन कारण है, यह सब यहाँ अपरिज्ञात है। इस मेरे नित्य कारण मण्डलमें किसी प्रकारका आवरण नहीं है । सब निरावरित स्वच्छ दर्पण है । यहाँ किसी भी प्रकारका क्षोभ एवं चंचलता दिखती ही नहीं। पूर्ण परम शान्त यह अवस्था है । यही मेरी निद्रा है ।

इसके पश्चात् इच्छा शक्तिके उन्मेषके साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है । मेरे कारणमें किञ्चित् क्षोभ होता है । इस क्षोभको विकारमूलक परिणाम सर्वथा नहीं मानना चाहिये । यह मेरी स्वतन्त्र सत्तामें स्वाभाविक गति है । मेरा पूर्ण स्वातंत्र्य–विलास ही इसे मानना चाहिये। मेरे पूर्ण स्वतन्त्र–विलासका नर्त्तन अथवा गति भी इसे कहा जा सकता है । अब पूर्ण शान्ता शक्ति इच्छा रूपमें परिणत होती है । शिवांश सहित अम्बिका शक्ति अब वामा रूपमें आविर्भूत होती है । अब इच्छा शक्तिके उन्मेषके साथ शब्दके द्वितीय स्तरमें सृष्टिका विकास होता है । इसे आगम शास्त्र नित्य मण्डल कहता है । इन दोनों अम्बिका शक्ति एवं वामाशक्तियोंके पारस्परिक वैषम्यका परिहार होने पर जिस अद्वय सामरस्य बिन्दु का आविर्भाव होता है उससे तदनुरूप जो चैतन्यका स्फुरण होता है, इसे पूर्ण गिरिपीठ रूपमें शाक्त अभिधान करते हैं एवं शैव इस चिद्विकासको बाण लिंगके नामसे जानते हैं । यह मेरी कारण एवं सूक्ष्म शरीरके मध्यकी अवस्था है और शास्त्रदृष्टिसे यह पश्यन्ती वाक्की अवस्था है।

अभी विश्व गर्भस्थ बीजरूप है । अब इच्छाके प्रभावसे उस बीजकी गर्भके एक देशमें विसृष्टि होती है । तब उसे सृष्टि नाम प्राप्त होता है ।

इस भूमिसे ही कालका प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है । कालका उदय होने से सृष्टि क्रियामें भी क्रम आ जाता है । देशका और कार्यकारण भावका स्फुरण भी यहींसे समझना चाहिये । यह मेरा सूक्ष्म शरीर है ।

मेरे सूक्ष्म शरीरकी परावस्थामें इच्छा शक्तिके उपराम होने पर ज्ञान शक्तिका उदय होता है । अब वामा शक्ति ज्येष्ठा शक्तिके रूपमें विकसित होती है । ज्येष्ठा शक्तिके साथ शिवांश अद्वैत भावमें मिलित हुआ जालन्धर

पीठ रूप सामरस्य बिन्दुकी सृष्टि करता है । इस बिन्दुसे अभिव्यक्त चैतन्य इतर लिंग नामसे अभिहित है । शक्तिके इस स्तरमें मध्यमा वाक् आविर्भूत होती है। इसे ही मेरा सूक्ष्म शरीर मानना चाहिये।

अब स्थिति स्थूल शक्ति हो जाती है । अपने स्वतन्त्र स्वभावके नियमसे ही अन्तर्मुखी आकर्षणकी प्रबलता होनेके कारण संहार शक्ति क्रियाशील हो उठती है । ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है । शिवांश रौद्री शक्तिके साथ साम्य भावको प्राप्त हो जाता है । अब इसके फलस्वरूप जिस अद्वैत बिन्दुका अविर्भाव होता है, उसे उड्डीयान पीठ कहते हैं । यह सामरस्य बिन्दुसे चित् शक्ति पर लिंग रूपमें अभिव्यक्त होती है। यह शब्दकी वैखरी नाम चतुर्थ भूमि है। जिस संहारशील क्षयवर्धक चक्रधर अथवा राधाबाबा अभिहित शरीरका जो तू अनुभव कर रहा है, यह इस वैखरी शब्दकी ही विभूति है ।

आज जब मैं तन्त्र साधना करते–करते तान्त्रिक शब्दावलियोंसे परिचित हो गया हूँ एवं पू. गुरुदेवकी कृपासे अनुभूतिकी परिपक्वतामें पदार्पण कर रहा हैं, तब सोचता हूँ कि पू. गुरुदेवने अपनेमें समग्र शक्ति तत्वको न्यास करके कैसा रहस्यमय विवेचन किया है । कामरूप पीठ एवं स्वयं भू लिंगका सामरस्य सृष्टिके पूर्वकी परावाक् अवस्था है । यही तो वाणी {सरस्वती}की उत्पत्तिके भी परेकी अवस्था है । यहाँ न ब्रह्मा हैं, न महा सरस्वती । सब सृष्टि शक्तिमें आत्मगर्भस्थ है ।

त्रिलोक, त्रिदेव, त्रिकाल, प्रभृति सभी परा एवं तुरीय वाक्के पश्चात्की ही अवस्थाएँ हैं । बिन्दु गर्भित जो महात्रिकोण समस्त ब्रह्माण्डके मूल रूपमें शास्त्रोंमें सर्वत्र व्याख्यात हुआ है, वह शब्दके इसी चतुर्विध सम्बन्धसे ही प्रकट होता है । इस त्रिकोण की तीन रेखायें पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूप, तीन प्रकारके शब्द सृष्टि, स्थिति एवं संहार रूप, तीन प्रकारके व्यापार, दामा, ज्येष्ठा और रौद्री तीन प्रकारकी शक्तियाँ, किंवा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन प्रकारके शिवांश अथवा इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्त्यंशके ही प्रतीक हैं और यह पूर्ण शक्ति मेरे पू. गुरुदेव राधाबाबामें नित्य न्यस्त थी । इसीको संकेत करते हुए मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने मुझसे कहा था कि पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा न्यास विद्यामें असमोर्ध्व पण्डित हैं । पू. गुरुदेव कैसी परमोच्य गरिमामयी स्थितिमें नित्य प्रतिष्ठित थे, इसकी एक झाँकी भर आगम विद्वज्जनोंके सम्मुख रख रहा हूँ ।

शक्ति साधनाके सम्बन्धमें विविध प्रश्न एवं उनके पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर

{पू. गुरुदेव श्री राधाबाबाके पास कभी–कभी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, सम्पादक कल्याण–कल्पतरु, श्रीरामनारायणजी शास्त्री, सम्पादक मण्डलके वरिष्ठ सदस्य एवं संस्कृतके उद्भट विद्वान्, श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव, कल्याण कल्पतरुके सम्पादक मण्डलके प्रमुख आदि विद्वान् लोग जब एकत्रित होते थे तो गूढ़ तान्त्रिक शब्दावलियों, दर्शनशास्त्रके गूढ़ विषयों पर प्रश्न किया करते थे, उस समय जो उत्तर पू. गुरुदेव द्वारा दिये जाते थे, उन्हें यथाश्रुत–यथागृहीत यहाँ लिखा जा रहा है । यह पूर्वतः भी अनेक बार उल्लिखित हो चुका है कि पू. गुरुदेव मौन रहते थे, वे मात्र "राधा""राधा" ये दो शब्द ही बोलते थे । वे जो भी उत्तर देते थे उसे स्लेट पट्टियोंमें लिख दिया करते थे, जिसे पढ़कर ही उनका वक्तव्य ज्ञात होता था।

{त्रिकोण एवं महाकारण बिन्धु} {त्रिकोण का भाव}

प्रश्न – बाबा ! तंत्र शास्त्रोंके यंत्रोंमें सर्वत्र त्रिकोण देखनेको मिलता है। इस त्रिकोणके मध्यमें बिन्दु रहता है । अतः इस त्रिकोण एवं बिन्दुसे शास्त्र किस गूढ़ पारमार्थिक रहस्यका संकेत दे रहे हैं, कृपया इस पर प्रकाश डालें ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका उत्तर – "देखिये ! यह जीव अपने इन्द्रिय द्वारोंके ज्ञानसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक जगत्का अनुभव कर रहा है । कोई भी जीव जब शयन करता है तो निद्राके पूर्व उसे इन्द्रियोंका प्रत्याहार करना ही पड़ता है । शान्त होकर नेत्र मूँदने पड़ते हैं, श्रवणेन्द्रियोंको भी शब्द निक्षेपसे निवृत्त करना पड़ता है । इस प्रकार प्रत्याहार करने पर इन्द्रियोंकी उपशान्त अवस्था होते ही यह पंचभूतात्मक जगत् निद्रामें विलीन हो जाता है । यह प्रत्याहार निद्रित होनेके पूर्व एक मच्छर भी करता है, अतः यह क्रिया सभीके द्वारा स्वतः प्रतिफलित होती है । यह सिद्ध कर रहा है कि बाह्य जगत् इन्द्रियोंका ही बहिर्विलास मात्र है । चक्षु इन्द्रिय ही रूपका विकास करती है और चक्षु ही रूपका दर्शन करती है । चक्षु इन्द्रियका

बहिर्विलास यदि रोक दिया जाय तो रूप लुप्त हो जाता है । क्योंकि रूप सर्वव्यापी है, अतः यही समझमें आता है कि समष्टि चक्षु समग्र रूपका विकासकर्त्ता है और व्यष्टि चक्षु भोक्ता है । इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी विचार किया जाय तो यही तथ्य उजागर होता है कि समष्टि भावापन्न पंचेन्द्रियाँ उसका भोग कर रही हैं ।

अब यदि हम अपनी इन्द्रियोंका समाहार कर लें और उन्हें केन्द्रीभूत किसी मूल सत्तामें लीन कर लें तो उस समय यह स्थूल जगत तो दिखना एवं अनुभव होना स्थगित हो ही जाता है साथ ही इन्द्रियोंका अभाव हो जानेसे उनकी स्थूल सम्भोग सम्भावना भी समाप्त हो जाती है । परन्तु क्योंकि अभी भी चित् क्षेत्रोंमें ज्ञानका संचार है, अतः बहिःकारणोंका अभाव होकर अन्तःकरणका आविर्भाव हो जाता है । इस अन्तःकरणका भी क्योंकि समष्टि जीव समुदाय अनुभव करता है, अतः यही अनुभव होता है कि समष्टि अन्तःकरणका अभिमानी तत्व तो इसका द्रष्टा है और व्यक्ति इस अन्तःकरणका ज्ञाता है । यह अन्तःकरण ही अन्तर्जगतको स्फुरित करता है और जीव स्वप्न जगत या आतिवाहिक सूक्ष्म जगतमें प्रविष्ट होता है ।

अब बाह्य इन्द्रियोंकी भाँति अन्तःकरण भी निरुद्धवृत्तिक अवस्थाको जब प्राप्त होने लगता है तो अन्तर्जगत या आतिवाहिक सूक्ष्म जगत भी लुप्त हो जाता है । इस समय आतिवाहिक जगत का भोक्ता भी घोर अज्ञानमें, चाहे निद्रामें कहो, डूब जाता है । इस समय भोक्ताके न रहने पर जीव शुद्ध कारण भूमिमें स्थान पाता है । इस समय समष्टि कारण बिन्दुका स्फुरणात्मक कारण घोर अज्ञान ही दृष्य होता है और व्यष्टि कारण बिन्दु तदात्मक भावमें उसका दर्शन करता है । अब सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूल ग्रन्थिको भी भेद कर पाता है तो वह मूल अविद्याके विलास स्वरूप इस मिथ्या प्रपञ्चके पाश जालसे सदा–सदाके लिये निवृत्त हो जाता है, छुटकारा पा जाता है ।

उपर्युक्त विचार से यह प्रतीत होता है कि स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत तदनुरूप शक्तिके ही विकास मात्र हैं । शक्तिके तीन विभागों अर्थात् कारण जगतका प्रकाशक आधार आत्मा, सूक्ष्म जगत्के आधार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाशके अधिष्ठातृ देवता और स्थूल जगत्के आधार पंच स्थूल भूत – शक्तिकी तीन प्रकारकी अवस्थितिका अनुसरण करते हुए उसके परिणाम स्वरूप कारण, सूक्ष्म और स्थूल–इन त्रिविध रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। इससे ठीक अनुभव होता है कि शक्तिके बहिर्मुख होकर घनीभूत अथवा स्थूलत्वको प्राप्त करने पर एक ओर जहाँ भौतिक तत्वोंका अविर्भाव होता है दूसरी ओर शक्तिके इसी प्रकार क्रमशः विरल होते–होते अन्तःसंकोच अवस्थाको प्राप्त होनेसे वही शक्ति आत्मा

अथवा बिन्दु वाच्य हो जाती है ।

अतएव यही स्पष्ट परिलक्षित होता है कि तथाकथित आत्मा, देवता {आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी} और स्थूल भूत प्राणि–पदार्थ, धन, जन, महल, मकान, खेत, खलिहान, कीट, पशु,–पक्षी, मानव एक ही आद्या शक्तिकी त्रिविध अवस्थाएँ हैं । स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण यह त्रिविध जगत एक ही मूल सत्ताके तीन प्रकारके परिणामके सिवा और कुछ नहीं है । यह स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण जगत ही इस त्रिकोणके रूपमें आगम शास्त्रोंमें वर्णित है और मूल आद्यासत्ता ही यह बिन्दु है ।

अब इसे और दूसरी तरह समझ लें । स्थूल जगत जिसे हम निरन्तर मृत्युपर्यन्त अनुभव करते हैं, बिन्दु {बोध प्रकाश} का बाह्य प्रसारण अथवा विकिरण मात्र है । इन्द्रियोंके प्रत्याहारसे इस रश्मि मालाको उपसंहृत कर सकने पर बाह्य जगत स्वभावतः बाह्य बिन्दुमें विलीन हो जाता है । इसी प्रकार लिंगात्मक अथवा आभ्यन्तरिक आतिवाहिक जगत् भी जो विक्षुब्ध अन्तःकरणका बाह्य विलास मात्र है, वह भी विलीन होने पर तदनुरूप बिन्दु स्वरूपमें अव्यक्त हो जाता है । इसी प्रकार कारण जगत् भी उपसंहारको प्राप्त होकर कारण बिन्दु में पर्यवसित हो जाता है । ये तीनों जगत ही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाके द्योतक हैं । अतएव स्थूल सूक्ष्म एवं कारण–ये तीनों बिन्दु ही त्रिकोणके तीनों प्रान्तोंके बिन्दु हैं । इन्हें "अ" कार कारणात्मक, "उ"कार सूक्ष्मात्मक एवं "म" स्थूलात्मकके नामसे भी सांकेतिक भाषामें अभिहित किया जा सकता है । अन्तर्मुखी होनेकी प्रेरणासे जब ये तीनों बिन्दु रेखा रूपमें भीतरकी ओर संकुचित होते हुए जब महाबिन्दुमें पर्यवसित होते हैं, वही तुरीय रूपमें तुरीयबिन्दु महा कारण रूपमें अभिहित होता है । त्रिकोण रचना करके इसे और स्पष्ट समझ लें ।

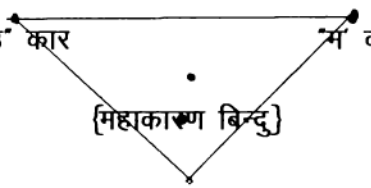

"अ" कार
{ कारणात्मक बिन्दु }

दूसरा प्रश्न बाबा ! आपने त्रिकोणके तीनों बिन्दुओंको स्थूल जगत रूप बिन्दु जो बहिरिन्द्रियोंसे अनुभव में आ रहा है, सूक्ष्म जगत रूप बिन्दु जो स्वप्नमें दिखता है तथा कारण बिन्दु जो निद्रा एवं सुषुप्तिमें घोर

अज्ञानके रूपमें व्यक्त होता है, स्पष्टतया समझा दिया । अब यह महाकारण रूप मध्य बिन्दु भी तनिक और खोलकर स्पष्ट समझा दें।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा उत्तर – "सृष्टिके आदिमें अनादिकालसे जो अव्यक्त, पूर्ण निराकार शून्य स्वरूप वस्तु विराजमान है, वह तत्वातीत, प्रपंचातीत तथा व्यवहार पथके भी अतीत है । वही शाक्तोंकी महाशक्ति, शैवोंकी परम शिव है । वाणी एवं मनके अगोचर होनेके कारण उसे निर्गुण निराकार निर्विशेष कहते हैं । परन्तु अप्राकृत गुणोंसे युक्त होनेके कारण वह सगुण सविशेष भी है । अप्राकृत आकार होनेके कारण वे साकार भी हैं। वस्तुतः उनका वर्णन तो न कोई कर सका है, न आगे कोई कर सके, ऐसी संभावना ही है । इसे विशुद्ध प्रकाश–निर्गुण निराकार निर्विशेष ब्रह्म कहें तो भी कहना नहीं बनता क्योंकि अन्तर्लीन विमर्शके कारण यह तत्व अप्रकाशमान है । निद्रा अप्रकाशमान इसीलिये है कि उसमें विमर्श अन्तर्लीन है । उसकी विमर्श शक्ति ही स्वप्न एवं जागरणका खेल कर रही है । इसे विशुद्ध विमर्श भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें स्वयं प्रकाशतत्व भाव भी है । प्रकाशहीन विमर्श तो सर्वथा ही असत्–कल्प है । इस तत्वातीत और अनुत्तर अवस्थाको आगम शास्त्र "अ" कार प्रयोग करके वाच्य करता है। इसके उत्तर–परे कुछ भी नहीं इसलिये वह "अ" है । "अ" कार रूप प्रकाशके साथ "ह" कार रूप विमर्शका सामरस्य ही शिव शक्तिका साम्य है । "अ" शिव है और "ह" शक्ति है । बिन्दु रूपमें यही "अहं" ही, अर्थात् पूर्ण अहंता ही शिव शक्तिका सामरस्य है । इस पूर्ण अहंता रूप बिन्दुको न तो ब्रह्म कहा जा सकता है, न ही ईश्वर, एवं न ही देवी–देवता, ऋषि, मुनि, जीव। यहाँ विराट् एवं अल्प, लघु एवं महान्, ईश्वर एवं जीवका भेद ही तिरोहित रहता है । एक सूक्ष्मतम कीट–भृंग भी जहाँ अपनेको "अहं" ही मानता है। इस अहंकी भूमिमें जीव–ईश्वर, ज्ञानी–अज्ञानी, विराट्–अल्प सभी भेद तिरोहित हैं । यहाँ दृष्टि एवं सृष्टि भी एकार्थ बोधक व्यापार हो जाते हैं। अहंकी भूमि सब कुछ मात्र "अहं" ही "अहं" है ।

जो शक्ति एवं सत्ता पंच भूतोंकी स्थूल भूमिके रूपमें आत्म प्रकाश किये हैं, उसका साम्य प्रथम साम्य है, उसी प्रकार सूक्ष्म एवं कारण जगत के रूपमें सम्पर्क करने वाली शक्ति और सत्ताका साम्य क्रमशः द्वितीय एवं तृतीय यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेदका परिहार कर जिस महासाम्यमें एकत्व लाभ करता है, वही परमाद्वैत या ब्रह्म तत्व है । यह परम पद ही वह बिन्दु है जहाँ त्रिविध साम्यके पश्चात् परमाद्वैत अथवा महा साम्यका आविर्भाव होता है । महाशक्तिके उद्बोधनके बिना इस परमाद्वैत परम पद पर प्रवेशाधिकार पाना

असंभव ही है ।

{विमर्शकी व्याख्या}

तीसरा प्रश्न – आपने अपने वक्तव्यमें "विमर्श" शब्द का उल्लेख किया है । विमर्श किसे कहते हैं ? इस पर तनिक विस्तारसे प्रकाश डालें ।

पू. गुरुदेवका उत्तर – शक्ति सद्रूपा, चिद्रूपा एवं आह्लाद रूपा है । सच्चिदानन्द परमात्मामें सत्, ज्ञान एवं आनन्दका स्फुरण यह विमर्श शक्ति ही कराती है । एक सुन्दर कथा मेरे सुननेमें आयी है । एक भिखारी यावज्जीवन एक शहरमें एक स्थानमें रहा । उस स्थानकी भूमिके ठीक पाँच फुट नीचे अकूत सम्पत्ति गड़ी हुई थी । हीरे, जवाहरात और अनमोल रत्न स्वर्ण पात्रोंमें भरे थे। वह भिखारी उस अनन्त अनमोल सम्पत्तिका एक मात्र स्वामी था क्योंकि उसकी झौंपड़ी पीढ़ियोंसे उसके पिता–पितामह, प्रपितामहके पास रही थी और वे सभी उस पर घासकी झौंपड़ी बनाकर यावज्जीवन भीख माँगकर पेट भरते रहे थे । अकूत सम्पत्ति पर स्वामित्व रखता हुआ भी परम्परासे यह परिवार भीखसे दोनों जून भर पेट भोजन भी नहीं जुटा पाता था और सायंकाल तो प्रायः भूखे पेट ही पानी पीकर उन्हें सोना पड़ता था । अब जैसे उस धन सम्पत्तिके विषयमें बोध नहीं रहनेसे वस्तुतः धनी होने पर भी व्यवहार भूमिमें उस भिखारी की तीन पीढ़ी निर्धनवत् रही, उसी प्रकार आत्म प्रकाश स्वरूप होने पर भी उस प्रकाशकी प्रकाश मानताका बोध न रहे तो वह अप्रकाश ही माना जायेगा । इसीसे कहा जाता है कि शिवसे यदि "इ" कारात्मक शक्ति हट जाय तो शिव मात्र "शव" हो जाता है । व्रजमें एक रसिया गाया जाता है –"जो "राधा" नाम न होतौ तो, कृष्ण बिचारो रोतो"। यह विमर्श शक्ति ही परावाक् स्वरूपिणी है । यही ब्रह्ममें अपने आपका "अहं" रूपमें बोध कराती है । "अहं ब्रह्मास्मि" पद – "अहं" सत्तात्मक, "ब्रह्म" चिदात्मक और अस्मि आनन्दात्मक बोध युक्त है । यह बोध विमर्शात्मक है । यदि यह न हो तो सत् स्वरूप ब्रह्म असत्, चिदात्मक ब्रह्म अचित् और आनन्दात्मक ब्रह्म आनन्द शून्य ही रह जाता है । इस विमर्शके बिना प्रकाश भी प्रकाशमानताके अभावमें अप्रकाशवत् ही प्रतीत होगा । इसीलिये चिद्रूप विमर्श शक्ति मानना ही पड़ता है ।

{अप्राकृत देह, आकार, गुण एवं स्वभाव}

चौथा प्रश्न – बाबा, आपने अप्राकृत गुण एवं अप्राकृत आकारकी बात तत्वातीत वस्तुका उल्लेख करते समय कही है । तत्वातीत वस्तु अप्राकृत देह एवं उसके स्वभावको कैसे ग्रहण करती है, इसे तनिक

विस्तारसे समझाइये ।

पू. गुरुदेवका उत्तर – जीव समुदायके जन्मोंकी अनेक श्रेणियाँ हैं । पिता–मातासे जन्म लेने वाले प्रकृति राज्यके सम्पूर्ण देह प्राकृत हैं । प्राकृत देहोंका निर्माण स्थूल, सूक्ष्म और कारण–इन तीन भेदोंसे होता है । जब तक "कारण" देह रहता है तब तक प्राकृत देहसे मुक्ति नहीं मिलती । इस त्रिविध देह समन्वित प्राकृत देहसे छूटकर–प्रकृतिसे विमुक्त होकर केवल आत्मरूपमें ही स्थित होने या चिन्मय पार्षदादि दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति होनेका नाम ही मुक्ति है। मैथुनी, अमैथुनी, योनिज–अयोनिज सभी प्राकृत शरीर वस्तुतः योनि एवं बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं । इनमें अनेक स्तर हैं । अधोगामी बिन्दुसे उत्पन्न शरीर जहाँ अधम हैं, वहाँ ऊर्ध्वगामी बिन्दुसे निर्मित उत्तम । कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है । किसी प्रसंग विशेष पर ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पसे बिन्दुके अधोगामी होने पर उससे उत्पन्न होने वाला शरीर सबसे उत्तम द्वितीय श्रेणीका है । ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्प मात्रसे केवल नारी–शरीरके मस्तक, कण्ठ, कर्ण, हदय या नाभि आदिके स्पर्श मात्रसे उत्पन्न शरीर द्वितीय की अपेक्षा भी उत्तम तृतीय श्रेणी है । इसमें भी नीचेके अंगोंकी अपेक्षा ऊपरके अंगोंके स्पर्शसे उत्पन्न शरीर अपेक्षाकृत उत्तम हैं । बिना स्पर्शके केवल दृष्टि द्वारा उत्पन्न शरीर उससे भी उत्तम चतुर्थ श्रेणीके हैं । बिना ही देखे संकल्प मात्रसे उत्पन्न शरीर उससे भी श्रेष्ठ पंचम श्रेणीके हैं । त्रेतादि लोकोंमें वायु प्रधान एवं देवलोकादिमें तेजः प्रधान तत्तत्–लोकानुरूप देहभी प्राकृत एवं भौतिक ही है । योगियोंके सिद्धि जनित "निर्माण शरीर" बहुत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी प्रकृतिसे अतीत नहीं हैं ।

आध्यात्मिक जगतमें प्रवेश करनेके लिये एक आध्यात्मिक देहका निर्माण आवश्यक होता है । इसको दिव्य देह, ज्ञान देह आदि का नाम दिया जाता है। खीष्टीय कैथोलिक सम्प्रदायमें इसे SPIRITUAL BODY कहा जाता है । भारतीय तन्त्र इसे "बैन्दव देह" कहता है । इस देह की उत्पत्ति आध्यात्मिक सिद्ध गुरु अथवा इष्ट देवता या देवीसे होती है । दीक्षा प्राप्तिके साथ ही देह बीजकी प्राप्ति होती है और यह बीज क्रमशः देह रूपेण परिणत होता है । उच्च कोटिके साधकोंमें यह विकास प्राप्त देह रूप में ही उपलब्ध होता है, केवल बीज मात्र रूपमें नहीं ।

वैदिक युगमें उपनयनके अनन्तर गायत्री मंत्र दीक्षाके साथ ही इस देहकी प्राप्ति रूप द्वितीय जन्म होता था । इसीलिये जातकको द्विज कहा जाता था । इस देहका क्रम विकास भी होता है और पूर्ण विकास आध्यात्मिक सिद्धिके रूपमें ही प्रकट होता है । स्वरूपका यह आत्यात्मिक परिवर्तन गुरु

शक्तिसे होता है । यह द्वितीय जन्म Regeneration के नामसे प्रसिद्ध है और इसमें प्रकृतिका अंश जितना–जितना शोधित होता जाता है वह "रिजेनेरेटड" माना जाता है और जो शोधनमें शेष रह जाता है वह Un - regenerated "अनरिजेनेरेटेड" कहा जाता है । जिस क्षणमें पहली बार पूर्णतामें दिव्य प्रकाश होता है, वही सिद्धावस्था है ।

वास्तवमें काल प्रवृहके दो क्रम हैं – आरोहण और अवरोहण । जिस क्रमसे चलने पर संकुचन क्रमशः छूटता जाता है, वह आरोहिणी धारा है और जिस क्रमसे चलने पर संकुचनकी क्रमशः वृद्धि होती है वह अवरोहिणी धारा है। अवरोहकी स्थितिमें बन्धन क्रमशः उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता जाता है और आरोहमें क्रमशः क्षीण–क्षीणतर–क्षीणतम होता हुआ जीव बन्धनमुक्त हो जाता है ।

इसी प्रकार आरोह क्रममें जीव काल राज्यका अतिक्रमण करता है । समग्र विश्व जो परिणामका अनुभव कर रहा है, कालके आधीन है । कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड, स्वर्गसे लेकर पाताल तक चतुर्दश भुवनोंमें रहने वाले जीव सभी कालान्तर्गत है । ब्रह्माण्डोंसे अतीत प्रकृति अण्ड एवं मायाण्ड भी हैं । यह सब सृष्टि कालान्तर्गत है । मायासे अतीत शाक्ताण्डमें भी काल है, परन्तु वहाँ काल महाकालके रूपमें है । इन शाक्ताण्डोंमें मायिक राज्योंकी भांति क्षणिक परिणाम नहीं होते । इस कालराज्यके बाहर ले जाना ही सद्गुरुका लक्ष्य है । अतः सद्गुरु प्रदत्त ज्ञानदेह कालके प्रभावसे मुक्त होती है ।

दीक्षाके पश्चात् सद्गुरु शिष्यके अन्तरमें प्रविष्ट होकर अन्तर्यामी रूपसे शब्द ब्रह्ममय ज्ञानदेहका बीज डालते हैं । ज्ञानदेहका आकार ज्ञानात्मक है और इस देहमें ज्ञानका स्फुरण निरन्तर होता रहता है । यहाँ ज्ञान शब्दसे सामान्य ज्ञान समझना चाहिये । जब विशेष ज्ञानकी अपेक्षा होती है, उसका नाम होता है विज्ञान, ज्ञान होने पर विज्ञान नहीं भी हो सकता है । ज्ञान स्वरूपमें क्रिया नहीं होती । क्रियामें ज्ञान नहीं होता परन्तु विज्ञानमें क्रिया और ज्ञान दोनोंसे सम्बन्ध रहता है । गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञानदेह शब्दज होती है । यह शिष्यके हृदयमें परोक्ष रूपसे उद्भूत होती है । यह ज्ञानदेह पर्यवसित हो जाती है, विवेकज अनुभूतिमें जो शब्दाश्रित नहीं होती । यह अनुभूति शिष्यके विवेकसे अपने आप उद्भूत होती है । प्रातिभ ज्ञान इसका नामान्तर है । यह अनुभूति अनौपदेशिक है । यही प्रत्यक्ष ज्ञान है । सद्गुरुकी विशिष्ट कृपा होने पर ही यह आविर्भूत होता है । इसे ही तारक ज्ञान कहते हैं । गुरुके मौखिक उपदेशसे इस प्रकारका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । इस महाज्ञानका संचार गुरु अलक्षित रूपसे करते हैं। इससे

हृदयके मर्ममें प्रविष्ट सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं ।

"गुरोऽस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्न संशयः ।।"

पू. गुरुदेव कहते जा रहे थे, सद्‌गुरुकी महाकरुणाके बिना प्रत्यक्ष आत्मप्रकाश असंभव है । यह गुरु–करुणा ही शान्ति एवं चैतन्यकी ज्योति साधकके जीवनमें प्रस्फुटित करती है । तभी अपरोक्ष ज्ञान संभव है । उस समय ज्ञानमें कहीं संशय अथवा विकल्पके लिये अवकाश नहीं रहता । यह शब्दातीत ब्रह्म पर प्रतिष्ठा होती है । जो सर्वदा, सर्वत्र समभावसे विद्यमान् है, यह उसीका साक्षात्कार है । "चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः" की उक्तिमें यही सत्य उजागर है । यह अवस्था भी पूर्ण आत्मदर्शनकी नहीं है। इस अवस्थामें स्थित होना भी आत्मरूपमें स्थित होना नहीं है ।

इसके पश्चात् साधकके जीवनमें प्रेमकी प्रक्रियाका प्रारम्भ होता है । वास्तविक रस–साधनाका सूत्रपात ही ज्ञानोत्तर है । किन्तु केवल प्रत्यक्ष ज्ञानके उदय हो जानेसे ही भावका उदय नहीं होता । भावोदयके लिये पूर्ण काम दहनकी आवश्यकता अनिवार्य होती है । मदनका सम्पूर्ण दहन भगवान् शिवके तृतीय नेत्र अथवा ज्ञान चक्षुसे निःसृत अग्निसे होता है । इसका तात्पर्य यही है कि अज्ञानका बीज तक भस्म हो जाय । बीज रूप अज्ञान रहने तक तो कामदेवका अस्तित्व रहता ही है । अज्ञान ही तो पशुभाव है । दिव्य ज्ञानसे पशुभाव पूर्ण निवृत्त होकर पशुपति या शिवभाव होता है । इसके अभिव्यक्त होने पर कामका समग्र नाश होता है । यह शिवरूप सत्ता भी ज्ञानातीत परिपूर्णत्व तभी लाभ करती है जब प्रेम भावकी पराकाष्ठा लाभ करके प्राकृत कामके आकर्षणसे अतीत हुई, परम भावको प्राप्त करती है । यह परम भाव ही राधा महाभाव है । ये भगवती राधा और भगवान् श्रीकृष्ण दो नहीं है । एक ही "कन्दर्पदर्पहा" तत्वके द्विधा स्वरूप है। इसीलिये श्रीकृष्णका बीज मन्त्र काम बीज है । इनके सम्मुख काम तिरोहितवत् हो जाता है, वह इनका प्रमुख उपासक हो जाता है । प्राकृत कामका सब वैभव इनके सम्मुख तुच्छीकृत हुआ नगण्य म्लान हो जाता है और म्लान होते–होते लुप्त हो जाता है । प्राकृत काम महाज्ञानके नीचे है और ये दिव्य काम मन्मथ–मन्मथ श्रीकृष्ण तथा मन्मथ–मन्मथ–मानस–मन्थिनि श्रीराधा महाज्ञान से अतीत है । महा ज्ञान वह है जिसमें प्राकृत–अप्राकृत अध–ऊर्ध्व, प्रभृति भेद मिट जाते हैं और समग्र विश्व कालातीत अखण्ड अद्वय रूपमें भान होता है और महाभाव एवं महारसराजका तो कोई वर्णन ही नहीं कर सकता, वहाँ अप्राकृत जगतका प्रारम्भ होता है ।

श्रीराधाकृष्ण तत्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह, नेत्र–मुखादि इन्द्रियाँ,

इनके अंग–अवयव, रूप–स्वभाव, इनके महल–निवास, इनकी विहार स्थलियाँ, वन–कुंज, निकुंज इनकी सम्पूर्ण लीलाएँ अप्राकृत हैं–जो अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन–बुद्धि–शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें होती हैं ।

ये राधाकृष्ण परिपूर्णतम परमात्मा हैं । इनके धाम, लीला–पात्र, नन्द–यशोदा, सखागण, गोपियाँ, इनके घरके पशु–पक्षी, यहाँ तक कीट–भृंग तृण–गुल्म भी सच्चिदानन्दघन निखिल ऐश्वर्य माधुर्य और सौन्दर्यके सागर हैं। इन श्रीराधाकृष्णका ऐश्वर रूप ही भगवान् सुन्दरेश्वर एवं भगवती त्रिपुरसुन्दरी कामेश्वर–कामेश्वरी हैं । इन श्रीराधाजी, श्रीरुक्मिणीजी, श्रीसीताजी आदिमें भी कोई भेद नहीं है । भगवान्‌के विभिन्न सच्चिदानन्दमय दिव्य लीला विग्रहोंमें विभिन्न नाम रूपोंसे उनकी ह्लादिनी शक्ति साथ रहती ही है । नाम रूपों एवं लीलामें पृथक्‌ता दीखने पर भी वस्तुतः वे सब एक ही हैं ।

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा ।
बैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ।।
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया ।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी ।।
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।
द्वारवत्यां महालक्ष्मी र्भाती रूक्मिणी सती ।।
त्वं सीता मिथिलायां च वच्छाया द्रोपदी सती ।।

हे राधे जिस प्रकार तुम गोलोक एवं गोकुलमें श्रीराधा रूपसे रहती हो, उसी प्रकार बैकुण्ठमें महालक्ष्मी और ब्रह्मलोकमें महासरस्वतीके रूपमें निवास करती हो । तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो । तुम ही धर्म पुत्रकी कान्ता लक्ष्मीस्वरूपिणी शान्ति हो । तुम ही भारतमें भगवान् कपिलकी कान्ता सती भारती हो, तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो, तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है । तुम ही मिथिलामें सीता हो ।

भगवान्‌के दिव्य अप्राकृत लीला विग्रहोंका प्राकट्य ही वास्तवमें आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे ही है । प्रधानतया भगवान्‌के अवतारोंके चार स्वरूप माने गये हैं–पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार एवं मन्वन्तरावतार। भगवान्‌ने आदिमें जब लोक सृष्टिकी इच्छाकी तो महत्तत्वादि–सम्भूत षोडश कलात्मक पुरुषावतार धारण किया था । भगवान्‌के चतुर्व्यूह हैं, श्री वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध । भगवान् शब्द मात्र श्रीवासुदेवके लिए ही प्रयुक्त होता है । इन्हीं पुरुषावतारको आदिदेव नारायण भी कहा जाता है । इन पुरुषावतार भगवान् आदिदेव नारायणके तीन भेद हैं । ये आद्यपुरुषावतार

जहाँ षोड़श कलायुक्त पुरुष हैं, ये ही संकर्षण, बलरामजी अथवा लक्ष्मणजी हैं। इन्हीं संकर्षण भगवान्‌को ही कारणार्णवशायी या महाविष्णु भी कहते हैं । पुरुष सूक्तमें वर्णित सहस्रशीर्षा पुरुष ये ही हैं । ये अशरीरी प्रथम पुरुष कारण सृष्टिके {तत्व समूहके} आत्मा हैं । आद्य पुरुषावतारका द्वितीय पुरुषावतार श्री प्रद्युम्न {श्रीभरत} हैं। ये ब्रह्माण्डमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट रहते हैं । ये ही गर्भोदकशायी हैं। इन्हीं पद्मनाभ भगवान्‌के नाभि कमलसे हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है ।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः
नाभिह्रदाम्बुजासीद् ब्रह्मा विश्वासृजां पतिः ।।
{श्रीमद्भागवत १।३।२}

तृतीय पुरुषावतार श्री अनिरुद्ध {श्रीशत्रुध्न} हैं । ये अपने प्रादेश मात्र विग्रहसे समस्त जीवोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं, प्रत्येक जीवमें अधिष्ठित हैं । ये क्षीराब्धिशायी सबके पालनकर्त्ता हैं ।

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथांग शंख गदाधरं धारणाया स्मरन्ति ।।
{श्रीमद्भागवत २।२।८}

गुणावतार

श्रीविष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र {सत्व, रज एवं तमकी लीलाके लिये} गुणावतार रूपमें प्रकट हैं । इन गुणावतारका प्रादुर्भाव द्वितीय पुरुषावतार श्री प्रद्युम्न {श्रीभरतजी} से होता है ।

द्वितीय पुरुषावतार लीलाके लिये स्वयं ही इस विश्वकी स्थिति, पालन तथा संहारके निमित्तसे तीनों गुणोंको धारण करते हैं । वे गुणोंके अधिष्ठाता होकर विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र नाम ग्रहण करते हैं । वस्तुतः गुण इन्हें लेश मात्र भी वशमें नहीं कर सकते । ये नित्य स्वरूप स्थित ही रहते हैं और अपनी स्वरूपस्थितिमें अच्युत स्थित त्रिविध गुणमयी लीला करते हैं ।

लीलावतार

भगवान् जो अपनी मंगलमयी इच्छासे विविध दिव्य मंगलमयी अनेक विधि विचित्रताओंसे युक्त नित्य नवीन पूर्ण रसमयी क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ाका नाम "लीला" है । ऐसी लीलाके लिये भगवान् जो मंगल विग्रह प्रकट करते हैं, उन्हें "लीलावतार" कहा जाता है । चतुस्सन {सनकादि चारों मुनि}, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर–नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, ध्रुव प्रिय विष्णु, ऋषभदेव, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यासदेव, श्रीबलराम, बुद्ध एवं कल्कि ये भगवान्‌के लीलावतार

हैं । इन्हें कल्पावतार भी कहते हैं ।

मन्वन्तरावतार

स्वायंभुव आदि चौदह मन्वन्तरोंमें होने वाले मन्वन्तरावतार कहलाते हैं।

शक्ति–अभिव्यक्तिके भेदसे नाम भेद

भगवानके सभी अवतार परिपूर्णतम हैं । तत्त्वतः तथा स्वरूपतः इनमें न्यूनाधिकता सर्वथा नहीं है । शक्तिकी अभिव्यक्ति इनमें न्यूनाधिक संभव है । इस न्यूनाधिकतासे इनके चार भेद माने गये हैं – आवेश, प्राभव, वैभव और परावस्थ ।

इनमें सनकादि चारों ऋषि, नारद, पृथु, परशुराम एवं कल्किको आवेशावतार कहा जाता है ।

प्राभव अवतारोंके दो भेद हैं । इनमें प्रथम तो बहुत ही थोड़े काल तक रहते हैं, जैसे मोहिनी और हंसावतारादि । वैसे पुराणादिकके प्रणेता वेदव्यास, सांख्यशास्त्रके प्रणेता कपिल, दत्तात्रेय, धन्वन्तरि, ऋषभ आदि इनकी दूसरी श्रेणीमें आते हैं ।

कूर्म, मत्स्य, नर–नारायण, वराह, हयग्रीव, प्रश्निगर्भ, बलभद्र और चतुर्दश मन्वन्तरावतार ये सभी वैभवावतार माने जाते हैं । इनमें कुछ की गणना अन्य श्रेणियोंमें भी है ।

श्रीनृसिंह, श्रीराम एवं श्रीकृष्ण–ये षडैश्वर्यपूर्ण परावस्थावतार हैं । इनमें श्रीनृसिंहका कार्य भी प्रह्लाद रक्षण और हिरण्यकशिपु वध ही है । ये भी अल्पकाल स्थायी हैं । अतएव मुख्य श्रीराम एवं श्रीकृष्ण ही परावस्थावतार कहे जा सकते हैं ।

"एते चांशकलाःपुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"

श्रीकृष्णको इनमें स्वयं भगवान् कहा गया है । विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्णको "सितकृष्णकेश" पुरुषावतार का केशावतार भी कहा गया है। महाभारतमें भी अनेक स्थानोंमें इन्हें "नारायण" ऋषिका अवतार भी कहा गया है। विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे अंशावतारोंके रूपमें भी प्रकट हुए हैं।

कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि ये सभी भगवान्के सच्चिन्मय अप्राकृत विग्रह हैं । जैसे ये अप्राकृत विग्रह हैं, उसी प्रकार भगवान्का सच्चिदानन्दमय अप्राकृत नित्य परधाम सबसे विलक्षण और सर्वोपरि है । इस अप्राकृत नित्य परधामसे अनन्त ब्रह्माण्ड नित्य अनुप्राणित होते रहते हैं। यह धाम सर्वधाम मुकुटमणि होने पर भी सर्वत्र सभीमें व्याप्त और स्थित है । इसकी पाद

विभूतिके एक अंशमें ही समस्त प्राकृत लोकोंकी परिसमाप्ति हो जाती है । इनसे सर्वथा अस्पृष्ट जो त्रिपाद विभूति है, वह अनैसर्गिक, अप्राकृत सच्चिदानन्दमय परम धाम है । इसी परमधामको भक्तजन साकेत, गोलोक, बैकुण्ठ, कैलास, मणिद्वीप आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं । इस परमोज्ज्वल, परम मधुर, परम कल्याणमय, परम सुन्दर, अप्राकृत गोलोक धाम में, वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, नन्दग्राम, बरसाना, गिरिराज, विरजा आदि दिव्य शाश्वत अप्राकृत प्रदेश हैं । यह धाम भी भगवान् की भाँति ही सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, दिव्य, स्वप्रकाश, नित्य सत्य भावमय है । ये साकेत, कैलास, बैकुण्ठादि भेदोंसे अनेक होते हुए भी सत्य–सत्य एक ही है ।

इस चिन्मय धामकी विशेषताओंका वर्णन पूर्वतः किया जा चुका है । भगवान् सत्–चित्–आनन्द पूर्ण हैं । उनके सत् अंशकी शक्तिसे ये चिन्मय अप्राकृत धाम प्रकट होते हैं । ये धाम भगवान्की सन्धिनी शक्तिका विलास होनेसे पूर्णतः भगवद्रूप हैं । इसी प्रकार भगवान्के चिदंशकी शक्तिके विलाससे भगवान्के सभी लीला पात्र और उनकी लीला प्रकट होती है, अतः वह समग्र लीला भी भगवन्मयी ही है । भगवान्की आनन्दांशकी शक्तिका नाम है ह्लादिनी । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमाह्लाद स्वरूप हैं और जिसके द्वारा वे स्वयं आह्लादित होते हैं और दूसरोंको आह्लादित कर सकते हैं, उसका नाम ह्लादिनी श्रीराधा है।

यहाँ प्राकृत तत्व, तत्वातीत वस्तु और अप्राकृत राज्यमें प्रवेश , अप्राकृत देह, स्वभाव, स्वरूप आदिकी सभी बातें संक्षेपमें कह दी गयी है। वैसे इसका विस्तृत विवरण देने पर तो एक सम्पूर्ण ग्रन्थ ही निर्मित हो सकता है ।

{गोष्ठ, कुञ्ज एवं निकुंज}

पाँचवाँ प्रश्न – बाबा, यह गोष्ठ, कुंज एवं निकुन्जमें क्या भेद है और निभृत निकुंज किसे कहते हैं ? इसे तनिक समझाइये ।

पू. गुरुदेवका उत्तर – भगवल्लीला अर्थात भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी ह्लादिनी शक्ति राधाजीकी ब्रजराज्यमें तीन प्रकारकी लीलाएँ होती हैं । प्रथम गोष्ठ लीलाका अर्थ यह है कि भगवान् माता यशोदा एवं नन्दजीके साथ नन्दभवनमें रहकर अथवा श्रीराधारानी वृषभानुपुरमें अपनी माता एवं अन्य गोपियोंके संग जो लीला–व्यवहार करती हैं, वे गोष्ठ–लीलाके अन्तर्गत हैं । गोष्ठलीलाके अन्तर्गत गो–दोहन, दास–दासियों और गोप–गोपियों द्वारा भगवानकी सेवा, सख्य रसकी भगवान्के साथ तुल्यतामयी रति, ग्वाल बालोंके साथ भगवान्की परम रसमयी क्रीड़ायें, इसी प्रकार राधारानीकी भी वृषभानुपुरमें दास–दासियों एवं सखियों, मंजरियों आदि द्वारा सेवा सन्निहित है । माखन

चोरी आदि सभी लीलायें गोष्ठान्तर्गत ही है । इसी प्रकार वात्सल्य रस घन मूर्त्ति नन्द–यशोदाको जो भगवत्कृपा प्रसाद वितरण है, वह सब गोष्ठान्तर्गत ही है ।

अब मधुर भाव या माधुर्य रसकी जितनी भी लीलायें सखियों एवं श्रीराधारानीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी होती हैं, उनका पर्यवसान कुन्ज अथवा निकुंजमें ही होता है । कुंज लीलामें सखियोंके साथ सम्बन्ध रहता है, किन्तु निकुंज लीलामें सखियोंके लिये स्थान नहीं होता । सखी मात्र श्रीराधारूपी महाभावकी कायव्यूहा है । निकुंज लीलामें प्रवेशके पहले ही ये सभी कायव्यूह रूपा सखियाँ–मंजरियाँ अपनी मूलकाया अर्थात् श्रीराधारानीके अंगोंमें आभूषणोंमें लीन हो जाती हैं । श्रीराधा सर्वसखियोंको अपनेमें समन्वितकर पुष्ट एवं अन्तर्मुखी हुई श्रीकृष्णके चरणोंमें आत्म समर्पण करती हैं । इस लीलाकी द्रष्टा मात्र एक सारिका पक्षी रहती है । निभृत निकुंजमें तो यह सारिका भी श्रीराधारानीके केश–समूहमें लीन हो जाती है । यह अत्यन्त निगूढतम लीला है। निकुंज लीलामें राधाकृष्ण दोनोंका स्वरूप विलास चलता है, परन्तु इसके अन्तमें भगवती श्रीराधा श्रीकृष्ण स्वरूपमें अन्तर्लीन हो जाती हैं । परन्तु आश्चर्य यह होता है कि ज्यों ही महाभाव रसराजमें डूबता है, महाभाव के रसराज होते ही रसराज महाभाव होकर सुप्रकटित हो जाता है । जब तक कुंज भंग नहीं होता तब तक महाभाव रसराजमें पर्यवसित होता रहता है और रसराज महाभाव होकर पुनः व्युत्थित होता जाता है । यह स्थिति कब तक होती है कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि तब देश–काल किसीकी सत्ता नहीं रहती ।

{कामेश्वरी, कामशक्ति, कामसौभाग्यदायिनी,
कामरूपा एवं कामकलाका अर्थ}

छठा प्रश्न – बाबा, भगवती आद्या शक्तिको कामेश्वरी आदि उपरोक्त नामोंसे क्यों अभिहित किया गया है । इनको इन नामोंसे अभिहित करनेके पीछे कौनसा तत्व–रहस्य है, कृपया इसे समझावें ।

पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर – काम सृष्टिका जनक है । यह काम कारण जगतका सर्वोपरि देवता है । भगवती कामेश्वरीकी कृपासे ही जीव प्राकृत कामके आकर्षणसे अतीत हो पाता है । काम पशुको आक्रान्त किये रहता है, परन्तु पशुपतिके सम्मुख आने पर वह भस्म हो जाता है । भगवती कामेश्वरीने कामदेवके भस्म हो जाने पर उसकी राखको अपने नेत्रोंमें अंजनकी तरह लगाकर उसे प्रेमरूपमें परिणत कर दिया था । कामकी प्रेमरूपमें परिणति ही उसकी सर्वोच्च कृतकृत्यता है । इसीलिये भगवती आद्याशक्तिका नाम

कामेश्वरी पड़ा है । भगवतीके सर्वोच्च बारह उपासकोंमें कामदेव प्रमुख हैं और भगवतीकी उपासना कामदेवके आचार्यत्वके कारण काम–विद्या अथवा कादि विद्याके नाम से प्रचलित है ।

इन कामेदवमें जो सर्वजयित्व शक्ति है यह भगवतीकी उपासनाके फलस्वरूप ही है । इसलिये भगवती ही कामदेवमें शक्ति रूपमें निहित हैं । कामदेवको सर्वजयित्व सौभाग्य पद दान देनेके कारण ही इनका नाम सौभाग्यदायिनी पड़ा है ।

भगवती महालक्ष्मीके गर्भसे कामदेवकी भगवान् शिवके द्वारा दहन किये जाने के पश्चात् अनंग भावको प्राप्त करने पर उत्पत्ति हुई थी अतः भगवतीको कामदेवको रूप {आकार} देनेवाली कामरूपा कहा जाता है । भगवती जगदम्बा उन्हें अपनी कलाके रूपमें नेत्रोंमें अंजनवत् धारण करती हैं, इसलिये इन्हें काम कला भी कहा जाता है ।

किसी सत्ताके चरम अंशको आगमशास्त्रमें कला कहा जाता है । कलायें विभिन्न प्रकारकी होने पर भी स्थूल दृष्टिसे दो प्रकार की है–चित् एवं अचित् । विश्व सृष्टिमें कामदेवका अतिशय महत्वपूर्ण स्थान है । कामदेव भी भगवतीकी सृष्टिकी कारण कला है । विश्वमें चित् कला एवं अचित् कला दोनोंके सहयोगसे ही सृजन पालन होता है । आगम शास्त्रोंमें कलाओंसे तत्व रचना होती है और तत्वोंसे भुवनादिकी । पूर्ण अखण्ड सत्ता निष्कल है। शक्ति चिदात्मक होनेसे शक्तिकी शान्तिकला चित्कला है शिवकी शान्ति–अतीत कला भी चित्कला है ।

अनुत्तर शब्दका अर्थ

प्रश्न सातवाँ – बाबा, तंत्र शास्त्रमें अनुत्तरा शब्द भी भगवतीके नामके रूपमें प्रयुक्त है । सौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावलीमें अनुत्तरा शब्द आया है । इसे स्पष्ट करें । इसी तरह इस अष्टोत्तर शत नामावलिमें "अनलोद्भवा" शब्द भी आया है । इसे भी जरा खोलकर समझावें । इसी तरह "स्वातंत्र्य" शब्द पर भी तनिक प्रकाश डालें ।

पू. गुरुदेव द्वारा उत्तर – पूर्ण सत्ताका जो चिद्रूप भान है, वही अनुत्तर है । जगतमें ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय रूप जो त्रिपुटी है उसमें ज्ञाताके साथ जो सम्बन्ध रहता है, उसमें मूलमें भेद रहता है । इसीलिये ज्ञाताका ज्ञेय विषयक जो अनुभव होता है, वह "इदं" रूपमें होता है । जैसे "मैं घर देखता हूँ"–यह घर है इदं और "मैं है" अहं । इन दोनोंका सम्बन्ध "देखता हूँ" क्रियासे सम्बद्ध होता है । परन्तु इस ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेयकी पृष्ठभूमिमें एक परम द्रष्ट है, जो इन्न तीनोंको अभिन्न रूपसे ग्रहण करता है । वह द्रष्टा इन्हें अखण्ड

अद्वय रूपमें जानता है । उसका सर्वत्र अहं रूपमें ही प्रकाश होता है । वह विश्वातीत होने पर भी विश्वात्मक है । लौकिक ज्ञानमें ज्ञाता देहादि द्वारा अविच्छिन्न चैतन्य है । इसलिये उस ज्ञानमें स्थितिके अनुसार इन्द्रियों तथा मन की भी आवश्यकता होती है । परन्तु लोकोत्तर प्रकाशमें जो अनुत्तर स्वरूप स्वतः भान होता है उसमें विशुद्ध–पूर्ण अहंका बोध होता है । इसमें मन–इन्द्रियादि प्रमेयकी आवश्यकता ही नहीं । इसमें मन–इन्द्रिय न होकर भी अखण्ड ज्ञान है । यह ज्ञान अद्वैत है । तंत्र शास्त्रमें इस अनुत्तर दशाकी "अ" मातृकासे व्याख्याकी गयी है ।

शक्तिका प्रादुर्भाव ज्ञानसे ही संभव है । भगवती चित् शक्ति हैं । "विमर्श" शब्दकी व्याख्या करते समय यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सत्ता, ज्ञान एवं आनन्दमें सत् शक्ति संधिनी, चिच्छक्ति चिति एवं ह्लादिनी शक्ति निहित रहती है । इसीलिये भगवती "चिदग्नि कुण्ड सम्भूता" नाम दिया गया है । ये ज्ञान स्वरूप चिज्ज्योतिके कुण्डसे ही प्रादुर्भूत होती हैं । अनल शब्द इस ज्ञानाग्नि, चिदग्निका ही परिचायक है । अनलोद्भवाका अर्थ ज्ञानाग्निकुण्ड सम्भूता ही मानना चाहिये ।

इसी प्रकार आत्माका जो निरपेक्ष भाव है, उसे स्वातंत्र्य कहा जाता है। भगवती आद्याशक्ति पूर्ण परमात्मा हैं । उनकी ही इच्छा मात्रसे सब कुछ होता है, उनकी इच्छामें बाधा देने वाली कोई शक्ति न तो हुई थी, न हुई है और न ही होनी संभव है । जो स्वतः स्फूर्तिशील एवं नित्य वर्त्तमान है, वही स्वातंत्र्य है ।

———————————————

पू. गुरुदेव श्री राधाबाबाकी मातृ साधना एवं पराम्बाका साक्षात्कार

पू. गुरुदेवकी तन्त्र साधना दक्षिण मार्गकी साधना थी । सन् १९४५ ई. तदनुसार विक्रम सं. २००१–२००२ में मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ मैं गोरखपुर चला आया था । इन्हीं दिनों मैंने उनकी पूजा देखी थी । वे चतुः प्रहर चार पूजा प्रतिदिन किया करते थे । रात्रिके द्वितीय प्रहरमें उनकी तुरीय पूजा हुआ करती थी ।

मैं उनकी पूजा देखकर मुग्ध हो जाता था । पू. गुरुदेव मौन रहा करते थे । वे मात्र "राधा राधा" शब्द ही बोला करते थे मानसिक रूपसे वे सभी मंत्र अवश्य बोलते थे, परन्तु इन मंत्रोंके पीछे भी उनका "राधा राधा" सम्पुट अवश्य लगता था । पूजा करते–करते पू. गुरुदेव इतने तल्लीन हो जाते थे कि उनके सम्मुख उनके इष्टकी ध्यान जन्य मानस मूर्त्ति प्रत्यक्षवत् प्रकट हो जाती थी ।

पू. गुरुदेव पूजामें इतने एकाग्र रहते थे कि उन्हें किसी भी बाह्य व्यक्तिके आने–जानेका ध्यान ही नहीं रहा करता था । वे पूजा करते समय अपनी कुटियाका द्वार उढ़का लेते थे, उनकी कुटियामें भीतरसे कुण्डी लगाने का यद्यपि साधन था, फिर भी भीतरसे वे कुटिया कभी बन्द नहीं करते थे। एक दिन जब मैं उनके पास पहुँचा वे पूजा कर रहे थे । कुटिया उढ़की पाकर मैं बाहर बैठ गया एवं उनकी पूजा समाप्तिकी प्रतीक्षा करने लगा । प्रति प्रहर–पूजामें उनको सवा–डेढ़ घन्टेका समय लगा करता था । मैंने उनकी कुटियाके बाहर बिछे एक लकड़ीके तख्ते पर बैठकर नाम–जप करना प्रारम्भ कर दिया ।

अचानक श्रीपोद्दार महाराज आये । उन्हें अचानक किसी कार्यवश गोरखपुर शहरसे बाहर दूसरे नगर जाना पड़ रहा था । श्रीपोद्दार महाराजने श्री गुरुदेवको पूजाके मध्य ही कुटियाका द्वार खोलकर सूचना देदी कि वे गोखपुरसे बाहर जा रहे हैं एवं गुरुदेव पूजा समाप्त करके उनके साथ चलनेकी रेलयात्राकी तैयारी कर लें । पू. गुरुदेव पूजामें इतने तल्लीन थे कि उन्होंने न तो कुछ सुना और न ही उन्हें श्रीपोद्दार महाराजके आनेका ही भान हुआ। पू. गुरुदेवको यदि पोद्दार महाराज द्वारा दी गई सूचना सुनाई पड़

जाती तो संभव है वे संक्षेपमें अपनी पूजा सम्पादित कर लेते । जब उन्हें कुछ सुनायी ही नहीं पड़ा तो सम्भवतः उन्होंने अपनी पूजा यथाक्रम ही सम्पादित की । पू. गुरुदेव जैसे ही पूजा करके उठे, श्री पोद्दार महाराज उन्हें ले चलनेकी त्वरा करने लगे । उनकी ट्रेन छूटनेका समय हो रहा था। अभी तो गुरुदेव ने अपना सामान भी नहीं समेटा है, यह देखकर दोनों में विवाद हो गया । श्रीपोद्दार महाराज कहें कि मैं स्वयं आकर सूचना दे गया था और श्री गुरुदेव कहें कि मुझे सूचना मिली ही नहीं, यदि मिल जाती तो मुझसे यह असावधानी होती ही नहीं, मैं आपसे पूर्व तैयार मिलता । अन्तमें अत्यन्त संकोचपूर्वक मुझे मध्यस्थ होना पड़ा । मैंने पू. गुरुदेवसे कहा – "बाबा ! श्रीपोद्दार महाराज आये थे, परन्तु आप पूजामें संलग्न थे ।" तब जाकर यह रहस्य खुला कि अर्चना करते समय बाह्य क्रिया सम्पादित होते हुए भी उनकी तल्लीनता इतनी अधिक थी कि खुली आँखों वे पोद्दार महाराजको न तो देख सके, न ही उनकी बात हृदयंगम कर सके ।

पू. गुरुदेवने एक बार अंग–न्यास कर न्यासकी साधना समझाते हुए मुझे स्पष्ट कहा था कि न्यास करते समय उनके सम्मुख मंत्र तेजोमय वर्णरूपसे शरीरमें सन्निविष्ट दृष्टिगोचर होते हैं । उन्हें पुस्तक, माला, पूजापात्र सभी दिव्य चिन्मय रूप धारण किये सम्मुख उपस्थित दिखते हैं ।

पू. गुरुदेव सम्पूर्ण अक्षरोंकी अधिदेवी भारतीकी पूजा पंचोपचारसे करते, तत्पश्चात् सम्पूर्ण मातृकाओंको शक्ति–प्रणवमें और प्रणवको ब्रह्मरंध्रमें प्रविलुप्त कर लेते थे । वे जब "लं" बीजका उच्चारण करते तो भूमि देवी कनकके अण्डेके समान दैदीप्यमान हुई उनके सम्मुख उपस्थित होती थीं, तत्पश्चात् विशुद्ध मुकुरके समान परम स्वच्छ निर्मल सच्चिन्मय ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाती थी । इसी प्रकार "वं" बीजका उच्चारण करने पर चन्द्रार्ध प्रकट होता था, उसके पश्चात् उसमेंसे दो पद्म प्रकट होते थे जिनमें अमृत संपुटित होता था । यह अमृत भी उनके ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाता था । इसी प्रकार "रं" उच्चारण करने पर सर्वत्र विलक्षण अग्निमण्डल प्रकट होता था । परन्तु यह परम चिन्मय अग्निमण्डल उनके रोम–रोमको विलक्षण तेज सम्पन्न करता हुआ ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाता था । वे जब "यं" बीजका उच्चारण करते तो धूम्राभा धारण किये वायुदेव प्रकट होते थे, वे भी उनके प्राणोंसे एकात्म हुए उनके दसों प्राणोंको ऊर्ध्व गति देते ब्रह्मरंध्रमें विलीन हो जाते । "हं" बीज उच्चारण करने पर पू. गुरुदेव सर्वव्यापी शून्यसे एकात्म हुए पूर्ण चिदात्मक हो उठते थे । इस चिदात्मकताके महासमुद्रसे उनका भाव शरीर व्यक्त होता था, इसी पूजनोपयोगी भाव शरीरसे पू. गुरुदेव आद्याशक्ति त्रिपुराकी सेवामें संलग्न

होते थे । भगवतीका पूजन उनका यह चिन्मय पूजनशरीर ही किया करता था ।

पू. गुरुदेवकी मन्दिर पूजाका वर्णन पिछले अध्यायमें किया ही जा चुका है । पू. गुरुदेव कभी–कभी पूजा करते–करते बहुत ही सुन्दर गाने लगते । उनका कण्ठ अतिशय सुरीला था । वास्तवमें पू. गुरुदेव जब बहुत ही विरहमें होते तभी गाया करते । अपनी विरहव्याकुल दशाका हाहाकार कहीं उनके बाह्य शरीरमें व्यक्त नहीं हो जाय, उसे संगोपित करनेके लिये ही गुरुदेव गाने लगते । जिसने भी पू. गुरुदेवका गायन सुना है, वह उसे कभी भी विस्मृत नहीं कर पावेगा । अतिशय मधुर कोकिलकण्ठी ध्वनिमें वे गाते थे । यद्यपि उनके गायनके वास्तविक बोल तो प्रच्छन्न ही रहते थे, बैखरी वाणीमें उनका "राधा" "राधा" शब्दोच्चारण ही सबको श्रवणगोचर होता था । सुनने वाला व्यक्ति मंत्र मुग्ध हुआ सा उनके गायनमें डूब जाता था । पू. गुरुदेव तभी तक गाते थे जब तक वे ऐसा समझते कि वे गा रहे हैं और उनका इष्ट उनका गायन सुन रहा है । किसी दूसरेका अस्तित्व आस–पासमें सुनने वालेके रूपमें अनुभव होते ही वे तुरन्त गाना बन्द कर देते थे । पू. गुरुदेव जब गायन करते होते उस समय वे इस विश्व और अपने विगत शरीरको सर्वथा भूले रहते थे । अनेक अवसरों पर मैं चुपचाप निष्पन्द उनके पास घण्टों बैठा रहता और उनकी सुमधुर स्वरलहरीमें डूबा रहता । उन्हें मेरे आगमनका बोध ही नहीं होता था । मैं देखता, गाते समय उनकी ऑखोंसे लगातार अश्रुधारा बहती जाती थी । अश्रुओंसे उनका वक्षस्थल भीग जाता था ।

पू. गुरुदेव यद्यपि श्रीराधाकृष्णके मधुरोपासक थे, परन्तु मातृ उपासनाके समय वे पूरे तांत्रिक आचार्य होते थे । तंत्र शास्त्रकी गोपनीयसे गोपनीय बातें और उपासनाके अंग उन्हें ज्ञात थे । यही दशा श्री पोद्दार महाराजकी भी थी । श्री पोद्दार महाराजको ऊपरसे देखकर कोई नहीं पहचान पाता था कि वे सिद्ध तांत्रिक भी हैं ।

पू. गुरुदेवकी श्रीक्रमकी पूजा तो प्रत्येक प्रहर डेढ़ घन्टे होती थी, इस प्रकार उन्हें लगभग दिनभरमें छः घण्टेका काल तो भगवतीकी पूजामें ही लगता था, शेष समयकी साधनामें उन्होंने कोटि नामावलि जपका संकल्प किया हुआ था । अपनी कुटियामें वे ऊनी आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर पूजन किया करते थे । नामावलि जपके दैनिक क्रमको पूर्ण करनेके लिये उन्हें चौदह–चौदह घण्टे आसन पर बैठना पड़ता था । प्रत्येक उपासनाके लिये उन्हें कम–से–कम एक सहस्र सुगन्धित पुष्पोंकी आवश्यकता होती थी।

उन दिनों श्रीकेदारजी कानोडिया अपनी पत्नी सहित गीतावाटिकामें ही श्री पोद्दार महाराजके पास ठहरने आये हुए थे । ये गीताप्रेसके ट्रस्टी श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाके छोटे भ्राता थे । श्री पोद्दार महाराजने इनके जिम्मे वाटिकाका पुष्प प्रबन्ध दे रखा था। इनके संरक्षणमें चार माली केवल इसीलिये नियुक्त थे जिससे सभी को पूजनार्थ पुष्प प्राप्त हो जावें । पू. गुरुदेवके लिये प्रतिदिन चार हजार सुगन्धित पुष्प गिनकर तुड़वाकर टोकरियोंमें भरकर भिजवाना श्रीकेदारजीकी ही सेवा थी । यद्यपि इन्होंने बहुत दिनों तक अति अध्यवसाय पूर्वक सेवाकी, चेष्टाकी, परन्तु मालियोंके प्रमादवश कभी–कभी सुगन्धित पुष्पोंका अभाव हो उठता था । पू. गुरुदेव अपने कारण मालियोंको अनुशासित करवाना भी नहीं चाहते थे और बिना अनुशासन एवं भयके कोई नियमित कार्य करना नहीं चाहता था । गीताप्रेस पुष्पोंके लिये अधिक अर्थ भार सहने को भी तैयार नहीं था । इन उलझनोंमें पू. गुरुदेवको अपनी उपासना विधिमें परिवर्तन करना पड़ा और पुष्पोंके स्थान पर अक्षतार्चन प्रारम्भ किया गया । अक्षतार्चनमें भी क्षत चावलोंका प्रयोग नहीं होनेके कारण अक्षत चावल छाँटनेके कार्यमें कठिनाई आने लगी । चावल चुननेमें घण्टों समय लगता और यह कार्य करनेमें गृहस्थ स्त्रियाँ किनारा करने लगीं। पू. गुरुदेवने इस कठिनाईको देखकर रक्त चन्दन एवं कुंकुमका प्रयोग प्रारम्भ किया । कुंकुम पू. गुरुदेव स्वयं ही निर्माण करते थे, क्योंकि बाजारोंमें उपलब्ध कुंकुम शुद्धतापूर्वक तैयार नहीं होती थी, उसमें अन्य वर्जित केमिकल और रंग मिलाये जाते थे । पू. गुरुदेव हल्दीको चूनेके संयोगसे रँग कर गंगाजलमें शुद्ध कुंकुम निर्माण करते थे ।

लालचन्दन घिसना एवं सभी पूजा सामग्री संयोजन करनेका उत्तरदायित्व भाई श्रीरामसनेहीजीने वरण कर रखा था । अब पू. गुरुदेवका जप एवं अर्चन सुव्यवस्थित होने लगा ।

पू. गुरुदेवका जीवन उन दिनों उपासना, ज्ञान एवं प्रेमयोगकी त्रिवेणीका अभूतपूर्व संगम था । यद्यपि भावसे वे पूरी प्रेमयोगमें डूबी गोपी थे जो पूर्ण रस–विलासमें आपाततः निमग्न थी, परन्तु उनकी जीवनचर्या इतनी तपक्लिष्ट थी कि रस निर्झरिणी कहाँ बह रही है, बाहर से कुछ भी पता नहीं चलता था। श्रीकृष्ण प्रेमलीला राज्यमें उनकी अवस्थिति यद्यपि बहुत ही प्रगाढ़ थी, उससे विचलित होनेका तो प्रश्न ही नहीं था, परन्तु साथ ही साथ उनकी मातृ साधना भी अति वेग पूर्वक बढ़ रही थी जिसका दिग्दर्शन मात्र उनकी दैनिक जीवनचर्या ही कराती थी ।

पू. राधाबाबा प्रायः रात्रिमें प्रतिदिन डेढ़ दो बजे उठ जाते थे । वे शौच जाकर स्नान कर ध्यानादिमें बैठ जाते थे । प्रातः लगभग पाँच बजे वे पुनः शौच जाकर स्नान कर लेते । दिनमें वे पाँच बार शौच जाते थे और चाहे सर्दी, गर्मी, बरसात कैसी भी ऋतु क्यों न हो, पाँचों बार उनकी स्नान क्रियां आवश्यक होती। अपने हाथों कुएसे पानी निकालकर अथवा हैण्डपम्प चलाकर कमण्डलु भरकर स्नान करनेका उनका नियम था । प्रातः स्नान करके वे श्रीपोद्दार महाराजके अपने निवाससे बाहर आनेकी प्रतीक्षा किया करते थे । श्रीपोद्दार महाराजको महासिद्ध सन्त माननेके कारण वे प्रतिदिवस प्रातः ही उनके दर्शन किया करते थे । ज्योंही श्री पोद्दार महाराजके कलेवर पर उनकी दृष्टि पड़ती, उनके इस प्रथम दर्शनसे ही दिवस भरकी साधनाका उनका क्रम प्रारम्भ हो जाता । भगवतीका प्रातःकालीन पूजन अर्चन वे सर्वथा एकान्तमें अपनी कुटियाका दरवाजा उढ़काकर किया करते । प्रतिदिवस चार हजार पुष्पार्चन करनेके कारण ये निर्माल्य पुष्प उनकी कुटियाके पार्श्वमें एक गड्ढेमें डाल दिये जाते, आगे जाकर इसी गड्ढेमेंसे स्वतः ही एक अमरुदका वृक्ष प्रकट हो गया । यह गड्ढा पट जाने पर फिर दूसरा गड्ढा बनाया गया, वहाँ भी एक बिल्व वृक्ष लग गया । इन वृक्षोंके फल अपूर्व सुगन्धि एवं विलक्षण मधुर स्वादसे भरे होते थे। ये वृक्ष आज भी सर्वपूज्य एवं दर्शनीय हैं ।

चौबीस घंटोंमें मात्र एक बार ही मध्यान्हमें अथवा सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व पू. गुरुदेव भिक्षा किया करते थे । भिक्षामें गाढ़ा तीन चार सकोरे दधिका मट्ठा वे अवश्य पिया करते थे । अन्न भोजनके पश्चात् सेव आदि फल भी वे अवश्य लेते थे । भोजनमें शाक एवं चावलकी मात्रा पर्याप्त रहती थी । वे एक ही प्रकार का शाक परवल, लौकी एवं बथुआ अथवा चौलाई या पालक का मिश्रणकर उबालकर खाते थे । इनकी भिक्षामें नमक सर्वथा ही नहींके बराबर होता था । भिक्षाके पश्चात् वे अपनी पत्तल स्वयं ही उठाकर फैंकते थे । भिक्षाके पूर्व तुलसीदलसे वे भोग लगाया करते और भोग लगा प्रसाद कभी उच्छिष्ट नहीं छोड़ते । एक बारकी घटना है कि जमीकन्दकी सब्जी उनकी पत्तलमें किसीने प्रमादवश कच्ची ही परोसदी । वे उसे भोग लगा चुके तब किसीके द्वारा उसके कच्चेपनकी बात ज्ञात हुई । उसने मना भी बहुत किया परन्तु फिर भी समूची कच्ची जमीकन्द पू. गुरुदेवने उदरस्थ कर ली । इसके फलस्वरूप उनकी भोजन नली और आमाशयमें घाव हो गये। वे उस घावके कारण तीन दिवस तक पानी पीनेमें भी कठिनाई अनुभव करते रहे । भोजनतो उनसे निगला ही नहीं गया । चौबीस घण्टोंमें मात्र एक बार भिक्षा के अतिरिक्त वे कभी भी कोई वस्तु मधु, नीबू, शिकञ्जी, फलोंका रस कुछ भी

ग्रहण नहीं करते थे । उनके पानी पीनेका निश्चित समय हुआ करता था और एक बारमें वे ढ़ाई–तीन किलो पानी धीरे–धीरे अवश्य पिया करते थे । प्रत्येक एकादशीके दिवस वे फलाहार करते और प्रत्येक सोमवारका व्रत करते समय सायंकाल पूजा होने तक वे जल भी ग्रहण नहीं करते, निर्जल निराहार रहते । इसी प्रकार प्रदोष के दिन भी वे सायंकाल प्रदोष पूजन करके ही जल ग्रहण करते थे । वे चतुर्थी व्रत भी करते थे और मास में कुष्ण पक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमा देखकर ही भिक्षा किया करते थे । अनेक बार ऐसा होता था कि वर्षा ऋतुमें बादलोंके कारण चतुर्थीका चन्द्रमा दिखता ही नहीं था, उस दिन जब तक चन्द दर्शन न हो वे भिक्षा नहीं करते थे । वे मुद्रा स्पर्श नहीं करते थे और यदि कोई मुद्रा स्पर्श करा देता उस दिन वे निराहार उपवास करते । इसी प्रकार किसी भी स्त्रीका यदि कभी भी असावधानीसे भी उनसे वस्त्र स्पर्श हो जाता तो वे उस दिन अवश्य उपवास करते । उन्हें महीनों मलेरिया बुखार आता था, उस समय भी उनका सब पूजन क्रम, पाँचों प्रहरका स्नान उसी प्रकार चलता था । भयानक रूपसे रोगाक्रान्त होने पर भी उनके उपासना क्रममें व्यवधान कभी नहीं हो पाता था ।

पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके शरीरको सचल वृन्दावन मानते थे और उन पर उनकी अटूट श्रद्धा यावज्जीवन रही । उनका अमोघ विश्वास था कि जो वस्तु जन्म जन्मान्तरकी साधना सम्पन्नता नहीं प्रदानकर सकती, वह चिन्मय वस्तु श्रीपोद्दार महाराजके शरीर सान्निध्यसे प्राप्त हो सकती है । जो परमातिपरम दुर्लभ श्रीकृष्ण प्रीतिपद उच्च साधना सम्पन्न महायोगियोंके लिये अलभ्य है, वह श्रीपोद्दार महाराज अपने सहज अनुग्रहसे किसी अधमाधम जीवको भी दान कर सकते हैं । श्रीपोद्दार महाराजके प्रति ऐसी उत्कट माहात्म्य बुद्धि एवं श्रद्धा होनेके फलस्वरूप पू. गुरुदेव यावज्जीवन उनके छायावत् साथ रहे और उनकी मृत्युके पश्चात् भी उनकी चितास्थलीमें ही उनका जीवन व्यतीत हुआ ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अंगोंसे एक दिव्य गंध सदैव निकला करती थी । वह मूलतः पद्मगन्धके समान होती थी । मैंने वैसी मीठी गन्ध वल्लभ सम्प्रदायके मन्दिरोंमें भी नहीं पायी, जहाँ ग्रीष्म ऋतुमें ढेरों गुलाब, केवड़ा और कमलोंकी भगवान्के श्रीविग्रहोंके श्रृंगारके समय बहार रहती है। पू. गुरुदेवकी अंग गंध परिवर्त्तित होती रहती थी । प्रातःकाल जब मैं उनके पास जाता तो अति भीनी कस्तूरी महकती होती, कभी तुलसी वनकी सी गन्ध प्रवाहित होने लगती । मध्यनिशाके पश्चात् मैं प्रायः उन्हें व्रजरसके कीर्त्तन सुनाने जाता तो इतनी मधुर सुगन्ध उनकी कुटियामें परिव्याप्त रहती कि मैं

चकित हो जाता था । मैं सोचता आसपासमें कहीं रजनीगन्धा महक रही होगी, परन्तु इस सुगन्धके परिवर्तन होने पर ऐसा अनुमान होता था कि संभव है बहुत सी गोपियाँ भावदेहसे वहाँ अवस्थित हों और उनकी भिन्न–भिन्न अंगगंध मेरी घ्राणेन्द्रिय में प्रवेश पा रही हों ।

पू. गुरुदेव जिस कुटियामें रहते थे वहाँ उनके सिरहाने की खिड़कीके तलमें एक बिलमें घोर करैत सर्प निवास करता था । वह पूज्य गुरुदेवके आसपास कभी घूमता फिरता भी था । पूज्य गुरुदेव अनवरत बारह वर्ष तक उसके सहवासी रहे । न तो गुरुदेवने उसे वहाँसे हटाया न ही वह भी पूज्य गुरुदेवके सामीप्यको छोड़कर कहीं गया । हम लोग कभी–कभी रात्रिमें जब उनकी कुटियामें जाते तो गुरुदेव कह दिया करते थे–"भाई ! यहाँ मेरा सहवासी सर्प अभी नीचे घूम रहा है, उसे पैरोंसे कुचलना मत, वह तुमको कुछ नहीं कहेगा । डरना मत । एक बार पू. गुरुदेव जब बारह माह गोरखपुरसे दूर राजस्थान श्रीपोद्दार महाराजके साथ उनके ग्राम रतनगढ़ आ गये तो पीछेसे गीतावाटिकाके प्रबन्धकोंने पू. गुरुदेवकी कुटिया मरम्मतके लिये उखाड़ दी । उस अवसर पर नयी खिड़की एवं दरवाजे भी लगाये गये । तब उस विषधर सर्पको मजदूरोंने मार डाला । पू. गुरुदेव उसकी मृत्यु पर बहुत ही दुखी हुए और उन्होंने उसके लिये गीता एवं विष्णु सहस्रनामके अनेकों पाठ कराये ।

पू. गुरुदेवकी कुटिया गीतावाटिकाके बहुत पिछवाड़े वन क्षेत्रमें थी । वहाँ चतुर्दिक वृक्षोंके सूखे पत्ते बिखरे रहते थे । अस्तव्यस्त वन क्षेत्र वर्षा ऋतुमें असंख्य मच्छरों, विशाल सर्पो और विषैले बिच्छुओंका आवास बना रहता। रातको प्रायः लघु चहार दिवारी लाँघकर सियारों एवं भेड़ियोंका पदार्पण भी हुआ करता । ऐसे विषम वातावरणमें अकेले पू. गुरुदेव बिना मछहरीके अपनी कुटियाके आगे खुले दालानमें सोते रहते थे । उन दिनों उस क्षेत्रमें बिजली भी नहीं थी, अतः मात्र लालटेनके टिमटिमाते प्रकाशमें ही सारी रात बितानी पड़ती । वर्षा ऋतुमें जब वायु–प्रवाह रुक जाता, भीषण डाँस और विशाल सूँडी मच्छर असंख्य झुण्डोंमें देह पर आक्रमण करते, उस समय बिना मछहरी वहाँ रहना, सोना और रात बितानी असंभव एवं सर्वथा असहज थी, फिर भी गुरुदेव ने अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष इन्हीं मच्छरोंके मध्य बिताये और कभी भी मछहरीका प्रयोग नहीं किया । उनके शरीरमें ऐसा कोई अलौकिक तेज था, संभव है जिससे ये विषैले जन्तु उन्हें नहीं काटते थे ।

एक बार श्रीपोद्दार महाराज गोवर्धन परिक्रमा करने गये थे । उनके साथ सैकड़ों व्यक्ति परिक्रमा कर रहे थे। भगवन्नामकी तुमुल ध्वनिमें संकीर्त्तन

करते हुए परिक्रमा यतीपुरा ग्राममें श्रीमथुराधीशके दर्शनार्थ पहुँची । श्रीमथुराधीश उन दिनों ब्रजमें ही विराजित थे । अचानक संकीर्त्तनमें ढोल, झाँझ, मृदंगके बजनेसे एक स्थान पर छाता लगाये बड़ी संख्यामें मधुमक्खियाँ बिफर गयीं । यात्रियोंको मधुमक्खियोंने इस बुरी तरह से काटा कि अनेक लोगोंको अस्पताल ले जाना पड़ा । मैं पू. गुरुदेवके पास ही खड़ा था । मैंने देखा सैकड़ों मधुमक्खियाँ पू. गुरुदेवके आसपास क्रुद्ध हुई मँडरा रहीं थीं परन्तु एक भी उनके अंगोंमें दंशतक नहीं कर रही । यहाँ तक कि उन्होंने मुझे भी भागनेसे मना कर दिया और कहा कि बचना चाहता है तो निर्भीक मेरे पास बिना प्रतिरोध किये खड़ा रह । मैं आश्चर्य चकित था । पू. गुरुदेवकी देहमें एक ऐसा विलक्षण तड़ित्प्रवाह सदा रहता था, जिसके फलस्वरूप हिंसक जीवोंका क्रोध उनके सम्मुख शान्त हो जाता था ।

पू. गुरुदेव काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त तो थे, उनमें भगवती आद्या शक्तिके प्रति शुद्धा भक्ति एवं पूर्ण प्रेममय समर्पण व्यक्त हो ही चुका था । गुरुदेव सत्ताईस लाख अर्चन भी सम्पादित कर चुके थे । अब वह काल भी अति सन्निकट आ गया जब उन्हें भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूर्ण कृपा प्रसाद प्राप्त होना अवश्यंभावी था । माँके परम मंगलमय दर्शन होनेकी बेला समुपस्थित हो, उनके पूर्व भगवती आद्याशक्तिने उनकी भीषण परीक्षा ली।

घटना बीस जनवरी १९५१ की है । पू. गुरुदेव स्वयं ही जल निकालकर कूएकी जगत पर खड़े स्नान करने जा रहे थे । गोरखपुरमें सर्दियोंमें प्रायः वर्षा होती ही है । उस दिन भी आकाश मेघाच्छन्न था । कुएँकी जगत पर पर्याप्त काई वर्षाके कारण जम गयी थी । पू. गुरुदेव काष्ठ निर्मित खड़ाऊ पहने दतुअन करके जैसे ही स्नानार्थ कुएँ पर चढे कि काईसे उनकी खडाऊ फिसल गयी । वे धड़ामसे पृथ्वी पर गिर पड़े । गिरते ही एक बार तो उन्हें मूर्च्छा आ गयी । श्रीरामसनेहीजी नामक परिचारकने उन्हें उठानेकी चेष्टा की, परन्तु उसकी वह चेष्टा सफल नहीं हो पायी । श्रीरामस्नेहीजीकी पुकार पर अनेक लोग दौड़े आये, श्री पोद्दार महाराज भी आये । पू. गुरुदेवको जब चेतना हुई तो उनके दाहिने कन्धेमें भीषण पीड़ा थी । यह पीड़ा ही स्वयं बता रही थी कि उनकी कोई हड्डी टूट गई है ।

पू. गुरुदेवको उठाया गया । उनके कीचड़ सने वस्त्र बदले गये । श्रीपोद्दार महाराज गुरुदेवको अस्पताल ले गये । वहाँ डाक्टर श्रीमाथुर साहबने एक्सरे किया तो पता चला कि उनकी हँसुलीकी हड्डी (Collar Bone) टूट गयी है । सभी सन्देह दूर हो गये और सही स्थिति सामने आ गयी ।

पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके साथ गीता वाटिका चले आये । अब चिकित्साका प्रश्न उठा । चिकित्सा पू. गुरुदेवको यति धर्मके अनुसार स्वीकार थी नहीं । श्रीमाथुर साहबका आग्रह प्लास्टर बँधवानेका स्वाभाविक ही था, जो पू. गुरुदेवको कदापि स्वीकार्य नहीं था । अब यही मध्यम मार्ग निर्धारित हुआ कि कम्बलको पट्टीकी तरह प्रयोग लेते हुए गेरुए वस्त्रसे उसे काँखमें बाँधा जाये, जिससे हड्डी इधर–उधर नहीं हो, ठीक स्थिति पर बनी रहे । परन्तु पू. गुरुदेव प्रतिदिन चार बार स्नान करते ही थे। प्रतिदिन चार बार स्नानके पूर्व पट्टी हटा दी जाती थी और पुनः उसे स्नानके पश्चात् बाँधी जाती थी । इन दिनों श्रीमाथुर साहबने पू. गुरुदेवकी अतिशय सेवाकी ।

पू. गुरुदेव अपने नियमों एवं आचारमें अटल थे । इस अवस्थामें भी उन्हें प्रति दिवस बार–बार चारों पहर सहस्रार्चन करना ही था । शरीरमें भीषणतम पीड़ा थी । हँसुली की भग्न हड्डी स्नान करते समय एवं पूजार्थ हिलनेके कारण असह्य वेदना देती थी, इसे भला शब्द किस प्रकार प्रकट करें। मस्तिष्क पीड़ासे अतिशय सिहर उठता था, फिर भी अर्चना चारों पहर अक्षुण्ण चलती रही ।

पीड़ाके कारण पू. गुरुदेवको रात्रिमें भी नींद नहीं आती थी । भूख प्यास भी बिदा हो गयी थी । परन्तु उनकी अखण्ड आन्तरिक अनुभूति यही बनी रहती थी कि इस भीषण पीड़ाके रूपमें भगवतीका असीम परम मंगलमय करुणा समुद्रही हिलोरें ले रहा है । जब उन्हें भीषण कष्ट होता तो वे "राधा" "राधा" गान करने लगते । उनकी इस प्रेम–आकुल "राधा""राधा" नाम ध्वनिमें ऐसी अलौकिक माधुरी भरी होती थी कि वनके वृक्ष, लता–पता, समग्र पंचभूत ही शान्त स्तब्ध मानो श्रवणेच्छुक हो उठते थे । पू. गुरुदेवका रोम–रोम उस गायन कालमें मातृप्रेमसे पूर्ण पगा रहता था ।

मैं उन दिनों अपनी जन्मभूमि गया हुआ था । सन्यस्त तो लगभग बाईस वर्ष पश्चात् हुआ था । जैसे ही मुझे उनकी इस दुर्घटनाकी सूचना हुई, मैं गोरखपुर आया । मैं जब गोरखपुर पहुँचा तो वे थोड़े स्वस्थ हो चुके थे। उन्होंने उस भीषण कष्टके समय अपने चित्त की स्थिति और मनकी अवस्थाका वर्णन मुझे सुनाया था ।

वे कह रहे थे – "उस दशामें बाह्य होश मुझे बहुत ही कम रहता था। कष्ट सहनशक्तिके बहुत आगे पहुँच चुका था, फिर भी किसी अज्ञात शक्तिकी सहायतासे सहन तो हो ही रहा था, साथ सम्पूर्ण पूजा अर्चन पूर्ववत् निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा था । उस कष्टजनित उन्मत्त अवस्थामें जड़ सृष्टि मेरे सम्मुख चेतन हो उठती थी । ठीक ऐसा अनुभव होता मानो साक्षात् भगवती

ही समग्र पंचभूतात्मक जड़ताके वस्त्र पहने सम्मुख खड़ी हँस रही हैं । वे ही पीड़ाके वस्त्र पहने किसी परम विशेष अनुग्रहकी अदम्य इच्छा लिये मेरे मस्तिष्कको मथ रही हैं । इस प्रकारके प्रगाढ़ घने विचार कुछ क्षण आते फिर सम्पूर्ण तामसिकता छँटने लगती । विशुद्ध सत्व निखरने लगता । माँ महामाया जो चराचरमें ओत–प्रोत है निरावरित मेरे सम्मुख अभूतपूर्व वात्सल्यसे भरी सम्मुख आ जाती। उस समय उनसे मिलकर एक होनेकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र हो उठती थी कि रोम–रोम विरहकी भीषण ज्वालामें दहकने लगता । उस विरह ज्वालाका ऐसा ताप होता था कि उसके सम्मुख हड्डी टूटनेका शारीरिक कष्ट तुच्छातितुच्छ प्रतीत होता था । ऐसा लगता मानो अथाह विरह समुद्र है और उसे पार करना मानो पूर्णतया असंभव ही है । वह विरह व्यथा शब्दोंके द्वारा कोई प्रकट कर ही नहीं सकता ।

जब टूटे हुए अवयवोंसे भी अर्चन प्रारम्भ करने बैठता तो शरीरके सभी चक्रोंमें ध्येय मूर्त्ति व्यक्त हो जाती थी। ऊपरसे तो मैं "राधा" "राधा" गाता होता, परन्तु भीतरसे मैं माँ–माँ, मैया–मैया, जननी–जननी, अम्बे–अम्बे, जगदम्बे–जगदम्बे गाता । उस समय अपने विश्वरूपके सभी वस्त्र माँ मुझे पहना देती और मैं अनन्त ब्रह्माण्डोंसे एकात्म एकरूप हो जाता था । फिर मैं अपना सब चोला माँको पहना देता उस समय मेरी ऐसी विलक्षण दशा होती कि क्या कहूँ । चार–पाँच सप्ताहमें पू. गुरुदेव की हड्डी जुड़ गयी थी। वे क्रमशः स्वस्थ होते गये तीन माहके लगभग उसके पश्चात उनका अर्चन क्रम और चला होगा तब तक पू. गुरुदेवके लगभग सत्ताईस लाख अर्चन पूर्ण हो चुके थे ।

उस दिन अक्षय तृतीया का पावन दिन था । नित्य नियमानुसार प्रातः स्नान कर पू. गुरुदेव अर्चन करने अपने आसनमें बैठे थे । उनका आसन उत्तराभिमुख था । आसनके सम्मुख उनका पूजा चित्र स्थित था । अचानक वहाँ एक दिव्यालोक प्रकट हुआ । उस दिव्यालोकमें पू. गुरुदेवके सम्मुख भगवती प्रकट हो गयी । उस अत्यन्त रूपमयीकी वात्सल्य दृष्टिसे सराबोर गुरुदेव वहीं समाधिस्थ हो गये । जब पू. गुरुदेवकी समाधि भंग हुई तो दो बातें पूर्ण आश्चर्यमयी हुईं ।

एक तो अब तक पू. गुरुदेव बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवतीके षोड़शाक्षरी महामंत्रका उद्धार नहीं कर पाये थे, वह मंत्र उनके सम्मुख श्री सौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावलीसे प्रकट हो गया । इतना ही नहीं षोड़शाक्षरी मंत्रका अपेक्षित अर्थ भी उनकी धारणामें परिपुष्ट हो गया । बादमें पू. गुरुदेव ने श्रीमद् आदि शंकर रचित मंत्रार्थका जब अध्ययन किया तो उन्हें अपने अर्थ

से उसका साम्य पाकर बहुत ही समाधान हुआ । इसके अतिरिक्त दूसरे यावज्जीवन भविष्यमें उन्हें कभी आध्यात्मिक आधिदैविक एवं आधिभौतिक कोई कष्ट न हो, इस प्रकारकी दुःखविघातकसिद्धिकी प्राप्ति भगवतीकी कृपासे हुई। पू. गुरुदेवको भगवतीके दर्शन होते ही सर्वज्ञत्व सामर्थ्य एवं सर्वकर्त्तृत्व शक्तिकी भी सिद्धि हो गयी । परम पारमार्थिक लाभ जो शब्दातीत था वह तो यह था कि वे पूर्ण शिवत्व एवं शक्तिके सामरस्यसे युगपत् एकात्म हो गये । पू. गुरुदेवके पंचभूतात्मक देहके सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, सम्पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक ओज–समग्र रूप ही शिव शक्त्यात्मक सामरस्यके परिणामके रूपमें अभिव्यक्त हो उठा । वह सर्वदेवमयी, सर्व कल्याण निलया, परमाद्या, पराभट्टारिका, सनातनी, भगवती ही उनका स्वरूप है, स्वरूप थी और स्वरूप रहेगी–यह उन्हें स्पष्ट–स्पष्ट निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष हो रहा था। माँ जगद्योनि, सर्वगर्भा, सर्व निलयासे उनकी एकात्मता अखण्ड, अक्षुण्ण प्रतिभात हो रही थी ।

वही सनातनी अनादि अनन्त काल तक निरवधि उनके अणु अणुसे साक्षात् हो उठीं । पू. गुरुदेव गुरुदेव रहे ही नहीं वे सर्वकारणभूता सच्चिदानन्दमयी परमात्म शक्ति हो गये । पू. गुरुदेवका समग्र व्यक्तित्व ही उस दिन अपनी अनादिकालीन सर्व परिच्छिन्नताओंसे मुक्त हुआ अक्षय, असीम आह्लाद सिन्धुमें पूर्ण स्वातंत्र्य समन्वित हुआ विलीन हो गया ।

स जयति महान् प्रकाशो यस्मिन् दृष्टे न दृष्यते किमपि ।
कथमिव तस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञात मुच्यते वेदे ।।

उस महा प्रकाशकी जय हो, जिसके दर्शन होने पर बस वही दृश्य रहता है और सम्पूर्ण इतर दृश्य बाधित हो उठते हैं, जिसको किंचित् भी जान लेने पर सब जान लिया जाता है, यह बात वेद प्रमाण पूर्वक कहते हैं।

———————————————

व्रजरज उडि मस्तक लगै,
मुक्ति मुक्त ह्वै जाय

श्रीराधाकृष्ण तत्व सर्वथा अप्राकृत है । इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत है और ये लीलायें भी अपने असमोर्ध्व रस–सौन्दर्यसे अप्राकृत क्षेत्र ब्रज–प्रदेशमें ही सम्पादित होती हैं । प्रेम भक्तिके चरम स्वरूपको यह व्रज प्रदेश अनादिकालसे प्रस्फुटित करता आया है । विलक्षण है यह भूमि जिसमें निवास करने वाले मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी, तृण–गुल्म लतादि भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति शंका, संकोच, संशय, सम्भ्रम आदि भावोंसे शून्य परम आत्म निवेदनकी पराकाष्ठाके भावोंसे सदैव भरे रहते हैं । धन्यातिधन्य है यह भूमि और परम कल्याणमयी है, इस परम अप्राकृत लीला क्षेत्रकी रज, जो युगों–युगोंसे सन्तों एवं महज्जनों द्वारा सेवनीय रही है ।

इस ब्रजरजकी कैसी अभूतपूर्व महिमा है कि ब्रह्माजी भी इस रजकी अभिलाषा करते हैं, महात्मा उद्धव इस ब्रजरजके सेवनके लोभवश इस प्रदेशमें लता–पता बनकर जन्म लेना चाहते हैं । यह ब्रजरज अपने सेवन करने वाले भक्तोंको वह अनिर्वचनीय कृपा प्रसाद दान करती है जो पुत्र होने पर भी ब्रह्माजीको, आत्म स्वरूप होने पर भी शंकरजीको, और वक्षस्थल पर नित्य विराजित रहने वाली अर्धांगिंनी होने पर भी लक्ष्मीजीको भगवान् श्रीकृष्ण तक नहीं दे पाये ।

यह व्रजरज भावकुभाव किसी भी प्रकारसे किसीके अंगोंमें लग भर जाय, नेत्रोंमें अंजनकी तरह बस क्षण भरके लिये ही सही अँज भर जाय, रसनाके माध्यमसे बस एक बार ही सही, उदरमें इसका प्रवेश भर हो जाय, फिर तो यह अवश्यंभावी रूपसे उस महाभाग्यवान्को उस श्रीकृष्ण रूप–माधुरीका पान कराती है जो अनन्त ब्रह्माण्डोंमें सर्वजयी एवं असमोर्ध्व है । जो श्रीकृष्ण रूप माधुरी लावण्यकी सार है और जो किसी सज्जासे सजायी सँवरी नहीं जाती अपितु स्वयं सिद्ध है । जो प्रतिक्षण नित्य नव नूतन होती है और जिसे अनादि अनन्त काल तक देखते रहने पर भी कभी तृप्ति होती ही नहीं।

जिसे पाकर फिर कुछ भी पानेकी लालसा नहीं रहती और स्वर्गादि लोकोंकी समग्र श्री, और बैकुण्ठादि लोकोंका परम वैभव भी जिसके सम्मुख तुच्छातितुच्छ हो जाता है । ऐसी मुकुन्द–प्रीति–प्रदाता यह व्रजरज है ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस व्रज रजको देहके द्वादश स्थानोंमें प्रतिदिन लगाते थे और प्रतिदिवस पाँच बार स्नान करनेके उपरान्त पाँचों बार ही इसका सेवन करते थे । वे त्रिपुण्डकी तरह इसे शरीरके द्वादश स्थानोंमें जलसे गीलीकर मला करते थे । ललाट, कण्ठ, वक्षस्थलके दोनों ओर एवं नाभिस्थान, दोनों भुजाओंमें कन्धे सहित तीनों स्थानोंमें एवं पृष्ठदेशमें–इस प्रकार बारह स्थानोंमें प्रतिदिन पाँच बार वे इस ब्रजरजका ही त्रिपुण्ड्रवत् सेवन करते थे । वे यात्रा में जाते समय भी इस ब्रजरजकी वटिका बनाकर एक पोटलीमें साथ ले जाया करते थे एवं एक वटिका तो अपने उत्तरीय वस्त्रमें सदा छोर पर बाँधे रखते थे ।

यह व्रजरज जो पू. गुरुदेव प्रयोग करते थे उन्हें वल्लभ सम्प्रदायके एक वैष्णवने इक्कीस प्रकारके अति महत्वपूर्ण तीर्थ स्थलोंसे एकत्रित करके भेजी थी। इसका पूर्ण विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

{प्रथम स्थान}

पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदायके भिन्न–भिन्न पीठोंके आचार्यगण व्रज चौरासी कोसकी यात्रा शरद ऋतुमें उठाया करते हैं । इस यात्रामें सम्मिलित वैष्णव यात्री यह यात्रा ४९ दिनोंमें पूर्ण करते हैं एवं लगभग ३४०–३५० मील पैदल यात्रा करते हैं ।

गोस्वामी श्री १०८ व्रजरत्नलालजी महाराजकी तीर्थ यात्रामें सम्मिलित इन महाभाग वैष्णव महानुभावने ३४० मील व्रज भूमिकी मिनट–मिनटके अन्तरालमें रज एकत्रित करके इस व्रजवाटिकाका निर्माण किया था ।

{द्वितीय स्थल}

इस चौरासी कोस व्रज यात्रामें जो–जो सरोवर आये, उन सभीकी गीली रज इसमें सम्मिलितकी गयी । इस यात्रामें प्रतिदिन पाँच सात कुण्ड प्रतिदिवस ही आते हैं, समग्र व्रजमें प्रकट–अप्रकट इन कुण्डोंका वैष्णवशास्त्र गर्ग संहितादिमें बहुत महत्व प्रदर्शित किया गया है । इनमें राधा कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, प्रेम सरोवर, क्षीर सागर, वृषभानुसर, कुसुम सरोवर, नारद कुण्ड, उद्धव कुण्ड आदि स्थल प्रसिद्ध हैं ।

{तृतीय स्थल}

इस यात्रामें प्रति दिवस ही कम–से–कम पाँच–सात मन्दिर आया करते थे, उन स्थलोंकी रज भी इसमें सम्मिलितकी गयी ।

{चतुर्थ स्थल}

जिन मन्दिरोंके आँगनमें तुलसी वन होते थे अथवा यात्राके पथमें जहाँ भी वन–तुलसी दिखाई पड़ जाती थी, उन वृन्दादेवी {तुलसी}के जड़ मूल स्थलकी रज भी इसमें मिलायी गयी ।

{पंचम स्थल}

व्रजमें अनेक गंगा हैं, जैसे मानसी गंगा, कृष्ण गंगा, पाण्डव गंगा, अलकनन्दागंगा, चरणगंगा–इन सबकी गीली मिट्टी भी इसमें मिलायी गयी ।

{षष्ठ स्थल}

इस चौरासी कोसी यात्रामें जहाँ–जहाँ यमुनाजी मिलती गई, वहाँ–वहाँसे लगभग सैकड़ों स्थानोंसे ही गीली यमुनाजीकी रज इसमें समाहित की गयी।

{सप्तम स्थल}

जहाँ–जहाँ यात्रामें भगवान श्रीकृष्णके अथवा बलदेवजीके चरण चिन्ह उपलब्ध हुए–जैसे चरण–पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा, भोजन थाली इत्यादि–वहाँकी रज भी लेकर इसमें मिला दी गयी ।

{अष्टम स्थल}

भगवानकी जिन–जिन स्थलोंमें प्रमुख लीलाएँ संघटित हुईं, जैसे ऊखल–बन्धन, मृद् भक्षण, दान लीला, मान लीला, रास लीला–इन सभी स्थलोंकी रज भी इसमें मिला ली गयी । व्रज यात्रामें जितने वन और कदम्बखंड़ियाँ आती हैं, जहाँ भगवान्ने गोचारण, आँखमिचोनी, प्रलम्ब वध, धेनुक–वध आदि असंख्य लीलाएँ सम्पादित की हैं, लीला सम्बन्धी अनेक प्रमुख वृक्ष जैसे टेरकदम्ब, अक्षयवट, ऐंठाकदम्ब, संकेतवट इत्यादि इनके मूलकी, इनके छाया स्थलकी अथवा इनके पेड़ोंमें लगी रज भी इसमें निहितकर ली गयी ।

{नवम स्थल}

ब्रज मण्डलमें बहुतसे महात्माओंकी तपोभूमि हैं, उनके समाधि–स्थान हैं, उनकी रज भी इसमें मिला ली गयी। इनमें सूरदासजीकी तपोभूमि चन्द्रसरोवर, नारायण स्वामीकी तपोभूमि, कुसुम सरोवर, रघुनाथ गोस्वामीका समाधि स्थल, राधाकुण्ड परम प्रसिद्ध हैं ।

{दशम स्थल}

साक्षात्कारी प्रसिद्ध जीवित महात्माओंकी चरण रज भी इसमें सम्मिलित कर ली गयी थी, जैसे रामकृष्णदासजी महाराज वृन्दावनमें उन दिनों जीवित निवास कर रहे थे ।

{एकादश स्थल}

प्रिया–प्रियतम सखीवृन्द सहित रासधारी रूपमें यात्रामें संग–संग थे, उनके चरणारविन्दकी रज भी इसमें निहितकी गयी ।

{द्वादश स्थल}

ब्रज चौरासी कोसमें महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकी बैठकें, जहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवतके पारायण किये हैं, वहाँकी रज भी इसमें निहित है ।

{त्रयोदश स्थल}

हरिद्वारसे गंगाजीकी नहर जो व्रजमें आयी है, उसके विभिन्न स्थलकी रज भी इसमें निहित है ।

{चतुर्दश स्थल}

श्रीगिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा स्थलीकी मिनट–मिनट पर ली गयी रज भी इसमें निहितकी गयी । श्रीगिरिराज पर्वत पर स्थित श्रीनाथजीके प्राकट्य स्थलकी रज एवं श्रीमुखारविन्दके स्थानकी रज भी इसमें निहित की गयी ।

{पंचदश स्थल}

श्रीगोवर्धन ग्राममें श्रीगिरिराजजीके मुख्य मन्दिर एवं अन्य मन्दिरोंकी रज भी इसमें निहित है । श्रीमानसीगंगाकी परिक्रमाकी रज भी इसमें सम्मिलित है ।

{षोड़श स्थल}

श्रीवृन्दावन धामकी सैकड़ों स्थानोंसे रज ली गयी । घाटोंकी, सरोवरोंकी, लीलास्थलियोंकी, महात्माओंके स्थानोंकी, समाधियोंकी, श्रीबिहारीजीके प्राकट्य स्थलकी, निधिवनकी, श्रीयुगलसरकारके सेवाकुञ्जकी, श्रीयमुनाजीके विभिन्न स्थानोंकी, श्रीवृन्दावनके चारों ओर परिक्रमा करके छः मीलके मार्गकी, मिनट–मिनट पर रज एकत्रितकी गयी एवं इसमें मिलायी गयी ।

{सप्तदश स्थल}

श्रीमथुराजीके घाटोंकी, मन्दिरोंकी, सरोवरोंकी, कंसके टीलेकी, जन्म–स्थान आदिकी, साथ ही आठ मीलके परिक्रमा मार्गकी भी मिनट–मिनट पर रज लेकर इसमें समाहित की गयी ।

{अष्टदश स्थल}

श्रीनाथजीके चरणोदक एवं स्नानीय सम्पूर्ण जलको पवित्ररज मिलाकर चरणामृत पेड़े बनाये जाते हैं, बहुतसे भक्त इनको घोलकर नियमपूर्वक प्रतिदिन चरणामृतके रूपमें लेते हैं अथवा मस्तक पर लेपन करते हैं । ये पेड़े भी इस

वटीमें पर्याप्त मात्रामें मिलाये गये थे ।

{एकोनविंश स्थल}

श्री वृन्दावनके बाँके बिहारीजीके सर्वांगमें लेपन किया गया, अक्षय तृतीयाका प्रसादी चन्दन भी इसमें मिलाया गया ।

{विंश स्थल}

श्रीद्वारकाधामसे आया हुआ गोपी तलाईका गोपीचन्दन भी इसमें निहित किया गया ।

{एकविंश स्थल}

श्रीवृन्दावनके १०८ मन्दिर, श्रीमथुराधाम के १०८ मन्दिर, श्रीब्रजमण्डल के १०६ मन्दिर, श्री चौरासी कोस यात्रामें पड़ने वाले १०८ मन्दिरोंका प्रसादी चन्दन भी इसमें सम्मिलित किया गया है ।

इस प्रकार उपरोक्त इक्कीस स्थलोंसे एकत्रितकी गई यह पावनतम व्रजरज जो किसी महाभाग वैष्णव द्वारा भेजी गयी थी, पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके अंगोंमें नित्य लिप्त होती थी ।